निराला के काव्य में शिल्पगत प्रयोग

(EXPERIMENTAL STYLE IN NIRALA'S POETRY)

(पीएच.डी. हिन्दी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबंध)

2022

शोध–निर्देशक

प्रो. राम चंद्र

शोधकर्त्ता

प्रशांत कुमार

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

Dated: 30 /06 /2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled "**NIRALA KE KAVYA MEIN SHILPGAT PRAYOG (EXPERIMENTAL STYLE IN NIRALA'S POETRY)"** submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

PRASHANT KUMAR
Name of Student

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 28 /06 /2022

Certificate

This is to certify that the Mr. **Prashant Kumar**, a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled "NIRALA KE KAVYA MEIN SHILPGAT PRAYOG" [EXPERIMENTAL STYLE IN NIRALA'S POETRY] This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Prof. Ram Chandra
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Dr. Ram Chandra
Professor
Centre for Indian Languages
SLL&CS
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

Prof. Omprakash Singh
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217;
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

Scanned with CamScanner

समर्पण

मम्मी और पापा को ....

साधारण होते हुए भी जिनकी तपस्या असाधारण है.....

अनुक्रमणिका

भूमिका **i-v**

अध्याय–1 **1–55**
काव्य शिल्प की अवधारणा एवं स्वरूप

(1) काव्य–शिल्प का आशय एवं अर्थ
(2) काव्य–वस्तु, विचारधारा एवं काव्य–शिल्प
(3) आधुनिक भावबोध, हिंदी कविता एवं काव्य–शिल्प
(4) निराला की काव्य संवेदना के विभिन्न आयाम एवं शिल्प

अध्याय–2 **56–167**
निराला का युग और प्रयोगशीलता के प्रेरक–तत्व

(1) ''गहन है यह अंधकार'' : नवजागरण और निराला की मुक्ति–कामना
(2) ''गए रूप पहचान'' : राष्ट्रभाषा हिन्दी की अस्मिता का प्रश्न और सृजनात्मकत–भाषा की खोज
(3) ''जला दे जीर्ण–शीर्ण प्राचीन'' : साहित्यिक विरासत और निराला की नव्याकांक्षा – परंपरा और प्रयोग

अध्याय–3 **168–256**
छायावाद और निराला की काव्य–चेतना एवं नवीन–प्रयोग

(1) 'टूटे सकल बंध': मुक्ति और शक्ति का काव्य छायावाद
(2) 'मैं ही वंसत का अग्रदूत' : निराला की प्रयोगधर्मिता
(3) अभी न होगा मेरा अंत : निराला में विद्रोह की प्रवृत्ति एवं नवीन–प्रयोग

अध्याय–4 **257–350**
निराला के काव्य–सिद्वांत, रचना–प्रक्रिया एवं शिल्प–सौष्ठव

(1) ''तोड़ो, तोड़ो कारा'': निराला के काव्य–सिद्धांत एवं काव्य–मुक्ति की अवधारणा

(2) ''मैंने 'मैं' शैली अपनायी'': निराला की काव्य–शैली एवं जीवन यथार्थ की खोज
(3) ''सुंदर, हे सुंदर'': निराला का काव्य–स्थापत्य एवं भाषा सौष्ठव

अध्याय–5 **351–381**
अभिव्यंजना के नवीन प्रयोग एवं निराला

(1) काव्य–रूपों के प्रति आग्रह : जीवन–जगत के विविध रंग
(2) ''सहज प्रकाशन वह मन का'' : मुक्त छंद की अवधारणा एवं नयी लय का संधान
(3) सामाजिक यथार्थ का उद्‌घाटन : बिम्ब, प्रतीक अप्रस्तुत–विधान एवं मिथकों की नवीन–सृष्टि

अध्याय–6 **382–465**
निराला की काव्यकला : प्रभाव और मौलिकता

(1) 'रुचि की रचनाओं में हुए समाहित'; निराला पर बंगला का प्रभाव
(2) 'छंदों को विनिस्तार दिए जा रहा है'; उर्दू गजलों से दो–दो हाथ
(3) 'कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर'; पाश्चात्य काव्यधारा का अवलोकन एवं प्रभाव
(4) 'हिन्दी के हित का अभिमान वह'; हिन्दी कवियों का प्रभाव एवं प्रेरणा

उपसंहार **466–475**

संदर्भ ग्रंथ सूची **476–489**

भूमिका

साहित्य के संदर्भ में जब प्रयोग या प्रयोगशीलता की बात की जाती है तब इसका आशय होता है कि उस कवि या रचनाकार ने साहित्य की स्थापित परंपराओं में कुछ ऐसा नया जोड़ा है जो पहले नहीं था। कवि या रचनाकार के ऐसे प्रयोगों के पीछे उसके युग के वैचारिक एवं सांस्कृतिक दबाव होते हैं। जो कवि जितना अधिक संवेदनशील और व्यापक जीवन दृष्टि वाला होता है, अपनी रचनाओं में प्रयोग करने की उसकी सामर्थ्य उतनी ही अधिक होती है। आधुनिक हिंदी कविता में प्रयोग करने की ऐसी सामर्थ्य हमें निराला में दिखाई पड़ती है, जिन्होंने ''मुक्ति के स्वप्न'' को काव्य में बंधी–बंधाई रूढ़ियों से मुक्ति के रूप में देखा और छंद, काव्य रूप, गीतिकाव्य, लंबी कविता आदि में नए प्रयोग कर हिंदी काव्य को एक नई दिशा प्रदान की। वास्तव में निराला के काव्य में काव्य रूपों की जैसी विविधता, गहनता और नवीनता है वैसी आधुनिक हिंदी कविता में दुर्लभ है।

निराला का काव्य, काव्यरूपों की विविधता से भरा पड़ा है। वे किसी एक लीक पर चलने वाले कवि नहीं थे बल्कि वे तो नित नवीनता में विश्वास रखने वाले कवि थे। पुराने के प्रति उनमें वैमनस्य नहीं था, लेकिन नए के प्रति आग्रह जरूर था। उन्होंने एक तरफ तो पुराने काव्य रूपों को नया संस्कार दिया वहीं दूसरी तरफ नए काव्य रूपों का निर्माण भी किया। उन्होंने लंबी कविता, छंदोबद्ध कविता, मुक्त छंद की कविता, गीत तथा प्रगीति सभी पर अपनी कलम चलाई।

प्रयोगशीलता की दृष्टि से निराला हिंदी काव्य जगत में बेजोड़ माने जा सकते हैं। अपनी इस प्रवृत्ति का उद्‌घाटन करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने ''भाव, भाषा और छंद की उल्टी गंगा बहाई है।'' उनकी प्रयोगशीलता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है––शिल्पगत प्रयोग। निराला के काव्य में 'नव' या 'नूतन' के प्रति अभूतपूर्व ललक है। दूधनाथ सिंह ने ठीक ही कहा है कि ''अपने समकालीनों में निराला ही एक ऐसे कवि हैं जिनके विराट, सर्वग्रासी, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व में काव्य–रचना–प्रक्रिया के

अनेक स्तर हर समय साथ–साथ क्रियाशील रहे हैं।'' कहना न होगा कि संवेदना और शिल्पगत विविधता निराला काव्य में शुरू से लेकर अंत तक हर समय मिलती है।

निराला के साहित्य में जीवन के विविध अनुभवों, संघर्षों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने वाली उनकी बहुरूपात्मक भाषा है। इसलिए उनके जीवन के अनुभवों में जितनी विविधता है उतनी ही विविधता उनकी काव्य–भाषा में है। निराला की खासियत यह है कि उन्होंने विषय और भाव के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। अलग–अलग विषयों पर लिखी गई उनकी कविताओं में भाषा का अलग–अलग रूप देखने को मिलता है। ''राम की शक्ति–पूजा'' में जहां एक और संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दों से परिपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है वहीं दूसरी ओर व्यंग और विडंबनाबोध की कविताओं में तद्भव के मिश्रण वाली भाषा मिलती है। उनकी भाषा का एक अलग रूप उनकी प्रकृतिपरक कविताओं और गीतों में देखा जा सकता है जिसमें लोक प्रचलित शब्दों की भरमार है।

निराला की कविताओं में बिंब–प्रतीक, लय, छंद आदि शिल्प के उपादानों का नया संसार देखने को मिलता है। उन्होंने रूढ़ प्रतीकों का आश्रय न लेकर नए–नए प्रतीकों की खोज की है। निराला ने जहां एक ओर पुराने छंदों को नवीन संस्कार देकर प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी तरफ अनेक नए लोक छंदों का प्रयोग अपनी काव्य–प्रक्रिया में किया है। निराला ने स्वच्छंद छंद प्रयोगों में ध्वन्यात्मकता का बहुत ही खूबसूरत प्रयोग किया है। हालांकि निराला को मात्रिक छंद रचना में महारत हासिल थी फिर भी उन्होंने ध्वन्यात्मकता को प्राथमिकता दी। राम की शक्तिपूजा में युद्ध का वर्णन और बाद में भावों के अनुसार ध्वन्यात्मकता का निर्वाह सचमुच अद्भुत है।

इस विषय पर कार्य करने के लिए मुझे स्वर्गीय प्रो. गंगा प्रसाद विमल ने प्रेरित किया। अपने पितृवत् स्नेह की छाया में उन्होंने मुझे समकालीन कविता के दैदीप्यमान नक्षत्र प्रो. केदारनाथ सिंह के पास भेजा। केदारनाथ सिंह एक बड़े साहित्यकार ही नहीं, उतने बड़े व्यक्तित्व भी थे।

इतना विनम्र स्वभाव, इतना निश्चल रूप और शांत मन कि किसी को भी अपना बना ले। गुरुवर केदारनाथ सिंह से चर्चा के बाद यह विषय तय हुआ। प्रशासनिक सेवा में व्यस्तता के कारण मैं इस कार्यों आगे नहीं बढ़ा सका। जब पुनः दिल्ली स्थानान्तरित हुआ तो केदार जी का सानिध्य एवं अभिभाकत्व खो चुका था।

इसके पश्चात प्रो. राम चंद्र जी से चर्चा हुई तथा उनके निर्देशन में कार्य आगे बढ़ा। प्रो. राम चंद्र न केवल कुशल अध्यापक और निर्देशक है वरन् एक जागरूक पथ–प्रदर्शक भी हैं। उनके चश्मे से मैंने भारतीय समाज में व्याप्त विषमता को निकट से देखा और समझा। आप हर गरीब, दलित और शोषित का संबल हैं। मैं प्रो. साहब के मार्गदर्शन, महत्वपूर्ण सुझावों और अपने ऊपर दिखाये गये विश्वास के लिए धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। उन्होंने मुझे इस शोध प्रबंध के प्रथम पृष्ठ से अंतिम पृष्ठ तक जितनी स्वतंत्रता दी है उतनी तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक अध्याय को उप–अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है।

प्रथम अध्याय में शिल्प की अवधारणा और स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। शिल्प के अवयवों और उपादानों पर प्रकाश डालने के साथ–साथ आधुनिक भावबोध और शिल्प के महत्व का विवेचन किया गया है। काव्य–वस्तु एवं विचारधारा के अंतर्संबंध और शिल्प के आग्रह को भी इसमें समझने का प्रयत्न किया गया है। निराला के काव्य के विभिन्न संवेदनात्मक सोपानों और शिल्प–प्रयोग पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है।

दूसरे अध्याय में निराला के युग से गुजरते हुए उनकी काव्य–चेतना के निर्माण एवं प्रयोगशीलता के प्रेरक तत्वों पर विचार किया गया है। निराला का समय नवजागरण के उत्कर्ष और रागात्मक आत्मसंस्कार का युग है जिसमें निराला ने मुक्ति के 'स्वर' को प्रमुखता दी है और राष्ट्रीय मुक्ति को काव्य–मुक्ति का ही पर्याय बना दिया। इस अध्याय में निराला

को मिली साहित्यिक विरासत और उनके द्वारा किये गये नवीन प्रयोगों पर भी प्रकाश डाला गया है।

तीसरे अध्याय में छायावाद के संदर्भ में निराला की काव्य–चेतना को समझने का प्रयास किया गया है। निराला छायावाद में रहते हुए भी छायावाद का अतिक्रमण कर जाते हैं और वसंत के अग्रदूत बनकर हिंदी साहित्य को नई दिशाएँ प्रदान करते हैं। इस अध्याय में निराला के विद्रोह की प्रवृत्ति का विश्लेषण भी किया गया है जो निराला में नवस्वर के संचार की प्रमुख वजह है।

चतुर्थ अध्याय में निराला के काव्य–सिद्धांत और उनकी रचना–प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया गया है। इसमें निराला की नवीनता संबंधी धारणा की विस्तार से चर्चा की गई है।

पाँचवे अध्याय में निराला के अभिव्यंजना पक्ष में नवीनता का विश्लेषण किया गया है। निराला मुक्तछंद के प्रस्तोता एवं प्रयोगकर्त्ता रहे हैं। उन्होंने छंद को तोड़कर लय और संगीत से कविता को जोड़ा। इस अध्याय में निराला काव्य के बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत विधान आदि का भी विश्लेषण किया गया है।

अंतिम अध्याय में निराला की काव्य–कला पर पड़े प्रभाव और उनकी मौलिकता को उकेरता है। निराला अपने अंदर हिन्दी और बंगाल की विरासत समेटे हुए थे। जिसका प्रभाव उनकी काव्य–कला पर स्पष्टतः देखा जा सकता है।

सदा की तरह निशांत इस शोध में मेरे साथ डटा रहा। उसके लिए धन्यवाद शब्द अत्यंत छोटा है। मेरी एक आवाज पर वह नंगे पैर ही दौड़ा चला आया। उसके सहयोग एवं तकादे के बिना यह शोध संभव नहीं था।

विभुमौली कुमार गुरु द्रोणाचार्य की भाँति पल–पल दीक्षा देते रहे और अस्त्र उपलब्ध कराते रहे। कहीं–कहीं तो गांडीव उन्होंने ही धारण कर लिया है। विभुमौली कुमार के मार्गदर्शन और स्नेह का ऋण चुका पाना मुश्किल ही हैं....

मित्र प्रो. राकेश कुमार आर्य ने जे.एन.यू. की हर गतिविधि तथा समय–सीमा से सचेत रखा। प्रो. राजेश पासवान के सुझाव और सहयोग को भी भूला पाना मुश्किल है। भाई सईद एवं संतोष ने समय–समय पर महत्वपूर्ण सुझाव दिये तथा अंतिम 'प्रूफ रीडिंग' भी उनकी ही देन है। पशुपति भी सच्चे अनुज की तरह संकट के समय साथ खड़ा मिला। हरीश मीणा ने भी अविस्मरणीय सहयोग दिया। इन सभी का तहेदिल से धन्यवाद।

मित्र राजकुमार, बृजमोहन, अनीस तथा सत्यवीर कुंडू की अंगुलियों का कमाल तो आपके समझ प्रस्तुत ही है।

मम्मी, पापा, अमित तथा पारुल ने न केवल प्रेरित किया वरन् प्यार और स्नेह की छाया सदा बनाये रखी। जिससे यह कार्य शांत मन और प्रसन्न–चित्त से कर पाया।

और अंत में श्रद्धा, शाकुल और प्रखर के लिए शब्दातीत हूँ। उनकी अठखेलियों और शरारतों को भुला पाना असंभव है फिर भी इस शोध–ग्रंथ को उन्होंने लिखने का समय दिया उनका स्नेह और प्यार इसी तरह बना रहे.....

दिनांक : 28.06.2022

प्रशांत कुमार
11, दिल्ली अधिकारी आवास
ग्रेटर कैलाश–1, नई दिल्ली–48

अध्याय–1

काव्य शिल्प की अवधारणा एवं स्वरूप

(1) काव्य–शिल्प का आशय एवं अर्थ
(2) काव्य–वस्तु, विचारधारा एवं काव्य–शिल्प
(3) आधुनिक भावबोध, हिंदी कविता एवं काव्य–शिल्प
(4) निराला की काव्य संवेदना के विभिन्न आयाम एवं शिल्प

अध्याय–1

काव्य–शिल्प की अवधारणा एवं स्वरूप

''जरा हवा चलती है
कहीं एक पत्ता
पट्ट से
गिरता है जमीन पर
और एक छपती हुई कविता
अपने टाइप और फर्मे से छिटककर
हो जाती है अलग
एक अच्छी कविता
तरस खाने लगती है
अपने अच्छे होने पर
एक महान कविता
ऊबने लगती है
अपनी स्फटिक गरिमा के अंदर''[1]

कवि केदारनाथ सिंह की उपर्युक्त काव्य–पंक्तियां कला–मर्मज्ञों एवं आलोचकों के समक्ष एक प्रश्न उठाती हैं–''अच्छी'' और ''महान कविता'' क्या है? वे कौन से गुण या तत्व हैं जो किसी कविता को अच्छी या महान बनाते हैं? वास्तव में यह प्रश्न हर युग के आलोचकों के समक्ष रहा है। ''अच्छी कविता'' और ''महान कविता'' में भेद करने के शाश्वत प्रतिमान स्थापित करना आसान भी नहीं है। यह भी आवश्यक नहीं कि हर ''अच्छी कविता'' ''महान कविता'' हो ही। आचार्य रामचंद्र शुक्ल यदि 'लोकमंगल की साधनावस्था' या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य–''रामचरित मानस,'' ''पद्मावत'' आदि को महान काव्य कहते हैं तो दूसरी ओर ''रीतिकाल'' के अधिकांश कवियों को भी ''ऊँची कोटि के कवि,'' ''प्रगल्भ और प्रतिभा सम्पन्न कवि,'' ''अच्छे चलते कवि'', ''सरस कल्पना के भावुक कवि'' आदि से विभूषित करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कविता की महानता को लेकर यदि ''लोकमंगल'', ''विरूद्धों का सांमजस्य'' या

सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्य उसके प्रतिमान बन सकते हैं तो कविता का रूप–गठन या भाषिक–सौंदर्य उसे 'अच्छी कविता' बनाने की सामर्थ्य अवश्य रखता है। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव के शब्दों में तो *"अच्छी कविता का संबंध अधिक से अधिक शिल्पपूर्णता या दक्षता से है। ऐसी शिल्पपूर्णता जो प्रायः अनुभवों के इकहरेपन या एकदेशीय की सीमा में संभव होती है––बिना अनुभव और अभिव्यक्ति के स्तर पर कोई खतरा उठाए। महान कविता की शर्त बहुत कुछ 'विरूद्धों का सांमजस्य' है जो प्रायः शिल्पपूर्णता और दक्षता तक सीमित काव्य–संस्कार को मुश्किल में डालने वाला सिद्ध होता है।"*[2] अज्ञेय की अधिकांश कविताओं में शिल्प की भव्यता या चमत्कार मिलेगा, किंतु उनकी 'असाध्य–वीणा' निर्विवाद रूप से 'महान कविता' कही जा सकती है। यहाँ हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि कविता के अच्छे या बुरे के रूप में स्वीकृति भी पाठकों की अभिरूचि, काव्य–संस्कार या काव्य–विवेक पर निर्भर करती है।

समकालीन परिदृश्य में तो 'अच्छी और 'महान कविता' में विभेद करना और भी मुश्किल हो गया है। उत्तर–आधुनिक समाज में कवि और कलाकार एक विराट उपभोक्ता संस्कृति व पॉप कल्चर का हिस्सा बनता जा रहा है। बाजार तंत्र के सर्वव्यापी प्रसार, सूचना–संसार की विश्व–व्यापी क्रांति एवं उपभोक्तावादी संस्कृति द्वारा लाए जा रहे एकरूप समग्रीकरण के मध्य फलते–फूलते 'कविता के देश' में 'कविता का गल्प' ही अधिक बना करता है। सूचना–संसार के जगतव्यापी साम्राज्य एवं विज्ञापनों द्वारा सत्य का भ्रम पैदा करने वाले बाजार–तंत्र में शब्द व अर्थ तथा भाव व भाषा के मध्य नियत संबंध टूटते जा रहे हैं। काव्य–क्षेत्र में भी 'नकली हृदय के कारखानों से उत्पादित होने वाले निरर्थक प्रयोगों को उत्तर–आधुनिकता की शब्दावलियों में छिपाया जा रहा है। कुमार अंबुज के शब्दों में कहें तो–

"एक दिन कवियों की खाचाखच भरी सभा में देखते हैं हम
उत्तर–आधुनिकता की शब्दावली में छिपाए जा रहे हैं
जीवन के घटिया आचरण और कविता के कमजोर शब्द।"[3]

ऐसे में 'महानता' के प्रतिमान न तो बन सकते हैं और न ही इस बहुलतावादी संस्कृति में 'महानता' जैसा कोई शब्द शेष रह गया है। सुधीश पचौरी ने लिखा भी है – *''उत्तर आधुनिक साहित्य और कला का समाज से संबंध बुनियादी रूप से बदल जाता है। यह शाश्वत नहीं दैनिक, शुद्ध नहीं व्यावसायिक हो जाता है। कलाकार का बुनियादी (और आधुनिक) अजनबीपन हट जाता है। 'व्यवसाय' आ जाता है। उत्तर–आधुनिकता में 'महान' विशेषण नहीं होता। बहुत से अभावों के साथ 'कला' के 'अभाव' का नाम है उत्तर–आधुनिकता।''*[4] जाहिर है कि 'कला के अभाव' या 'कविता की मृत्यु' के इस युग में 'अच्छी कविता' के नाम पर भाषा की सजावट होगी, शिल्प का मायाजाल रचा जाएगा। ऐसे में काव्य–सौंदर्य के प्रतिमान बदल जाएँ तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। समकालीन उपभोक्तावादी संस्कृति के संदर्भ में राजेश जोशी लिखते हैं– *''सौंदर्य, जिसे हमारा कवि 'चेतना का उज्ज्वल' वरदान– मानता था, अब हमारे मुक्त बाजार में ढेल दिये गए मालों का ब्रिक्री–बढ़ाऊ विज्ञापन है। सौंदर्य क्या होता है; यह अब हम अपने कवियों, कलाकारों, शिल्पियों के रचनात्मक बोध से नहीं जानेंगे, टूथपेस्टों या साबुनों के साथ नत्थी ऐश्वर्या राय और सुष्मिता सेन की मुस्कुराहटों से जानेंगे।''*[5] ऐसे में काव्य–शिल्प पर बाजारवाद हावी हो जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि काव्य में शिल्प से आशय सौंदर्य के उन तमाम तत्वों, उत्पादनों एवं साधनों से है, जिनके माध्यम से कविता का सौंदर्य उजागर होकर पाठक के सामने आता है। अतएव समकालीन परिदृश्य में 'अच्छी कविता' और 'महान कविता' में विभेद करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है–कविता और काव्याभास में अंतर पहचानना। यह तभी संभव है, जब हम काव्य–रूप और काव्य–वस्तु के मध्य अन्तः–संबंधों को समझें और कविता में शिल्प की महत्ता व सीमा का ठीक से आकलन करें।

(1) काव्य–शिल्प का आशय एवं अर्थ

सृष्टि और काव्य सर्जन के मूल में लगभग एक जैसा भाव निहित रहता है इसलिए काव्य आनंद को ''ब्रह्मानंद सहोदर'' और कवि को ''स्वयंभू'' माना गया है। अग्नि पुराण में वेदव्यास लिखते हैं काव्य के अपार संसार में कवि का ही एकाधिपत्य होता है। उसे यह संसार जैसा रूचता है, उसमें वैसा ही परिवर्तन कर देता है। कवि अपने आसपास की सृष्टि से अनुभूति तत्व को संजोता है और फिर उसे अभिव्यक्ति में परिणत करता है। रचनाकार भावों, विचारों और अनुभूतियों को अंतर लोक में ही परिपक्वता प्रदान कर, अपनी विशिष्ट प्रतिभा के द्वारा उसे रचना रूप में प्रस्तुत करता है। भारतीय काव्य मीमांसा में काव्य का आशय शब्द और अर्थ की संश्लिष्ट रचना से लिया जाता रहा है। भमाह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम' कहकर काव्य के लिए शब्द और अर्थ दोनों की महत्ता का प्रतिपादन किया था। किसी भी रचना में यदि शब्द उसके शिल्प–सौंदर्य का उद्घाटन करते हैं तो वहीं अंतर्निहित भावतत्व और विचारतत्व अर्थात अर्थ, उसकी काव्यात्मकता का बोध कराते हैं। इस प्रकार शब्दार्थ की व्याकरणिक और दार्शनिक मीमांसा से ही भारतीय काव्यालोचन का आरंभ होता है, इसलिए संस्कृत काव्य शास्त्र में जितने भी मतवाद है वे सब शब्दार्थ के ऊपर ही अवस्थित है। शब्दार्थ को काव्य–शरीर मानकर, आखिर में काव्य की आत्मा क्या है, उसका संधान प्रारंभ हुआ। अलंकार, रीति, वक्रोक्ति से होते हुए, उत्कृष्ट काव्य का अंतिम प्रमाण स्थिर हुआ– ध्वनि। अंततः ध्वनि रस–ध्वनि में पर्यवसित हुई और रस काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। अंत में आचार्य विश्वनाथ ने ''वाक्यम रसात्मक काव्यम'' कहकर काव्य को परिभाषित किया है। जिसका अर्थ हुआ, रसात्मक वाक्य ही कविता है। इस प्रकार रसात्मकता से काव्य का वस्तु–पक्ष और वाक्यम से काव्य का शिल्प– पक्ष ध्वनित होता है। तात्पर्य यह है कि कवि कर्म प्रत्यक्षतः विशिष्ट पद रचना है और रस व्यंजना उसका फल है। पाश्चात्य विचारक विलियम वर्ड्सवर्थ ने कविता को 'अनुभूतियों का सहज उच्छलन' बताया है। वर्डसवर्थ ने कविता के लिए कवि और उसके भावावेग को काव्य के प्रेरणास्त्रोत के रूप में अंगीकार किया है। उन्होंने यह संकेतित किया है जब कवि सुख–दुःखात्मक भावों

को बड़ी आत्मीयता, गहनता और निर्वैयक्तिकता से भावित करता है, तब काव्योन्मेष होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हृदय की मुक्तावस्था' के विधान से कविता को जोड़ा। जब मनुष्य सुख–दुःख और स्वत्व–परत्व की भावना से ऊपर उठ जाता है, तब उसका हृदय मुक्त हो जाता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार सुख–दुःख और अपने–पराये की भावना से पृथक हो जाना ही रसदशा है और जो मानवीय क्षुद्रताओं, मानवीय संकोच से ऊपर उठाकर आनंद की अनुभूति कराती है, वही कविता है।

भारतीय परंपरा के अनुसार 'काव्य' 'कला' और 'शिल्प' तीनों को भिन्न–भिन्न माना गया है। पश्चिम में काव्य को आरम्भ से ही कला के अंतर्गत समाहित कर लिया गया है। 'शिल्प' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है–'हस्तकला' या 'दस्तकारी' जो अधिकांशतः अभ्यास साध्य होती है। इस अर्थ में यह शब्द उपयोगी कलाओं तक ही सीमित हो जाता है जहाँ वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति कम होती है। उपयोगी कलाओं की अपेक्षा ललित कलाओं में वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति अधिक होती है। किन्तु उनमें भी अभ्यास–साध्य, कौशल–निपुणता या कारीगरी का कुछ न कुछ अंश अवश्य रहता है। काव्य–रचना भी इससे अछूती नहीं है। अंग्रेजी में शिल्प के लिए क्राफ्ट, टेक्निक, स्टाइल, फॉर्म, स्ट्रक्चर, आर्टस तथा एक्सप्रेशन इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुति के उपादान जिनके आधार पर रचना मूर्त रूप ले सकी है, शिल्प कहलाता है। इस प्रकार शिल्प का समय–समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है क्योंकि शिल्प के माध्यम से ही रचनाकार युगबोध का परिचय देता है। श्रेष्ठ रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए नवीन शिल्प की खोज करता है अथवा परंपरागत शिल्प में नवीनता लाता है। मुक्तिबोध शिल्प के संदर्भ में विचार करते हुए कहते हैं कि यथार्थवादी शिल्प और यथार्थवादी दृष्टिकोण में अंतर है। कलाकृति में यथार्थवादी विधान का अर्थ यह नहीं है कि लेखक ने वास्तविकता को, वैज्ञानिक दृष्टि से समझा हो और वैसा ही उसका आकलन और मूल्यांकन किया हो। यह भी संभव है कि यथार्थवादी शिल्प के विपरीत, जो भाववादी शिल्प है उसके अंतर्गत जीवन को समझने की दृष्टि यथार्थवादी रही हो। सार्थक अभिव्यक्ति को कलात्मक रूप देना ही शिल्प है।

काव्य शिल्प वस्तुतः कवि की रचनात्मक प्रक्रिया विधि का ही नाम है। काव्य की रूपा कृति का निर्माण करने वाले सभी तत्व शिल्प के अंग है। डॉ. कैलाश बाजपेई के अनुसार काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादान द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है, काव्य के तत्व कहे जाते हैं। लेखक की अनुभूतियां अभिव्यक्ति का माध्यम ढूंढने के प्रयास में नए–नए शिल्पों को जन्म देती रही है। कवि गतिशील नवीनता की खोज करता हुआ नई परंपराओं का निर्माण करता है। युग के बदलने के साथ ही साथ मनुष्य की चिंतन पद्धति भी बदल जाती है और चिंतन जब नए विषय पर होता है तो उसके लिए नए शिल्प की आवश्यकता महसूस होती है।

शिल्प एक साधन है जिसके द्वारा कोई भी रचना कलात्मक एवं प्रभावशाली बन पाती है। तीसरे सप्तक में अज्ञेय ने वर्तमान अर्थों में प्रयुक्त शब्द शिल्प, तंत्र, या टेक्निक का संबंध अभ्यास से जोड़ा है। उनके अनुसार पहले इन शब्दों की अपेक्षा साधना की चर्चा होती थी और साधना, अभ्यास और मार्जन का ही दूसरा नाम है। संस्कृत आचार्य द्वारा बताए गए काव्य हेतुओं में एक अभ्यास भी है। भारतीय काव्यशास्त्र ने काव्य–हेतु में 'अपूर्ववस्तुनिर्माणक्ष्मा प्रज्ञा प्रतिभा' के साथ–साथ 'लोकशास्त्रकाव्यमोक्षणात् अर्जित व्युत्पति' तथा 'काव्यज्ञ शिक्षामाभ्यास' पर बल दिया गया है। प्रतिभा जन्मजात या नैसर्गिक होती है, किन्तु 'व्युत्पति और 'अभ्यास' कवि का अर्जित गुण है। शिल्प मूलतः इन्हीं अर्जित गुणों के सार्थक रूपांतरण का परिणाम है। 'शिल्प का सम्बन्ध एक सचेत प्रयास से है। निरंतर काव्य–अभ्यास से शिल्प और अधिक मंजता है। कवि काव्य–तत्व के उपादनों के बेहतर प्रयोग के द्वारा अपने काव्य को और भी सौन्दर्यशाली बनाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है–*''कवि इस दुनियाँ की मामूली चीजों से ही अपना कारोबार चलाता है। इसलिए कवि इन मामूली चीजों को ठीक–ठीक पहचाने बिना अपना काम नहीं चला सकता। अच्छा शिल्पी जानता है कि कौन–सा पत्थर का टुकड़ा किस जगह बैठाया जाकर सौंदर्य को सौ गुना निखार देगा और उत्तम कवि भी जानता है कि कौन–सा शब्द या अर्थ या कौन सी वस्तु या वस्तु–धर्म किस प्रकार प्रयुक्त होकर श्रोता को उपयुक्त रस–ग्रहण कराने में सहायता कर सकता है।*

जिस प्रकार मामूली ईंट–पत्थर के टुकड़ों से स्थापति उत्तम महल बना देता है, उसी प्रकार मामूली शब्दों और भावों की सहायता से कवि अलौकिक रस की सृष्टि करता है'।[6] इस प्रकार उत्तम काव्य–शिल्पी साधारण से साधारण लगने वाले काव्य–उपादानों की सहायता से विषय–वस्तु को भी गरिमा प्रदान कर देता है।

साधारणतः काव्य–शिल्प को कविता की विषय–वस्तु से अलग रखकर महज काव्य–सौंदर्य विवेचना का आधार मान लिया जाता है जो कि एक गलत दृष्टिकोण है। भारतीय काव्यशास्त्रियों का एक वर्ग यह मानता रहा कि अलंकार एवं अलंकार्य में कोई भेद नहीं है। कुतंक 'वक्रता' को अलंकार से अपृथक मानते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो उन्होने केवल ज्ञान को स्पष्ट करने और परम्परा के विवेचन के लिए 'अलंकार' और अलंकार्य का अलग–अलग विवेचन किया :–

''अलंकृतिरलंकार्यमपोद्धृत्य विवेच्यते।
तदुपायतया तत्वं सालंकारस्य काव्यता।''[7]

पश्चिम में काव्य–वस्तु एवं शिल्प को अभेद मानने की परंपरा रही है। क्रोचे के 'अभिव्यंजनावाद' से तो 'अभिव्यंजना ही 'कला' बन गई और विषय–वस्तु एवं अभिव्यंजना–शिल्प जैसे किसी विभाजन का कोई अवकाश ही नहीं रह गया। ध्यातव्य है, क्रोचे की इस मान्यता का हिन्दी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने घोर विरोध किया। चौबीसवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इंदौर वाले भाषण में आचार्य शुक्ल ने यह जोर देकर कहा– *''अलंकार–अलंकार्य का भेद मिट नहीं सकता। शब्द–शक्ति के प्रसंग में हम दिखा आए हैं कि उक्ति चाहे कितनी कल्पनामयी हो उसकी तह में कोई 'प्रस्तुत–अर्थ' अवश्य होना चाहिए। इस अर्थ से या तो किसी तथ्य या भाव की व्यंजना होगी। इस अर्थ का पता लगाकर इस बात का निर्णय होगा कि व्यंजना ठीक हुई है या नहीं। अलंकारों (अर्थालंकारों) के भीतर भी कोई अर्थ व्यंग्य रहता है, चाहे उसे गौण ही कहिए।'*[8] आचार्य शुक्ल ने पंत की काव्य पंक्तियों 'बाल्य सरिता के कूलों सी.....' के प्रसंग में यह सिद्ध कर दिखाया कि प्रस्तुत अर्थ को सामने रखकर ही अलंकारों के प्रयोग की उपयुक्तता का पता चलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि

अलंकार और अलंकार्य का पृथक्–पृथक् विवेचन उचित नहीं है, परंतु उसके पृथक्–पृथक् विवेचन से काव्य–सौन्दर्य को ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त होती है। डॉ. नगेन्द्र का अलंकार एवं अलंकार्य के संबंध में मानना है– *''दोनों में व्यवहारगत भेद न मानने से न केवल समस्त साहित्यशास्त्र वरन भावशास्त्र और विचारशास्त्र का भी अस्तित्व विलुप्त हो जाता है। विदेश के साहित्य–मनीषी भी प्रायः इसी पक्ष में हैं कि तत्व दृष्टि से अलंकार और अलंकार्य में अभेद होते हुए भी व्यवहार–दृष्टि से दोनो में भेद–भावना अनिवार्य है।''* [9] कहने का तात्पर्य यह है कि शिल्प कविता का वाह्य स्वरूप नहीं, अन्तर्वस्तु का ही प्रतिरूप है और इसी के जरिए विषय–वस्तु मूर्त व व्यक्त होती है। वस्तु या विचार ही तीव्र अनुभूति के क्षण में सौंदर्य–प्रतिरूपों में रूपांतरित होते हैं अतएव कथ्य को उसके शिल्प से व शिल्प को उसके कथ्य से जुदा नहीं किया जा सकता, फिर भी उनके संबंधों की पूर्णता पहचाने के लिए उनका पृथक् विश्लेषण किया जा सकता है।

कविता मात्र महान विषयों और उदात्त भावों से भव्य नहीं बनती, उसमें भव्यता काव्य–वस्तु के अनुकूल काव्य–शिल्प से भी आती है। 'निराला' की कविता 'राम की शक्तिपूजा' विषय वस्तु की दृष्टि से जितनी उदात्त है उतनी शिल्प की दृष्टि से भी है। ध्यातव्य है लौंजाइनस ने उदात्त के जो पांच स्रोत गिनाए थे, उनमें से पहले दो– महान विचारों की उद्भावना की क्षमता एवं प्रबल तथा अन्तप्रेरित भाव का संबंध जहाँ अंतर्वस्तु से है, वहीं अंतिम तीन –अलंकारों का समुचित प्रयोग, भव्य शब्द–योजना तथा रचना की गरिमा व उत्कर्ष का समुचित प्रभाव का संबंध काव्य–शिल्प से है। लौंजाइनस जब रचना की गरिमा की बात करते हैं तो यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि किसी कृति की 'रचना की गरिमा' उसकी संरचना की समग्रता है, ऊपर से आरोपित तत्व या व्यवस्था मात्र नहीं। 'रचना की गरिमा' के अंतर्गत लौंजाइनस ने उदात्त के निष्पादक शेष चार तत्वों– विचार, भाव, अलंकार और शब्द–योजना के सामंजस्य या सतुंलित अन्तर्ग्रन्थन का महत्व प्रतिपादित किया है। इससे एक बात स्पष्ट है कि उदात्त रचना के लिए रूप और अंतर्वस्तु अर्थात् कथ्य व शिल्प के मध्य उत्तम सांमजस्य होना आवश्यक है। कुंवर नारायण

हिन्दी में रूप और कथ्य को लेकर चलने वाली बहसों के संदर्भ में लिखते हैं–– *''हिन्दी में रूप और 'कथ्य' या फार्म और कन्टेन्ट को लेकर जो बहसें हुईं उन्होंने समस्या को सही जगह पर नहीं स्थिर किया। साहित्य में और कविता में विशेषकर, यथार्थ किस रूप में आए कि एक ओर अगर वह अपना संज्ञानात्मक काम (कांग्नीटिव फंक्शन) पूरा कर सके तो दूसरी ओर कला के सौंदर्यनुभूति मूलक काम (एस्थेटिक फंक्शन) को भी?* [10] इस प्रश्न के द्वारा कुंवरनारायण मूलतः रूप और कथ्य की ही एकता की बात कर रहे हैं।

अभिव्यंजना–शिल्प काव्य के वाह्य तत्वों से निर्मित होता है जिसको समग्र रूप से गिना पाना संभव नहीं है। भाषा, बिम्ब–विधान, प्रतीक–योजना, अलंकार–योजना, छंद–येजना, तुक आदि तत्वों से कविता का शिल्प निर्मित होता है जिसके माध्यम से कवि अपनी संवेदना तथा विचारों को आकार देता है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं–*''भाषा के साथ अर्थ, मूर्तिविधान, ध्वनिप्रवाह–यह सब कुछ है। यह कवि की रचना–सामग्री है, उसको वह कैसे तैयार करता है, गारा पतला है या गाढ़ा, लखौरी ईंट है या संगमूसा के बड़े–बड़े टुकड़े, उस सामग्री का उपयोग कैसे करता है, इस पर निर्भर है कि कविता की इमारत कैसे बनती है।''* [11] कहने का तात्पर्य यह है कि कवि के पास अभिव्यक्ति के या यूं कहें काव्य–शिल्प के निर्माण के कई साधन होते हैं और यह कवि की प्रतिभा और काव्य–कौशल पर निर्भर करता है कि वह इन चीजों का उपयोग किस प्रकार करता है।

काव्य–शिल्प का सबसे महत्वपूर्ण उपादान है–काव्य–भाषा जो सामान्य भाषा का विशिष्ट प्रयोग हुआ करती है। कुंतक ने व्रकोक्ति को जब 'शास्त्र अथवा लोक प्रसिद्ध उक्ति के मुकाबले अतिशायिनी विचित्र उक्ति'' माना– *'वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्य तिरेकिणी विचित्रैवाभिधा''*[12] तो उसका तात्पर्य काव्यभाषा को शास्त्र और व्यवहार की भाषा से विशिष्ट और भिन्न बतलाना ही था। रेनवेलक की मान्यतानुसार, *''काव्यभाषा रोजमर्रा की भाषा की शक्तियों को संगठित करती हैं, उन्हें कसती है और कभी–कभी हमें सचेत करने और हमारा ध्यान आकर्षित करने के लिए इसे*

तोड़ती–मरोड़ती भी है।''[13] अतएव काव्य–भाषा सामान्य भाषा की तरह उपलब्ध या प्रचतिल उपादानों से ही काम नहीं चलाती, वरन् भाषा के प्रत्येक संभावित स्तर पर नए उपादानों का संधान भी करती है। इसे विचलन, सादृश्यमूलक तथा गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकरों, प्रतीक, बिम्ब आदि अभिव्यक्ति–विधानों के रूप में देखा जा सकता है। कविता में नियोजित भाषा के सभी उपकरण एक इकाई का निर्माण करते हैं। उनके आपसी संबंध एक–दूसरे की शक्ति का परिसीमन और संवर्धन करते हैं और संबंधों की प्रकृति के अनुरूप विभिन्न अर्थों की विशिष्ट छायाओं का संकेत करते हैं।

विज्ञान की भाषा और साहित्य की भाषा का अंतर बतलाते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है– *''विज्ञान शब्दों को संकेत की भाँति काम में लाता, किंतु साहित्य में भाषा सबसे सशक्त प्रयोग है और अलंकार, मुहावरा, वाक्य, रचना, माधुर्य और सरसता तथा अन्य लक्षण उसमें सम्मिलित है।''*[14] कविता में भाषा की क्षमताओं का संपूर्ण प्रकाशन भाषा के प्रत्येक अवयव– वर्ण, शब्द, मुहावरा, वाक्य और चिह्न का भी काव्य में सार्थक प्रयोग होता हैं। शब्द–चयन, वर्ण–विन्यास, वाक्य–गठन, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, राग, लय, नाद, आदि काव्यभाषा को विशिष्ट बनाने वाले तत्व होते हैं।

सच्चा कवि यह जानता है कि शब्दों का अपने आप में कोई अस्तित्व नहीं होता, जब तक उसके उचित–प्रयोग द्वारा उसमें जीवन–शक्ति न डाली जाए। शब्दों में सजीवता उसके भावानुकूल प्रयोग एवं उसकी सामाजिक व नैतिक भूमिका को ध्यान में रखकर ही लाई जा सकती है। हेमंत कुकैरेती ने इस संदर्भ में लिखा हैः–

''मैं समय को अपनी आंखों से जानूं,
शब्द बनाने से पहले तय करूँ,
उसकी आगमी भूमिका– ।''[15]

प्रत्येक कवि अपनी भावानुभूति को भाषा के विशिष्ट प्रयोग द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है। डॉ. सीताकांत महापात्र कवि द्वारा शब्द की

इस तलाश के संदर्भ में लिखते हैं –*''सच्चे कवि को सुनिश्चित आदि–शब्द की तलाश होती है, जो आवेग से जुड़ा हो, अस्तित्व का सत्य हो, ऐसा अनोखा और शुद्ध हो जो अपनी उपस्थिति का आह्वान करे, उसको रूप दे और दुनियाँ उसको अर्थ दे। शब्द के लिए लगभग असंभव प्रतीत होनेवाली इस तलाश को देरिदा ने 'घर की लालसा भरी तलाश' या ऐसे 'सर्वग्राही नाम' की तलाश कहा है, जो शायद कभी बना ही नहीं है।''*[16] कवि इस तलाश की पूर्ति के लिए प्रचलित–अप्रचलित शब्दों से इतर, नए व स्वच्छ अर्थों की मांग करने लगता है। रघुवीर सहाय की निम्नलिखित काव्य–पंक्तियां इस चाहत को प्रकट करती हैंः–

''शब्द अब भी चाहता है,
पर वह कि जो जाय वहाँ–वहाँ होता हुआ,
तुम तक पहुँचे,
चीजों को आर–पार दो अर्थ मिलाकर,
सिर्फ एक स्वच्छ अर्थ दे।''[17]

स्वच्छ अर्थ एवं शब्द के नए प्रयोग हेतु कवि भाषा का संस्कार व परिष्कार भी करता है। धूमिल कवि की इस भाषा नामक ''बैटरी'' को रोजमर्रा के ''डिस्चार्ज'' ''मिसयूज'' एवं ''शार्ट सर्किट'' से बचाना कहते हैं। उनके शब्दों में––*''भाषा को मामूली आदमी से नहीं बल्कि उसके मामूलीपन के इस्तेमाल से सुरक्षित करना, सृजन करने वाले व्यक्ति यानि रचनाकार का दायित्व है।''*[18]

काव्य–भाषा की विशिष्टता को स्थापित करते हुए भारतीय काव्य–शास्त्रियों ने शब्द–शक्तियों की खोज की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–*''कविता में भाषा को खूब जोरदार बनाना पड़ता है– उसकी सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है।''*[19] कविता में शब्दों का एक अर्थ नहीं होता। यह सत्य है कि चार प्रकार के शब्दों– जाति शब्द, गुण शब्द, क्रिया शब्द और यदृच्छ शब्द का संकेत ग्रहण अभिधा द्वारा होता है, किन्तु अयोग्य और अनुपन्न वाच्यार्थ लक्षणा और व्यंजना द्वारा योग्य बुद्धिग्राह्य रूप में परिणत होकर सामने आता है। तद्युगीन काव्य की नूतन धारा 'छायावाद' के संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है–*''नए ढंग की कविता*

की सबसे बड़ी विशेषता लाक्षणिकता है। कुछ वस्तुओं का प्रतीकवत् (सिबंल्स) ग्रहण भी इसी के अन्तर्गत आ जाता है। लक्षणा का पेट बहुत गहरा है। नए ढंग की कविताओं के भीतर यहाँ से वहाँ तक लक्षणाएं भरी मिलेंगी–उपादान लक्षणा भी, लक्षण लक्षणा भी।''[20] यहाँ आचार्य शुक्ल शिल्प की दृष्टि से भी छायावाद कविता की अपने पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्नता स्पष्ट कर रहे हैं। जहाँ तक व्यंजना का प्रश्न है कविता में तीनों प्रकार की व्यंजना– वस्तु–व्यंजना, भाव–व्यंजना और अलंकार–व्यंजना हो सकती है। किन्तु 'वस्तु–व्यंजना' से लदी कविता अधिकतर पहेली–बुझौवल ही अधिक होती है और अलंकार–व्यंजना की अधिकता कविता का स्वाभाविक सौंदर्य नष्ट करती है। कविता में शब्द–शक्तियों के प्रयोग की सीमा वहीं तक है, जहाँ तक काव्य–रस का स्वाभाविक उत्कर्ष करे।

काव्य–शिल्प से जुड़ें अन्य तत्व– बिंब जहाँ शब्द की अभिधा शक्ति से संबंध रखता है, वहीं प्रतीक शब्द की व्यंजना–शक्ति से। कविता में 'कवि और कविता' निबंध में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने यह मांग की थी–*''कविता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उचित शब्द स्थापना की भी बड़ी जरूरत है। किसी मनोविकास के दृश्य के वर्णन में ठूंठ–ठूंठ कर ऐसे शब्द रखने चाहिए जो सुनने वाले की आंखों के सामने वर्ण्य विषय का चित्र खींच दे।''*[21] आगे चलकर आचार्य शुक्ल ने इस विस्तृत रूप से स्थापित किया–**''काव्य में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिंबग्रहण अपेक्षित होता है।**[22] नई कविता में बिंब–विधान को विशेष रूप से स्थान मिला। यह सत्य है कि कविता में मूर्त विधान से वस्तु या भाव का प्रत्यक्षायमाण प्रभावी रूप आसानी से संप्रेषित हो जाता है तथा सर्जक व भावक को रूपगम्य अनुभूति से तदाकार कराता है। किंतु बिंब की अतिवादी धारणा या बिंबवादी' सिद्धांतों से कविता में निहितार्थ शब्द के प्रयोग और बाह्य रूपरेखा, आकार व विन्यास पर ही अधिक बल डाला जाने लगा। उसमें उस अनुभव को कोई महत्व नहीं दिया जाने लगा जो भाषा के माध्यम से आता है, और जिसे भाषा ही रूप और स्थायित्व प्रदान करती है।

प्रतीक–विधान का संबंध व्यंजनात्मक संकेत व अमूर्तन से है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है–*''शब्द अंततः किसी मूर्त वस्तु अथवा स्थिति के संकेत–भर हैं। इस प्रकार सारी भाषा अमूर्तन और प्रतीकन की क्रिया है। यह प्रक्रिया जीवित और गतिशील रहे, इसके लिए भाषा का साधारण प्रयोगकर्ता चिंतित नहीं रहता जबकि कवि का संपूर्ण अस्तित्व इस प्रक्रिया के परिचालन पर निर्भर होता है।''*[23] इस दृष्टि से देखें तो काव्य में प्रतीक–विधान कविता को नव–जीवन, नई संवदेना प्रदान करता है। कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक वक्तव्य को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना या अनिवर्चनीय को शब्द देना प्रतीक द्वारा संभव ही है। मनुष्य के आंतरिक और बाह्य जीवन के अनेक रहस्य प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त होकर गोचर बन जाते हैं। किन्तु इसके अतिवाद या 'प्रतीकवादी' दृष्टि से कविता में अनूठे रहस्यवाद का जन्म हुआ तथा जीवन व जगत से अलग रहस्यमय धूमिल अर्थों की विकृति में पाखंड का संसार भी खूब रचा जाने लगा। आचार्य शुक्ल ने इसी कारण 'प्रतीकवाद' का विरोध किया था। नरेन्द्र शर्मा ने भी लिखा है–

''हो न सके पहचान सत्य की जिनके कारण,
ऐसे व्यर्थ प्रतीक बनाओ न अकारण।''[24]

प्रतीक कुछ उपमामूलक अलंकारों–उपमा, रूपक, रूपकातिश्योक्ति आदि तथा बिंब के इतना निकट है कि कभी–कभी उन्हें एक ही मान लिया जाता है, किन्तु वे वस्तुतः एक हैं नहीं। प्रतीक का आधार सादृश्य या साधर्म्य नहीं बल्कि भावना जागृत करने की शक्ति है। अलंकारों में सदृश्य या साधर्म्य का अधिक ध्यान रखा जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो सब उपमान प्रतीक नहीं होते, पर जो प्रतीक होते हैं, वक्तव्य की अच्छी सिद्धि करते हैं। जहाँ तक कविता में अलंकारों के प्रयोग का प्रश्न है, तो इससे काव्य–चारूता में वृद्धि होती है। अलंकार वस्तुतः भाषा की कुछ विशिष्ट क्षमताओं के ही रूप हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें तो *''भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया आदि के उत्कर्ष कराने में कभी–कभी सहायक होनेवाली युक्ति ही अलंकार है।''*[25] इस प्रकार कविता में प्रयुक्त अलंकार यदि रस, भाव, रूप, गुण क्रिया आदि का

उत्कर्ष करते हैं, तो ही वे कविता की चारूता बढ़ाते हैं, अन्यथा वे भार मात्र हैं। शब्दालंकार भाषा की बाह्य विशेषताओं पर आधारित हैं जबकि अर्थालंकार उसकी आतंरिक विशेषताओं पर। अलंकारों से जुड़ी एक और चीज होती है–वक्रता, जहाँ किसी बात को घुमा–फिराकर कहा जाता है। आचार्य कुतंक ने रस को वक्रता का सबसे समृद्ध अंग माना है। परन्तु उनके मत का अंगी तत्व वक्रता ही है। किन्तु, आचार्य शुक्ल की माने तो ***''वक्रता काव्य में अपेक्षित अवश्य होती है, पर वहीं तक जहाँ तक उससे हृदय की किस अनुभूति का संबंध होता है।'***[26] सूरदास के 'भ्रमरगीत' के शिल्प–सौंदर्य की एक अनन्य विशेषता उसकी भाव–प्रेरित वक्रता है। उसी प्रकार आचार्य शुक्ल जैसे आलोचकों ने भिखारीदास की 'अब तो बिहारी के बानक गए री''–जैसी विरहदशासूचक उक्तियों और द्विजदेव की 'तू जो कहि सखी। लानो सरूप, सो मो आँखियन लोगी गई लागि'–जैसी उक्ति में निहित भाव–प्रेरित वक्रता की अत्यन्त प्रशंसा की है। उक्ति वैचित्र्य' से जुड़ी एक और बात होती है–चमत्कार। जब से कविता में चमत्कार को अधिक महत्व दिया जाने लगा, कविता में अनूठेपन या असाधारणत्व को अधिक महत्व मिलने लगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी काव्य में 'असाधारण और निराले ढंग' से शब्दों के द्वारा किसी बात को कहना महत्वपूर्ण मानते थे। किन्तु चमत्कार' अर्थात उक्ति के चमत्कार में वर्णविन्यास की विशेषता, शब्दों का असाधरणत्व, वाक्य की वक्रता तथा अप्रस्तुत वस्तुओं की दुरारूढ़ कल्पना सभी बातें आती हैं और कविता में यह वहीं तक सार्थक हैं, जहाँ तक ये भावानुभूति को तीव्र करती हैं। केवल शब्द–क्रीड़ा कविता में 'कागज की फुलवारी' बनाने जैसा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने एक स्थान पर लिखा है–***''अलंकार शास्त्र की कुछ बातें ऐसी हैं जो केवल शब्द चातुरी मात्र हैं। उसी शब्द कौशल के कारण वे चित्त को चमत्कृत करती हैं। उनसे रस–संचार नहीं होता। वे कान को चाहे चमत्कृत करें, पर मानव–हृदय से उनका विशेष सम्बन्ध नहीं। उनका चमत्कार शिल्पकारों की कारीगरी के समान शिल्प–प्रदर्शनी में रखने योग्य होता है।'***[27] प्रस्तुत कथन से एक बात तो स्पष्ट है कि काव्य–शिल्प के सौंदर्य का सृजन शब्द–क्रीड़ा या चमत्कार दिखनेवाले शिल्पकारों की कारीगरी नहीं, वरन् भावुक कवियों के भाव–प्रेरित शब्दों द्वारा ही संभव है।

भाषा की बाह्य विशेषताओं में एक महत्वपूर्ण तत्व भाषा की ध्वन्यात्मकता है जिससे लय, छंद व संगीतात्मकता जुड़ी होती है। आई0ए0 रिचडर्स ने 'प्रिसिपुल्स ऑफ लिटररी काटीसिज्म' में काव्यभाषा का रागात्मक बनाने हेतु लय और छंद की महत्ता प्रतिपादन किया है। छंद को रिचर्डस ने *''कालिक लयात्मक अनुक्रम का जटिलतम रूप''*[28] मानते हुए उसे सारे शरीर में व्याप्त होने वाली एक चक्रीय उत्तेजना, मन के स्रोतों से उमड़नेवाला एक 'उद्वेल प्रवाह' के रूप में देखा है। छंद द्वारा काव्य–ढाँचें की मिति और इसके योग की मिति दोनों श्रोता को ज्ञात हो जाती है जिससे वह भीतर ही भीतर उसकी नाद की गति में योग देता चलता है। इस प्रकार कभी–कभी छंद 'नाद–सौंदर्य की प्रेषणीयता' का भी माध्यम बन जाता है। उसी प्रकार जब शब्दों के खंड संगीत को एक विशेष क्रम में सजा दिया जाता है, तब लय का जन्म होता है। लयात्मकता से कविता श्रवण में मधुर हो जाती है। आचार्य शुक्ल को श्री सत्यनारायण कविरत्न की 'या लकुटी अरू कामरिया' का पूर्ण सौंदर्य उसके अन्दर लय के साथ् पढ़े जाने पर ही प्रकट होता दिखता था।

इसी के साथ जुड़ा है, कविता का नाद–सौंदर्य। संगीत शब्द का सहज धर्म है और कविता बहुत मायने में संगीत के कई तत्वों को समाहित करती है। सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव ' की भूमिका में 'काव्य–संगीत' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखा है– *''कविता में भावों के प्रगाढ़ संगीत के साथ भाषा का संगीत भी पूर्ण परिस्फुट होना चाहिए, तभी दोनों में संतुलन रह सकता है।''*[29] आचार्य शुक्ल कविता में नाद–सौंदर्य को बहुत अधिक महत्व देते थे। उनके अनुसार *''भाव–सौंदर्य और नाद–सौंदर्य दोनों के संयोग से कविता की सृष्टि होती है। श्रुति–कटु मानकर कुछ अक्षरों का परित्याग, वृत्त–विधान और अत्यनानुप्रास का बंधन नाद–सौंदर्य को निबाहने के लिए हैं। बिना इसके कविता करना अथवा केवल इसी को सर्वस्व मानकर कविता करना निष्फल है।''*[30] प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है कि नाद–सौंदर्य से कविता की आयु तो बढ़ती है, किन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि कविता को संगीत का पर्याय बना दिया जाए।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कविता में प्रतीक, बिंब–विधान, अलंकार, नाद आदि का विशेष महत्व है, किन्तु ये सभी विशेष भाव को अभिव्यक्त करने में सहायक मात्र होते हैं। कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में लिखा है–*''जिस प्रकार संगीत में सात स्वर तथा उनकी श्रुति मूर्च्छनाएँ केवल राग की अभिव्यक्ति के लिए होती हैं और विशेष स्वरों के योग, उनके विशेष प्रकार के आरोह–अवरोह से विशेष राग का स्वरूप प्रकट होता है, उसी प्रकार कविता में विशेष शक्तियों तथा विशेष छंदों के सम्मिश्रण और सामंजस्य से विशेष भाव की अभिव्यक्ति करने में सहायता मिलती है।''*[30] ध्यातव्य है कि बिना काव्यगत सत्य की परवाह किए, केवल छंद, अलंकार और पद–लालित्य को बड़ा दिखाने की चेष्टा की गई तो वह महज कोरा अलंकरण होगा, उत्तम या महान कविता नहीं। एक समय पंत ने ''छायावाद'' को अलंकृत संगीत मानते हुए लिखा था–

''महत् प्रयोजन सत्य खो गया हो, वाणी का,
आज घुणाक्षर–सी अमूर्त संवृत शैली में,
बिंब–प्रतीक उभरते खग–पग चिह्न चित्र से,
क्षण की करतल रेती में बन–मिट नगण्य से,
कथ्यहीन युग–कविता कोरी अलंकरण भर,
जिसमें गढ़ अरूप वेदना करती रोदन।''[31]

इसीलए काव्य–शिल्प के उपादानों का सार्थक प्रयोग कोई समर्थ व प्रतिभावान कवि ही कर सकता है। अन्यथा काव्य–शिल्प के ये तत्व ही कविता की भावधारा के विनाशक बन जाते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो–*''अनाड़ी आदमी के हाथ में अच्छे अस्त्र दे दिए जाएं तो वह अनर्थ कर बैठेगा। अलंकार, छंद आदि भी बड़े प्रभावशाली अस्त्र हैं–किसी ने बिहारी के दोहों को 'नाविक के तीर' कहा था! –उत्तम कवि इन अस्त्रों का प्रयोग जानता है, अनाड़ी तो केवल भावों और रसों की हत्या के लिए ही इनका उपयोग करता है।''*[32]

कविता में काव्य–सत्य या विषय–वस्तु और शिल्प को लेकर बहसें भी खूब होती रही हैं। अरब–परम्परा में तो काव्य की मूलवत्ता

अभिव्यंजना–शक्ति व शिल्प के आधार पर आंकी जाती रही है। अलबयानों अल तबय्यीन'' में लिखा है–*''निःसंदेह कविता एक शिल्प है और छांयाकन का माध्यम है।''*[33] जाफ़र ने यहाँ तक कह दिया–*''यदि कविता में शिल्प और कौशल है तो पारंपरिक अर्थों एवं अभिप्रेतों को खोज नहीं करनी चाहिए।''*[34] किन्तु, हमें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि सीधी, सादी–भाषा में बिना सजावट के भी महत्वपूर्ण काव्य का सृजन किया जा सकता है। 'काव्य–सत्य से शून्य' भाषा के संदर्भ में निर्मल वर्मा ने लिखा है–*''संवेदनहीन भाषा जिस तरह कलाकृति का अर्थ उद्‌घाटित नहीं कर पाती उसी तरह उस कलाकृति की भाषा कभी संवदेनशील नहीं मानी जा सकती, जो किसी महत्वपूर्ण सत्य से शून्य है।''*[35] इस प्रकार जब कवि के विचार–जगत में उलझाव और कुहासा होता है, तब उसके काव्य शिल्प के उपादान भी निरर्थक, बोध–शून्य एवं दूर की कौड़ी लाने का प्रयास लगेंगे। कला अंततः काव्यानुभूति के ही व्यक्त करने का साधन है। कविता में शिल्प का निश्चय ही विशेष महत्व है, पर उतना ही, जितना वह काव्य–सत्य को अभिव्यक्त करने में सहायक हो। इस तथ्य को आधुनिक हिन्दी कविता के काव्य–शिल्प संबंधी विकास क्रम में स्पष्ट देखा जा सकता है।

(2) काव्य–वस्तु, विचारधारा एवं काव्य–शिल्प

कविता के विषय–वस्तु के चयन एवं उसके शिल्प–निर्माण में कवि का आत्मपक्ष भी समाहित होता है। राजशेखर ने एक पुरानी कहावत का उदाहरण देते हुए लिखा है–*''स यत्स्वभावः कविस्तदनुरूपं काव्यम''*[36] अर्थात जैसा कवि–स्वभाव होता है, वैसी ही उसकी कविता होती है। अतः कवि–स्वभाव या कवि–व्यक्तित्व में भिन्नता के कारण एक ही युग में भाषा का एक सामान्य स्वरूप होते हुए भी कविता के विषय–वस्तु के चयन एवं उनके रूप–पक्ष के निर्माण में अंतर दिखाई पड़ता है। वस्तुतः कवि द्वारा भाषा–प्रयोग के पीछे उपलब्ध भाषा से कहीं अधिक कवि का रचनात्मक परिवेश, भाषा–संस्कार, अध्ययन क्षेत्र, व्यक्तिगत रूचि, उद्देश्य, कवि–प्रतिभा, कवि की विश्व–दृष्टि आदि कई दूसरे प्रभाव काम करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो कवि की विचारधारा का प्रभाव उसके रचना–शिल्प पर भी पड़ता है। साहित्य में कोई जुड़वाँ संतान नहीं होती, प्रत्येक कवि अपने व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा शैली का उपयोग करता है। एडमंड विल्सन के शब्दों में कहें तो *''प्रत्येक कवि का अनूठा व्यक्तित्व होता है। अतः वह उस अनूठे व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने के लिए विशिष्ट भाषा खोज निकालता है।''*[37] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसी संदर्भ में 'न्यूमन' के लेख 'लिटरेचर' का भावानुवाद करते हुए लिखा है–*''कल्पना और विचार उसके अतःकरण के निवासी हैं जो शब्दों के रूप में परिवर्तित होकर, जैसे भाप जल के रूप में परिवर्तित हो जाता है, उसके मुख से निकल पड़ते हैं और उसके चित्त को एक तरह से हल्का कर देते हैं। उसके चित्त की अवस्था और प्रवृत्ति, उसका आतंरिक स्वभाव सौंदर्य तथा उसके विवेचन की सूक्ष्मता और शक्ति इत्यादि उसकी भाषा में प्रतिबिंबित हो जाते हैं। .....जब विचार और कल्पना कवि की निज की वस्तु हैं तो कोई आश्चर्य नहीं जो उसकी स्टाईल अर्थात लिखने का तर्ज और उसकी भाषा भी केवल उसके विषय ही का प्रतिबिंब न हो, बल्कि उसके हृदय का भी प्रतिबिंब हो।''*[38]

साहित्य और विचाराधारा का अभिन्न संबंध रहा है। किन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने आस्था और सौन्दर्य में ललित कलाओं को विचारधारा के रूपों में नहीं गिना है क्योंकि उनमें भाषा का प्रयोग नहीं होता और वे

विचारों की व्यंजना के लिए भाषा को अनिवार्य मानते हैं। उनके अनुसार *''साहित्य भी शुद्ध विचारधारा का रूप नहीं है। उसका भावों और इन्द्रिबोध से घनिष्ठ संबंध है।''*[39] यह कहना कि केवल भाषिक कलाओं की ही विचारधारा होती है, गलत है। रंगों में भी विचारधारा छिपी होती है। लाल झण्डा किस वर्ग की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है, यह बताने की जरूरत नहीं। प्रगतिवादी कवियो में नरेन्द्र शर्मा ने तो 'लाल निशान' नामक काव्य–संग्रह ही लिख डाला था। उनका यह कहना–*''लाल फौज के लिए कमर कस या लाल रूस है ढाल साथियों''*[40] मार्क्सवादी विचारधारा को ही अभिव्यक्त करता है।''

यह विचारधारा का दुर्भाग्य रहा है कि उसका प्रयोग नकारात्मक अर्थों में अधिक होता आया है। सन् 1960 में डेनियल बेल की पुस्तक 'दि एंड आफ आईडियालॉजी' के साथ विचारधारा के अंत की विधिवत घोषणा होती है। इसके साथ जब 'रोला वार्थ' का 'लेखक की मृत्यु' का सिद्धान्त जुड़ता है तो साहित्य से भी विचारधारा को खदेड़ने की मांग होती है। मलार्मे का एक प्रसिद्ध कथन है –काव्य की रचना विचारों से नहीं शब्दों से होती है। इस उक्ति का उपयोग साहित्य में विचारों की प्रतिष्ठा के विरोध में किया जाता है। विचारधारा के विरोध में भी एक विचारधारा काम करती है जिसका कुछ न कुछ व्यक्तिगत, कला–संबंधी, वर्गीय या दलीय प्रयोजन होता है। ध्यातव्य है कि जिस समय यूरोप एवं अमेरिका में विचारधारा के अंत की घोषणा की जा रही थी, उस समय कविता मनुष्य से अपना संबंध–विच्छेद कर शाब्दिक जालों में उलझी हुई थी। ई0ई0 कंमिग्ज या सैण्डबर्ग उस समय कविता की विषय–वस्तु एवं मानवीय संबंधों को नजरअंदाज कर रहे थे। सैण्डबर्ग ने घोषणा की थी कि कविता काव्यात्मक विषयों की आकांक्षिणी नहीं होनी चाहिए और वह 'स्टीम इंजन' पर लिखी जानी चाहिए। कमिंग्ज शब्दों के अक्षरों को तोड़कर अर्थहीन या अर्थमुक्त उद्भावनाएं कविता के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। उस समय चित्रकार ब्रेक की एक रचना अतिविख्यात थी–''सीढ़ियों से उतरती नग्न स्त्री'' जिसमें स्त्री लगभग गायब है और स्त्री से ज्यादा सीढ़ियां झलकती हैं। वस्तुतः विचारधारा को खारिज करने की हरकत उस स्त्री की भाँति ही

साहित्य में मनुष्य की उपस्थिति को एक हद तक अप्रकाशित रखने और साहित्य में कलावाद को जीवित करने की हरकत से जुड़ी है।

डॉ. नंदकिशोर नवल ने संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रति एक विचारोत्तजक प्रश्न उठाया है—*''यह दिलचस्प है कि भारतीय काव्यशास्त्र में सौन्दर्य और रस की चर्चा तो है, लेकिन उसमें विचारधारा क्या, विचार का भी कोई संदर्भ नहीं मिलता।''*[41] दरअसल, संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा शिष्ट समुदाय की वर्चस्वशील संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है और विचारधारा की बात न करना एक प्रकार से पौराणिक विचारलोक से पोषित वर्गीय स्थिति को बनाए रखना है। कभी रघुबीर सहाय एक जुमला बराबर दोहराया करते थे कि जहाँ कला अधिक होती है, वहाँ परिवर्तन भी नहीं होता। यही कारण है कि फुरसतभोगी समाज कला—पक्ष पर अधिक जोर देकर साहित्य के बहाने समाज में यथास्थिति बनाए रखना चाहता है। यह आयास नहीं है कि संस्कृत कविता और रीतिकालीन काव्य—जगत में अतिशयोक्ति पर अधिक बल दिया गया है जो अधिकांशतः प्रभुता सम्पन्न वर्ग के रंजन एवं उसके वर्चस्व के संरक्षण का ही काम करती है। मुद्राराक्षस ने संस्कृत के कुछ कवियों पर आरोप लगाते हुए कहा था—*''राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि जयदेव ने गीतगोविन्द की रचना की थी। उन्हें मालूम था कि राजपुरूष स्त्रीकामी होता है। जयदेव भक्ति काव्य की मार्यादाएं लांघ कर भी राजपुरूष की स्त्रीलिप्सा पूरी करते हैं भले ही वे स्त्री के रूप में अपनी देवी की छवि क्यों न बिगाड़ रहे हों। कुमारसम्भवम् में पार्वती के साथ भी ठीक यही सुलूक किया गया है। वहाँ पार्वती की नग्नतम रति—क्रिया का ब्यौरा कालिदास ने इसलिए नहीं दिया था कि इससे उनके देवता प्रसन्न होते थे। वस्तुतः इससे उनका राजपुरूष आनन्द पाता था।''*[42] हिन्दी साहित्य का रीतिकाल भी इसी मान्यता का शिकार था। यही कारण है कि वहाँ नायिका—भेद, अलंकार, नखशिख और ऋतु—वर्णन आदि प्रमुख वर्ण्य—विषय बने जो सामंती वर्ग के प्रमुख विषय हैं। काव्य में चमत्कार, अतिशयोक्ति, उक्ति—वैचित्र्य आदि की भरमार आ गई। श्रृंगारिक काव्यों की बिंब—चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त होने लगी जो पहले भक्तिकाव्य में नहीं दिखई पड़ती थी।

हिंदी आलोचना के क्षेत्र में विचारधारा शब्द का प्रयोग करनेवाले आचार्य शुक्ल ही संभवतः पहले आलोचक थे। अपने समय की कतिपय रहस्यवादी कविताओं के संदर्भ में उन्होंने लिखा है—*"आडम्बरी कविता की तह में विचारधारा का नाम तक नहीं रहता।"*[43] इन कविताओं में आचार्य शुक्ल ने दों बातें प्रमुख रूप से देखी थी— भावों की सच्चाई का अभाव और व्यंजना की कृत्रिमता। व्यंजना की कृत्रिमता अर्थात बिना भाव—मग्न हुए शिल्प की गहन नक्काशी। यह बात भी प्रमुख रूप से देखी जाती है कि शिल्पकारी एवं कलावाद के समर्थक ही कविता में विचारधारा को निरर्थक मानते हैं। एक समय अज्ञेय भी विचारों को खारिज करने के लिए रसज्ञ शब्द का प्रयोग करते थे। ऐसे लोग यह विस्मरित कर जाते हैं कि कला का रूप पक्ष भी सर्जनाकार की विचारधारा से जुड़ा होता है। यहाँ तक बिंबों, प्रतीकों, अलंकारों आदि का भी अपना समाजशास्त्र होता है और इनके चयन में भी कवि की विचारधारा प्रच्छन्न होती है। उदाहरण के तौर पर तुलसी के राम 'चरितमानस' के किष्किन्धाकांड में वर्णित वर्षा एवं शरद ऋतु वर्णन के ये दो प्रसंग देखिए—

क. "महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भएं विगराहिं नारी।"[44]

ख. "मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा।"[45]

ध्यातव्य है, यहाँ प्राकृतिक दृश्यों के वर्ण के बहाने गाजें गिर रही हैं— स्त्रियों एवं ब्राह्मण—विरोधियों पर। यह तुलसी की अपनी विचारधारा है जो कविता में किसी न किसी रूप में प्रकट हो रही है। दूसरी ओर वर्णाश्रम व्यवस्था के घोर विरोधी कबीर अपनी कविताओं में जुलाहे एवं उसके कर्म का रूपक देना नहीं भूलते। कबीर की कविताओं में झीनी—झीनी बीनी चदरिया या साहेब हैं रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी जैसे रूपक आयास नहीं आए हैं। परमात्मा को जुलाहे या रंगरेज के रूप में देखना कबीर के जीवन के कर्मानुभवों से जुड़ा है। और यह उस समाज के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को भी सूचित करता है जिससे वे जुड़े थे। उसी प्रकार प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन की कविताएँ 'खुरदरे पैर', 'घिन नहीं आती है' या 'पैने दांतोवाली' आदि का अपना एक अलग सौन्दर्यशास्त्र है जिसमें नागार्जुन की विचारधारा और प्रतिबद्धता साफ झलकती है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर गौर करें तो हम पाते हैं कि भारतेन्दु युग की कविता देश–दशा, समाज–सुधार आदि विषयों से अधिक आक्रान्त थी। अतएव वहाँ अभिधात्मक भाषा अधिक है। किन्तु वहाँ व्यंग्य अधिक गहरा है। प्रतापनारायण मिश्र द्वारा 'कनवजियों' पर किया गया व्यंग्य यदि निराला के कान्य कुब्ज कुलंगार का पूर्वाभास दिखता है तो भारतेन्दु की लोकिक्तियों 'उँची दुकान की फीकी मिठाई', 'हाय सखी इन हाथन सों अपने पग आप कुठार मैं दीनों'– कवि ठाकुर की याद दिलाती है। राष्ट्रीयता, समाज सुधार एवं नवीन ज्ञान–विज्ञान का दर्शन द्विवेदी युग के काव्य का मूल स्वर रहा। यही कारण है कि वहाँ काव्य–विन्यास, शब्द –विन्यास में नई बंदिशें खूब सूझा करती थीं।

छायावादी कविता शब्द के अभिधात्मक प्रयोग से आगे बढ़कर लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक प्रयोगों के कारण काव्यभाषा को अर्थगत तरलता एवं बहुस्तरीयता प्रदान करती है। इस युग में व्यक्तिवादी एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति अधिक गहरी थी। अतएव इस युग में नए बिंब, प्रतीक, अप्रस्तुत–विधान आदि मिलते हैं जो कहीं यूं ही जटिल भी हो गए हैं। छायावाद के पश्चात् प्रगतिवादी काव्यधारा ने व्यक्तिगत अनुभूतियों की जगह समाजिक भावबोध को, कल्पना की अपेक्षा वस्तुगत यथार्थ को, इन्द्रियबोध की अपेक्षा विचार को महत्व दिया। फलतः वहाँ अतिशय अलंकारिता की प्रवृत्ति समाप्त हो गई। पंत जी ने ग्राम्या में घोषण की–

''तुम वहन कर सको जन–मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।''[46]

ऐसी स्थिति में कतिपय प्रगतिवादी कविता सपाट वक्तव्य बन गई। लोक–जीवन एवं यथार्थ के नाम पर वस्तु–बिंबों की भरमार लग गई। जिनमें कल–कालखाने, मोटर, ट्राम, रेल, भीड़ आदि सब थे। सबसे बड़ी बात है कि इस काल की कविताओं में शिष्ट जनोचित सौन्दर्यबोध के बजाय भदेस सौन्दर्य की भरमार होने लगी। दूसरी ओर वामपंथी विचारधारा से प्रभावित सैद्धान्तिक प्रतीक– हंसिया, हथौड़ा, लाल सेना आदि भी दिखने लगे। यथा–

''हंसिया और हथौड़ा अब तक हुआ नहीं पामाल,
यह पानी नहीं खून से ही झंडा है लाल।''[47]

सामान्य जन के प्रति प्रतिबद्धता के कारण प्रगतिवादी काव्य के अप्रस्तुत सामान्य जन के वास्तविक जीवन से गृहीत होने लगे। कहीं–कहीं जन–जीवन से गृहीत अप्रस्तुतों की एक सटीक शृंखला बन गयी है–

''यह उदास दिन,
पेंशन पाए चपरासी–सा,
और जुए में हारे जन–सा,
आपे में खोए गदहे–सा
मौन खड़ा है।''[48]

प्रयोगवाद एवं नई कविता के दौर में अनुभूति की प्रामाणिकता और विषयों के वैविध्य के नाम पर शिल्प के क्षेत्र में अत्यधिक प्रयोग हुए। प्रयोगवादी कवियों का व्यक्तिगत अहं एवं नई कविता के कवियों का लघुमानव के प्रति लगाव, सब कुछ उस समय की कविताओं के शिल्प को प्रभावित करता है। किन्तु अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर सभी कवियों की रचना की अपनी काव्य–शैली है जिस पर उनके विचारों एवं संस्कारों की छाप है। अज्ञेय शब्दों के प्रति अत्यधिक सचेत और सतर्क हैं जिसके अर्थगर्भ उपयोग की चरम परिणति अर्थगर्भ मौन पर होती है। दूसरी ओर मुक्तिबोध की कविता में प्रयोगवाद और प्रगतिवाद का रासायनिक मिश्रण है। यहाँ कारण है कि उनमें द्वंद्व कहीं अधिक ज्यादा है। वर्ग–संघर्ष उनके यहाँ मौजूद है। वहाँ प्रयोगवादी की आत्मग्रस्तता भी दिखती है। वे आत्ममंथन के कवि हैं। उनके यहाँ सभ्यता–परीक्षा, आत्मालोचन, आधुनिक बोध, रचना–प्रक्रिया सब कुछ मिलता है। यथार्थ चित्रण वहाँ कभी–कभी फैंटेंसी शिल्प में सामने आया है। किसी कविता में बाहर और अंदर के वैविध्य, अंतर्विरोध, बिखराव को फैंटेंसी के माध्यम से एक सूत्र में पिरोना आसान होता है। यही कारण है कि मुक्तिबोध ने कहा–

''मैं विचरण करता हूं एक फैंटेसी में,
यह निश्चित है कि फैंटेसी कल वास्तव होगी।''[49]

इस फैंटेसी में मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष बोलता है जहाँ आत्मालाप की शैली अपनाना आवश्यक हो जाता है और अंत में वहाँ भाषा की नाटकीय बिडंबना सहज सामने आ जाती है। इसके विपरीत शमशेर का आत्मसंघर्ष नितांत निजी संघर्ष है और उनकी कविताओं में मानसिक जटिलता व अचेतन मन की सीमाओं में परकाया प्रवेश भी खूब मिलता है। इसिलए वे बिंबों, शब्दों को बिखरते हैं और उसे फिर विराम, अर्द्धविराम, डैस, डाट से निंयत्रित करते हैं। इसके साथ–साथ उनकी कविताओं में उनका इम्प्रैशनिस्टिक चित्रकार बोलता है। यही कारण है कि उनकी कविताओं में विशाल चित्रशाला का आयोजन होता है–

''पूरा असामान का आसमान है
एक इन्द्रधनुषी ताल
नीला सांवला हल्का गुलाबी
बादलों का धुला
पीला धुआँ।''[50]

वस्तुतः कवियों की भावधारा उनकी भाषा में भी देखने को मिलती है। डॉ. नामवर सिंह ने त्रिलोचन और अज्ञेय दो विभिन्न भावधाराओं के कवियों के भाषा सम्बन्धी विचारों का फर्क बतलाते हुए कहा है–– *''जीवन और कविता के अंतःसंबंधों में फर्क होने के कारण जहाँ त्रिलोचन कविता को जीवन की जीवंत भाषा प्रदान कर उसे पुनः जीवित कर सके हैं और कह सके हैं कि भाषा की लहरों में जीवन की हलचन है वहाँ अज्ञेय जैसे आत्माभिव्यंजनावादी कवि अपनी अभिव्यक्ति को अधिक से अधिक प्रभावशाली रूप देने के लिए भाषा या शब्द की खोज करते हैं।''*[51] अज्ञेय राजमार्ग के कवि हैं। यही कारण है कि वे सड़क और कमरा जैसे शब्दों के इस्तेमाल से बचते हैं जो त्रिलोचन, मुक्तिबोध के बाद धूमिल के काव्यों में भी खूब आता है। रूपवादी संस्कार और यथार्थवादी दृष्टि से संचालित शिल्पगत विभिन्नता में यह अंतर देखने लायक है। गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपनी कविता 'मुझे कदम–कदम पर' में लिखा है।–

''जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि

कमी है विषयों की
वरन् यह कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है
और वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है।''[52]

कवि के चुनाव और उसकी अभिव्यंजना पद्धति सभी पर उसके व्यक्तित्व, विचारधारा और सामाजिक संघर्षों का प्रभाव पड़ता है।

(3) आधुनिक भावबोध, हिंदी कविता एवं काव्य–शिल्प

'आधुनिकता' की परिभाषा एवं हिन्दी कविता में इसके अविर्भाव को लेकर कई प्रश्न उठते रहे हैं। कतिपय लोग कविता को काल–मुक्त मानते हैं तो कुछ कालबद्ध। अपने कालवाचन अर्थ में आधुनिकता का अर्थ होगा–प्राचीन अथवा मध्यकालीन से भिन्न वर्तमान से संपृक्त बोध। इस दृष्टि से आधुनिक संवेदना समकालीन परिवेश से संपृक्त होती है और प्राचीन एवं मध्यकालीन संस्कारों व रूढ़ियों से मुक्त होती है तथा बंधी–बंधाई व्यवस्था या मर्यादा को तोड़ती है। हिंदी आलोचना में 'आधुनिकता' शब्द का साहित्य के संदर्भ में सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया था, जिस ओर ध्यान दिलाते हुए केदारनाथ सिंह ने लिखा है–*''जहाँ तक आधुनिक कविता का प्रश्न है, शुक्ल जी काव्य में घटित होने वाले परिवर्तनों का संबंध सीधे बदली हुई परिस्थितियों से जोड़ते हैं और साथ ही एक प्रकार की आधुनिकता पर बल देते हैं। यह आधुनिकता उनके निकट मूल्यपरक शब्द हैं। थोड़ा विचित्र लग सकता है पर यह एक तथ्य है कि हिन्दी आलोचना में 'आधुनिकता' शब्द का प्रथम प्रयोग आचार्य शुक्ल ने ही किया था।''*[53] आचार्य शुक्ल द्वारा निर्धारित 'आधुनिकता' का मापदंड सन् 60 के दशक में चर्चा की जानेवाली 'आधुनिकता' से भिन्न है। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काव्य की नवीन काव्यधारा के प्रथम उत्थान का विवेचन करते हुए आचार्य शुक्ल ने जिस नवीनता या आधुनिकता की ओर संकेत किया है, उसका तात्पर्य है–*''देशकाल की नूतन परिस्थिति के अनुरूप हमारे मनोविकारों का सामंजस्य घटित करना।''*[54] आचार्य शुक्ल भारतेंदु युग से हिन्दी कविता में आधुनिकता का जन्म मानते हैं। यह और बात है कि भारतेंदु की गद्य–रचनाओं की अपेक्षा उनकी कविताओं में भाव और भाषा दोनों स्तर पर आधुनिकता कम ही दिखाई पड़ती है।''

केदारनाथ सिंह ने हिंदी कविता में आधुनिकता को एक लंबे विकास–प्रक्रिया से जोड़ते हुए लिखा है–*''हिन्दी कविता में (और कमोबेश पूरी भारतीय कविता में भी) आधुनिकता कोई आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि वह एक लंबी विकास–प्रक्रिया का परिणाम है। मुक्ति आंदोलन के*

समानार्थ और कई बार उसके आगे–पीछे यह प्रक्रिया पुराने मूल्यों से टकराती हुई और उन्हें छिन्न–भिन्न करती हुई अपने ढंग से चुपचाप चलती रही है। हिन्दी कवि को यह लड़ाई दो मोर्चों पर लड़नी पड़ी– पहले भाषा के मोर्चे पर और लगभग उसी के साथ–साथ संवदेना और विचार के मोर्चे पर भी।''[55] अतः काव्य–भाषा को आधुनिक बनाने और उसे आधुनिक संवदेना व विचार के निकट लाने के लिए हिन्दी कविता नये शिल्प का आग्रह करती है।

हिन्दी साहित्य को आधुनिक भावधारा के निकट लाने और जीवन व साहित्य के संबंध को प्रगाढ़ बनाने का प्रथम श्रेय भरतेन्दु को जाता है। किन्तु यह भी सत्य है कि भारतेंदु की कविताओं में उनके गद्य की भांति न तो नए–नए विषय दिखाई देते है और न ही कविता में नवीन अभिव्यंजना–पद्धति का विकास दिखाई पड़ता है। भारतेंदु के नाटकों में अतीत–गौरव या देश–दशा से संबंधित गीत मिलते हैं, पर कविताओं में कुछ विशेष अवसरों को छोड़कर कुछ नहीं मिलता। भारतेंदु के पद्य में प्रायः कृष्ण भक्त कवियों के अनुकूल गेयपद और श्रृंगारी परम्परा के कवित्त–सवैये का अनुकरण ही अधिक परिलक्षित होता है। दूसरी ओर भारतेंदु ने खड़ी–बोली में गद्य रचना तो की, किन्तु काव्य–भाषा प्रायः ब्रजभाषा ही रहने दी। यही कारण है कि आचार्य शुक्ल ने उनकी कविताओं को गद्य–रचनाओं की अपेक्षा कम आधुनिक कहा है। भारतेंदु युग को आधुनिक हिंदी साहित्य का संक्रान्ति–काल कहा जा सकता है, जहाँ पद्य–रचनाओं में नवीन व प्राचीन का द्वन्द्व सहज परिलक्षित होता है। पुराने भावबोध से लगाव के कारण भारतेंदु युग की काव्य–संवेदना, उसकी चिन्तन पद्धति तथा उनका शिल्प पुरानेपन से मुक्त नहीं हो पाया था। केदारनाथ सिंह ने आधुनिक काव्य–संवेदना की पहली लड़ाई जिस भाषा के मोर्चे पर मानी है, उसमें भारतेंदु युग की पद्य–रचनाएं विशेष सफल नहीं मानी जा सकती। इसका प्रमाण यह है कि काव्य–भाषा के द्वंद्व में इस काल के अधिकांश कवि ब्रजभाषा के पक्ष में थे। भारतेन्दु ने 'भारत–मित्र' में प्रकाशित अपनी खड़ी बोली की कविताओं– 'दशरथ–विलाप, 'बसंत' आदि के लिखने में छंद संबंधी असुविधा के कारण ब्रजभाषा की अपेक्षा काव्य–रचना में ''दूने परिश्रम'' का जिक्र किया है।

इस युग में श्रीधर पाठक जैसे खड़ी बोली में रचना करने वाले कवि भी हुए जिनमें पुरानी परंपराओं के प्रति विद्रोह सहज देखा जा सकता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, *''पद्य के ढाँचों, अभिव्यंजना के ढंग तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छंदता का आभास पहले पहल पं0 श्रीधर पाठक ने ही दिया।'*[56] एक ओर पं0 श्रीधर पाठक जहाँ छंद, पदविन्यास, वाक्य–विन्यास आदि के संबंध में नई–नई बंदिशों को ला रहे थे, वही पं0 प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी जैसे कवि ब्रजभाषा की पुरानी परिपाटी का ही पक्ष ले रहे थे। यह ऐसा समय था जब कोई ब्रजभाषा को ''ईख की तरह सरल और मीठी'' बता रहा था तो उसे कोई 'बुड्ढी नायिका' कह रहा था।

भारतेंदु ने भले ही काव्य–भाषा के रूप में ब्रजभाषा बने रहने दी, किंतु उन्होंने ''ब्रजभाषा का परिष्कार'' अवश्य किया। दूसरी बात यह है कि वे काव्य–भाषा को अधिकाधिक बोलचाल की भाषा के निकट लाए। भारतेंदु एवं उनके युग को एक बात का और श्रेय जाता है, वह है–रीतिवादी अतिशय शृंगारिकता का विरोध और कविता में नए विषयों को जगह देना। प्रेमधन ने अपने निबंध 'भारतीय नागरी भाषा' में शृंगार को *''राजा बाबू और अमीरों की माता''* बताया और कहा–*''आज समय दूसरा है, देश की दुर्दशा ने सबकी मुटाई झाड़ दी है, अक्ल ठिकाने आ गई है, अब वे बातें नहीं जंचती।'*[57] साहित्य को व्यापक जन–समूह से जोड़ने के लिए भारतेंदु ने ''जातीय संगीत'' और पं. बालकृष्ण भट्ट ने ''सच्ची कविता'' जैसे निबंधों के माध्यम से ग्रामगीतों के प्रसार और कविता में कृत्रिमता रहित जनभाषा को अपनाने पर बल दिया।

भारतेंदु युग की कविता पर सामाजिकता इस कदर हावी है कि उसकी साहित्यिकता लगभग दब–सी जाती है। उस युग की अधिकांश कविता परंपरायुक्त है। उस दौर की कविता का जो अंश परंपरामुक्त है, वह भी अधिकांशतः अभिव्यंजना कौशल में अभिधात्मक और सपाट है। इस युग की कविता बिंब–विधान की दृष्टि से अधिक महत्व नहीं रखती। जो बिंब मिलते भी हैं, वे अधिकांशतः उपलक्षित बिंब हैं अर्थात् उपमामूलक अलंकारों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। ज्यादातर लक्षित बिंब राष्ट्रीय–सामाजिक चेतना

की कविताओं या प्रकृति–चित्रण संबंधी कविताओं में ही मिलते हैं जो प्रायः दृश्य चित्र अधिक हैं। इस युग में ज्यादातर पद्य इतिवृत्तात्मक हैं। भारतेंदु के 'अँग्रेज–राज सुख साज सजे सब भारी' जैसे पदों को आचार्य शुक्ल ने इतिवृतात्मक एवं बिंब–ग्रहण की दृष्टि से अनुपयोगी ही माना था। प्रकृति–वर्णन प्रणाली में प्राचीन संस्कृत काव्य–परम्परा को नया संस्कार देने और बिंब ग्रहण कराने का थोड़ा बहुत महत्वपूर्ण प्रयास ठाकुर जगमोहन सिंह की कविताओं में देखने को मिलता है। जहाँ तक ''प्रतीकों'' का प्रश्न है इस युग की कविता में अधिकांशतः रूढ़ प्रतीक मिलते हैं। भारतेंदु ने एक–दो मौलिक प्रतीकों का प्रयोग अवश्य किया है। यथा ***''भारत में मची है होरी''*** [58] में होली देश के सर्वनाश का प्रतीक है। इस युग में प्रतापनारायण मिश्र की कविताओं में जहाँ विचित्र–विनोद देखने को मिलता है, वहीं प्रेमघन में काव्य–छन्दों में यति–भंग ज्यादा दिखता है। अंबिकादत्त व्यास पुराने ढंग की समस्या–पूर्ति में अधिक संलग्न रहते थे और आजमाइश के लिए बेतुके पद्य बनाने में भी नहीं हिचकते थे। जहाँ तक काव्य–रूपों का प्रश्न है, भारतेंदु युग में सामान्य विषयों पर ''पद्यात्मक निबन्धों की परंपरा'' भी चली जो पहले तो कुछ भावप्रधान रही पर आगे चलकर शुष्क और इतिवृत्तात्मक होने लगी। छंदों की दृष्टि से भारतेंदु युग की खड़ी बोली की कविता उर्दू की बहरों पर अधिक आधारित थी। इस युग के कवियों ने लावणी, कजरी, ख्याल आदि लोकगीतों के छंदों को अपनाया तो बांगला के 'पयार' नामक छंद का सर्वप्रथम प्रयोग भारतेंदु ने ब्रजभाषा की कविताओं में किया। कुल मिलाकर कहें तो भारतेंदु युग की कविता विषयों के वैविध्य की दृष्टि से जितनी उपयोगी है, उतनी अभिव्यंजना–शैली की दृष्टि से नहीं।

द्विवेदी युग में भी ब्रजभाषा–खड़ी बोली का विवाद काव्य–भाषा के प्रसंग में थोड़ा बहुत बना रहा। एक ओर जहाँ जार्ज ग्रियर्सन खड़ी बोली में काव्य रचना को एक असफल प्रयास घोषित कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर किन्तु इस युग में खड़ी बोली पद्य की भाषा के रूप में पूरी तरह स्थापित हो चुकी थी। काव्य–भाषा पर गंभीरता से हिन्दी समीक्षा में विचार द्विवेदी युग से शुरू हुआ। भाषा की सरलता, बोलचाल की भाषा, सहज भाषा, बोधगम्य भाषा आदि की आवाजें द्विवेदीयुग में जोर–शोर से उठीं।

मैथिलिशरण गुप्त ने सरल और सुस्पष्ट भाषा की वकालत करते हुए अपनी 'ब्रजभाषा और खड़ी बोली' शीर्षक कविता में लिखा है–

''कहना सब सुस्पष्ट, सरल शब्दों में खुलकर,
बनकर रहें सुवर्ण वर्ण, कांटे पर तुलकर।।''[59]

अतएव गुप्त जी ने प्रसाद गुण का पक्ष लिया और उनके काव्य में भाषा की अभिधात्मक शक्ति पूरी आस्था के साथ व्यक्त हुई है। द्विवेदी युग में भाषा की व्याकरण–सम्मता पर सर्वाधिक बल दिया गया और यथोचित रूप से शुद्ध भाषा में काव्य की रचना हेतु कवियों को प्रेरित किया गया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मिल्टन की तर्ज पर कविता में सादगी, असलियत और जोश गुणों का होना अनिवार्य बतलाया। द्विवेदी जी ने कविता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए भावानुकूल, प्रसंगानुकूल 'उचित शब्द–स्थापना' पर बल दिया और लिखा–***''किसी मनोविकार के दृश्य के वर्णन में ढूँढ–ढूँढ कर ऐसे शब्द रखने चाहिए जो सुनने वाले की आंखों के सामने वर्ण्य–विषय का चित्र–सा खींच दें।''***[60] यह एक प्रकार से कविता में बिंबात्मकता की स्वीकृति थी। जो लोग केवल आचार्य शुक्ल को ही बिंबात्मकता की वकालत करने वाला सर्वप्रथम आलोचक मानते हैं, उन्हें द्विवेदी जी के उपर्युक्त कथन को ध्यान में रखना चाहिए। 'सरस्वती' में राजा रवि वर्मा, ब्रजभूषण रायचौधरी, वामापद वंद्योपाध्याय और एम0वी0 धुरन्धर के चित्रों को लक्ष्य कर कई चित्रात्मक कविताएं भी लिखी गईं। इस युग में राष्ट्रीयता की भावना भी एक भाव न रहकर राष्ट्र या मातृभूमि के मूर्त रूप में बदल गई। द्विवेदी जी की लिखी ***''यह जो भारत–भूमि हमारी जन्म–भूमि हम सबकी प्यारी''***[61] जैसी कविता कोई चित्र नहीं बना पाती, वहीं मैथिलीशरण गुप्त की दिव्य–पंक्तियों––***''नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है। सूर्य–चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर हैं।''***[62] में राष्ट्र का एक स्पष्ट बिंब सामने आता है। इसके अलावा पं. श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण',रामचन्द्र शुक्ल जैसे कवियों की कविताओं में जहाँ प्रकृति–चित्रण की स्थानीय विशिष्टता है, वहीं सहज बिंबात्मकता भी। श्रीधर पाठक ने 'गुनवंत हेमंत' में गांव में उपजने वाली मूली, मटर जैसी वस्तुओं को भी प्रेम से अंकित किया है जो

कवियों द्वारा परंपरागत ऋतु वर्णनों की परिधि से बाहर था। इसके अलावा उन्होंने प्रकृति पर मानवीय चेष्टाओं का भी आरोप किया है–– *''प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप निहारति।''*[63] दूसरी ओर रामनरेश त्रिपाठी ने रूपक की सहायता से समुद्र का संशिलष्ट, निर्दोष और ताजा बिम्ब प्रस्तुत किया है–

''सिन्धु–विहंग तंरग पंख को फड़का कर प्रतिक्षण में,
है निमग्न नित भूमि अंक के सेवन में, रक्षण में।''[64]

द्विवेदी युग के कवियों ने भाव और विचारों को मूर्त रूप देने की कोशिश की, किंतु इस युग के कवियों की दृष्टि की स्थूल वस्तुपरकता के कारण कविता में संश्लिष्ट बिंबों की अधिक सृष्टि न हो सकी और उनकी सामग्री व क्षेत्र भी सीमित रहा। दूसरी ओर इस युग के कवियों का स्थूल और इतिवृत्तात्मक काव्याबोध, सामूहिक अनुभवों और वैचारिक प्रतिक्रियाओं की सरलीकृत वर्णनात्मक अभिव्यक्ति आदि के कारण मौलिक प्रतीक रचनाओं की भी सृष्टि भी नहीं हो पायी। यद्यपि इस युग की कविता ने भारतेंदु युग की कविताओं में व्याप्त कई रूढ़ियों, आध्यात्मिक एवं श्रृंगारिक प्रतीकों से मुक्ति पा ली और रूढ़ प्रतीकों जैसे – 'सिंह', 'गीदड़', 'कुत्ता' आदि को भी नया संदर्भ दिया गया जिसका संबंध राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन से था। यथा–

''सिंहों सत्याग्रह प्रवाह में गोल बांध बहना होगा।''[65]

द्विवेदी युग छंद–प्रयोगों की समृद्ध परंम्परा के निर्माण में भी महत्वपूर्ण माना जाएगा। संस्कृत वर्णवृत्तों की दृष्टि से द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हैं। उन्होंने अपना पूरा प्रिय प्रवास काव्य अनुप्रास–मुक्त वसंततिलिका, वंशस्थ, शिखरिणी, मालिनी, द्रुतविंलबित, शार्दूल विक्रीड़ित, मंदाक्रान्ता, सात वृत्तों में लिखा है। पं0 श्रीधर पाठक ने अपनी रूचि के अनुसार कई नए ढांचे के छंद निकाले और इस बात का ध्यान रखा कि इनमें सुन्दर लय बनी रहे। ख्याल या लावनी की लय पर जैसे उन्होंने 'एकान्तवासी योगी' लिखा, उसी प्रकार 'सुथरे साइयों' के सधुक्कड़ी ढंग पर 'जगत–सच्चाई सार' लिखा। 'संध्य

अटन' का छंद अत्यंनुप्रासरहित ठिकाने समाप्त होने वाले गद्य जैसा है, जैसा अंग्रेजी में होता है। यथा–

''बिजन वनप्रान्त था, प्रकृतिमुख शान्त था,
अटन का समय था, रजनी का उदय था।''[66]

ध्यातव्य है, छंद को लेकर पं0 श्रीधर पाठक और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' में लंबा विवाद भी चला था। पाठक जी छंद की सत्ता भावाभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं तो राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' छंद की सत्ता पहले मानते थे, काव्य की बाद में। छंद कभी काव्य और गद्य के अंतर को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण रहा है। वर्डसवर्थ ने गद्य और पद्य दोनों में कविता करने की बात कही थी। द्विवेदी जी ने भी यही बात दुहराते हुए कविता और पद्य में अंतर स्पष्ट किया और गद्य और पद्य के पद–विन्यास की एकता की बात की। इसके पीछे उन पर पड़ा मराठी संस्कार था। द्विवेदी जी की मान्यता भले ही उस युग में विशेष प्रभावी सिद्ध नहीं हुई, किन्तु इतना तो तय था कि द्विवेदी युग की कविता के शिल्प संबंधी चिन्तन पर अन्य भारतीय भाषाओं के काव्य–संस्कार के साथ–साथ पश्चिम के चिंतन का भी प्रभाव पड़ रहा था। इसी पाश्चात्य–चिंतन का ही प्रभाव था कि कविता और चित्रकला का निकट का संबंध स्वीकार करते हुए द्विवेदी जी ने कविता, संगीत, चित्रकला एवं मूर्तिकला को ललित–कला मानना शुरू कर दिया।

द्विवेदी युगीन काव्य–शिल्प संबंधी चिन्तन में विरोधाभास भी रहा है। स्वंय द्विवेदी जी बोलबाल की भाषा की बात करते हुए भी सानुप्रास कोमल पदावली का लोभ छोड़ न सके। यथा–

''सुरम्य रूपे रसराशि रंजिते! विचित्र वर्णा भरणे कहां गई?''[67]

उसी प्रकार पं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' में बोलचाल की भाषा को स्वीकार किया तो दूसरी ओर उन्होंने यह भी कहा–***''सुन्दर भाव जब मधुर कोमलकांत पदावली के साथ होते हैं तो मणिकांचन योग हो जाता है।''***[68] उनके 'प्रिय–प्रवास', 'वैदेही बनवास' तथा 'परिजात' में संस्कृत के शब्दों का विशेष प्रयोग किया है। उसी प्रकार यह भी विरोधाभास ही है कि सहज भाषा में अलंकारों की

अनिवार्यता न मानते हुए भी द्विवेदी युग के अधिकांश कवि एवं आलोचक उक्ति–वैचित्रय, चमत्कार आदि के समर्थ में खड़े थे। जगन्नाथदास रत्नाकर ने काव्य का उद्देश्य वैदग्ध्य, वाक्पटुता आदि के द्वारा श्रोताओं के हृदय में एक विशेष प्रकार का आनन्दोत्पाद करना माना और उनके 'उद्धव–शतक' में काव्य चमत्कार वक्रता से निबद्ध मिलेगा।

द्विवेदी युग में हिन्दी भाषी क्षेत्र के मध्यमवर्ग के व्यक्तित्व और उसके अभिजात्यपन की स्पष्ट छाप मिलती है। दूसरी ओर इस युग में मध्यवर्ग की पुनरूत्थानवादी एवं सुधारवादी चेतना भी सक्रिय थी। आर्यसमाज के शुद्धतावादी प्रभाव ने भी इस युग की कविता को इतिवृत्तात्मक बना दिया और कवि को उपयोगितावादी। मैथिलिशरण गुप्त की 'सरस्वती' में प्रकाशित प्रारंभिक कविताएँ गद्यवत, रूखी और इतिवृत्तात्मक ही अधिक थी जिसमें काव्य की विशिष्ट पदावली रसात्मक चित्रण, वाग्वैचित्र्य इत्यादि का विधान न था। किंतु इतना होने के बावजूद 'प्रबंध–काव्यों' की परंपरा को आगे बढ़ाने में इस युग को विशेष रूप से याद किया जाएगा। हरिऔध जी का 'प्रिय–प्रवास', मैथिलीशरण गुप्त का 'पंचवटी, 'साकेत' 'यशोधरा' आदि तथा पं. राम नरेश त्रिपाठी के खंडकाव्य 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' इस दृष्टि से विशेष स्मरणीय है। गुप्त जी के 'साकेत' और यशोधरा पर छायावादी प्रभाव एवं गीतकाव्य के प्रति उनके स्पष्ट झुकाव की झलक दिखाई पड़ती है। इस युग ने 'छायावाद' के लिए दो रूपों में मुख्यतः राह बनाई। पहला तो काव्य–भाषा के रूप में खड़ी बोली को पूर्णतः प्रतिष्ठित किया एवं दूसरी ओर पं0 श्रीधर पाठक व रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियों की स्वच्छतावादी दृष्टि ने 'छायावाद' की पृष्ठभूमि तैयार की।

मुकुटधर पांडेय ने 'छायावाद' को 'मिस्टिसिज्म' के अर्थ में प्रयोग किया और बँगला में प्रचलित नई शैली के गीतों के आधार पर लिखा–*''छायावाद' शब्द से मेरा अभिप्रायः मिस्टिसिज्म के विषय–वस्तु से कहीं अधिक अभिव्यक्ति की प्रणाली या शैली से था।''*[69] इस परिभाषा में 'छायावाद' का संबंध विषय–वस्तु से कहीं अधिक अभिव्यक्ति की प्रणाली अर्थात शिल्प से अधिक लगता है। वस्तुतः छायावादी कविता ने हिन्दी काव्य–भाषा को परिमार्जित कर उसको नया संस्कार दिया। पंत जी ने

लिखा है—*''अभी हम खड़ी बोली से अपरिचित है, उसमें हमने अपने प्राणों का संगीत अभी नहीं भरा, उसके शब्द हमारे हृदय के मधु से सिक्त होकर अभी सरल नहीं हुए, वे केवल नाम मात्र हैं, उनमें हमें रूप–रस–गंध भरना होगा।''*[70] इसी भाँति महोदवी वर्मा ने भी लिखा है—*''छायावाद ने नए छंद बंधों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नहीं सह सकता था। अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप–तौल और काँट–छाँट कर तथा कुछ नए गढ़कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया।''*[71] इस प्रकार इन कवियों की भाषाई–चिन्ता ने एक ऐसी काव्य–भाषा संयोजित की जो अत्यंत पारदर्शी, काव्यात्मक तथा अभिजात्य संस्कारों से संपृक्त थी।

द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता का विरोध कर छायावाद ने भाषा शैली को परिमार्जित कर शब्दों को नवीन ध्वन्यात्कता, संकेतात्मकता एवं बिंबात्मकता का जामा पहनाकर नवीन अभिव्यंजना से मंडित किया। डॉ. नामवर सिंह द्विवेदी युगीन भाषा को जड़ और छायावादी भाषा को उसकी प्रतिक्रिया में उन्मुक्त बताते हुए लिखा—*''इस प्रकार पतझर (द्विवेदी युग) की भाषा देखते–देखते कुसुमित (छायावादी) शब्दों से लद गई। शब्दों के चयन और निर्माण में छायावादी कवियों ने कितना श्रम किया इसका कुछ आभास शब्द–शिल्पी पंत की ''पल्लव' की भूमिका से हो सकता है फिर भी छायावादी कविता का शब्द सौन्दर्य उसके स्वतंत्र शब्दों में उतना नहीं जितना शब्दों के लयमय–क्रम में है।''*[72] पंत जी के शब्द–चयन में 'असंयुक्त वर्णवाले' शब्द अधिक मिलते हैं। जबकि जयशंकर प्रसाद 'मधुमय और नादानुकृतिमय' शब्दों के धनी हैं। महादेवी वर्मा की पदावली में शब्द सुसज्जित व अतिशय अलंकृत होकर सामने आते हैं। निराला बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं इसलिए उनके शब्द–चयन में भी विविधता है। किन्तु ''संधि–समास युक्त' शब्दों और नाद–सौन्दर्य का सृजन करने में निराला का कोई सानी नहीं हैं।

छायावादी कवि 'उपयोगिता' की पुरानी सीमा से बाहर निकलकर शिल्प के क्षेत्र में नए–नए प्रयोग करने वाले कलाकार थे। इसके पीछे

रीतिकालीन सामंती–बोध नहीं, वरन् आधुनिक भावबोधसम्पन्न रूचि थी जिसमें सौंदर्य की प्राकृतिकता की रक्षा भी थी और अतिरिक्त सु–सज्जा का आरोप भी। कविता के रूप–विन्यास का आधार भावात्मक और सामाजिक था जो प्रत्येक ढंग की रूढ़ियों का विरोध करने वाला था। निराला ने मनुष्यों की मुक्ति की तरह 'कविता की मुक्ति' की भी बात कही। दूसरी ओर पंत ने 'खुल गए छंद के बंध औ'प्रास के रजतपाश' का उद्घोष किया। इन कवियों ने छंद के शास्त्रीय बंधनों को तोड़कर उसे मुक्त छंद का नाम दिया और पारंपरिक छंदों से हटकर मौलिक नवीन छंदो का प्रयोग किया जिनमें लय पर आधृत नाद–योजना का संगीत था। मध्ययुग के अनेक छंद रूपमाला, सखी, राधिका, पीयूषवर्षण, प्लवंगम, आरिल्ल' आदि जहाँ छायावाद में जीवित हो गए तो वहीं दूसरी ओर कई लोक–प्रचलित स्वरों को ही छंद बनाया गया। छायावादी कवियों ने जो तीस–इकतीस मात्राओं वाले छंद लिखे, वह कहीं लावनी के निकट है तो कहीं आल्हा के। लोक–गीत अपनाने तथा छंद प्रयोग करने में छायावादी कवियों में निराला सबसे आगे हैं। 'अनामिका' का 'अपराजिता' शीर्षक गीत 'लोकगीत का अच्छा उदाहरण है।–

''हारी नहीं: देख आँखें–
परी नागरी की:
नभ कर गई पार पाँखे–
परी नागरी की।''[73]

निराला ने कविता को संगीत के अधिक निकट लाने का कार्य किया। वर्ण–संगीत और स्वर–संगीत द्वारा इन्होंने काव्य में वभिन्न 'लय' उत्पन्न की। ये वर्ण–संगीत हृदय में गूंजते भाव को भी उतनी ही स्पष्टता तथा अनुगूंज के साथ अभिव्यक्त करते हैं। यथा–

''कण–कण कर कंकण प्रिय,
किण–किण रव किंकणि,
रणन, रणन नुपुर, उर लाज,
लौट रंकिणी।''[74]

इस प्रकार छायावादी काव्य–भाषा की शब्द–योजना, वाक्य–योजना, अंत्यानुप्रास, व्यंजनों की आवृति, ध्वान्यात्मकता आदि में जीवन–सौंदर्य से संपृक्त संगीत–सौंदर्य झलकता है।

छायावाद युग में कल्पना को सबसे अधिक प्राथमिकता मिली। पंत ने 'पल्लव' को 'कल्पना के ये विह्वल बाल' कहा तो प्रसाद ने उसे 'मनुज जीवन प्राण कहा। यह कल्पना प्रस्तुत विधान से ज्यादा अप्रस्तुत योजना में अधिक सक्रिय थी। निराला का 'यमुना–वर्णन' या पंत के 'बादल' में इन अप्रस्तुतों को स्पष्ट देखा जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावादी काव्य में 'वस्तु–व्यापारों' की प्रकृत व्यंजना से बहुत दूर जा पड़ने वाले अप्रस्तुत–विधान की आलोचना की है तो दूसरी ओर 'धूल की ढेरी में अनजान छिपे हैं मेरे मधुमय गान' जैसे पदों में 'आभ्यान्तर प्रभाव–साम्य' पर टिके अप्रस्तुत विधानों की प्रशंसा भी की है। आचार्य शुक्ल के अनुसार *''छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं–कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यांतर प्रभाव–साम्य लेकर ही प्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में प्रतीकवत् होते हैं। .....आभ्यातंर प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।''*[75] ध्यातव्य है कि छायावाद के कटु आलोचक समझें जाने वाले आचार्य शुक्ल 'आभ्यान्तर प्रभाव–साम्य' के आधार पर छायावादी काव्य की–भाषा की प्रशंसा करनेवाले प्रथम आलोचक थे। आगे चलकर उन्होंने छायावादी कविता में व्यक्त 'लाक्षणिक मूर्तिमत्ता' की तारीफ की और इस प्रसंग में उन्होंने घनानंद और पंत को साथ–साथ याद भी किया है।

छायावादी काव्य में चित्रभाषा के वैलक्षण्य के भी दर्शन होते हैं। छायावादी कवि ने अपनी सूक्ष्म शब्द–चेतना से अनेक नए और विशिष्ट शब्दों को अपनी कविता में बिंब–निर्माण के लिए प्रस्तुत किया और कई 'बिंबधर्मी विशेषणों' की रचना की। यथा 'कनक छाया' फनिल हास (पंत), घनीभूत पवन, क्षणगन्ध धूमरेखा (प्रसाद) नृत्य–चपल अधर, ज्योतिर्मय

प्रपात (निराला), मधुमय पीड़ा, संस्मित चुंबन (महादेवी) आदि जैसे विशेषणों में मूर्तिमत्ता, ऐन्द्रियता, संदेनात्मकता सभी संपृक्त हैं। छायावादी कवियों में आदिम बिंब, पौराणिक बिंब और निजन्धरी बिंब सभी मिलेंगे। 'कामायनी' में उषा के इस बिंब में आदिम–बिंब (आर्कटाइप इमेज) देखिए–

''उषा सुनहले तीर बरसती, जयलक्ष्मी–सी उदित हुई,
उधर पराजित काल–रात्रि भी, तम में अंतनिर्हित हुई।''[76]

उसी प्रकार 'निजन्धरी बिंब' (लेजेण्डरी इमेज) का सर्वोत्तम प्रतीकात्मक प्रयोग 'राम की शक्ति पूजा' में एक सौ आठवें कमल की छाप में मिलता है। 'राम की शक्ति पूजा' अपने विराट्–बिंबों के कारण भी प्रसिद्ध है। द्विवेदी युग में चित्रों में रंगों का उपयोग बहुत कम था। किंतु छायावादी कवियों ने अपने बिंब को इन्द्रधनुषी रंग भी दे दिया है। यथा–

''कनक से दिन मोती–सी रात,
सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात।''[77]

ध्यातव्य है कि रंगीन चित्रात्मकता का पूर्ण विकास आगे चलकर शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में मिलता है।

छायावाद मुक्ति का काव्य है जिसका संबंध तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन से गहरा था। यही कारण है कि इस युग में बड़ी संख्या में प्रभाती और जागरण गीत लिखे गए जिनमें व्यक्तिगत प्रणय और राष्ट्र–जागरण के भाव एक साथ घुल–मिल गए हैं। यथा–''बीती विभावरी जाग री।'', 'प्रथम प्रभात' (प्रसाद), 'जागो फिर एक बार', 'प्रिय मुद्रित दृग खोलो (निराला), 'प्रथम रश्मि', 'ज्योति भारत' (पंत), 'जाग बेसुध जाग' ,'जाग तुझको दूर जाना' (महोदेवी वर्मा) आदि। इस युग में प्रतीकों को भी नए संदर्भ मिले। ये प्रतीक प्रकृति के क्रोड़ से ही लिए गए हैं और संस्कृति से भी। जिनमें– पुराण, इतिहास, धर्म, दर्शन, कला–कौशल सभी समाहित हैं। प्रसाद जी की 'कामायनी' की प्रतीकात्मकता ने उसे ऐसी अर्थगत समृद्धि प्रदान की जो एक साथ ही मानव–सभ्यता के भौतिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विकास की कथा कहती है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, ***''प्रसाद जी ने प्रबन्ध क्षेत्र में छायावाद की चित्रविधान और लाक्षणिक शैली***

की सफलता की आशा"[78] को ही प्रतिफलित किया है। इस युग में गीति–काव्यों का भी विकास हुआ जिनकी चाल अन्योक्ति–पद्धति पर आधारित होती है। प्रबन्ध काव्यों के विकास के क्षेत्र में यह युग उपयोगी था।

अतिशयता से हर शिल्प–सौंदर्य कृतित्रम नक्काशी बनकर ही रह जाता है। अतिशय लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और अलंकरण को स्वयं छायावादी कवि ही बोझ समझने लगे। 'युगान्त' तक आते–आते पंत जी ने समझ लिया कि 'चित्रों' का बहुत अधिक बोझ लादकर चलना वाणी के लिए उपयुक्त नहीं। यही कारण है कि वे छायावाद को अलंकृत संगीत कहकर 'प्रगतिवादी' की ओर बढ़ गए। प्रगतिवादी कवियों ने कल्पित अनुभवों और सूक्ष्म भाव–स्वप्नों को काव्य की प्रकृति के अनुकूल न मानकर सामयिक सामाजिक स्थिति और राजनीतिक समस्याओं व जन–जीवन की अनुभूतियों के अनुरूप काव्य–सृजन पर बल दिया। उन्होंने सामाजिक यथार्थ से कविता को जोड़ते हुए स्पष्ट कहा है– *"हे कला कला के लिए व्यंग्य जीवन का।"*[79] बहुजन समाज के प्रति प्रतिबद्धता का स्वर पहली बार कविता में उभरा और किसानों व मजदूरों के 'गंदे पैरों' की पवित्र धूल कविता में स्थान पाने लगी। इसी के अनुरूप कविता का शिल्प भी बदला। कल्पना की अतिशयता की जगह काव्य–भाषा को अनुभूति की गहराई से जोड़ने की मांग उठी। नरेन्द्र शर्मा ने 'अलंकार प्रिय वाणी' को 'बोझिल छंद' माना और गुरू, गंभीर शब्दों के प्रयोग के बदले आत्मानुभव को व्यक्त करने वाली वाणी को कविता के लिए उपयुक्त कहा। इस युग में 'भाषा की सजावट', ध्वनि, व्यंग्य–चमत्कार आदि का उग्र विरोध हुआ। नागार्जुन ने 'मांजों और मांजो' शीर्षक कविता में काव्य–वस्तु को गौण स्थान देकर शिल्प–चमत्कार को प्रश्रय देने वाले कवियों पर व्यंग्य करते हुए लिखा–

"वस्तु है भूसी रूप है चमत्कार,
ध्वनि और व्यंग्य पर मरता है संसार,
वाच्य या आशय पर कौन देता है ध्यान!
शब्द को दिया क्यों अर्थ का दान?
ध्वनि ही ध्वनि देते, मात्र लय–तान।"[80]

यह एक प्रकार से कविता में 'अभिधा' को अधिक स्थान देने का आग्रह था और कविता को 'बेलबूटे की नक्काशी'' माननेवालों पर व्यंग्य था। अज्ञेय को सभी प्रगतिवादी कवि ही शिल्प–विरोधी दिखने लगे। अज्ञेय ने लिखा है– *''बड़ा कवि 'वाक् सिद्ध' होता था, और भी बड़ा कवि रससिद्ध होता है। आज 'वाक शिल्पी' कहलाना अधिक गौरव की बात समझा जा सकता है–क्योंकि शिल्प आज विवाद का विषय है। यह चर्चा उत्तर छायावादी काल से अधिक बढ़ी जबकि प्रगति के संप्रदाय ने शिल्प, रूप, तंत्र आदि सबको गौण कहकर एक ओर ठेल दिया और 'शिल्पी' एक प्रकार की गाली समझा जाने लगा।''*[81] किन्तु प्रगतिवाद ने काव्य–वस्तु को कविता में प्रमुख स्थान देते हुए भी अभिव्यंजना–पद्धत्ति की पूर्ण उपेक्षा नहीं की। नागार्जुन ने कहा है– *''मैं मानता हूं कविता में कथन महत्वपूर्ण होता है पर कथन–पद्धत्ति भी कम महत्वपूर्ण नहीं।''*[82]

प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति का ग्राम्य रूप अधिक मुखर हुआ और कविता में 'हरियाली सलोनी झूमती सरसों', 'हरा ठिंगना चना' 'ललहल पालक' 'मटमह धनिया' भी दिखने लगा। यह सही है कि प्रगतिवादी विचारधारा बिंबात्मकता के अधिक उपयुक्त नहीं और अधिकाँश कविताएँ सपाट वक्तव्य बन गई है। किन्तु उनमें बिंबात्कता की झलक भी खूब दिख जाती हैं। यथा–

''एक बीते के बराबर,
यह हरा ठिंगना चना,
बांधे मुरैठा शीश पर,
छोटे गुलाबी फूल का,
सजकर खड़ा है।''[83]

इसी प्रकार नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' काव्य शिल्प की दृष्टि से अप्रतिम है जहाँ व्यापार–शोधन से जुड़ी बिंबात्मकता मन को स्पर्श करनेवाली है। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रगतिवादी कविता के लोक–जीवन से जुड़े रहने के कारण इसमें वस्तु–विंब अधिक मिलते हैं। जहाँ तक प्रतीकों का प्रश्न है, वहाँ क्रांति से जुड़े प्रतीक अधिक मिलते हैं। यदि 'जीर्ण–पत्र' पुरानी रूढ़ियों का प्रतीक बना तो 'ज्वालामुखी' था

'पलटों में लिपटा दिनकर क्रांति का'– *''ज्वालामुखी को है शान्ति कहाँ, जाने वह किस क्षण फूटा है।''*[84] कविता पर वामपंथी विचार से कविता में ''लाल–फौज'', ''हंसिया, 'हथौडे' जैसे सैद्धान्तिक प्रतीक भी आ गए। प्रगतिवादी कविता ने लोकगीतों की अनेक धुनों को पुनर्जीवित किया। यथा– *''माँझी न बजाओ वंशी मेरा मन डोलता।''*[85] वहाँ व्यंग्य का बाँकापन भी देखने लायक है जो नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रमुखता से मिलता है। यहाँ शिथिल छंदों के बावजूद एक अलग सौंदर्य मिलेगा जिसे डॉ. नामवर सिंह ने *''घासों और फूलों की वनस्थली के जंगलीपन का आकर्षण''*[86] कहा है। किन्तु काव्य भाषा में सीधी–सादी भाषा को स्थान देने का जोश और किसी खास वर्ग की विचारधारा का प्रतिनिधित्व, प्रगतिवाद के हित में नहीं गया। 'रश्मिबंध' की भूमिका में पंत ने प्रगतिवादी रचनाओं में 'जन–जीवन के प्रति एक निर्जीव संवेदना' को देखते हुए लिखा है– *''छंदों की दृष्टि से संभवतः उन्होंने अपनी लयहीन भावनाओं तथा कुछ उद्‌गारों के लिए मुक्त छंद के रूप में पंक्तिबद्ध गद्य को अपनाना उचित समझा। जिसका प्रवाह उसके बर्हिमुख दृष्टिकोण के अनुरूप असंबद्ध, बिखरा तथा उबड़–खाबड़ रहा है। अपने निम्न स्तर पर प्रगतिवाद की सुरूचि–संस्कारिता का स्थान विकृत तथा कुत्सित ने ले लिया। छायावादी भावना का उदार वैचित्र्य सिमटकर उसमें संकीर्ण मतवाद में बदल गया।''*[87]

छायावादोत्तर काल की दूसरी धारा प्रखर गीतकाव्य की धारा है जिसके अंतर्गत हरिवंश राय 'बच्चन', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा आदि आते हैं। छायावादी कविता के निकट होते हुए भी वह अपनी 'वैयक्तिकता' के घोर आग्रह के कारण छायावादी काव्य से अलग ठहरता है। इन कवियों की क्रान्ति, लालसा और तृष्णा की क्रान्ति थी जो मांसलता से जुड़ी थी। बच्चन के काव्य में अधिकांशतः मदिरालय से जुड़े प्रतीक मिलेंगे। यह एक अलग प्रकार की धारा थी जो छायावाद के अवसान के समय से प्रगतिवाद के समानान्तर चल रही थी। काव्य–शिल्प की दृष्टि से ये महज अपनी गीतात्मकता और मदिरालय से संबंधित बिंबों के कारण ही याद रखी जा सकती है। काव्य–शिल्प के प्रति उत्कट ललक प्रयोगवादी काव्य में देखने को मिलती है।

प्रयोगवाद का आरम्भ अज्ञेय के संपादकत्व में प्रकाशित 'तार सप्तक' (1943 ई0) से होता है। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' के वक्तव्य में लिखा है–*''जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी संपूर्णता में पहुंचाया जाए–यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।''*[88] प्रयोगशीलता को ललकारने वाली यह समस्या नई काव्यभाषा की खोज से ही जुड़ी हुई थी। ''तार सप्तक'' के कवि भारतभूषण अग्रवाल 'कितनी संकुचित जीर्ण वृद्धा हो गई आज कविता की भाषा' कह कर ''कवि! तोड़ो अपना शब्द–जाल जो आज खोखला शून्य हुआ'' की मांग करने लगे। तारसप्तक के एक और कवि गिरिजाकुमार माथुर ने 'वक्तव्य' में लिखा है–*''कविता में विषय से अधिक टेकनिक पर ध्यान दिया है। विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनिक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।''*[89] जाहिर है कि यह युग काव्य शिल्प के मामले में सर्वाधिक सचेत रहने वाला युग था। यही कारण है कि प्रयोगवादी कवि नवीन उपमानों एवं प्रतीकों की मांग करने लगे। अज्ञेय को 'पुराने उपमान मैले' लगने लगे और 'प्रतीकों से देवताओं का कूच' दिखाई देने लगा। यही कारण है कि सामयिक जीवन की नवीनता और नवीन युग–बोध की दृष्टि से कविता में 'कैमरे के लेंस–सी हैं आंखे बुझी हुई' या 'टाइपराटर की 'की' की तरह' जैसी उपमाएं दिखने लगीं। अज्ञेय के काव्य में 'सागर' समष्टि का, दीप एवं 'द्वीव' वैयक्तिकता का, 'मछली' जीजिविषा का प्रतीक बन गये। बिंबों की दृष्टि से कई इरोटिक बिंब भी झलकने लगे। अज्ञेय की अपेक्षा शमशेर के यौन–प्रतीक तो और भी उलझे हुए हैं यथा–*'सागर में अधडूबा गोल सूरज'*[90] अज्ञेय और शमशेर दोनों के काव्य में मौन का भी विशेष महत्व है। यह 'मौन' कथ्य और अकथ्य दोनों के बीच अनकहा रहकर भी बहुत कुछ कह जाने की स्थिति है। प्रयोगवादी कवियों को भाषा एंव शिल्प के अतिशय आग्रह के साथ–साथ साधारणीकरण की समस्या भी एक चुनौती–सी लगी। कारण यह है कि कविता की बाहरी रूपसज्जा और मुद्रण की सजावट पर ही ध्यान दिया जाने लगा। अज्ञेय ने 'तारसप्तक' में ही लिखा है–*''भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम–संकेतों से, अंकों और सीधी–तिरछी लकीरों से, छोटे बड़े टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे*

वाक्य से–सभी प्रकार के अंतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।'[91]

संप्रेषण की यह समस्या 'नई कविता' के दौर में समाप्त हो गई। यद्यपि सन् 1954 से डॉ. जगदीश गुप्त के संपादन से 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से यह शब्द काव्य–विशेष के लिए रूढ़ हो गया। हालाँकि सन् 1952 में अज्ञेय ने आकाशवाणी पटना से 'नई कविता' शब्द की उद्घोषणा की थी। इससे पहले 'दूसरा सप्तक' (1951) में शमशेर बहादुर सिंह ने अपनी कविता को 'नई कविता' कहते हुए उसकी छह प्रमुख प्रवृत्तियों की ओर ध्यान दिलाया था जिसमें 'सच्चाई का अपना खास रूप', 'ललित–कलाओं का एक–दूसरे में समाया होना', 'भाषा और कला के रूपों का कोई पार न होना' प्रमुख है। 'प्रयोगवाद' एवं 'नई कविता' के कवियों ने प्रगतिशीलता, लोक व समाज, लोक–धुनों, लोक–भाषा की उपेक्षा भी नहीं की। 'वादों का निषेध', अनुभूति की प्रामाणिकता पर बल, लघु–मानक की स्थापना पर बल, लोक संवेदना एवं भाषा की अभिव्यक्ति के साथ–साथ शिल्प में नवीनता आदि 'नई कविता' की अपनी खास विशेषताएँ थीं। डा. बच्चन सिंह के शब्दों में कहें, तो *''फंतासी, अन्यापदेश के अतिरिक्त नए अर्थ–गर्भ प्रतीकों–बिंबों, विडंबनाओं, विसंगतियों आदि पर कवियों का विशेष ध्यान गया है।'*[92] फैंटेसी शिल्प, संवाद शैली, नाटकीयता, एकालाप, तर्क एवं प्रश्न शैली आदि सभी तत्व 'नई कविता' में मिलते हैं। कविता में नए शब्द भी आए यथा ट्रक के लिए 'अंगार नैन गाड़ियाँ', 'हवाई जहाज' के लिए 'यंत्र गरूड' आदि का प्रयोग हुआ। उसी प्रकार कविता में उपसर्गों द्वारा 'अनछिदी, 'अनउगे' 'अनहुई' जैसे नए शब्द भी दिखते हैं। संस्कृत के श्लोकों के साथ–साथ 'इतिहास कितना बौना है' जैसे नए मुहावरे भी देखने को मिलते हैं। 'बिंबधर्मिकता' तो जैसे 'नई कविता' की प्रमुख उद्घोषणा बन गई। डॉ. जगदीश गुप्त द्वारा 'विंब–विधान' को काव्य के सौंदर्य–पक्ष का अभिन्न संवाहक बतलाने के बाद डॉ. केदारनाथ सिंह ने 'बिंब' को कवि की श्रेष्ठता से जोड़ते हुए लिखा– *''एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा आविष्कृत बिंबों के आधार पर ही की जा सकती है। उसकी विशिष्टता और उसकी*

आधुनिकता उसके बिंबों में ही व्यक्त होती है।'[93] अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ सिंह आदि कवियों में संश्लिष्ट बिंब खूब देखने को मिलते हैं। इसके अलावा आधुनिक बोध से संपृक्त नई वैज्ञानिक प्रगति एवं यांत्रिकता को बिंबो में बांधने के सजग प्रयत्न भी इस युग में खूब मिलते हैं। यथा– रघुबीर सहाय की निम्नलिखित पंक्तियों में उपलक्षित बिंब नयी यांत्रिक सभ्यता की देन है–

''सिनेमा की रीलों–सा कस के लिपटा है सभी कुछ,
मेरे अन्दर,
कमानी खुलने को भरती है हुमास।''[94]

'नई कविता' के साथ–साथ हिंदी में 'प्रपद्यवाद', 'अकविता' जैसे कई और काव्य–आन्दोलन चले जो या तो महज 'टैक्नीक' पर बल देते थे या 'काव्य के प्रकृत स्वरूप के और काव्यात्मक मूल्यों के नकार पर। यही कारण है कि ऐसे आन्दोलन हिन्दी काव्य के इतिहास के पन्नों पर खो से गये। साठोत्तरी कविता में 'अपरम्परावादी कविता' 'सनातन सूर्योदयी कविता', 'अन्यथावादी कविता,' 'विद्रोही कविता 'कबीरपंथी कविता, 'अभिनव कविता, 'निर्दिशायामी कविता, 'एब्सर्ड कविता', 'अगीत' 'बीट कविता', 'कैप्सूल कविता' जैसे कई काव्य–विशेषण या मतवाद सामने आए। इस युग में कविता में 'सपाटबयानी' को भी बहुत स्थान मिला। काव्य में सपाटबयानी के आग्रह के संदर्भ में अशोक बाजपेयी ने इसे 'नई कविता' की बिंबात्मकता से मुक्ति पाने की आकांक्षा से जोड़ते हुए लिखा है–*''इस दशक के आरम्भ में सपाटबयानी को काव्य–मूल्य के रूप में जो अतिरिक्त आग्रह देने की बात की, उसका एक खास संदर्भ है। .....वह भाषा की अवमूल्यन करने की सिफारिश नहीं थी बल्कि भाषा, उस बिम्ब–बहुलता में अवमूल्यित हो रही थी, उसको उबारकर फिर से रचनात्मक प्रतिष्ठा देने की कोशिश हुई।'*[95] धूमिल की निम्नलिखित काव्य–पंक्तियों में बिंब नहीं सपाटबयानी है––

''एक संपूर्ण स्त्री होने के पहले ही
गर्भाधान की क्रिया से गुजरते हुए

उसने जाना कि प्यार
धनी आबादी वाली बस्तियों में
मकान की तलाश है।"[96]

विजय देव नारायण साही, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेई जैसे कवियों ने वस्तु और शिल्प दोनों क्षेत्र में वैयक्तिकता का अत्यंत तीखा उपयोग किया है। चमत्कार के लिए साठोत्तरी कवियों ने पश्चिम के 'शेप पोएट्री,' 'कॉक्रीट पोयट्री,' 'साउण्ड पोएट्री,' 'कोलाज पोएट्री' आदि चमत्कारमूलक काव्यान्दोलनों से भी प्रेरणा ग्रहण की।

समकालीन कवियों में लीलाधर जगूड़ी अपने आरंभिक कविताओं में 'भाषा के खिलिंदड़ापन' के बाद सीधी–सादी भाषा में कविता की व्यंजकता समृद्ध कर रहे हैं। चन्द्रकान्त देवताले के काव्य में 'जाघों में छटपटाती नावें, 'पीले–बुखार के रक्तहीन उजाले में' जैसे कई नवीन मुहावरे मिलेंगे, वहीं सामाजिक सरोकारों से संबंद्ध कविता में सपाटबयानी है। विनोद कुमार शुक्ल पर 'जादुई यथार्थवाद' ज्यादा है और वह कविता के अद्यावधि प्रतिमानों के आगे प्रश्नचिन्ह लगा देता है। कुमार विकल की कविता इसके विपरीत 'अभिधा' का सुंदर प्रयोग है। अरूण कमल की सरल–सी दिखाई पड़नेवाली कविताओं में थोड़ा बहुत बाँकपन भी है। मंगलेश डबराल के 'पहाड़ पर लालटेन' जैसे काव्य में अमृता शेरगिल के चित्रों की याद ताजा हो जाती हैं, किन्तु वहाँ भाषा में मुहावरा गढ़ने का चमत्कार नहीं है। राजेश जोशी कविता को कहानी में और कहानी को एक 'फेबुल' में बदल देते हैं। लोक–कथा शैली का उपयोग करनेवाले वे सबसे प्रभावशाली कवि हैं। उदय–प्रकाश व असद जैदी की कविताओं में 'स्मृति–बिंब' ज्यादा है। अशोक बाजपेई तो जैसे शब्दों के कवि हैं। वे 'कविता का गल्प' बनाते हैं, जहां–***"शब्द छूता है शब्द का / शब्द को शब्द चूमता है / दो शब्दों के बीच / सिर धरता है।"***[97] अन्य कवियों में ऋतुराज, विष्णु खरे, गिरिधर राठी, प्रयाग शुक्ल, भगवत रावत, ज्ञानेन्द्रपति, इब्बार रब्बी, विष्णु नागर, संजय चतुर्वेदी, बद्रीनारायण आदि काव्य–वस्तु व शिल्प की दृष्टि से भी अप्रतिम हैं। कहने का तात्पर्य है कि वर्तमान समय में कवि विषय–वस्तु व शिल्प दोनों दृष्टियों से नवीनता के आग्रही हैं, किंतु आधुनिकता के

अतिशय दबाव के चलते कहीं–कहीं कविता में चीजों का ब्यौरा भी देखने को मिल जाता है। जिसके संदर्भ में कभी प्रयागनारायण त्रिपाठी ने लिखा था– *''नई हिन्दी कविता में मुझे एक ओर भ्रान्ति दिखाई दे रही है। नए और यथार्थ चित्रण के नाम पर इस प्रकार की पंक्तियां लिखी जा रही हैं, जैसे–*

अस्पताल, क्लब, व्यायामलय,
साड़ी, ब्लाउज, फ्रॉक, कमीजें,
कुश्ती, दंगल, मैच तमाशे

ऐसी परिगणना न तो हमारे सम्मुख कोई प्रभावशाली बिंब ही उपस्थित करती है और न आज के जीवन–यथार्थ के प्रति कोई रागात्मक उत्तेजना ही उत्पन्न करती है।''[98] जाहिर है कि कविताओं का शिल्प समय–समय पर बदलती परिस्थितियों, नवीन भावबोध, सभ्यता के विकास और कवि की विचारधारा से भी संचालित होता है। कविता में व्यक्तिगत व सामाजिक संघर्ष शिल्प में कैसे रूपांतरित होकर सामने आते हैं, इसका आकलन निराला के वैचारिक आयाम को देखते हुए किया जा सकता है।

(4) निराला की काव्य संवेदना के विभिन्न आयाम एवं शिल्प

जिस युग में निराला ने काव्य–क्षेत्र में पदार्पण किया था वह युग एक ओर सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलनों का युग था दूसरी ओर स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी क्रान्तिकारी चेतना भी हिलोरें ले रही थी। निराला का काव्य युगीन भावधारा का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही जीवन और साहित्य दोनों क्षेत्रों में क्रान्तिकारी चेतना का सृजन करता है। अपनी 'बहुस्पर्शिनी प्रतिभा' एवं विद्रोही व्यक्तित्व' का सहज विस्तार उन्होंने काव्य की नई भावभूमियों की स्थापना के रूप में किया है। वास्तव में निराला भक्तिकाल के बाद भारतीय साहित्य के सबसे बड़े राष्ट्रीय और संस्कृतिक उन्मेष के कवि हैं जिनमें साहित्य अपनी तमाम शक्ति, उपादेयता सीमाओं व सम्भावना के साथ उभर कर सामने आता है।

छायावाद अपनी तमाम वैयक्तिकता के बावजूद राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन व मुक्ति की आकांक्षा से जुड़ा काव्य था। डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है– *''वस्तुतः हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के दो मोर्चे थे। एक मोर्चा प्राचीन सामंती मर्यादाओं के विरूद्ध था और दूसरा अंग्रेजी साम्राज्वाद के विरूद्ध। छायावाद का व्यक्ति स्वातंत्र्य मर्यादाओं के विरूद्ध बड़ा कदम था।''*[99] अकारण नहीं कि निराला जहाँ पंचवटी प्रसंग में 'छोटे–से घर की लघु सीमा में बंधे हैं क्षुद्र भाव' की बात करते हैं तो दूसरी ओर 'जागो फिर एक बार' की भी अलख जगाते हैं। मुक्ति की यह आकांक्षा और विद्रोह का यह स्वर उनकी कविता के रूप–विन्यास पर भी प्रभाव डालता है। 'परिमल' की भूमिका में उन्होंने लिखा है–*''मनुष्यों की मुक्ति तरह कविता की भी मुक्ति होती। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना।''*[100] इस प्रकार कविता की बंधी–बंधाई परम्परा से मुक्ति और काव्य–अभिजात्य के बंधन तोड़ना निराला के लिए मुक्ति की आंकांक्षा ही थी। काव्य–रूढ़ियों के प्रति निराला में विद्रोह कुछ इस कदर भरा था कि वे अपनी कविता के लिए नई भाषा, नए मिथक, नई लय, नए छंद आदि की मांग करने लगे। कवि वाग्देवी सरस्वती से यह वरदान मांगता है–

''नवगति, नवलय, ताल–छंद नव,
नवलकंठ, नव जलद–मन्द्रख,
नव नभ के नव विहग–वृन्द को,
नव पर, नव स्वर दे!''[101]

निराला की सामाजिक एंव सांस्कृतिक चेतना के गठन के मुख्य तत्व हैं–भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, बंगाल का सांस्कृतिक जागरण, रवीन्द्रनाथ का मनावतावादी दृष्टिकोण, रामकृष्ण का वेदान्त और उनका स्वंय का जीवन संघर्ष। उनका काव्य–विकास उनके निजी जीवन के संपूर्ण आरोह–अवरोह की अभिव्यक्ति है। वे एक–साथ प्राचीन एवं आधुनिक परम्पराओं के निर्माता एवं विध्सवंकर्त्ता है। यही कारण है कि उनका काव्य किसी 'वाद' में बंधने का विशेष आग्रही नहीं है। निराला के छायावादी काव्य में भी प्रगतिवाद की सामाजिक–चेतना तथा प्रयोगवाद की शिल्प संबंधी अन्वेषणप्रियता की पूर्व अवस्थिति सहज मिल जाती है। आरम्भ मे इनके काव्य में समकालीन रचनाकारों के समान भावाकुलता व कल्पनाप्रियता है तो आगे चलकर सामजिक जीवन के वैषम्य व विसंगतियाँ उनके काव्य में स्थान पाने लगती है। वे प्रगतिवादी दौर में प्रचारित मार्क्सवादी दर्शन का पिष्टपेषण ही नहीं करते, वरन् निजी अनुभवों के आधार पर यथार्थ की वस्तुगत एवं व्यंग्यात्मक व्यंजना भी करते हैं। यहाँ आकर कवि की छायावादी भाषा का अभिजात्य तथा कला–मुक्ति के आह्वान का ओजस्वी रूप समाप्त होकर जन सामान्य के धरातल पर उतर आता है। इस प्रकार बदलते हुए भावबोध के अनुरूप निराला के छायावादी एवं छायावादोत्तर काव्य में शिल्प–संबंधी कई परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं।

निराला की छायावादी रचनाएँ भावसँकुल तीव्र अनुभूमियों से ग्रंथित हैं, जहाँ गीतात्मकता अधिक है। निराला के कल्पनाप्रधान अतींद्रिय श्रृंगारिक, दार्शनिक, मानवीय प्रकृति, स्वंच्छंद, प्रणयादि विषयों से संबंधित गीतों का प्रणयन छायावाद के काव्य में प्रमुख रहा। इस युग में निराला, उत्कृष्ट गीतिकाव्य के रचयिता के रूप में दिखते हैं। कविता व संगीत 'गीतिका' में तो एकदम एक जैसे हो उठते हैं। पंत ने भाषा को ध्वनिमयस्वरूप कहा है। निराला ने 'गीतिका' में लिखा है–*''वर्ण*

चमत्मकार/एक–एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार।''[102] शब्द–संगीत पर आधारित ध्वन्यात्मक योजना के सर्वाधिक उदाहरण निराला के काव्य में ही मिलते हैं। कोमल ध्वनि का आवृत्तिमय सौन्दर्य दृष्टव्य है–

''धंसता दल दल,
हंसता है नद खल् खल,
बहता, कहता, कुलकुल कलकल कलकल।''[103]

निराला के गीतों में प्रेम–संबंधी गीत, आत्म–साक्षात्कार के गीत, मृत्यु–गीत, ऋतु–गीत, प्रपत्ति भाव के गीत, सभी मिलेंगे। प्रगीत की पाश्चात्य विधा के अनुरूप उसके आकारात्मक स्वरूपों को भी निराला ने अपनाया है जिसमें संबोधि प्रगीत ('यमुना के प्रति', प्रपात के प्रति, 'खंडहर के प्रति', 'सम्राट एडवर्ड अष्टम् के प्रति' आदि), 'पत्र प्रगीत' ('महाराज शिवजी का पत्र'), 'नाट्य–प्रगीत (पंचवटी–प्रसंग) और शोक प्रगीत (सरोज स्मृति) सभी मिलेंगे। छायावाद के सभी प्रगीतों में कल्पना एवं भावों की प्रसरणशीलता तथा विराट तत्व के दर्शन होते हैं, जो संकेतात्मकता, संश्लिष्टता एवं चित्रोपमता के गुणों से परिपूर्ण है। किन्तु प्रयोगधार्मिकता यहाँ भी दिखाई देती है जहाँ मुक्त छंद, मुक्त गीतों का सृजन होता है और प्रबंधकाव्य में नवीन युगबोध के दर्शन होते हैं।)

छायावादोत्तर काव्य में निराला के गीत सामान्य जनजीवन से सबंद्ध होकर लोकान्मुख बन जाते हैं जिनमें लोकजीवन में प्रयुक्त लोकधुनों का समावेश भी मिलता है। इसमें भारतीय शास्त्रीय संगीत के तत्व की जगह गेयत्व का ग्रामीण रूप, लोकगीतों की धुनों की अल्हड़–सी चाल एवं मस्ती है। दूसरी ओर तीव्र यर्थाथबोध से संपृक्त होकर कवि हृदयगत क्रोध की अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य प्रगीत को उपयुक्त माध्यम मान लेता है। यहाँ सामाजिक जीवन की करूणानुभूतियाँ तीखे कटाक्षों के रूप में व्यंग्य–प्रगीतों में उभरती हैं–

''आरे गंगा के किनारे/झाऊ के वन से पगडंडी पकड़े हुए
रेतों की खेती को छोड़कर; फूँस की कुटी/बाबा बैठे झोरे बहारे।
पंडों के सुघर सुघर घाट हैं। तिनके की टट्टी के ठाट हैं,

यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं/ कहते हैं, कितने तारे।''[104]

यहाँ आकर तत्सम शब्दों के प्रति विशेष आग्रह समाप्त हो जाता है और लोक–सामान्य की प्रचलित शब्दावली कविता में स्थान पाने लगती है। 'कुकुरमुत्ता' में तो निराला बोलचाल के सामान्य ग्रामीण शब्दों को अपनाते हुए उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, संस्कृत के शब्दों से मिली एक नवरूप भाषा का श्रीगणेश कर डलते हैं। यहाँ निराला साहित्य में गजल–विधा का प्रथम प्रयोग भी करते हैं। महान आत्माओं के प्रति श्रद्धासुमन भी मिलेगें तो सामान्य जन के प्रति प्रतिबद्धता की गहरी छाप भी मिलेगी।

नवोन्मेषाशालिनी प्रज्ञा–संपन्न निराला आधुनिक हिन्दी साहित्य के सबसे बड़े प्रयोगशील कवि हैं। भारतेन्दु युग से लेकर समकालीन कविता तक की अधिकतर प्रवृत्तियों को उनके काव्य में देखा जा सकता हैं डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है–*''निराला का सम्पूर्ण काव्य–व्यक्तित्व 'विरूद्धों का सामंजस्य' की उस अवधारणा से विकसित हुआ है जिसे कवि के समकालीन और प्रसद्धि समीक्षक रामचंन्द्र शुक्ल ने आनन्द की साधनावस्था की उच्चतम रचना–भूमि का कारक तत्व स्वीकार किया है।''*[105] ध्यातव्य है कि एक ओर निराला ने 'जुही की कली' के रूप में मुक्त छंद का प्रवर्तन करते है तो दूसरी ओर 'तुलसीदास' में सबसे कठिन छंद तथा तुक–विधान का पालन करते हैं। जहाँ एक ओर 'राम की शक्ति पूजा' तथा अनेक गीतों में तत्सम शब्दावली का आग्रह है वहीं दूसरी ओर 'अबे सुन वे, गुलाब' में देसी भंगिमा भी है। एक ओर उनके गीतों में उद्दाम प्रणय–चेष्टाएं हैं तो दूसरी ओर 'जागरण वाणी' का स्वर भी प्रमुखता से सुनाई पड़ता है। निराला के दीर्घ काव्य–विकास में छायावाद से लेकर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के बीज मिल जाते हैं जिसका प्रभाव उनके काव्य–शिल्प पर भी मिलता है। कवि शमशेर ने इस महाकवि को श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हुए लिखा था–

''हे महाकवि! सहजतम लघु एक जीवन में,
अखिल का परिणय लिए–

प्राणमय संचार करते शक्ति औ' छवि के मिलन का हास मंगलमय,
मधुर आठों याम,
विसुध खुलते,
कंठस्वर में तुम्हारे कवि।''[106]

संदर्भ :–

1. केदारनाथ सिंह : 'केदारनाथ सिंह : प्रतिनिधि कविताएँ', (उमस कविता) पृ0स0–121
2. डॉ. परमानंद श्रीवास्तव : 'समकालीन हिन्दी आलोचना' (संपादित), अच्छी और महान कविता' आलेख), पृ0स0–289
3. कुमार अंबुजः ('एक दिन' कविता), इंडिया टुडे, साहित्य वार्षिकांक–1953, पृ0स0–209
4. सुधीश पचौरी : ''आलोचना से आगे'', पृ0स0 23.
5. राजेश जोशी : ('अपने समय का मेटाफर कविता' आलेख) : आलोचना, अप्रैल–जून, 2000, पृष्ठ संख्या–248.
6. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य सहचर', पृष्ठ सं0–55
7. कुतंक : 'वक्रोक्तिजीवितम' (व्याख्याकार – राधेश्याम मिश्र), पृ0 सं0–16.
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'चिंतामणि' (भाग–2), (काव्य में अभिव्यंजनवाद, निबंध), पृष्ठ संख्या–138.
9. डॉ. नगेन्द्र : रीतिकाल की भूमिका : पृ0 सं0–93
10. कुंवर नारायण : 'समकालीन हिन्दी आलोचना' (संपा0 परमानंद श्रीवास्तव), (सामाजिक यथार्थ और कविता का संघर्ष : कुछ नोट्स), पृ0स0 182.
11. डॉ. रामबिलास शर्मा : वही, (कविता का स्थापत्य' अलेख), पृ0 सं0–66, 67
12. कुतंक : 'वक्रोक्तिजीवितम' (व्याख्याकार – राधेश्याम मिश्र), पृ0 सं0–48.
13. रेनवेलेक एवं आस्टिन वारेन, साहित्य सिद्धान्त, (अनु0)–बी.एस0 पालीवाल, पृ0 सं0–38.
14. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'चिंतामणि', भाग–3; (साहित्य निबंध), पृ0 60–27
15. हेमंत कुकरेती : हंस : नवंम्बर, 1990 पृ0 सं0–47
16. डॉ. सीताकान्त महापात्र : 'शब्द : समय और संस्कृति' : पृ0 सं0–84
17. रघुबीर सहाय : 'रघुवीर सहाय : प्रतिनिधि कविताएं' ('नया शब्द' कविता) पृ0संख्या–9
18. धूमिल : संसद से सड़क तक, पृ0स0 21
19. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'चिंतामणि', भाग–3; ('कविता क्या है' निबंध) पृं0 संख्या–99
20. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः 'चितामणि', भाग–2; (काव्य में अभिव्यंजनवाद' निबंध); पृ0 सं0–163.
21. महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली (संपा0), भारत यायावर; भाग–2 ('कवि और कविता' निबंध) : पृ0 सं0–76.
22. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; चिन्तामणि, भाग–1, (कविता क्या है, निबंध) पृ0 सं0–100
23. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'भाषा और संवेदना'; पृ0सं0–21–22

24. उद्धृत, आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य–सिद्धान्त : सुरेशचन्द्र गुप्त; पृ0 संख्या–400
25. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'रसमीमांसा' ('अप्रस्तुत रूप विधान' निबन्ध) पृ0 सं0–263
26. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'चिन्तामणि' (भाग–2), ('काव्य में अभिव्यंजना', निबंध) पृ0 सं0–155
27. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'चिन्तामणि' (भाग–3), ('कविता क्या है, निबंध'), पृ0 सं0–101
28. आई.ए.रिचर्ड्स : प्रिंसीपुल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म; पृ0 सं0–160
29. सुमित्रानन्दन पंत : 'पल्लव' (भूमिका); पृ0 सं0–41.
30. वही; पृ0 सं0–32
31. उद्धृत–'कविता के नए प्रतिमान'–डॉ. नामवर सिंह; पृ0 सं0–107
32. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य सहचर– पृं0 सं0–54–55
33. उद्धृत : 'संरचनावाद : उत्तर संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र; गोपीचन्द नारंग; पृ0 सं0–307
34. जाफ़र; वही, पृ0 सं0–307
35. निर्मल वर्मा : 'समकालीन हिन्दी आलोचना'; पृ0 सं0–201.
36. राजशेखर : 'काव्य–मीमांसा,' (अनु0)–केदारनाथ शर्मा सारस्वत, दशम अध्याय, पृ0स0–123
37. एडमंड विल्सन : सबसेल्स कॉस्ल'; पृ0स0–2
38. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : (चितामणि, भाग–3), ('साहित्य निबन्ध), पृ0–29
39. रामविलास शर्मा : 'आस्था और सौंदर्य; पृ0सं0–16
40. नरेन्द्र शर्मा : 'लाल निशान' पृ0 सं0–12
41. नंद किशोर नवल : कसौटी–3, अक्तूबर, दिसम्बर, 1999, (साहित्य का केन्द्र संवदेना या विचारधारा' आलेख), पृ0 संख्या–9
42. मुद्राराक्षस : तद्भव, अप्रैल, 2000 : (साहित्य में विचारधारा विरोध की पड़ताल); पृ0 सं0–42
43. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'चिन्तामणि' (भाग–2), (काव्य में रहस्यवाद 'निबंध), पृ0 सं0–42
44. तुलसीदास : रामचरितमानस : (किष्किन्धा काण्ड 41/81)
45. वही 6/14
46. सुमित्रानंदन पंत, – 'ग्राम्या' पृ0 संख्या–130
47. शिवमंगल सिंह 'सुमन' :'प्रलय–सृजन' ; पृ0 सं0–60
48. केदारनाथ अग्रवाल : 'फूल नहीं रंग बोलते हैं'; पृ0 सं0–92
49. 'मुक्तिबोध ''प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ–23
50. शमशेर बहुादर सिंह :'शमशेर बहादुर सिंह प्रतिनिधि रचनाएँ' पृष्ठ–16

51. नामवर सिंह : ज्ञानोदय (1 अगस्त 1963) ('हाट–बाजार की कविता' लेख) पृष्ठ संख्या–106
52. मुक्तिबोध : 'चांद का मुंह टेड़ा है' पृ0सं0–25
53. केदारनाथ सिंहः 'मेरे समय के शब्द' पृ0 सं0–20
54. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशोधन सं0), पृ0सं0–327
55. केदारनाथ सिंह : 'मेरे समय के शब्द'; पृ0सं0–20
56. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशो0 सं0) पृ0 सं0–319
57. प्रेमधन : सर्वस्व भाग–1 (संपा0) प्रभाकेशव उपाध्याय एवं दिनेश नारायण उपाध्याय; पृ0 सं0–419
58. भारतेन्दु : 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' भाग–2 : पृ0 सं0–405
59. उद्धृत –'द्विवदी युगीन हिन्दी काव्यभाषा : एक दृष्टि' ; (लेखक), डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय : पृ0 सं0–68
60. महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'रचनावली (भाग–2), (संपा0)–भारत यायावर; ('कवि और कविता' निबंध); पृ0सं0–283
61. महावीर प्रसाद द्विवेद्वी : सरस्वती'; फरवरी–मार्च, 1903 ('जन्मभूमि भारतभूमि' कविता); पृ0 सं0–28
62. मैथिलीशरण गुप्त : 'सरस्वती' मार्च–1911; पृ0 सं0–11
63. उद्धृत –आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब –विधान' (लेखक–केदारनाथ सिंह), पृ0 सं0–127
64. वही; पृ0 सं0–220
65. शंकर सर्वस्व : (संपा0 हरिशंकर सर्वस्व); पृ0 सं0–298
66. उद्धृत – हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सशो0 सं0) पृं0सं0–328
67. उद्धृत– 'द्विवेदीयुगीन हिन्दी काव्यभाषाः एक दृष्टि)' (लेखक)–डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय, पृष्ठ–75
68. पं0 अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध : माधुरी, अगस्त 1923, पृं0 सं0–73
69. उद्धृत –आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : एक दृष्टि; (संपा0–रामकुमार वर्मा;) पृं0सं0–230
70. सुमित्रानन्दन पंत : गद्यपथ; पृ0 सं0–42
71. महादेवी वर्मा : (देव पुरस्कार गंथावली) आधुनिक कवि; पृ0 सं0–9
72. नामवर सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ; पृ0 सं0–34
73. निराला : –अनामिका' (अपराजिता' कविता) , पृ0 सं0–33
74. निराला : गीतिका : पृ0 संख्या–8
75. आचार्य शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशो0 सं0), पृ0 सं0–363
76. जयशंकर प्रसाद : 'कामायनी' पृ0 सं0–23
77. महादेवी वर्मा; 'यामा' पृ0सं0–23
78. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशो0 सं0) पृ0 सं0–363

79. उद्धृत : आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य –सिद्धान्त , लेखक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, पृ0सं–475
80. नागार्जुन : हंस, नवंबर–दिसंबर, 1956; पृ0 सं0–70
81. अज्ञेय : 'समकालीान हिन्दी आलोचना' (संपा0) परमानन्द श्रीवास्तव; ('कविता का संप्रेषण' निबंध); पृ0 सं0–52
82. नागार्जुन : आजकल, जून, 1996 पृष्ठ संख्या–21
83. उद्धृत–'आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ' (ले0) नामवर सिंह; पृ0 सं0–88
84. रांघेव राघव : 'पिघलते पत्थर' (तूफान गरजता है' कविता) पृं0 सं0–20
85. केदारनाथ अग्रवाल : उद्धृत –'आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, (ले0), नामवर सिंह : पृ0 सं0–97
86. नामवर सिंह : वहीं, पृ0 सं0–96
87. सुमित्रानन्दन पंत :रश्मिबंध' (भूमिका), पृ0 सं0–22
88. अज्ञेय : 'तारसप्तक' (वक्तव्य); पृ0 सं0–222
89. गिरिजाकुमार माथुर; वही; पृ0 सं0–144
90. शमशेर बहादुर सिंहः प्रतिनिधि कविताएँ, पृ0 सं0–33
91. अज्ञेय : 'तारसप्तक' (वक्तव्य), पृ0 सं0–222
92. बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास; पृ0 सं0–424
93. केदारनाथ सिंहः 'तीसरा सप्तक' (संपा0–अज्ञेय); 'वक्तव्य', पृ0 सं0–123
94. रघुवीर सहाय : दूसरा सप्तक; (संपा0), अज्ञेय–पृ0 सं0–165
95. अशोक वाजपेईः 'कुछ पूर्वग्रह; ('भाषा का अवमूल्यन' – आलेख), पृ0 सं0–201
96. धूमिल : 'संसद से सड़क तक' पृ0सं0–9
97. अशोक वाजपेयी की चुनी हुई कविताएँ; (संपा0), मदन जोशी; ('शब्द' कविता) पृ0 सं0–29
98. प्रयागनारायण त्रिपाठी : 'तीसरा सप्तक' (संपा0–अज्ञेय), वक्तव्य, पृष्ठ संख्या–22
99. नामवर सिंह : 'आधुनिक हिन्दी सहित्य की प्रवृत्तियां : पृ0 सं0–39
100. निराला : परिमल (भूमिका), पृष्ठ–2
101. निराला : 'राग–विराग' (संपा0–रामविलास शर्मा), (वीणावादिनी वर दे 'कविता) पृष्ठ संख्या–25
102. निराला –'गीतिका'; पृष्ठ–120
103. निराला : 'परिमल पं0 सं0–134
104. निरलाः बेला, पृष्ठ संख्या–60
105. रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'प्रसाद–निराला–अज्ञेय' पृष्ठसंख्या–50
106. शमशेर बहादुर सिंह : प्रतिनिधि कविताएँ : (महाकवि निराला 'कविता'), पृ0स0–21

अध्याय–2

निराला का युग और प्रयोगशीलता के प्रेरक–तत्व

(1) ''गहन है यह अंधकार'' : नवजागरण और निराला की मुक्ति–कामना

(2) ''गए रूप पहचान'' : राष्ट्रभाषा हिन्दी की अस्मिता का प्रश्न और सृजनात्मकत–भाषा की खोज

(3) ''जला दे जीर्ण–शीर्ण प्राचीन'' : साहित्यिक विरासत और निराला की नव्याकांक्षा – परंपरा और प्रयोग

अध्याय–2

निराला का युग और प्रयोगशीलता के प्रेरक–तत्व

"घर पर भी, पग–पग पर चौराहे मिलते हैं
बांहें फैलाये रोज़ मिलती हैं सौ राहें
शाखा–प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं
नव–नवीन रूप दृश्यवाले सौ–सौ विषय
रोज़–रोज़ मिलते हैं.....।"[1]

मुक्तिबोध की उपर्युक्त काव्य–पंक्तियाँ यह दर्शाती हैं कि प्रत्येक रचनाकार को जीवन में कई 'चौराहे' मिलते हैं, वह साहित्य के 'नव–नवीन रूप दृश्यवाले सौ–सौ विषयों' से रू–ब–रू होता है और अपनी प्रतिभा, कवि स्वभाव और युग की माँग के अनुरूप अपनी मंजिल वह खुद तय करता है। रचनाकार की इस चयन–प्रक्रिया के पीछे उसका युग, प्रतिभा, व्युत्पत्ति, साहित्य–बोध और उसका स्वभाव महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा हैः– ***"सामाजिक परिस्थितियों का जैसा प्रभाव भावों और विचारों पर पड़ता है, वैसा ही उनको व्यक्त करनेवाली शैली, व्यंजना के ढंग, शब्द–चयन, वाक्य–विन्यास आदि पर भी पड़ता है।"***[2] इसलिए किसी कवि या रचनाकार की रचनाओं की व्याख्या के पूर्व उस रचनाकार विशेष की सामाजिक परिस्थितियों, व्यक्तिगत प्रवृत्तियों और उसकी साहित्य–दृष्टि, विचारधारा आदि को जानना जरूरी होता है।

महाकवि निराला ने 'रवीन्द्र–कविता कानन' में रवीन्द्रनाथ के संकल्प के संदर्भ में लिखा हैः– ***"कवि के संकल्प के जानने की आवश्यकता भी है। वह क्या चाहता है, उसका उद्देश्य क्या है? वह अपने जीवन का प्रवाह किस ओर वहा ले जाना चाहता है, उसकी भावनाओं में किसी खास भाव की अधिकता क्यों हुई है? ये सब बातें हमें अच्छी तरह तभी मालूम हो सकती है, जब कवि स्वयं उनमें अपनी कवित्व–कला की ज्योति भरे और उन्हें आइने से भी साफ, इतिहास से भी सरल कर रखे।"***[3] इस दृष्टि से विचार करें तो निराला के काव्य–जगत, भाव व शिल्प–सौंदर्य को जानने

के लिए हमें निराला की साहित्य–दृष्टि को भी जानना जरूरी होगा, जो न केवल उनकी कविताओं, वरन् निबंधों आदि में भी अवतीर्ण है। निराला की साहित्य–दृष्टि इस बात पर भी कसौटी पर परखी जा सकती है कि वे अपने युग को किस प्रकार देख रहे थे?

निराला ने 'साहित्य का फूल अपने ही वृत पर' निबंध में लिखा है:– *"आब और हवा हर वक्त नये हैं, यहाँ तक कि कूप–मण्डूक को भी कुएँ के अतल सोते से नया–ही–नया मिलता जाता है। हवा रोज ताजी चलती है, आसमां हर वक्त नये रंग बदलता है। फिर भी लोग संस्कारों के अनुसार ही हुई–सीधी–हुई बातें ही लिखते, चली हुई राहें ही चलते हैं। हम साधारण जन इसे ही अपने साहित्य की, जो कुछ लिए हुए हैं, उसकी रचनाएँ–कल्पनाएँ किया करते हैं। यही हमारा सनातन धर्म है।"*[4] निराला अपने युग की 'कूपमंडकता' को भली–भाँति देख रहे थे। निराला के लिए पुरातनता कभी सनातन धर्म नहीं हो सकती थी। निराला समसामयिकता और साहित्य का गहरा संबंध मानते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि 'समय का प्रभाव ही एक खास जल को तीर्थ जड़ और जंगम चेतना बना देता है।' निराला ने समय के प्रभाव को समझा और स्पष्ट घोषणा की *"हम नवीनता को ही यहाँ सनातन कहेंगे।"*[5] निराला अपने साहित्य में भाव, भाषा व शिल्प सभी के स्तर पर इस 'नवीनता' के लिए संघर्षरत रहे। नवीनता व समसामयिकता की पहचान हेतु परंपरा–बोध, पुष्ट विवेक और अंतर्दृष्टि आवश्यक है। निराला के इस परंपरा–बोध व अतंर्दृष्टि को समझने के लिए निराला की युगीन परिस्थितियों, साहित्य–सिद्धांतों, विभिन्न भाषाओं का प्रभाव, छायावादी पृष्ठभूमि और इस पृष्ठभूमि में निराला के 'निरालेपन' का विवेचन अपरिहार्य हो जाता है।

(1) ''गहन है यह अंधकार'' : नवजागरण और निराला की मुक्ति–कामना

"गहन है यह अन्धकारा;
स्वार्थ है अवगुण्ठनों से
हुआ है लुण्ठन हमारा।

खड़ी है दीवार जड़ की घेरकर
बोलते हैं लोग ज्यों मुँह फेरकर
इस गगन में नहीं दिनकर
नहीं शशधर, नहीं तारा।"[6]

'अणिमा' में प्रकाशित निराला की कविता 'गहन है यह अंधकारा' का उपर्युक्त अंश तद्युगीन समाज में व्याप्त अंधकार का चित्रण करता है। यह अंधकार था–राष्ट्रीय पराधीनता का, यह अंधकार था–स्वार्थ व रूढ़ि से ग्रसित समाज का; यह अंधकार था–परंपराबद्ध हिन्दी कविता का, राष्ट्रभाषा का। निराला यहाँ जिस 'स्वार्थ के अवगुण्ठन' की बात कर रहे हैं, उसी स्वार्थ तत्व को वे विदेशी संस्कृति में घुला–मिला देख रहे थे। हर बात पर पश्चिम के अनुकरण करने पर सचेत करते हुए निराला ने लिखा हैः– *"अनुकरण और चीज है और प्राण और चीज। दूसरे देशों के प्राण स्वार्थ से मिले हुए हैं। वे अपने स्वार्थ की बारीकियों के सिवा और कुछ सोच नहीं सकते। यहाँ प्राण धर्म है। यहाँ की शिक्षा बिल्कुल भिन्न है। यहाँ राजनीति वही मान्य है जो धर्म से संबंधित रखती है। पराधीनता के कारण जिस राजनीति का दबाव जनता पर डाला गया है, वह उसके प्राणों को मान्य नहीं, इसलिए वह आज से लेकर कालांतर के अंदर तक भारतवर्ष के हृदय से सियाह दाग की तरह जरूर मिट जाएगा। तत्व की आत्मा यही करती है और इसलिए कहना पड़ता है इस राष्ट्रीय मैत्री के लिए स्वार्थहीन प्रेम ही एकमात्र सूत्र है।"*[7] कहने का तात्पर्य यह है कि निराला जहाँ पाश्चात्य संस्कृति से होने वाले खतरे के प्रति जागरूक थे, वहीं निज अस्मिता व राष्ट्रीय एकता में भी बाधक तत्वों को समझ रहे थे। यह हिन्दी क्षेत्र के नवजागरण की सबसे बड़ी विशेषता थी।

हिन्दी प्रदेश में नवजागरण की शुरूआत सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन से मानी जाती है। यह एक सामंत–विरोधी और जन–हित से जुड़ा राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने वाला आंदोलन था। इससे जमींदारों और साहूकारों के अधिकारों को पलटने और किसानों को देश की मुख्यधारा में लाने में मदद मिली क्योंकि फौज के किसानों के साथ–साथ कई गैर–सैन्य कृषकों ने भी इस आंदोलन में भाग लिया। यह आंदोलन असांप्रदायिक और हिन्दू–मुस्लिम सभी वर्गों को जोड़ने वाला था और सबसे बड़ी बात यह थी कि हिन्दी प्रदेश में चलाया गया आंदोलन था। सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम को दबाने में कश्मीर, पंजाब, बंगाल, हैदराबाद आदि के राजाओं और जमींदारों ने अंग्रेजों की काफी सहायता की थी। अंग्रेजों ने इन राजाओं व नवाबों को अपनी साम्राज्यवादी नीति के पोषक में सहायक बनाया था। निराला महिषादल में रहते हुए अंग्रेजों द्वारा पोषित सामंती व्यवस्था का निर्दयी चेहरा देख चुके थे। उनकी एक कहानी है–'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' जिसमें लाठी के गूले से गरीब पुजारी की उँगलियाँ कुचलने की घटना का जिक्र है। निराला देशी रियासतों को अंग्रेजी राज्य का ही अंग मानते थे। निराला ने नवंबर, 1932 की 'सुधा' में प्रकाशित 'देशी रियासतों का रंग' निबंध में देशी रियासतों के अंधकार का, उनकी चाटुकारिता का खाका खींचा है। अंग्रेजों के देशी रियासतों के राजाओं का रक्षक बन जाने से उन्हें तो जैसे प्रजा को लूटने की छूट मिल गई। प्रजा के विद्रोह का डर मिट जाने से प्रजा–पालन व रंजन से बेखबर हो गए। निराला ने इस स्थिति की ओर संकेत करते हुए लिखा है:– *"विधाता के बही से उतनी–उतनी जगह के विधाता बनकर आते हैं, जन्मसिद्ध अधिकार के बदौलत मुफ्त का माल मिलता है, उड़ाया करते हैं। पेरिस और लंदन की सैर होती है। केवल एक दृष्टि रहती है कि सरकार प्रसन्न रहे। दूसरों की महिलाएँ छीन ली गयीं, अत्याचार–पर–अत्याचार हुए, लगान–पर–लगान बढ़ा, प्रजा ने जरा–सी आवाज कृपा के लिए उठायी तो गाँव–गाँव फूँक दिया गया।"*[8] ध्यातव्य है, इन देशी रियासतों के ही दूसरे पर्याय थे अवध के ताल्लुकेदार जो सन् 1857 में अंग्रेजों से वफादारी दिखाकर अंग्रेजों के प्रिय बन गए थे। भारत में हिन्दी भाषा प्रदेश के किसान–आंदोलन को दबाने में इन्हीं स्वार्थी जमींदारों और ताल्लुकेदारों

का विशेष हाथ रहा था। निराला ने स्वयं अपने जिले के किसानों को संगठित करने में योग दिया और उनके संघर्ष में सहायक बने थे। देशी राजाओं, जमींदारों के शोषण के प्रति रोष और किसानों व अस्पृश्यों के प्रति प्रेम निराला बचपन से ही रखते थे।

डॉ0 रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1) में निराला के बचपन से जुड़ी एक घटना का जिक्र करते हुए लिखा है:– *"स्कूल में पढ़ते हुए सूर्यकुमार" तिवारी राजा, अंग्रेज, जमीदार–इन शब्दों का अर्थ समझने लगे। गढ़कोला से महिषादल कितना भिन्न है। कहाँ वह छोटी–सी लोन नदी, कहाँ यह विशाल नद रूपनारायण! ....चौधरी भगवानदीन दूबे गढ़कोला में ताल्लुकेदार कहलाते थे; महिषादल में उनकी हैसियत एक मामूली नौकर से ज्यादा न होती। महिषादल राज्य लगभग चार सौ वर्गमील का क्षेत्र घेरे हुए था, सालाना आमदनी बारह लाख थी। तीन लाख छत्तीस हजार तो सरकारी मालगुजारी देनी होती थी। एक दिन सूर्यकुमार ने पिता से कहा, 'तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं' तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते?"*[9] यह निराला की सामंत विरोधी चेतना थी जिसकी नींव उनके बचपन में ही पड़ गई थी। यह सामंत–विरोधी चेतना 'राजे ने अपनी रखवाली की' कविता में भी दिखती है जहाँ 'राजे' अर्थात् राज एवं सरकार ने प्रजा–पालन की अपेक्षा अपनी श्रीवृद्धि व सुरक्षा के साधन जुटा रखे हैं:–

"राजे ने अपनी रखवाली की;
किला बनाकर रहा;
बड़ी–बड़ी फौजें रखीं।
चापलूस कितने सामंत आये
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।"[10]

निराला के उपन्यासों में भी भारतीय स्वाधीनता–संग्राम की झलक, सामंत विरोधी चेतना, किसानों की हालत व संगठन, नारी–मुक्ति आदि कई नवजागरण से जुड़ी बातें गाहे–बगाहे आ जाती हैं। निराला के पहले दौर के चार उपन्यासों 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' और 'निरूपमा' के बारे में डॉ0 नंदकिशोर नवल ने लिखा है:– *"उपन्यासकार के रूप में निराला के*

पास महिषादल, कलकत्ता, गढ़ाकोला और लखनऊ के अनुभव थे। उन्होंने इन्हीं को आधार बनाकर अपने उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों की रचना का काल भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का काल है। स्वाधीनता आंदोलन एक ओर उपनिवेश विरोधी था, दूसरी ओर सामंत–विरोधी। निराला के इन उपन्यासों में जनवादी चेतना से ओत–प्रोत नवशिक्षित तरूण और तरूणियाँ हैं जो सामंती रूढ़ियों को तोड़कर समाज के सम्मुख एक आदर्श रखते हैं।[11] 'अलका' नामक उपन्यास में किसानों के प्रति ब्रिटिश सरकार का रवैया व किसान आंदोलन की झलक दिखाई पड़ती है। 'अलका' उपन्यास में स्नेहशंकर जी अपनी पुत्री सावित्री के सामने एक तरफ पैतृक संपत्ति पाए, विदेश घूमनेवाले और दो करोड़ रुपए से दस लाख देश को दान करनेवाले नेता का चित्र खींचा तो दूसरी ओर पैतृक संपत्ति के नाम पर हल, बैल व मूसल पाने वाले किसान का। किसान का चित्र कुछ इस प्रकार हैः– *"एड़ी–चोटी का पसीना एक करके, मुश्किल से भर पेट खाने को पाता है। लगान चुकाता है। भिक्षुक को भीख देता और फसल न होने पर जमींदार के कोड़े सहता है। कभी–कभी उन्हीं की कृपा से कचेहरी, समाज, सभी जगह वह नीच, अधम, मनुष्य की पदवी से रहित ठोकरें खानेवाला है।*[12] स्नेहशंकर जी दोनों का चित्र खींचकर सावित्री से पूछते हैं कि इन दोनों में कौन बड़ा है। सावित्री जवाब देती है–'यही किसान।' यह सावित्री का ही नहीं, निराला का भी उत्तर था।

किसानों की शक्ति को दबाए रखने का सबसे बड़ा शस्त्र अंग्रेजों ने जमींदार को बनाया था। सन् 1929 की आर्थिक मंदी से सबसे ज्यादा किसान पीसे गए। किसानों के कच्चे माल को कौड़ियों के मोल खरीदकर अंग्रेज मुँह माँगे दामों पर बेचते थे। इस स्थिति का विवरण देते हुए निराला ने 'इंगलैंड और भारत का संबंध' निबंध में लिखा हैंः– *"समय पर लगान देने के तकाजे का ख्याल उन्हें विवश कर देता है, वे मुँह–माँगे भाव पर माल बेच देते हैं। यह इतनी बड़ी दासता है, जिसका उल्लेख नहीं हो सकता। आजकल के किसान यह बात भूल गये हैं कि माल उसका है, इसलिए वे ही उसके दामों के निर्णायक है। वे बाजार की तरफ आँखें फाड़े हुए भाव का रास्ता देखते रहते हैं। अगर कुछ दिन के लिए माल वे रख छोड़े तो समय पर लगान न दे सकने के कारण उन पर*

जमींदारों की बेभाव भी पड़ती है। इस तरह वे सोलहों आने विवश हैं। भारत का कुल बाजार पराधीन है।[13] निराला इस पराधीनता से मुक्ति का बीज शिक्षा में देखते हैं। वे एक शिक्षित किसान देखना चाहते थे न कि कुछ नेताओं के अनुयायी या मुँह ताकनेवाले बनकर। 'संगठन का एक रूप' निबंध में निराला ने नेताओं से जेल जाने के बदले 'मूर्ख ग्रामवासियों को शिक्षा' देने की सलाह दी है। उन्होंने लिखा है:– *"हमारे देश के जन–नायक, लोकप्रिय, प्रसिद्ध होने की जितनी तीव्र वासना है, देश के पलने के लिए उतना दर्द नहीं। .....हमें कोई समझा दे कि वह किसान, जिसने कुछ भी नहीं पढ़ा और अपनी सहृदयता से प्रेरित होकर देश के नाम पर चार साल कारावास किया, कैसे सुभाष बाबू बन सकता है? यदि उसकी इस साधना से सुभाष बाबू का मस्तिष्क उसमें नहीं आ सकता तो जेल–यात्रा भी मस्तिष्क विकास का कारण न होने की वजह से स्वाधीनता की दात्री नहीं हो सकती । कारण स्वाधीनता मस्तिष्क में रहती है।*[14] निराला शिक्षा के द्वारा आम जनता, ग्रामवासियों व किसानों के संगठन के हिमायती रहे थे। निराला के 'अप्सरा' उपन्यास में चंदन, 'अलका' उपन्यास में विजय उर्फ प्रभाकर और चतुरी चमार में निराला स्वयं किसानों की लड़ाई लड़ते दिखते हैं। विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनों व शिक्षा के प्रसार से किसानों का संगठन व चैतन्य 'अलका' उपन्यास में दिखता है। निराला का चित्रण देखिए:– *"शिक्षा के बल से उर्वर भूमि भीग गयी। श्यामल सबल मसृण तृण–बाल एक साथ सिर उठाकर पूर्ण प्रीति से लहराने लगे। हवा के साथ बँधकर एक तरफ झुकना पहले–पहल सीखा। ज्यों तृण–संकुलता बढ़ने लगी, स्थानीय पशु–वृत्ति उसे चलकर जीवन की पुष्टि के लिए त्यों–त्यों प्रबलतर, उत्श्रृंखल हो चली। देहात के जमींदार लोग किसानों का यह संगठित शिक्षाक्रम देखकर घबराये।*[15]

निराला ने न केवल किसानों के लिए शिक्षा की बात की; वरन् उनके लिए अलग साहित्य की भी वकालत की। 16 जुलाई, 1934 की 'सुधा' में निराला जी का एक लेख छपा– 'किसान और उसका साहित्य'। उक्त निबंध में निराला स्पष्ट कर देते हैं कि *"अब वैश्य युग भी मनुष्य के मन से दूर हो गया– अब किसानों या मजदूरों का युग है। .....वर्त्तमान आंदोलन के बाद से यह बात अच्छी तरह लोगों के समझ में आ गयी कि*

गरीब किसानों और मजदूरों का संगठन, सुधार किए बिना देश का कल्याण नहीं हो सकता। महात्मा जी का दौरा इसी उद्देश्य की पुष्टि के लिए हो रहा है।"[16] उक्त निबंध में निराला यह स्पष्ट करते हैं कि 'महात्मा गांधी की साधना वैश्य–शक्ति के खिलाफ पीड़ित, शूद्र, अछूत, मजदूर और किसान–शक्ति को उठाने के लिए हुई है।' निराला किसानों के संगठन में रवीन्द्रनाथ की कविताओं, 'श्रीनिकेतन' नाम की शाखा, शांति–निकेतन, श्री राम कृष्ण–मिशन, विवेकानंद और बंगाल के नवजागरण आदि का भी जिक्र करते हैं। इससे साफ पता चलता है कि निराला की पैनी नजर अपने युग पर थी और साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन आने से पहले ही, वह न अपने साहित्य में किसानों व मजदूरों को केंद्र में रखते हैं; वरन् उनके साहित्य की बात करते हुए लिखते हैंः– *"जिस तरह गाँवों में किसानों की शिक्षा–दीक्षा जरूरी है, उसी तरह साहित्य में भी उनके योग्य साहित्य का निर्माण आवश्यक है। हमने इसका साद्यन्त विचार करके 'किसान कुसुमावली' नाम की एक पुस्तकमाला निकालने का निश्चय कर लिया गया है। इसमें अत्यंत सीधी भाषा में अधिकारी विद्वानों द्वारा किसानों तथा श्रमजीवियों के काम की किताबें सिखायी जायेंगी।"*[17]

निराला ने अपने काव्य साहित्य में किसान व मजदूरों को जगह दी। 'नए पत्ते' काव्य–संग्रह में जैसे पिछड़े हुए गाँव गढ़ाकोला के बहाने पूरे गाँव का या यूँ कहें कि अवध के किसानों का विद्रोह दिख पड़ता है। 'चर्खा चला' कविता का यह अंश देखिएः–

"कृष्ण ने भी जमीं पकड़ी
गोवर्धन को पुजाया
मानवों को, गायों और बैलों को मान दिया।

हल को बलदेव ने हथियार बनाया
कन्धे पर डाले फिरे
खेती हरी–भरी हुई
यहाँ तक पहुँचते अभी दुनिया को देर है।"[18]

दुनिया को हल–बैल व खेत–खलिहान की संस्कृति तक पहुँचने में भले ही देर लगी हो, निराला वहाँ बहुत पहले ही पहुँच गए थे। 'वर्षा' कविता में जमींदारों की किसानों की हिस्सेदारी में सेंध देखिएः–

"आम बीन–बीनकर
पंजों बाँटते हुए
आमो के हिस्सेदार
गाँव–गाँव के किसान,
खाने को एक–एक हिस्सा लिए हुए
जमींदार लोगों से।"[19]

निराला के 'नए पत्ते' की अनेक कविताओं में 'गाँव के अधिक जन कुली या किसान है।' जब इन किसानों में 'बादलराग' की तरह क्रांति जगती है तो ये किसान बादलों की तरह ही 'विप्लव के वीर' बन जाते हैं। अकारण नहीं है कि 'बदलू अहिर' 'डिप्टी साहब के आने पर' भी जमींदार के गोड़इत को घूंसा जड़ देता है। महगू जमींदार और 'जेल आनेवाले कांग्रेस उम्मीदवार' के भाषण सुनकर भी पंडित जवाहरलाल को ठेंगा दिखाता हुआ 'महगाता' रहता है। या फिर कांग्रेसियों के सामने भी झींगुर डटकर बोलाः–

"चूंकि हम किसान–सभा के
भाईजी के मददगार
जमींदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुक्म की तामीली को,
ऐसा यह पेंच है।"[20]

'तुझे बुलाता कृषक अधीर' से लेकर 'झींगुर डरकर बोला' तक की यात्रा स्वाधीनता आंदोलन के उतार–चढ़ाव व किसानों के आह्वान संगठन तथा प्रतिरोध तक की कथा कहती है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने इस संदर्भ में लिखा हैः– ***"कांग्रेस की अपेक्षा निराला की सहानुभूति क्रांतिकारियों के प्रति अधिक थी। निराला और क्रांतिकारियों के दृष्टिकोण में अंतर यह था कि निराला दो–चार अंग्रेजों या उनके देशी सहायकों को मारने के बदले***

किसानों को संगठित करके उन्हें स्वाधीनता– आंदोलन में शामिल करना ज्यादा आवश्यक समझते थे।[21] दरअसल इसके पीछे निराला की स्वाधीनता संबंधी वह मान्यता काम कर रही थी, जो मानती थीः– *"ज्ञान और मार्जन ही स्वतंत्रता के आधार हैं।*[22]

'समन्वय' के अक्टूबर–नवंबर 1922 वाले अंक में निराला जी का एक लेख प्रकाशित हुआ था–'बाहर और भीतर'। दरअसल, यह लेख निराला की मुक्ति संबंधी अवधारणा को स्पष्ट करता है। लेख की शुरुआत होती है– *"संसार में दो दल हैं। एक बाहर मुड़ता है और दूसरा भीतर घुसता है। एक दल बाहर के सुधार के लिए कमर कसता है और दूसरा भीतर के दर्द की दवा करता है। एक दल पूर्ण स्वतंत्रता के लिए बाहर के विरोधियों को ललकारकर उनसे संदर्भ मिलता है तो दूसरा बाहरी कुल चीजों से नाता तोड़कर भीतर के दुश्मनों स, निरस्त्र किंतु निर्भर होकर लड़ाई ठानता है।*[23] दरअसल निराला इसी भीतरी स्वतंत्रता के पक्षधर थे। उनकी लड़ाई अंग्रेजों से पहले रूढ़िगत समाज से, वैचारिक अपंगता से और स्वार्थी व परमुखापेक्षी इंसान से 'निरस्त्र' किन्तु 'निर्भर' लड़ाई थी।

निराला का मानना था कि बाहरी स्वतंत्रता का संबंध शरीर से है, जिसका लक्ष्य भोग है। इसलिए यह अपूर्ण है क्योंकि इसके बाद मनुष्य भोग का गुलाम बन जाता है। भीतरी स्वतंत्रता का संबंध निराला आत्मा व मन के अंतर्मुखन से मानते हैं और 'ज्ञान व मार्जन' को इसका अस्त्र बतलाते हैं। निराला ने अपने अन्य निबंध 'जातीय जीवन और श्री रामकृष्ण' में लिखा हैः– *"अंग्रेजों ने भारत का बाहरी सुधार अवश्य किया–उसमें रजोगुण का विकास जरूर दिखाया, परन्तु भारतीय जाति बहिर्मुख जाति नहीं; उसके जातीय जीवन की गति अंतर्मुखी है; अतएव अंग्रेजों की साधन प्रणाली द्वारा भारत के जातीय जागरण को विशेष कुछ सहारा नहीं मिला। अंग्रेजों की शिक्षा–नीति से भारत का जितना उपकार हुआ, उतना ही अपकार हुआ।*[24] निराला जब 'भीतर के विचार और उधम' से स्वतंत्रता प्राप्ति की बात करते हैं तो दरअसल निराला स्वतंत्रता को 'जातीय जागरण' से जोड़ते हैं। अपनी जातीय अस्मिता की चिंता और

उसके जागरण हेतु उद्‌बोधन भारतीय नवजागरण की प्रमुख विशेषता थी जिसे निराला हिन्दी साहित्य में आगे बढाते हैं।

निराला की दो कविताएँ हैं–'स्वाधीनता पर' शीर्षक से जो 'मतवाला' में क्रमशः 23 अगस्त, 1924 और 30 अगस्त, 1924 को प्रकाशित हुई। पहली कविता में निराला प्रश्न उठाते हैंः–

"स्वाधीन–
स्वाधीन है यह विश्व?
अथवा है पराधीन?
आज तक कितने की गूढ़ मस्तिष्कों में
आया प्रश्न
पर उत्तर अज्ञात–
अज्ञात ही बना रहा।"[25]

भले ही निराला ने इस उत्तर को कविता में 'अज्ञात' बतलाया है, पर निराला इसका उत्तर जानते थे। उसी कविता में निराला प्राकृतिक उपादानों को 'मुक्त स्वाधीन' बतलाते हैं। निराला वैचारिक स्तर पर भी पशुओं से विपरीत मनुष्य को भी स्वतंत्र अर्थों में लेते हैं। 'संगठन का एक रूप' निबंध में निराला ने लिखा हैः–*"मनुष्य मनुष्य है। स्वाधीनता उसकी स्वाभाविक वृत्ति है। जो जनसमूह पराधीन हो जाता है, उसकी पराधीनता के कुछ खास कारण होते हैं।"*[26] जाहिर है कि निराला अपने चिंतन व साहित्य से भारतीय जनमानस को पराधीनता के इस कारण से अवगत कराना चाहते थे। निराला को इस पराधीनता का सबसे बड़ा कारण नजर आया जातीय चेतना का अभाव व विचारों की परतंत्रता। अकारण नहीं है कि निराला 'मतवाला' के अगले अंक में ही 'स्वाधीनता पर–2' कविता का दूसरा भाग प्रस्तुत करते हुए लिखते हैंः–

"सब हैं स्वाधीन.....
मेरे साथ मेरे विचार–
मेरे जाति–
मेरे पददलित–

मौन हैं– निद्रित हैं–
स्वप्न में भी पराधीन!
कितनी बड़ी दुर्बलता![27]

अकारण नहीं है कि निराला ने यह लिखा है कि 'स्वतंत्र विचारों का मस्तिष्क कभी पराधीन नहीं हो सकता।' निराला जब 'मेरे साथ मेरे विचार' की पराधीन की बात कर रहे थे, वह सन् 1924 ई. का वर्ष था। हालांकि इसके पहले निराला मुक्त छंद की कविता लिख चुके थे, पर 'मनुष्यों की तरह कविता की मुक्ति' का सिद्धांत 'परिमल' में सन् 1929 ई0 में आया। दूसरी बात उपर्युक्त कविता में निराला जिस 'जाति' व 'पददलित' की बात कर रहे हैं, उसका संबंध जातीय चेतना के ज्ञानात्मक विकास एवं साहित्य में साधारण जन 'पददलित' की स्थापना से भी है। इस संबंध को समझना जरूरी है।

निराला जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण निबंध में लिखते हैंः– *"जातिरूपी इमारत किसी खास बुनियाद पर उठायी जाती है। वही हर एक जाति की जीवनशक्ति है। वह जब तक सुदृढ़ रहेगी तब तक जाति पर किए गए सैकड़ों उत्पात व्यर्थ जाते हैं।.....भारत का जातीय प्रसाद किसी क्षणिक या अल्पकालिक अथवा नश्वर भित्ति पर नहीं उठाया गया है। उसकी बुनियाद है सामाजिक लब्धपूर्ण ज्ञान। भारत की जातीय विशिष्टता किसी पार्थिव वस्तु और भौतिक शक्ति–अधिकारादि पर अवलम्बित नहीं है। यह मोक्षाभिमुख है।*[28] निराला ने ऐसे भी पश्चिम की संस्कृति व जातीयता को स्वार्थमूलक, बाहरी व योगमूलक माना था। उन्होंने साफ कर दियाः– *"हिन्दोस्तान की स्वतंत्रता विलायती स्वतंत्रता नहीं हो सकती, नहीं होगी। विलायती दैशिक स्वतंत्रता के इन्द्रजाल से मुग्ध भारतीय उसका अनुकरण कर उसे प्राप्त नहीं कर सकते। प्राप्ति मौलिक उद्भव का दूसरा रूप है।*[29] जाहिर है निराला 'मोक्षाभिमुख जातीय विशिष्टता' व 'लब्धपूर्ण ज्ञान' के लिए 'भीतरी अंर्तमुखी' या 'वैचारिक स्वतंत्रता' की बात करते हैं। इस आंतरिक ज्ञान का अक्षुण्ण स्रोत निराला भारतीय वेदांत में देखते हैं। निराला वेदांत को ज्ञान का ही दूसरा रूप मानते थे। उन्होंने साफ लिखाः– *"वेदांत निरवलम्ब ज्ञान के सिवा*

और कुछ नहीं। जड़–संयोग होने पर ज्ञान नहीं रह जाता। इसका अनुभव होना चाहिए। इसके अनुभव की क्रिया ही साधना है और मनुष्य के पश्चात की स्थिति, संस्कृति की रक्षा, दूसरों के लिए है। तब उस मनुष्य के विचार किसी हद में; किसी स्वार्थ में नहीं बँधे रहते; तक वह विश्व–नागरिक और उनकी बातें यथार्थ विश्वजनीन होती है, उसकी क्रिया दिव्य– गुण युक्त।[30] निराला मानते थे कि वे इस बात के प्रमाण हैं कि 'सृष्टि ज्ञान से हुई और ज्ञान ही को ब्रह्म कहा गया।' एक बार निराला ने नेहरू जी को ब्रह्म की आंतरिक परिभाषा देते हुए कहा था–*"ब्रह्म का मतलब सिर्फ बड़ा है, जिससे बड़ा और नहीं। किसी को बह्म देखने के अर्थ हैं, उसके भौतिक रूप में नहीं– सूक्ष्मतम, आध्यात्मिक, दार्शनिक, बृहत्तर रूप में भी देखने वाले की दृष्टि प्रसारित है।*[31] यह था निराला का ब्रह्म और वेदांत का सार– ज्ञान, स्वार्थ से मुक्ति, आत्मिक उन्नयन, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना और इस आधार पर सर्वधर्म समभाव, जातिगत एकसूत्रता और रूढ़िवाद का विरोध।

यहाँ यह भी बात गौरतलब है कि नवजागरण की अगली कड़ी समाज– सुधार व रूढ़ियों का विरोध भी था। हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग ने इसी आधुनिक चेतना का निर्माण किया, जिसे 'साहित्य के ज्ञानकांड' के रूप में बदला द्विवेदी युग ने। अर्थात् अगर देखा जाए तो सन् 1857 के स्वाधीनता आंदोलन के बाद भारतेंदु युग और द्विवेदी युग हिंदी नवजागरण को ही आगे बढ़ाते हैं। द्विवेदी युग में आधुनिक ज्ञान–विज्ञान का खूब प्रसार हुआ। 'विकासवाद' के सिद्धांत ने प्राचीन अंधविश्वासों व पौराणिक कल्पनाओं की नींव हिला दी। निराला ने विकासवाद सिद्धांत के वैज्ञानिक तथ्यों की ज्यादा छानबीन न कर सिर्फ पौराणिक अर्थों में सृष्टि की व्याख्या करते हुए लिखाः–*"भारत में सृष्टि तत्व ज्ञान से कहा गया है। डारविन के विकासवाद की तरह बंदर का क्रम परिणाम मनुष्य नहीं है। मनुष्य ही मनुष्य का परिणाम है। मन, बुद्धि और अहंकार से हुई त्रिगुणात्मिक सृष्टि अपर जीवों की तरह मनुष्य की भी है, ऐसा कहते हैं।*[32] निराला मानते थे कि मनुष्य अपनी प्राथमिक अवस्था में ब्रह्मज्ञान से संकलित था, फिर सांसारिक ज्ञान था जिसे अज्ञान कह लीजिए, उससे मानव का अधोपतन हुआ। जब हेमचंद्र जोशी और इलाचंद्र जोशी ने अपने

एक लेख में 'प्राथमिक अवस्था के मनुष्य को कला से अनभिज्ञ' माना तो इसका उत्तर देते हुए निराला ने लिखाः–..... *"बिल्कुल खुलासा हो जाता है कि आप लोग विकासवाद के डार्विन पंथी हैं, भारतीय सृष्टि–तत्व का ककहरा भी नहीं मालूम। ..... आप लोगों का कथन यह सिद्ध करता है कि सृष्टि अज्ञान से हुई, यानी पहले लोग बेवकूफ पैदा हुए, अब तरक्की कर रहे हैं–कैसी अवैज्ञानिक बात है? यह न वर्त्तमान जड़ विज्ञान से मिलनेवाली है और न प्राचीन धर्म–शास्त्रानुसार परा– विद्या से।"*[33] निराला के लिए विज्ञान अपरा विद्या से संबंधित है जबकि ब्रह्मज्ञान पराविद्या से। ऐसा नहीं है कि निराला विज्ञान को महत्व नहीं देते थे। उन्होंने 'विज्ञान और वैज्ञानिक पत्र–कला' निबंध में लिखा हैः– *"विज्ञान की विजय साधारण नहीं, असाधारण है; आंगिक या देशिक नहीं, पूर्ण और अलौकिक है। वही विजय पूर्ण है जो किसी जनपद–विशेष पर ही अधिकार न दिलावे, वरंच उस विजित प्रदेश की संस्कृति, वहां के जीवन पर भी पूरा–पूरा प्रभाव डाल सके।"*[34] तो फिर ऐसा कारण था कि निराला विज्ञान के आगे वेदांत–ज्ञान को रख रहे थे। इस बात का एक ही उत्तर है–अपनी जातीयता का पुनरुत्थान और आचार–विचार व संस्कार में ज्ञानी होना, न कि भौतिक सुख–साधन में। निराला का यह कथन द्रष्टव्य हैः– *"भारत की जातीयता को योरप के इस विज्ञान–युग की जातीयता से लड़ना है। परंतु, इस समय उसके पास आचार–विचारात्मक ज्ञान के जो महास्त्र हैं, वे योरप के वर्द्धनशील विज्ञान के सामने पराजित और अवनत हो रहे हैं। .....वहाँ के ज्ञान शास्त्र को काटकर अपनी निर्मल जातीयता के पुनरुत्थान के लिए आवश्यक है–वेदांत ज्ञान।"*[35]

निराला इस जातीयता के पुनरुत्थान को वेदांत में देखते ही हैं, बुद्ध के दर्शन में भी पाते हैं। 'सुधा' में जुलाई, 1940 को उनकी एक कविता प्रकाशित हुई थी– 'भगवान बुद्ध के प्रति।' कविता के आरंभ में ही निराला विज्ञान के विनाशक स्वरूप को इंगित करते हैंः–

"आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नंबर होने की ओर अग्रसर

..... दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्गगण
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण।"[36]

'भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र' शब्दों पर ध्यान दीजिए। कविता का रचनाकाल सन् 1940 है अर्थात् जब द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारंभ हो चुका था। विज्ञान की यह विनाशक भूमिका द्वितीय विश्व युद्ध में कैसे जापान के हिरोशिमा और नागासाकी पर बमवर्षक रूप में दिखी, यह सबको ज्ञान है। निराला इसको पहले ही भाँप चुके थे। 'स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण' यही तो पश्चिम का 'जड़–विकास' है, विज्ञान–युग की जातीयता है, अज्ञान का अंधकार है–'गहन अंधकारा' है। बुद्ध का प्रादुर्भाव इस अंधकार को दूर करने हुआ था, मानव– धर्म को स्थापित करने को हुआ था और 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' को स्वर देने के लिए हुआ था। कविता का अंत देखेंः–

"फूटे शत–शत सहज मानवता जल के
यहाँ वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके;
छल के, बल के पंकिल, भौतिक रूप अदर्शित
हुए तुम्ही से, हुई तुम्हीं से ज्योति प्रदर्शित।"[37]

ध्यातव्य है, निराला विज्ञान की सकारात्मक भूमिका धार्मिक अंधविश्वासों के खंडन में अवश्य देखते हैं। 'वैज्ञानिक और धर्म' नामक निबंध में निराला ने लिखा हैः–*"आधुनिक वैज्ञानिक धर्म के विरोधी नहीं हैं, पाखंड के विरोधी भले ही हों। अतः जनता में जो यह मत फैला कि वैज्ञानिक नास्तिकवाद के फैलाने में बहुत कुछ सहायक हुई है, भ्रमपूर्ण है। आजकल जिस दिशा में विज्ञान बढ़ रहा है, वह धार्मिक भावनाओं के लिए हानिकारक नहीं; प्रत्युत्त सहायक है।"*[38] दरअसल निराला आधुनिक विज्ञान को वेदांत से जोड़ना चाहते थे। उनका मानना था कि 'पुरातनकाल में दार्शनिक ही वैज्ञानिक होते थे।' अब आजकल के वैज्ञानिकों को 'प्रभु देखनेवाले दार्शनिकों' में परिवर्तन की जरूरत है। उक्त निबंध के अंत में निराला लिखते हैंः–*"ज्ञान और विज्ञान में 'वि'–मात्र का भेद है, यह 'वि' अब विलुप्त होना चाहती है। इसके विनष्ट होते ही ज्ञान की शुभ्र छवि स्पष्ट हो जाएगी, इसमें संदेह नहीं।"*[39] निराला अपने तीसरे चरण की रचनाओं, 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज।' और सांध्य–काकली में मूलतः

वेदांत–ज्ञान, जीवन के सार तत्व, आध्यात्मिक शांति को खोजते हैं। परंतु, इन रचनाओं पर वेदांत के प्रभाव के बावजूद अंततः वैज्ञानिक समन्वय की बात करते हुए अपनी मृत्यु के तीन वर्ष पूर्व 'सांध्य–काकली' में संकलित बादल पर लिखे गीत में लिखते हैंः–

"नयी शक्ति अनुरक्ति जगा दो
विकृत भाग से भक्ति जगा दो
उत्पादन के मार्ग लगा दो
साहित्यिक–वैज्ञानिक के बल।"[40]

भक्ति को विकृत होने से बचाती है– जीवन की शक्ति और इसके लिए आह्वान किया जा रहा है–वैज्ञानिकों और साहित्यिकों को। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैंः–*"निराला काव्य में यदि कहीं ज्ञान, भक्ति और कर्म का उचित समन्वय है तो यहाँ। देश और जनता के प्रति भक्ति, वैज्ञानिक उपायों का आलम्बन, कर्म द्वारा मुक्ति के लक्ष्य की सिद्धि।"*[41] डॉ. नंदकिशोर नवल निराला की इस पंक्ति को 'वेदांत से अतिक्रमण' और जीवन व धार्मिक वेदना से जोड़ते हुए लिखते हैंः–*"जो कवि इस लोक को माया समझेगा, वह यह कभी नहीं चाहेगा कि साहित्य और विज्ञान दोनों का उपयोग उत्पादन, वृद्धि और फिर उससे होने वाले समाज कल्याण के लिए हो। मार्क्स ने लिखा 'धार्मिक वेदना एक साथ वास्तविक वेदना की अभिव्यक्ति और वास्तविक वेदना के विरुद्ध विद्रोह भी है। निराला के इस चरण के काव्य को हमें इसी आलोक में देखना चाहिए।"*[42]

स्पष्ट है कि वेदांत के प्रति निराला का आकर्षण पुरातन के प्रति लगाव नहीं, वरन् अपनी जातीयता व संस्कृति के प्रति गर्व भावना है। निराला नवीनता व जन–सामान्य के पक्षधर थे; पुरातनता, शास्त्रीयता व आभिजात्य के पक्षधर नहीं थे। निराला जानते थे कि शास्त्रों की दुहाई देकर कई धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियां फैलाई गई हैं। इसलिए वे लिखते हैंः–*"बात–बात में शास्त्रों की राय लेने की आदत बड़े–बड़े विद्वानों तक में देख पड़ती है, वह शास्त्रीय पराधीनता है। मनुष्य शास्त्रों से अपने अनुकूल विधान ही निकालता है। शास्त्रों में हर कानून की प्रतिकूलता देख पड़ती*

है। सच बोलना चाहिए, पर झूठ के भी अवसर हैं।[43] इसलिए निराला समय–परिस्थिति के अनुसार मेधा से निर्णय लेने की बात करते हैं। निराला के समय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी जगत को यह बतला रहे थे कि 'लोक व्यवहार और समाज विकास की दृष्टि से धर्म और आचार की व्याख्या की गई; परलोक और आध्यात्मिक की दृष्टि से नहीं। 'विश्व प्रपंच' की भूमिका में आचार्य शुक्ल ने लिखा हैः–*"विकासवाद के अनुसार धर्म कोई अलौकिक, नित्य और स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। समाज के आश्रय से ही उसका क्रमशः विकास हुआ है। धर्म का कोई ऐसा सामान्य लक्षण नहीं बताया जा सकता जो सर्वत्र और सब काल में–मनुष्य जाति की जब से उन्नति हुई, तब से अब तक बराबर मान्य रहा हो। समाज की ज्यों–ज्यों वृद्धि होती गई, त्यों–त्यों धर्म की भावना में भी देश कलानुसार फेरफार होता गया।*[44] लगभग यही बात निराला ने 'सामाजिक व्यवस्था' नामक निबंध में लिखी हैः–*"धर्म कभी कोई कानून, कोई रीति नहीं हो सकता। इसलिए हमें अपने समाज को हर वक्त इस प्रकार तैयार रखना चाहिए कि फौज के सिपाहियों की तरह इच्छानुसार, जब जैसी जरूरत पड़े, हम समाज में उसी तरह उसी रूप में, उसी राह से निकाल ले जाएं। यह है समाज के सभ्य शासन, नियंत्रण और संचालन की बात। पर जब एक रूढ़ि को, एक ही आदत को अज्ञात भाव से हम मानते जायेंगे तब उस आदत की तरह हम जड़ बन जाएंगे।*[45] जाहिर है कि निराला भी पुराने 'लकीर के फकीर' न बनकर हर प्रकार की रूढ़ि का विरोध करते हैं और समाज के अनुसार धर्म का संचालन करने की बात करते हैं।

निराला ने 'महर्षि दयानंद सरस्वती और युगांतर' में एक बार पुनः समय के अनुसार धर्म के स्वरूप को बदलने का मुद्दा उठाया है। बहुत पहले सती–प्रथा, बाल–विवाह और विधवा–विवाह का विरोध आदि कई सामाजिक रूढ़ियाँ धर्म व शास्त्र की दुहाई देकर प्रचलित थी। किन्तु, राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानंद सरस्वती और ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि के विचारों से कई धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियों का नाश हुआ जो भारतीय नवजागरण के लिए महत्वपूर्ण था। स्वामी दयानंद सरस्वती के संदर्भ में निराला ने लिखा हैः–*"यहां से भारत के धार्मिक इतिहास का एक नया अध्याय शुरू होता है, यद्यपि यह बहुत ही प्राचीन है। हमें अपने*

सुधार के लिए क्या–क्या करना चाहिए, हमारे सामाजिक उन्नयन के कहाँ–कहाँ और क्या–क्या रुकावटें हैं, हमें मुक्ति के लिए कौन–सा मार्ग ग्रहण करना चाहिए, महर्षि दयानंद सरस्वती ने बहुत अच्छी तरह समझाया है। आर्य समाज की प्रतिष्ठा भारतीयों में एक नए जीवन की प्रतिष्ठा है, उसकी प्रगति एक दिव्य शक्ति की स्फूर्ति है। देश की महिलाओं, पतितों तथा ब्राह्मणेतर जातियों के अधिकार के लिए महर्षि दयानंद तथा आर्य समाज से बढ़कर इस नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज में कार्य नहीं किया।[46] निराला अपने साहित्य में स्वयं पतितों, दलितों व महिलाओं की स्वतंत्रता व अधिकार के लिए आवाज उठाते रहें।

'अणिमा' में संकलित निराला की एक कविता है–'दलित जन पर करो करूणा।' उक्त कविता की कतिपय पंक्तियां हैं:–

"दलित जन पर करो करूणा।
दीनता पर उतर आए
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरूणा।
.....देख वैभव न हो नत सिर
समुद्धत मन सदा हो स्थिर
पार कर जीवन निरंतर
रहे बहती भक्ति–वरूणा।"[47]

निराला जीवन व साहित्य दोनों में 'वैभव के लिए नत सिर' कभी नहीं किया, वरन् पतित व दलित जनों के सामाजिक अधिकार हेतु सतत् संघर्ष किया। तुलसीदास की तरह 'ब्राह्मण समाज में 'ज्यों अछूत' का दर्द झेलनेवाले निराला 'वर्णाश्रम–धर्म की वर्त्तमान स्थिति में स्पष्ट घोषणा करते हैं:– *"भारतवर्ष की तमाम सामाजिक शक्तियों का यह एकीकरण काल शूद्रों और अंत्यजों को उठाने का प्रभाव काल है।*[48] महर्षि दयानंद सरस्वती और युगांतर निबंध में निराला स्वामी दयान्द के हवाले से बाह्मणों की ठग–वृत्ति को उजागार करते हुए लिखते हैं:– *"बाह्मणों की ठग–विद्या के संबंध में भी स्वामी जी ने लिखा है। आज ब्राह्मणों की हठपूर्ण मूर्खता से अपरापर जातियों को क्षति पहुँच रही है। पहले पढ़े–लिखे होने के कारण ब्राह्मणों ने श्लोकों की रचना कर–करके अपने लिए बहुत काफी गुंजाइश*

कर ली है। .....लोगों से पुजाने का यह पांखड बड़ी ही नीच मनोवृत्ति का परिचय है।"[49] निराला ने बहुत करीब से शास्त्रज्ञान रहित पंडितों की ठग–विद्या से सनातन धर्म को कलंक लगते हुए देखा था। इसलिए 'सनातन धर्म और अछूत' टिप्पणी लेख में निराला स्पष्ट कर देते हैं:– *"जो धर्म व्यक्ति–विशेष या जाति–विशेष की सुविधा के लिए है, वह धर्म नहीं। स्वार्थी पंडित जी अर्थ कर–करके लोगों को जाति–भावना में संकीर्ण करना चाहते हैं, वे अर्थ नहीं अनर्थ है। इन हरकतों से अंपढ़ों को बचना चाहिए।"*[50] उक्त निबंध में निराला ने 'सामाजिक दुर्बलता' दूर करने के लिए 'अछूतोद्धार' का संदेश दिया है।

निराला आरंभ में वर्ण–व्यवस्था के विभाग से असहमत नहीं दिखते। नवंबर, 1925–मार्च, 1926 के बीच 'श्री कृष्ण संदेश' में प्रकाशित 'चरखा' निबंध में निराला ने लिखा है:– *"हमारी जाति–प्रथा मनुष्यों का सर्वश्रेष्ठ श्रेणी–विभाग है। क्योंकि हर एक जाति में शास्त्र, नारायण का अंश बतलाता है। जाति की निंदा कहीं नहीं की गई। जाति निन्दनीय नहीं, इस समय उसके साथ किसी जातियों का बर्ताव निंदनीय है। और चूंकि यह अज्ञान जन्य है, इसलिए हमें दृढ़ आशा है कि भारतीय शिक्षा के साथ दृढ़ मस्तिष्क वाले इस बुरे बर्ताव को दूर कर देंगे।"*[51] निराला जाति–व्यवस्था को बुरा नहीं मानते, पर जाति के प्रति मनुवादी सोच के भी समर्थक नहीं रहे। द्विज और शूद्रों को लेकर ब्रह्म के सिर व पैर से पैदा होने का पौराणिक तर्क उन्हें स्वीकार नहीं है क्योंकि दर्शनशास्त्र में सिर और पैर का भेद भी नहीं माना गया है। निराला ने स्पष्ट कर दिया कि रैदास व कबीर दोनों निम्न जाति के थे परंतु उन्होंने अपना नियत कर्म नहीं छोड़ा बल्कि अपनी विद्वता व ज्ञान से 'परमात्मा का सिर कहलाने वाले ब्राह्मणों' से अधिक योग्यता पाई। निराला जानते थे कि ब्राह्मणों में भी 'भंगी, चरसी, शराबी और कबाबी लोग' हैं। फिर भी, वे मानते हैं कि पौराणिक व सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण हर कोई ब्राह्मण बनना चाहता है। 'वर्णाश्रम धर्म और वर्त्तमान की स्थिति' निबंध में निराला लिखते हैं:– *"बाह्मणों को गालियां तो सभी देते हैं, पर ब्राह्मण बनने का इरादा कोई भी नवीन संगठित जाति नहीं छोड़ती। इस तरह ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बढ़ती गई। लोगों में जैसे ब्राह्णत्व का लालच बढ़ गया हो।"*[52] उक्त निबंध दिसंबर,

1929 ई0 की 'माधुरी' में प्रकाशित हुआ था जिसमें निराला जी ने अछूतों के साथ 'रोटी–बेटी के संबंध' को एक कल्पना माना था क्योंकि इसमें उन्हें विवाह की बुनियाद और प्रेम का कारण 'दो मनों की साम्य–स्थिति' का अभाव दिखा। निराला ने अपने समय में चलनेवाले 'जाति–पाँति तोड़क मंडल' को आड़े हाथ लेते हुए लिखाः– *"जाति–पाँति तोड़क मंडल' को मैं किसी हद तक सार्थक समझता, यदि वह जाति– पाँति पोषक मंडल होता। 'तोड़' ही हिन्दुस्तान को तोड़ रहा है।"*[63] दरअसल निराला के समय कुछ समाजवादी युवक व संस्थाएं निम्न जातियों को ऊपर उठाने के लिए जनेऊ पहना रही थी। निराला महसूस कर रहे थे कि इस 'जनेऊ' के कारण निम्न जाति का उद्धार हो या न हो, ब्राह्मणत्व के मिथ्या अभिमान से वे दूसरी जाति को नीच दृष्टि से देखने लगते हैं। इसीलिए निराला ने आगे चलकर 16 अगस्त, 1933 की 'सुधा' में प्रकाशित 'राजनीति के लिए सामाजिक योग्यता' निबंध में साफ तौर पर लिख दियाः– *"इसलिए तोड़कर फेंक दीजिए जनेऊ, जिसकी आज कोई उपयोगिता नहीं, जो बड़प्पन का भ्रम पैदा करता है और समस्वर से कहिए कि आप उतनी ही मर्यादा रखते हैं, जितनी आपका नीच–से–नीच पड़ोसी चमार या भंगी रखता है। तभी आप महामनुष्य हैं।"*[64] इसके पूर्व निराला का एक और निबंध 1 अगस्त, 1933 ई0 में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था 'राजनीति और समाज' जिसमें निराला 'अछूतों के साथ रोटी–बेटी के संबंधों' को जायज ठहराते हुए लिखते हैंः– *"आजकल ब्राह्मणेतर समाजों में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं जो विद्या और बुद्धि में ब्राह्मणों के बराबर हैं। फिर ब्राह्मणों की कन्याओं का उनके साथ उनकी कुमारियों का ब्राह्मणों के साथ मानसिक मेल तथा विवाह असंगत या अस्वाभाविक कदापि नहीं। और ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में ऐसी स्थितिवालों की कमी नहीं जिनसे चमार, धोबी, नाई और लोध आदि बुद्धि तथा कर्म–कौशल में बढ़े हुए हैं। फिर विवाह की व्यापकता में बाधा कौन–सी हो सकती है।"*[65] पुनः आगे चलकर निराला ने 1 दिसंबर, 1933 की 'सुधा' में प्रकाशित 'अधिकार समस्या' टिप्पणी में मुक्तकंठ से घोषणा कीः– *"अब प्रकृति ने वर्णाश्रम धर्म के सुविशाल स्तंभों को तोड़ते–तोड़ते पूर्ण रूप से चूर्ण कर दिया है।..... जिस तरह एक ओर प्रकृति वर्णाश्रम–धर्म को तोड़ रही थी, उसी तरह दूसरी और शूद्र–शक्ति के*

अभ्युत्थस की तैयारी कर रही थी। अधिकार–भोग पर मनुष्य मात्र का बराबर दावा है।[56] उक्त समस्त उदाहरण से स्पष्ट करते हैं कि समय के साथ और प्रगतिशील आंदोलन की आहट के पूर्व ही निराला का चिंतन व गद्य–साहित्य दलितों के अभ्युत्थान और सामाजिक समरसता की ओर अधिक मुखातिब हो रहा था। निराला के उपन्यास 'अलका' और 'बिल्लेसुर वकरिहा' में बकरियाँ पालनेवाले दरिद्र ब्राह्मण पूज्य माने जाने के बावजूद पासियों की प्रभुता स्वीकार कर रहते हैं। 'चतुरी चमार' में निराला चतुरी के लड़के अर्जुन के लिए 'मेरे मित्र' शब्द का प्रयोग करते हैं और स्वयं दलित चतुरी तथा गाँव के निर्धन किसानों का सहयोग करते हैं। निराला की कविताओं में दलितों व पतितों के प्रति वही करुणा व समानता का भाव देखने को मिलता है।

'बेला' में निराला जी की एक रचना हैः–'प्रतिजन को करो सफल', उसकी कतिपय पंक्तियाँ हैः–

"नहीं राजसिक तन–मन,
करो मुक्ति के बंधन,
नंदन के कुसुम–नयन
खोलो मृदु–गंध विमल।"[57]

निराला के इस 'प्रतिजन' में समाज के सभी वर्ण शामिल हैं जिनकी मुक्ति की बात वे करते हैं। निराला का आदर्श 'वेद' था और वे मानते थे कि वर्णाश्रम धर्म वाली स्थिति वेदों के बाद आईः–*"वेदों के बाद जाति चार भागों में बँटी यही रामराज है।"*[58]

'रामायण' का 'रामराज' तुलसीदास के युग में दूर था। चार वर्णों की दशा का चित्र 'तुलसीदास' रचना में द्रष्टव्य हैः–

"वे टूट चुके थे ठाट सकल वर्णों के,
तृष्णोद्धत, स्पर्धागत, सगर्व
क्षत्रिय रक्षा से रहित सर्व;
द्विज चाटुकार, हर इतर वर्ग वर्णों के।
आशा केवल जीवनोपाय उर–उर में

रण के अश्वों के शहय सकल
दलमल जाते ज्यों, दल से दल
शूद्रगण क्षुद्र–जीवन संबल, पुर–पुर में।"[59]

'तुलसीदास' से 'अणिमा' तक आते–आते सभी बदले हुए–सभी भिन्न रूप के दिखते हैं जैसे जर्जरत–स्तूप से मंत्र निकले हुए। निराला जातियों का नाम लेकर आगे लिखते हैंः–

"बदले हुए कुम्हार
नाई धोबी–कहार
ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य
पासी–भंगी–चमार
परिया और कोल–भील।"[60]

निराला इन सभी वर्णों में 'उद्‌बोधन' की बात करते हैं। निराला का विश्वास है–"धोबी, पासी, चमार, तेली/खोलेंगे अंधेरे का ताला।"[61] यह निराला की ही वर्ग–चेतना थी कि 'नये पत्ते' के सभी दलित वंचित पात्र 'डिप्टी साहब', जमींदार, थानेदार और 'भीड़दूत' के आगे भी नहीं टूटते। महगू सभा में चिल्लाकर कहता हैः– नोट कविता की पंक्ति–*"महगू ने कहा, हाँ, कम्पू में किरिया के गोली जो लगी थी उसका कारण पंडित जी का शागिर्द है।"62* केवल निराला के पात्र ही नहीं 'कुकुरमुत्ता' में स्वयं निराला डंके की चोट पर यह कहते हैंः–

"ब्राह्मण का लड़का
मैं उसको प्यार करता हूँ।
जात की कहारिन वह
मेरे घर की पनहारिन वह,
आती है होते तड़का
उसके पीछे मैं मरता हूं।"[63]

निराला को इस 'प्यार' और 'पीछे पड़ने' की कीमत चुकानी पड़ी। निराला का यह प्रेम ही उससे 'चतुरी चमार' की सृष्टि कराता है, जिस पर डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा हैः–*"निराला ने गाँवों में शिक्षा प्रचार की*

आवश्यकता पर जो लिखा था, उस पर आचरण किया। गुरुमुख ब्राह्मणों ने निराला के घड़े का पानी पीना छोड़ दिया। इसका कारण यह भी था कि निराला शूद्रों से माँस मँगवाते थे, घर में पकाते थे, खुद खाते थे, और उन्हें भी खिलाते थे।[64] परंतु निराला तो स्वभाव से विद्रोही थे और कर्म पर विश्वास रखनेवाले। स्वामी संतराम को उत्तर देते हुए उन्होंने साफ कर दिया था– *"मैं ब्राह्मण का तपस्या–जन्य अर्थ लेता हूं, जो उसका उचित निर्णय है। मुझे इसका भय नहीं दूसरों की तरह मुझ पर संतराम जी ब्राह्मणत्व के पक्षपात का दोष लगाएंगे।*[65]

'हिंदुओं की जातीय संगठन' नामक निबंध में निराला ने लिखा हैः– "पराधीन जाति शूद्रत्व को प्राप्त करती है।"[66] अर्थात् निराला मानते थे कि गुलामों की एक ही जाति होती है। इस दृष्टि से निराला ने 'सामाजिक व्यवस्था' नामक निबंध में लिखा हैः– "इस समय देश की जैसी स्थिति है, देश में शूद्र के सिवा दूसरी और कोई जाति नहीं है।"[67] स्पष्ट है कि निराला पराधीनता को हर एक समस्या के मूल में देखते थे या यूं कहें कि पराधीनता के सामाजिक कारणों की पड़ताल करते थे। उक्त निबंध में जाति–व्यवस्था की चर्चा करने के बाद निराला ने लिखा हैः–"हिंदू और मुसलमानों की समस्या इस देश की पराधीनता की सबसे बड़ी समस्या है। वर्त्तमान समाज का जो रूप है, उसके इसके भीतर से इस नवीन रूप से निकले बिना, इस समस्या की उलझन भी नहीं मिट सकती।"[68] पहले निराला 'हिंदुओं के जातीय संगठन' के लिए जाति–भेद से ऊपर उठने की बात करते हैं फिर राष्ट्रीय संगठन के लिए धार्मिक वैमनस्य त्यागने की सलाह देते हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास पर यदि ध्यान दिया जाए तो हिंदी के भक्ति काल और रीतिकाल के मुसलमानों ने धार्मिक कट्टरता त्याग कर हिंदुओं की लोक– संस्कृति व भाषा को आधार मानकर रचना की है। इस मामले में जायसी का पद्मावत अप्रतिम उदाहरण है। किंतु, औरंगजेब के समय से साहित्य से सूफी का लोप होने लगा और फारसीयत का जोर बढ़ा। औरंगजेब की तमाम धर्म–प्रचार की कट्टर नीति के बावजूद सन 1857 के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदू और मुसलमानों ने मिलकर अंग्रेजों

से लोहा लिया था। अंग्रेज सरकार ने तब यह जान लिया कि 'फूट डालो राज करो' की नीति है इस एकता को खंडित कर सकती है। निराला ने अंग्रेजों की इस नीति को समझा पर उन्होंने हिंदू और मुस्लिम में मन–विभेद को थोड़ा और पीछे जाकर देखा और लिखाः– *"हम देखते हैं, प्राचीनकाल की तरह हिंदुओं में मुसलमानों के प्रति वैमनस्य, विजातीय घृणा वाले कम नहीं। दोनों के आचरण ऐसे हैं जो एक–दूसरे के बिल्कुल प्रतिकूल है। यदि प्राचीनकाल की तरह इन्हीं आचरणों की बुनियाद पर हमारे हिन्दू स्थिर रहे, तो हम दावे के साथ कहेंगे कि दोनों जातियों में प्राणों की मैत्री कभी नहीं हो सकती।"*[69] निराला यहाँ 'प्राणों की मैत्री' की बात कर रहे हैं 'कागजी मैत्री' की नहीं जो उस समय कतिपय राजनेता बयान दिया करते थे। निराला इस घृणा के जड़ में जाकर पाते हैं कि हिन्दुओं में जहाँ 'विजित भाव' है, वहाँ मुसलमान भी मुगलों के रूप में खुद को विजेता मानते हैं। निराला का मानना था कि पहले जब मुसलमान इस देश में आए तो 'अज्ञातशील' के कारण उनसे धार्मिक व सामाजिक असहयोग ठीक था, पर तद्युगीन समय की माँग को देखते हुए यह असहयोग निराला को समाज के लिए हानिकारक लगा। इसलिए उन्होंने लिखाः– *"अब वे इसी देश के मनुष्य हैं। हिन्दुओं का सर्वोच्च वेदांत–धर्म वैयक्तिक नहीं। इसलिए हिन्दू धर्म को किसी खास परिभाषा के द्वारा सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। .....रही बात शुद्धि के अगर मुसलमानों को हिन्दू बना सकते हैं; तो मुसलमान तो तबालीग जानते हैं और इससे स्पर्द्धा के सिवा कभी मैत्री की स्थापना नहीं हो सकती। पर अगर मुसलमानों के साथ पान–पानी आदि प्राथमिक साधारण व्यवहार जारी हो जाए तो हमेशा की तरह यह मार–काट बंद हो जाएगी। धर्म के नाम पर जो इतना बड़ा हत्याकांड हो जाया करता है, न होगा।"*[70] स्पष्ट है कि निराला धर्म–परिवर्तन के जबरिया तरीके के विरोधी थे। हिन्दू और मुसलमानों के बीच 'पान–पानी का संबंध वर्त्तमान समय में भी फैलते मजहबी दंगों में प्रासंगिक है। निराला का एक और कथन वर्त्तमान समय में काफी महत्व रखता है। निराला ने 'हिन्दू–मुस्लिम समस्या' निबंध में लिखा है।:– *"कृष्ण जी का जुलूस यदि न निकले, तो कोई क्षति नहीं होगी; रामलीला में यदि मनुष्य बंदर बनकर न नाचें, तो मनुष्यत्व की रक्षा होती*

है, धन भी बचता है। उधर मुसलमानों के देश में, उस दिन तक छपता था, मस्जिदें तोड़ी गयीं और मुसलमानों के ही हाथों। पुरानेपन को दूर करने के लिए कुछ ही बर्षों के अंदर मुसलमान राज्यों में क्या–क्या हुआ, यह संवादपत्रों के पाठक जानते है। केवल हमारे देश में यह आर्थिक भाव दोनों तरफ से इतना प्रबल रूप धारण किए हुए है। इसलिए हम सच्चे मनुष्य नहीं बन पाते।"[71] मस्जिद के सामने बाजे बजाने और धार्मिक जुलूस निकालने से दंगे ब्रिटिश राज में भी भड़कते थे, आज भी भड़कते हैं। निराला का सारा प्रयत्न हिंदू या मुस्लिम बनने के पहले लोगों को सच्चा मनुष्य बनाना था।

निराला ने अपनी कविता 'उद्‌बोधन' में भी हिंदू व मुस्लिम के मध्य इस बदलाव को दिखाते हुए मानव–धर्म को स्थापित करने की वकालत करते हुए लिखा हैः–

"नहीं आज का यह हिन्दू
आज का यह मुसलमान,
आज का ईसाई, सिक्ख
आज का यह मनोभाव,
आज की यह रूपरेखा।
नहीं यह कल्पना
सत्य है मनुष्य का
मनुष्यत्व के लिए
बंद है जो दल अभी
किरण सम्पात से
खुल गए थे, सभी।"[72]

निराला ने इस 'मनुष्यत्व' को साहित्य के धरातल पर स्थापित करने का प्रयास किया। अगस्त, 1926 के 'समन्वय' में निराला का एक लेख छपा– 'साहित्य की समतल भूमि' जिसमें उन्होंने सभी प्रकार की धार्मिक व एकदेशीय संकीर्णता की आलोचना की और लिखाः– *"इस लेख में हम यह दिखाने की चेष्टा करेंगे कि साहित्य की समतल भूमि कैसी है और रीति–रिवाजों में हिंदुओं से संपूर्णतः पृथक् मुसलमान जाति भी साहित्य*

और ज्ञान की भूमि में हिन्दुओं के समान ही है।"[73] उक्त निबंध में निराला ने वेदांत की भूमि पर कबीर और तुलसी के भावबोध से नज़ीर, गालिब और मीर आदि कवियों का भाव–साम्य दिखाया है। निराला हिंदुओं द्वारा मुसलमानों को 'म्लेच्छ' पुकारने और मुसलमानों द्वारा हिंदुओं को 'काफिर' बुलाने के घोर विरोधी रहे हैं। दोनों में मैत्री–भाव दिखलाने के लिए निराला ने फिर एक निबंध लिखा– 'मुसलमान और हिंदू कवियों में विचार–साम्य' जो नवंबर, 1929 ई0 की 'सुधा' में प्रकाशित हुआ था । उक्त निबंध में निराला लिखते हैंः– *"स्वार्थ ही दोनों का मूल है। यदि ब्रिटेन के वीर सिंह और भारत के दीन कृषक मेघ तो विचार की दृष्टि से दार्शनिक की भाषा में, जो मनुष्यता से गिरे हुए हैं और आधुनिक विकासवाद के अनुसार सिंह और मेघ में कौन–सी सृष्टि अधिक उच्च है, यह बतलाना भी जरा टेढ़ी खीर है। मतलब यह कि जिस विज्ञान के बल पर पश्चिम सिंह बन सकता है, वह जिस तरह मनुष्यता की हद से गिरा हुआ होता है, उसी तरह हिंदुओं का ज्ञान–मूल रहित आचारवाद जिसने सदियों से उन्हें गुलाम बना रखा है और मुसलमानों की खुदापरस्ती भी, जो बुतों से घिरी हुई रहकर भी उसकी सत्ता से घृणा करें।"*[74] उक्त निबंध में भी निराला हिन्दुओं और मुस्लमानों के ब्रह्म और 'खुदा' संबंधी भावों में समानता दिखलाते हुए ज्ञान आधारित और धार्मिक रूढ़ियों का विरोध कर हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात करते हैं। यह आकरण नहीं है कि निराला मीर, गालिब, नज़ीर, फिराक आदि को पढ़कर उर्दू की तर्ज पर गजलों में भी हाथ आजमाने लगे।

निराला अपने समय व समाज में विभिन्न नेताओं द्वारा हिन्दू व मुस्लिम एकता के प्रयासों को भी विवेक–दृष्टि से देख रहे थे। उन्होंने फरवरी, 1930 की 'सुधा' में 'लाहौर'–कांग्रेस के सभापति पं. जवाहरलाल नेहरू का अभिभाषण सार रूप में छपवाया था। उक्त अभिभाषण में नेहरू जी ने धार्मिक वैमनस्य को बाधक बताते हुए राष्ट्रीय एकता के लिए 'सर्व–धर्म–समभाव' पर बल दिया था। निराला लिखते हैं–"धार्मिक कट्टरता पर आपने कहा– धार्मिक कट्टरता पर मुझे बिल्कुल विश्वास नहीं। यह कट्टरता दूर हो रही है, देखकर मुझे हर्ष है। किसी विशेष संप्रदाय या धर्ममत के अंतर्गत होने पर ही कोई राजनीतिक या अर्थनीतिक

अधिकार अवलंबित है, ऐसा कारण खोजने पर मुझे नहीं मिलता। मैं जानता हूँ, शीघ्र ही धर्म और संप्रदायों की छाप दूर होगी और अर्थनीति के ऊपर संग्राम शुरू होगा।"[75] एक और टिप्पणी 'महात्मा जी की भीषण प्रतिज्ञा' में निराला यह बतलाते हैं कि 'कौमी बंटवारे में हिंदुओं में फूट होती देखकर' महात्मा गांधी ने आमरण अनशन शुरू कर दिया हैं निराला लिखते हैंः– *"महात्मा जी राष्ट्र के प्राण हैं वह संयुक्त निर्वाचन चाहते हैं। इसी से देश में एकता रह सकती है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए फूट जाने पर देश का स्वार्थ नहीं रहता। इससे विदेशी लोग ही स्वार्थसिद्ध करते है। देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो अपने संप्रदाय की भलाई के सामने देश की व्यापक भलाई को कुछ नहीं समझते। कुछ लोग ऐसे हैं जो अपना संप्रदाय–बल बढ़ाते हैं।"*[76] स्पष्ट है कि निराला कांग्रेस और कांग्रेस के दो बड़े नेता महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू द्वारा किए गए कौमी एकता के प्रयास व आह्वान पर पैनी नज़र बनाए हुए थे। 'नए पत्ते' में संकलित उनकी कविता 'झींगुर डटकर बोला' की शुरुआत कांग्रेसी और गाँधीवादी इस विचार से होता हैः–

"गाँधीवादी आये,
कांग्रेसमैन टेढ़े के;
देर तक, गाँधीवाद क्या है, समझाते रहे।
देश की भक्ति से,
निर्विरोध शक्ति से
राज अपना होगा;
जमींदार, साहूकार अपने कहलाएंगे
शासन की सत्ता हिल जाएगी
हिंदू और मुसलमान
वैरभाव भूलकर जल्द गले लगेंगे।"[77]

दरअसल यह केवल गाँधीवादियों या कांग्रेसियों का ही स्वप्न–मात्र नहीं था, स्वयं निराला का भी विश्वास था। परन्तु, निराला जानते थे कि जाति–धर्म एवं अन्य सामाजिक रूढ़ियों की दीवार सिर्फ शिक्षा द्वारा ही ढह सकती है। 'मुसलमान और हिंदू कवियों में विचार–साम्य' निबंध में निराला

इस ओर ध्यान दिलाते हुए लिखते हैंः–*"भारतवर्ष में जो सबसे बड़ी दुर्बलता है, वह शिक्षा की है। हिंदुओं और मुसलमानों में विरोध के भाव दूर करने के लिए चाहिए कि दोनों के उत्कर्ष का पूर्ण रीति से ज्ञान कराया जाए। परस्पर के सामाजिक व्यवहारों में दोनों शरीर हो, दोनों एक–दूसरे की सभ्यता को पढ़ें और सीखें।"*[78] ध्यातव्य है, शिक्षा का प्रसार भारतीय नवजागरण के प्रमुख कारणों में से एक था।

'वर्णाश्रम धर्म और वर्तमान स्थिति निबंध' में निराला ने लिखा हैः– *"दूसरे–दूसरे देशों से धार्मिक कट्टरता भले ही राष्ट्र की जागृति से दूर कर दी गयी हो, पर वहाँ धर्म से कट्टरता ही प्रधान रही, जिसके कारण यह फल हुआ है। यहाँ धर्म ही जीवन है और उसकी व्याख्या भी बड़ी विशद है। यहाँ उसके व्यक्तित्व के बढ़ाने का उपाय है– शिक्षा का सार्वभौमिक पुरस्कार।"*[79] निराला शिक्षा के प्रसार को न केवल धार्मिक कट्टरता दूर करने में, वरन् स्त्रियों व अंत्यजों में भी जागरण फैलाने के लिए जरूरी मानते थे। 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' निबंध में निराला लिखते हैंः–*"स्पर्द्धा ही जीवन है। उसमें पीछे रहना जीवन की प्रगति को खोना है। जीवन में विजय प्राप्त करना हर जाति और धर्म की शिक्षा है।.... ..... अतएव हमें स्त्रियों की बाह्य स्वतंत्रता, शिक्षा–दीक्षा आदि पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। अन्यथा अब के पुरुषों की तरह उनके बच्चे भी गुलामी की अंधेरी रात में उड़नेवाले गीदड़ होंगे, स्वाधीनता के प्रकाश में दहाड़नेवाले शेर नहीं हो सकते ओर हमारी मातृभाषा का मुख उज्ज्वल नहीं हो सकता।"*[80] स्त्री–शिक्षा से स्वाधीनता और मातृभाषा के विकास का पथ–प्रशस्त होना विचारणीय और ध्यान देने योग्य बात है। ऊपर की पंक्तियों में 'स्पर्द्धा ही जीवन है' वाक्य भी विशेष महत्व का है।

'समाज और स्त्रियाँ' निबंध में निराला इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि 'जीवन–संग्राम में पुरुष–पुरुष का ही द्वंद्व नहीं, बल्कि स्त्री पुरुष स्पर्धा भी बढ़ गई है।' निराला देखते हैं कि 'योरप में स्त्रियां अपने जीविकोपार्जन के लिए आप उत्तरदायी हैं।' 'रूस की स्त्रियाँ' नाम टिप्पणी में निराला ने रेखांकित किया हैः–*"रूस में शिक्षा, सभ्यता, देशप्रेम और सदाचार का प्रचार प्रतिदिन बढ़ रहा है। सब स्त्री और पुरुष बिना किसी भेदभाव के*

सामूहिक रूप से सामाजिक तथा राष्ट्रीय नियंत्रण में दत्त–चित्त हो रहे हैं। वे लोग इस मूलमंत्र को समझ गए हैं कि 'पुरुष और स्त्री का जीवन पूर्ण स्वतंत्रता और पूर्ण सहकारिता के भावों से ओत–प्रोत है।'[81] निराला भारतीय महिलाओं को भी इसका अनुकरण करने की सलाह देते हैं। 'कला और देवियाँ' निबंध में निराला लिखते हैं–*"जिस क्षिप्रता और स्फूर्ति के लिए विदेशी महिलाएँ प्रसिद्ध हैं, सांसारिक कार्यों तथा क्रय–विक्रय में प्रवीण है, पर यहाँ की महिलाओं की पहली विशेषता थी। समय के अनेकानेक प्रहारों ने उन्हें निश्चेष्ट कर दिया है, स्त्री और पुरुष दोनों देह और मन की सहज गति से रहित हो गई हैं, पर वास्तव में वे ऐसे न थे।"*[82] परन्तु, यहाँ भी स्पष्ट कर देना जरूरी है कि निराला यूरोप में मिली स्त्री स्वतंत्रता को केवल बाह्य स्वतंत्रता ही समझते हैं। समाज और स्त्रियाँ निबंध में निराला लिखते हैंः–*"योरप की यह स्त्री स्वतंत्रता बाह्य व्यावहारिक स्वतंत्रता ही है। यह क्षात्र–शक्ति के द्वारा ब्राह्मण तथा वैश्य–शक्ति से प्राप्त होती है। स्त्रियाँ जैसे बाह्य स्वतंत्रता की एक–एक मूर्ति हों। जिस व्यवसाय तथा अपार क्षात्र–बल ने उन्हें यह रूप दिया है, उसका विस्तार भी स्वतंत्रता तथा स्वाबलंबन के अर्थ की ही तरह हुआ कि समग्र संसार एक ही व्यावसायिक सूत्र में गूँथ गया और इसके साथ ही परस्पर तमाम जातियाँ।"*[83] परन्तु, निराला इस प्रकार की व्यावसायिक और बाह्य स्वतंत्रता के अनुकरण को भारत के लिए पूर्णतः सही नहीं समझते हैं।

हरिशंकर परसाई जी की एक व्यंग्य रचना है–'संस्कारों और शास्त्रों की लड़ाई।' उक्त व्यंग्य रचना में परसाई जी दिखलाते हैं कि मध्यमवर्गीय परिवारों में स्त्री को जो थोड़ी बहुत स्वतंत्रता मिली है, उसका कारण अर्थशास्त्र और महंगाई है जिसने शास्त्रों को धोबी पछाड़ दी है। परसाई जी लिखते हैंः–*"नारी मुक्ति के इतिहास में यह वाक्य अमर रहेगा– एक की कमाई से पूरा नहीं पड़ता।"*[84] निराला केवल व्यवसाय या अर्थशास्त्र की स्वतंत्रता को उपयुक्त नहीं समझते थे। परसाई जी के पहले इस प्रकार की स्वतंत्रता को वह यूरोप में देख चुके थे। निराला के अनुसार इस प्रकार की व्यावसायिक स्वतंत्रता शहर की पढ़ी–लिखी स्त्रियों के लिए ठीक हो सकती है, पर सीता व सावित्री को आदर्श मानने वाली ग्रामीण

स्त्रियों के लिए नहीं। निराला इस प्रकार की एकांगी स्वतंत्रता में स्वच्छंदता का अधिक विकास तथा संस्कारों का लोप देखते हैं। निराला लिखते हैंः– *"आज यूरोप का गृहस्थ जीवन स्वतंत्रता के प्रवाह में एक प्रकार बह–सा गया है।"*[85] इसलिए निराला तद्युगीन समाज के हिसाब से संस्कारों व गृहस्थ जीवन की रक्षा करते हुए 'स्त्रियों की वृत्ति के अनुसार शिक्षा' की वकालत करते हैं। अर्थात् केवल अर्थ कमाना ही नहीं, ग्रामीण स्त्रियों को गृह–प्रबंधन व कृषि आदि की शिक्षा दी जा सकती है। फिर भी, निराला यह स्पष्ट कर देते हैं कि 'घर के कोने में समाज तथा धर्म की साधना नहीं हो सकती।' स्त्रियों को 'वायु की तरह मुक्त' करना ही होगा, उन्हें स्वाबलंबी बनाना ही होगा 'बाहरी स्वतंत्रता और स्त्रियां' निबंध में लिखते हैंः– *"स्वाबलंबन कोई पाप नहीं, प्रत्युत पुण्य है। हमारे देश के लोग इस समय आज हाथों से काम करते हैं। उनके आधे हाथ निष्क्रिय हैं। जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जाएंगे, कार्य की सफलता हमें तभी प्राप्त होगी। अभी जो काम स्त्रियाँ करती हैं, वह काम नहीं, वह संस्कारों का प्रवर्तन हैं।"*[86] स्पष्ट है कि निराला स्त्रियों के लिए आर्थिक स्वाधीनता के पक्षधर थे। राष्ट्रीय मुक्ति के लिए स्त्रियों को स्वालंबी बनाना बहुत जरूरी था।

निराला जानते थे कि केवल आर्थिक स्वतंत्रता से ही बात नहीं बनेगी, इसके लिए पुरुषवादी समाज की मानसिकता भी बदलनी जरूरी है। कई बार संस्कारों व पुरानी रीति–रिवाजों की दुहाई देकर या फिर प्यार का पासा फेंककर भी पुरुषों द्वारा स्त्रियों को गुलाम बनाया जाता है। 'सामाजिक पराधीनता' नामक निबंध में निराला लिखते हैंः– *"आजकल स्त्री धर्म में उसी तरह सतीत्व का प्रचार अपने प्यार के मूल्य में स्त्रियों को गुलाम बना लेने का इरादा है। पहले का प्यार ऐसे रहस्यमय ढंग से कहा गया है जो बहुत जगह समझ में नहीं आता।..... हमारे पुरुषों को यह सब कुछ बुरा लगेगा क्योंकि वे चाहते हैं, हम, सबकी स्त्रियों की तरफ देखें, हंसी–मजाक करें, पर हमारी स्त्री दिन–रात हमारे ध्यान में डूबी रहे। ठीक मनुष्य की तरह इतनी ऊंचाई पर ठहर कर विचार करने पर चारित्रिक कुसुम फिर पृथ्वी पर खुलेंगे और आदर्श का आकाश, आकाश ही–सा शून्य बनकर प्रकाश नेत्र–रहित हो जाएगा।"*[87] निराला अपने समय

में कई स्त्री–विरोधी संस्थाओं व व्यक्तियों का प्रलाप देख रहे थे। अपनी टिप्पणी 'हिंदू विधवाओं पर अनाधिकार चर्चा' में उन्होंने बनारस के एक 'सनातन धर्म महामंडल' नाम की संस्था का जिक्र किया है जो शास्त्रों की दुहाई देकर विधवाओं के अधिकार का विरोध कर रहे थे। ऐसी मान्यताओं विशेषकर सती–प्रथा और विधवा–अत्याचार का विरोध करते हुए निराला ने 'सुधा' के जनवरी 1930 वाले अंक में 'हिंदू अबला' नामक एक निबंध लिखा, जिसमें उन्होंने लिखाः– *"आँखों के अंधे पंडितों द्वारा बनाए हुए मनमाने शास्त्रों की दुहाई दे–देकर नृशंस हिंदू–समाज नारी–हृदय की भभकती हुई विरोधाग्नि को बुझाना चाहता है। वह विधवाओं की आंखों में पहले स्वयं उंगलियां ठूंसकर फिर उनकी स्वाभाविक अश्रुधारा को रोकना चाहता है। हिंदू–नारी की निस्सहाय और निर्बल अवस्था का इससे अधिक करूण चित्र क्या हो सकता है?"*[88] इस निबंध से लगभग सात वर्ष पूर्व ही अक्टूबर 1923 ई0 के 'मतवाला' में प्रकाशित 'विधवा' कविता में निराला ने यह प्रश्न उठाया थाः–

"कौन उसको धीरज दे सके?
दुख का भार कौन ले सके?

यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है।
क्या कभी पोंछ किसी ने अश्रु जल?
या किया करते रहे सबको विकल?
ओस–कण–सा पल्लवों से झर गया,
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।"[89]

निराला ने अपने साहित्य में उन कथित अबलाओं के अश्रु–जल को करीब से देखा। जब शोषित–दमित नारी के अश्रु सूख जाते हैं, तो संघर्ष व श्रमरत नारी के माथे से पसीना बहता है। निराला की 'तोड़ती पत्थर' कविता का यह दृश्य देंखेः–

"देखकर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से

जो मार खा रोयी नहीं
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार
एक क्षण के बाद वह कॉपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर।"[90]

निराला ने अपने कविताओं में न केवल 'तोड़ती पत्थर' वाली स्त्री की 'मार खाई दृष्टि' देखी, वरन् वे किसान की नयी बहू की आँखें भी देखती हैः–

"नहीं जानती जो अपने को खिली हुई,
विश्व–विभव से मिली हुई,
नहीं जानती साम्राज्ञी अपने को,
नहीं कर सकी सत्य कभी सपने को।"[91]

निराला ने 'आँखे' देखी तो एक आँख की कानी का दर्द भी देखा। 'रानी और कानी' नामक कविता में कानी रानी की माँ अपनी पुत्री के विवाह हेतु विकल हैं जबकि रानी कार्य–कुशल है। माँ का दुःख देखकर रानी के आँसू का चित्रण देंखेः–

"काँपे कुल अंग
दायीं आँख से
आँसू भी बह चले माँ के दुख से
लेकिन बह बायीं आँख कानी
ज्यो–की–त्यों रह गयी रखती निगरानी।"[92]

'बायी आँख कानी' रानी की नहीं, समाज की है–पितृसत्तात्मक पुरूष–प्रधान समाज की, जो स्त्री की कद्र नहीं जानता, उसे दबाना चाहता है, अशिक्षित रखना चाहता है। परंतु, वे भूल जाते हैं कि स्त्री तो जननी है, घर की प्रथम पाठशाला है। अतएव नारी को दुःखी व अशिक्षित रखकर न पुरूष सुखी व शिक्षित हो सकता है और न राष्ट्र ही।

निराला ने 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' नामक निबंध में लिखा हैः– *"स्त्रियॉ यदि अपढ़ रह गयीं, यदि उन्हीं की जवान न मँझी, तो बच्चा*

पढ़कर भी कुछ कर नहीं सकता।.....लक्ष्मी तथा सरस्वतियों को कैद करना भी अपने ही अन्धकार के दीपक को गुल कर देना है। राष्ट्र की स्वतंत्र भावना कैसे पैदा हो। घर की देवियां आँसू बहायें और आप बहादुर हो जायें? ऐसा आज तक कभी नहीं हुआ, और न कभी हो सकता है। कोई भी सोच सकता है कि स्त्रियों को उत्साह देने से पुरूषों में कितनी बड़ी शक्ति का जागरण हो सकता है।[93] पुरूषों के जागरण में नारी कैसे उत्साह पैदा करती है, इसका उदाहरण निराला की 'तुलसीदास' कविता की रत्नावली के चरित्र में देखा जा सकता है। तुलसी के वासना–वशीभूत आचरण से अपने पितृ–गृह में लज्जित रत्नावली बिजली की तरह तड़पकर घृणा से उलाहना देती हुई कहती हैं:–

"धिक! धाये तुम यों अनाहूत
धो दिया श्रेष्ठ कुल–धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाये!
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़ चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आये!"[94]

स्त्रियों की शिक्षा पर प्रश्न उठानेवाली रत्नावली के उस प्रश्न का जबाव दें:– "कैसी शिक्षा?" रत्नावली ने तुलसी को मुक्ति का मार्ग दिखाया। रत्नावली 'नवीन स्त्री' का प्रतिनिधित्व करती है। श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा की पुस्तक 'अचल सुहाग' की समीक्षा करते हुए निराला ने माना था कि 'स्त्री के संबंध में पुरूष के विचार शुद्ध हों–अशुद्ध, प्राचीन हों– नवीन, स्त्री के विचार के सामने मान्य नहीं हो सकते।' निराला का मानना था कि 'भारतवर्ष की नारियों की व्यापक रूप से निगाह बदली हुई है' और इस आधुनिक नारी को रवीन्द्रनाथ टैगोर भी नहीं समझ पाए। समीक्षा के अंत में उन्होंने चेतावनी स्वरूप लिखा:–*"मुझे आशा है, हिन्दी भाषी जनता इस पुस्तक से अपने घर की महिलाओं की मानसिक स्थिति समझेगी। और कर सके तो यथोचित करेंगी, नहीं तो देवियाँ तो कमर कसकर तैयार है हीं।"*[95] निराला ने इन देवियों को देखा–कभी सरस्वती, कभी लक्ष्मी, कभी भारतमाता तो कभी शक्ति–स्वरूपिणी दुर्गा के रूप में।

निराला की 'राम की शक्ति–पूजा' न केवल नारी–मुक्ति व पत्नी–मुक्ति की कविता है, वरन् नारी–शक्ति दुर्गा की भी अराधना है:–

"देखा राम ने–सामने श्री दुर्गा भास्वर,
वाम पद, असुर–स्कंध पर, रहा दक्षिण हरि पर
.....है दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग
दक्षिण गणेश, कार्तिक बाँये रंग–रंग राग।"[96]

जब यही दुर्गा–रूपी नारी शक्ति राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में उतरती हैं तो 'वर्त्तमान आंदोलन में महिलाएँ' विषय पर निराला लिखते हैं:– *"आज भी गृह–प्रांगण, सुख की मृदुल सेज छोड़कर अतः परचचारिणयों को बाहर खुले हुए मैदान में आना पड़ा है। लखनऊ जहाँ हिन्दू और मुसलमानों की पर्दा–प्रथा का राज्य है, महिलाओं के खुले वातावरण में, सभाओं और जुलूसों से अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होने का दृश्य देख चुका, और इससे उनके आंतरिक भावों का सुंदर परिचय मिल जाता है।"[97]* यही है मुक्ति स्वरूपा नारी का चित्र, तभी तो निराला ने लिखा:– *"मुक्ति का यथार्थ सूत्र स्त्रियों के ही हाथ में है।"[98]* और आगे चलकर स्त्री का सर्वश्रेष्ठ रूप मातृ–शक्ति जननी की महत्ता स्थापित करते हुए कहा:– *"नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। मूर्ख, पीड़ित और पराधीन माता से तेजस्वी, स्वतंत्र और मेधावी बालक–बालिकाएँ नहीं पैदा हो सकती, जिससे राष्ट्र का सर्वांग जर्जर रह जाता है।"[99]*

निराला के साहित्य में स्त्री के रूप में यदि जननी का स्थान ऊँचा है तो जन्मभूमि का भी। यद्यपि निराला की प्रथम काव्य–रचना 'जूही की कली' (1916 ई0) मानी जाती है, पर यह सर्वप्रथम 'आदर्श' पत्रिका में नवंबर–दिसंबर 1922 ई0 के अंक में प्रकाशित हुई थी। प्रकाशन काल की दृष्टि से उनकी पहली कविता 'जन्मभूमि' है जो 1 जून, 1920 ई0 की 'प्रभा' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। कविता की कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य है:–

"बन्दूं मैं अमल कमल–
चिरसेवित चरण युगल–

शोभामय शान्तिनियल पाप ताप हारी,
मुक्त बन्ध, घनानन्द मृदुमंगलकारी।।
बधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।"[100]

निराला ने यहां 'मुक्त बन्ध' जन्मभूमि की बात कही है, पर वह तो थी पराधीन। निराला की मातृ भूमि पर लिखी अन्य दो कविताएं महत्वपूर्ण हैं– 'भारती, जय विजयकरे!' और 'नर जीवन के स्वार्थ सकल'। 'भारती जय, विजयकरे' में कवि निराला प्रारंभ से ही भारत की भौगोलिक महत्ता को रेखांकित करते हैं, पर अंत की चार पंक्तियों में भारत की संस्कृति बोलती हैः–

"मुकुट शुभ्र हिम–तुषार
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएं उदार,
शतमुख शतदल–मुखरे!"[101]

डॉ नंदकिशोर नवल लिखते हैंः–***"भारती, जय विजय करे।" गीत में भारत की अस्मिता की पहचान जनभाषा के माध्यम से की गई है, जब निराला भारत–भूमि को 'शतमुख–शतरव मुखरे!' कह कर संबोधित करते हैं।"***[102] दरअसल यह भारत की विविधता भरी संस्कृति का भी चित्रण है। 'नर–जीवन के स्वार्थ सकल' में 'जन्मभूमि' कविता वाला 'मुक्त बन्ध' अंत में एक संकल्प के रूप में उभरा हैः–

"क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा,
मुक्त करूंगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय–श्रम सञ्चित फल।"[103]

निराला के अन्य गीत की 'बूंद पद सुंदर तव' में मातृभूमि का स्तवन है तो 'शत–शत वर्षों' का मग' गीत में देश–दशा पर चिंता प्रकट करने पर आध्यात्मिक ज्ञान लेकर उठने हेतु प्रेरित किया गया है।

निराला ने अंग्रेजी राज्य की गुलामी देखते हुए कुछ कविताओं में भारत की पुरातन संस्कृति व वीरता का ज्ञान कराया है तो कुछ कविताओं में सीधे–सीधे अंग्रेजों से लड़ने की प्रेरणा दी है। उनकी दो महत्वपूर्ण कविताएं 'खंडहर के प्रति' और 'दिल्ली' में भारत के गौरवशाली अतीत और वर्तमान दशा का अंतर खींचा गया है। "*'खंडहर के प्रति' कविता में यदि 'तेरा है बढ़ाया मान/राम–कृष्ण भीमार्जुन–भीष्म नरदेवों ने/ तुमने मुख फ़ेर लिया/सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल*"[104] का दुःख है तो 'दिल्ली' कविता में *"क्या वहीं देश है। परिवर्तित होता हुआ ही देखा गया जहाँ/भारत का भाग्य चक्र"*[105] की चिंता साफ दिखाई देती है। निराला ने जाना था कि अंग्रेज चोर दरवाजे से घुसकर इस भारत में आए हैं। इसलिए कहते हैंः–*"शेरों की माँद में/आया है आज स्यार–/जागो फिर एक बार।"*[106] या फिर सीधे जनता को निर्देश देते हैंः–*"चूम चरण मत चोरों के तू /गले लिपट मत गोरों के तू।"*[107]

निराला की एक और महत्वपूर्ण कविता हैः–'महाराज शिवाजी को पत्र'। उक्त कविता में निराला की तीव्र सांप्रदायिक घृणा की अभिव्यक्ति दिखलाई पड़ती है, वही हिंदू–मुस्लिम संघर्ष, वर्ण–व्यवस्था आदि के भी कई चित्र दिखाई देते हैं। भले ही संदर्भ अतीत का हो, पर वहाँ भी भारत की स्वतंत्रता का स्वप्न व आवेश पूरा है। कविता की कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैंः–

"सोचो तुम,
उठती जब नग्न तलवार है स्वतंत्रता की
कितने ही भावों से
याद दिला घोर दुःख दारूण परतंत्रता का,
फूँकती स्वतंत्रता निज मंत्र से
जब व्याकुल कान,
कौन वह सुमेरू
रेणु–रेणु जो न हो जाए!
इसलिए दुर्जय है हमारी शक्ति"![108]

निराला के इस 'दुर्जय शक्ति' का ज्ञान था। इसलिए कविता अंत में अतीत की पृष्ठभूमि साम्राज्यवादी शक्तियों से लोहा लेने का नया संदर्भ बन जाती है और निराला का स्वाधीन भारत का स्वप्न पटल पर आ जाता है:–

"पस्त हौसला होगा–
ध्वस्त होगा साम्राज्य
जितने विचार आज
मारते तरंगे हैं
साम्राज्यवादियों की भोग–वासनाओं में,
नष्ट होंगे चिरकाल के लिए
आयेगी भाल पर
भारत की नई ज्योति
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जायेंगे।"[109]

निराला अपने समय में 'दासता के पाश काटने' हेतु बलिदान को तत्पर क्रांतिकारियों और स्वाधीनता सेनानियों को देख रहे थे। उनके कई लेख और टिप्पणियाँ सीधे उस समय के राजनीतिक संघर्ष से संबंधित हैं। यथाः–लखनऊ 'जिला कानफ़रेस', 'स्वदेशी प्रदर्शिनी', 'वायसराय की विज्ञप्ति', नेताओं का निश्चय', 'कांग्रेस का रंगमंच', लाहौर कांग्रेस के सभापति पं0 नेहरू का अभिभाषण, 'देश की स्थिति और सरकार', लखनऊ में गोली और पुलिस की डंडेबाजी, 'साइमन कमीशन की रिपोर्ट', 'महात्मा जी की भीषण प्रतिज्ञा', 'साम्राज्यवाद और सत्याग्रह', 'सरकार की नीति' आदि। निराला जहाँ एक ओर महात्मा गाँधी के सत्याग्रह से बहुत आशा रखते हैं तो दूसरी ओर अंग्रेज की दमनकारी नीति को देखते हुए उसकी सफलता के प्रति बहुत आशान्वित नहीं दिखते। 'साम्राज्यवाद और सत्याग्रह' निबंध में निराला लिखते हैं:– ***"आज तक का इतिहास यही साक्षी दे रहा है कि कूटनीति को बराबर कूटनीति से उत्तर मिला, बाहु–बल को बराबर बाहु–बल का सामना करना पड़ा। सत्याग्रह की लड़ाई संसार के इतिहास में पहली लड़ाई है, जब हथियार बन्दों के***

सामने निःशस्त्र सैनिक सत्य का बल धारण कर भूखे पेट सूखे–अधर, बराबर मनुष्यता के समर क्षेत्र में अड़े हुए हैं। इस बल के पुण्य–प्रभाव से अंगरेज सरकार का संपूर्ण शासन–तंत्र अचल हो जाता है, ऐसा अंगरेजों ने ही कहा है। इसलिए कानून अपनी पूरी शक्ति से इस बल को पराभव देने के लिए सामने आया।"[10] निराला अपने देश में अंग्रेजों से भिक्षा माँगते हुए कुछ नेताओं की लीला भी देख रहे थे। 'राष्ट्र की युवा शक्ति' निबंध में निराला वैसे नेताओं को लक्ष्य कर लिखते हैंः–*"हमारे देश में ऐसे दलवालों की कमी नहीं, जो कृपा–दृष्टि के लिए भिक्षुक हैं, जरा–सी मुसकिराहट पाने पर कुत्ते की तरह पिघलकर दुम हिलाने लगते और उसे ही अपने दिल में स्वराज–सुख समझ लेते।"*[11]

निराला को कांग्रेस से बहुत आशा तो थी, पर कांग्रेस एक 'महानाटक का रंगमंच' ही है, इसे निराला ने बहुत पहले ही भाँप लिया था। 'कांग्रेस का रंगमंच' में निराला लिखते हैंः–*"जिस समय यह अंक पाठकों के हाथ में पहुँचेगा, उस समय लाहौर की रंगभूमि पर कांग्रेस–महानाटक का अभिनय हो रहा होगा। विभिन्न जातियों तथा विभिन्न प्रांतों की जनता के सामने देश के विभिन्न राजनीतिक दल अपने कर्तव्य दिखला रहे होंगे।.....अबकी बार पिछले वर्षों के समान कागजी कर्त्तव्य दिखलाकर ही कांग्रेस चुप नहीं हो जाएगी। कांग्रेस की नीति में भी घोर परिवर्तन होगा।"*[12] जब देश में अंग्रेजों का दमन–चक्र व अत्याचार बढ़ गया तो निराला गाँधीवाद से थोड़ा हटते दिखे। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दमन में अंग्रेज सरकार के हिंसक अत्याचार को देखते हुए 'सुधा' के जून, 1930 के अंक में निराला की टिप्पणी छपी–'देश की स्थिति और सरकार'। उक्त टिप्पणी में निराला लिखते हैंः– *"सरकार जानती है, आंदोलनकारी किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करेंगे, वे निशस्त्र हैं, इससे सरकार की फौज निर्भय होकर उस पर आक्रमण करती है। पशु–बल का आज तक पशु–बल के द्वारा ही दूसरे–दूसरे देशों में जवाब मिलता रहा है, जहाँ उसका अभाव रहता है, वहाँ उसके नग्न तांडव का रूप ऐसा ही भयंकर हो जाया करता हैं।"*[13] स्पष्ट है कि निराला कहीं न कहीं ईट का जवाब पत्थर से देने में विश्वास रखते थे।

निराला अपने 'अलका' उपन्यास में गाँधीवाद की आलोचना करते हैं। 'अलका' में महगू गाँधीवाद व 'सुराज' की बात तो करता है, पर पुलिस व जमींदार का मुकाबला किसान कैसे करेंगे, इसका उत्तर अलका के विद्यार्थी जी के पास नहीं हैं। निराला को लगता है कि आम आदमी, किसान तभी 'गाँधीवाद' को समझते ही नहीं। 'नए पत्ते' में 'झींगुर डटकर बोला' कविता में शुरूआत इसी की ओर इंगित करती हैंः–

"गाँधीवादी आए
कांग्रेसमैन टेढ़े के
देर तक, गाँधीवाद क्या है, समझाते रहे।"[114]

परंतु, कांग्रेसियों व गाँधीवादियों द्वारा किसान राज व हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात गाँव की अनपढ़ जनता के पल्ले नहीं आई। ध्यातव्य है निराला ने 'लखनऊ जिला कानफ़रेस' नामक एक टिप्पणी में सरदार वल्लभ भाई पटेल के उदाहरण देते हुए लखनऊ में कॉन्फ्रेंस कर और महात्मा जी को बुलाकर सभा में बहुत रुपए खर्च करने की निंदा की थी और भाषण की बजाय काम पर बल दिया था। निराला सरदार पटेल की बातों का सम्मान करने की सलाह देते हुए लिखते हैंः– ***"बारडोली की वीर जनरल की–देश के एक अनुभवी योद्धा की–इस सच्ची और सिपाहियाना सलाह को यदि यू0पी0 के कांग्रेस–कार्यकर्त्ता–जो जवानी जमा–खर्च में अपना सानी नहीं रखते–जरा भी आदर की दृष्टि से देखते, तो उन्हें अपने इस कानफ़रेस शौक में जरा लगाम लगानी चाहिए। जमाना अब काम का है। गाँवों में अभी तक कोई स्वराज्य का नाम नहीं जानता, इसका हमें व्यक्तिगत अनुभव है। ग्राम–प्रचार और ग्राम–संगठन की इसलिए सख्त जरूरत है।"***[115] जाहिर है आजादी के प्रति 'स्वराज्य' के प्रति भी निराला का विचार आंतरिक स्वतंत्रता वाला ही था। अकारण नहीं है कि 'जागो फिर एक बार–2' कविता में निराला को 'सत् श्री अकाल' के उद्घोषक वीर गोविन्द सिंह नजर आते हैं और 'बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी' मुहावरे को गाँधीवाद की परिणति में देखते हैंः– ***"एक मेषमाता ही/रहती है निर्निमेष–/दुर्बल वह/छिनती संतान जब/जन्म पर अपने अभिशप्त/तप्त आंसू बहाती हैः–/किन्तु क्या/योग्य जन जीता***

है/पश्चिम की उक्ति नहीं–/गीता है गीता है।"[116] निराला की उपर्युक्त पंक्तियों को उद्धृत करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा हैः– *"निराला कानून के बल पर राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल करने में विश्वास नहीं करते थे।.....गाँधीवाद और निराला के दृष्टिकोण में यह अंतर था।.....गाँधीवाद से निराला के दृष्टिकोण का भेद लक्ष्य करते हुए यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि निराला का दृष्टिकोण आतंकवाद से भिन्न, व्यापक और मौलिक रूप से क्रांतिकारी है। निराला धार्मिक भेदभाव से लेकर वर्ग–भेद मिटाने के पक्षपाती हैं और उनकी इस बहुमुखी क्रांति की धुरी हैं किसान।"*[117]

निराला अपने समय की राजनीतिक हलचलों एवं युगानुरुप राष्ट्रीय चेतना व स्वाधीनता की आकांक्षा के साथ थे। परंतु, जैसा पहले कहा गया है कि निराला आंतरिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे। महात्मा गाँधी से मिलने के बाद निराला ने उनकी भाव–भंगिमा के संदर्भ में लिखा हैः– *"महात्मा गाँधी जी ने, मेरे बैठ जाने पर, उसी तरह हाथ जोड़ कर मुझे प्रति नमस्कार किया। ऑखों की दिव्यता जो बड़े आदमी में ही दिखती है–बड़ें धार्मिक आदमी में, लेकिन दृष्टि आधी बाहर–दुनिया की दी हुई जैसे आधी भीतर–अपनी समझ की माप के लिए।"*[118] 'दृष्टि आधी बाहर'–दुनिया के लिए, आधी भीतर–अपने लिए। पर निराला को लगता था कि गाँधी जी की यह 'आधी भीतर दृष्टि स्वतंत्रता को ठीक से समझ नहीं पा रही है। इसलिए निराला ने हिन्दी प्रदेश की रूढ़िग्रस्तता की बात करते हुए गाँधी जी को दो टूक शब्दों में कहाः– *"देश की स्वतंत्रता के पहले समझ की स्वतंत्रता जरूरी है।"*[119] 'समझ की स्वतंत्रता' अर्थात् मस्तिक की, विचारों की स्वतंत्रता, आंतरिक स्वतंत्रता जो आत्म–उन्नयन तक जाती है।

निराला ने अपने साहित्य में पं0 नेहरू पर भी बहुत कुछ लिखा। जहाँ तक निराला के राजनीतिक निबंधों या टिप्पणियों का प्रसंग है, उन्होंने हमेशा नेहरू जी को आशा की दृष्टि से देखा है। नेहरू जी की प्रशंसा में उन्होंने यहाँ तक लिख दियाः– *"पं0 जवाहरलाल अद्भुत तेजस्वी तथा साहसी नेता है। देश के काम के जिस तरह वह नौकरशाही से नहीं डरते, उसी तरह वह अपनी विवेक–बुद्धि से जो कुछ ठीक समझते हैं उसे*

करते हुए अपने पिता तथा राजनीतिक गुरु महात्मा जी को भी टाल जाने में भी संकोच नहीं करते। महात्मा जी ने स्वयं भी लिखा है, तेजस्विता में कोई भी उन्हें अतिक्रमण नहीं कर सकता। स्वेदश प्रेम में उसके मुकाबले कोई नहीं। कोई–कोई कहते हैं, वह बड़ी टेढ़ी प्रकृति के हैं। देश की मौजूदा हालत में यह एक गुण है।"[120] गद्य में यहाँ जैसी प्रशंसा है, निराला के काव्य में नेहरू से मोह–भंग ही अधिक दिखता है। निराला ने नेहरू जी पर कई कविताएं लिखीं। यथा–'जवाहरलाल', 'टूटी बांह जवाहर की' और गीत 'काले–काले बादल छाए' आदि। कई जगह निराला नेहरू को अप्रस्तुत ढंग से रखते हैं। 'तोड़ती पत्थर' से 'बेला' व 'नए पत्ते' की रचनाओं में नेहरू व कांग्रेस के प्रति व्यंग्य है तो एक मोह–भंग भी। यथा–'महगू महगा रहा' की शुरूआत ही नेहरू जी पर व्यंग्य से शुरू हुआ कि वे माता जी को विदेश में, स्वीटजरलैंड छोड़ कर आजकल देश में ही विराजते हैं। जरा व्यंग्य की धार देखिएः–

"बड़े बाप के बेटे
बीसियों भी पर्तों के अंदर खुले हुए
एक–एक पर्तें बड़े–बड़े विलायती लोग
देश की बड़ी–बड़ी बत्तियाँ लिए हुए।
राजों के बाजू पकड़, बाप की वकालत से
कुर्सी रखनेवाले अनुल्लंध्य विद्या से
देशी जनों के बीच,
लेडी जमींदारों को आँखों तले रखे हुए;
मिलों के मुनाफे रखनेवालों के अभिन्न मित्र
देश के किसानों, मजदूरों के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए।"[121]

इन पंक्तियों में वर्त्तमान के कांग्रेस–विरोधियों के लिए काफी चटकदार मसाला है। यह कविता सन् 1946 ई0 की है जिसमें नेहरू की परतों को जैसे निराला ने खोल कर रख़ दिया है। इस आलोचना का आधार किसानों के साथ–साथ जमींदारों और पूंजीपतियों के प्रति बढ़ते नेहरू और कांग्रेस की हमदर्दी थी। निराला को कहीं न कहीं लग रहा था

कि पंडित जी और कांग्रेस की नीति विलायती राष्ट्र से समझौता करने वाली है। यही बात आगे महगू भी कहता है कि पंडित जी के शागिर्द' ने ही कानपुर में गोली चलवाई। कांग्रेसियों को आड़े हाथ लेता हुआ कहता है:–

"रामदास को कांग्रेसमैन बनानेवाला
जो मिल का मालिक है।
यहाँ भी वह जमींदार, बाजू से लगा ही है
कहते हैं; इनके रुपए ये चलते हैं
कभी–कभी लाखों पर हाथ साफ करते हैं।"[122]

आजादी के बाद नागार्जुन ने ***"खादी ने मलमल से सांठ–गांठ कर डाली"***[123] वाली स्थिति का जो चित्रण खींचा था, उसे निराला ने बहुत पहले ही देख लिया था।

निराला के समय सन् 1936 ई0 में हिन्दी में प्रगतिशील आंदोलन आ चुका था। प्रगतिशील आंदोलन वामपंथ से अधिक जुड़ा था। किसानों, दलितों, वंचितों की बात करने में निराला प्रगतिशील अवश्य थे, और पूंजीपतियों पर गाज गिरानेवाले क्रांतिकारी भी, परंतु उस अर्थ में निराला वामपंथी नहीं थे, जैसा कि प्रगतिशील आंदोलन से संबंध रखनेवाले अधिकांश साहित्यकार थे। निराला ने 'कुकुरमुत्ता' कविता में कैपिटल और लेनिनग्राड यानी मार्क्सवाद और रूसी क्रांति को लेकर व्यंग्य किया है:– ***"सरसता में फ्राड के पीट्ल में जैसे लंनिनिग्राड।"***[124]

उसी प्रकार, 'कुकुरमुत्ता' और फिर 'बेला' में संकलित 'मास्को डायेलास' कविता में निराला जी गिडवानी जी जैसे 'सोश्यलिस्ट' जिनको हिन्दी ठीक से नहीं आती, पर उपन्यास लिखकर अमीर बनने का दिवास्वप्न देखते हैं, को आड़े हाथ लिया हैं। कैसे सोश्यलिस्ट हैं ये:–

"फिर कहा, वक्त नहीं मिलता है,
बड़े भाई साहब का बंगला बन रहा है,
देखभाल करता हूँ।
फिर कहा, 'मेरे समाज में बड़े–बड़े आदमी हैं

एक–से हैं' एक मूर्ख।
उसको फँसाना है।"[125]

यह है तथाकथित समाजवादियों का असली चेहरा। दूधनाथ सिंह ने सही लिखा है:– *"उनकी तीखी राष्ट्रीय चेतना और जन–मुक्ति के भीतर यही मानवीय नैतिकता का भाव है। गलती चाहे गाँधी जी की हो या दयानंद सरस्वती की या साम्यवादी रूस की–जो भी फ्राड रचता है, अभिसन्धि करता है, उस पर बेलाग वे झपट पड़ते हैं।.....इसलिए मेरा यह निश्चित मत है कि निराला को किसी भी राजनैतिक सिद्धांत के घेरे में नहीं अटाया जा सकता। उसके चरित्र और रचना–कर्म में कोई द्वैत नहीं है।"*[126]

निराला ने 1932 ई0 से लेकर 1935 ई0 तक रूस पर कई टिप्पणियाँ लिखीं जिसमें–'रूसः' रूस का राष्ट्रसंघ में प्रवेश; 'राष्ट्रसंघ में रूस', रूस की स्त्रियाँ आदि महत्वपूर्ण हैं। इन समान्त टिप्पणियों में निराला ने रूस की शिक्षा, सभ्यता, सदाचार, साम्यता, प्रगतिशीलता और समाजवादी दृष्टि की प्रशंसा की है। 'रूस' नामक टिप्पणी में निराला ने लिखा है:– *"गरीबों का आदर्श आज रूस ही हैं। रूस में जिस तरह एक दिन जनाधिकार प्रबल था, अनेक पर एक ही हुकूमत चलती थी, उसी तरह आज अनेक एक हो गए हैं। किसानों के सुख का स्वर्ग आज रूप ही है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ने रूस भ्रमण के अपने जो संस्मरण लिखे हैं, उनसे अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि रूस आज सभी दलित देशों का आदर्श है। वहाँ बड़प्पन के संस्कार की अब नहीं रह गए। दमन के दिनों में जिस साहित्य का निर्माण रूस में हुआ, वह प्राणशक्ति आज संसार–साहित्य में चेतना का संचार कर रही है। हमारे युवक–सम्राट वीर जवाहरलाल जी को भी रूस के किसानों के आदर्श पसंद हैं।"*[127] नेहरू जी समाजवादी विचारधारा और रूस के बहुत करीब थे। उपर्युक्त पंक्तियों में निराला ने 'बड़प्पन का संस्कार' के खत्म होने की बात की वही बात निराला नेहरू जी को भी समझाना चाहते थे।

ध्यातव्य है 'नेहरू से दो बातें' करते समय 'ब्रह्म का अर्थ' 'बड़ा' बतलाते हुए उसकी भौतिक नहीं, सूक्ष्मतम आध्यात्मिक दार्शनिक और

बृहत्तर व्याख्या की थी। निराला इसी ब्रह्म के बृहत्तर अर्थ को 'बड़प्पन के संस्कार मिटाने' में प्रयुक्त करना चाहते थे। नेहरू जी से निराला ने कहाः– *"यही दृष्टि जरूरी है। यही दृष्टि पतित का सार्वभौम सुधार कर सकती है। गुलामी की बेड़ियाँ काट सकती है। हिन्दू–मुसलिम को मिला सकती है–यह निगाह आज तक की तमाम रूढ़ियों से जुदा है।"*[128] यही तो समाजवाद है जो समता की भूमि पर सभी को जोड़ती है। शायद इसी कारण बेला में संकलित नये विचार के संसार में .. कविता में समाजवाद की प्रशंसा करते हुए निराला लिखते हैंः–

"नये विचार के संसार में आया है समी।
सही, चढ़ाव को उतार से लाया है समी।
पढ़े थे पैरों तले जो उन्हें किया है बड़ा
शरीर कैसा कि रग–रग में समाया है समी।"[129]

शायद, यही निराला का परिकल्पित समाज था यूं कहें सामाजिक समानता व मुक्ति का संकल्प था।

दूधनाथ सिंह का मानना है कि धीरे–धीरे निराला में 'गुलामी से मुक्ति की ललकार और आत्मबलिदान की उत्कट भावना मंद पड़ने लगती है। दरअसल इससे बाह्य आजादी या राजनीतिक आजादी पाई जा सकती थी, आतंरिक आजादी नहीं। इसलिए निराला आजादी को पहले व्यक्ति–स्वातंत्र्य से जोड़ते है, फिर सामाजिक संगठन से उन्होंने लिखा भी हैः– *"समय ऐसा आ गया है कि अब व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अपेक्षा संगठन शक्ति का महत्व ज्यादा हो गया है।"*[130] इसी संगठन शक्ति को 'जन मुक्ति' से जोड़ते हुए दूधनाथ सिंह ने निराला के बारे में लिखा हैः– *"वे इतिहास के उस गहरे नुक्ते पर उँगली रखते हैं, जहाँ बार–बार आजादी, धर्म, सभ्यता और संस्कृति के नाम पर जन–मुक्ति को झुठलाया जाता रहा है। अपनी रचनाओं द्वारा इतिहास की इस पुनरावृत्ति को वे देखना नहीं चाहते, इसलिए वे ललकार से जन–मुक्ति के मोर्चे पर आ खड़े होते हैं। उन्हें यह मुक्ति किसी समझौते में नहीं दिखाई देती, बल्कि 'हजारों हाथों के उठते हुए समर' में दिखाई देती है।"*[131] परन्तु, निराला जिस 'जन–मुक्ति' का समर लड़ रहे थे, वह हिन्दी भाषा द्वारा ही। निराला

मूलतः साहित्य–साधक थे, समाज–सुधारक नहीं। इसलिए निराला जानते थे कि हिन्दी प्रदेश का मुक्ति आंदोलन बिना हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाए पूरा नहीं हो सकता और देश की आजादी तथा जन–जागरण का रास्ता बिना भारतीय साहित्य के संरक्षण व उन्नयन के संभव नहीं। इसलिए निराला ने निःसंकोच भाव से लिखा– *"भारतीय स्वतंत्रता–साहित्यिक पूर्णता है, जिसके भीतर विश्व का समस्त साहित्य भरा जा सकता है। पीछे चलने पर, मन के उद्‌गम का पथ पकड़ने पर, सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। हम अभय होकर अपनी सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक तथा दूसरे देशों से और अच्छी तरह सुधार सकते हैं।"*[132]

निराला के चिंतन में व्यक्ति स्वातंत्र्य–सामाजिक मुक्ति से और सामाजिक मुक्ति–राष्ट्रीय आजादी से और राष्ट्रीय आजादी–साहित्यिक मुक्ति या बंधनहीनता से सम्बद्ध हैं। निराला के काव्य जगत को समझने से पहले उनकी रचनाओं और विचारों में हिन्दी भाषा व साहित्य से जुड़े प्रश्नों, सरोकारों और अस्मिता–बोध को समझना जरूरी है क्योंकि 'गहन है अंधकारा' में निराला जिस स्वार्थ आधारित बंधनों की बात करते हैं, वह निराला हिन्दी भाषा व साहित्य को लेकर किए गए विवादों व प्रश्नों में भी देख रहे थे। जिस प्रकार निराला अपनी रचना 'तुलसीदास' में 'गहन अंधकारा' तोड़ते हुए जागरण का संदेश देते है, वही निराला की काव्य–साधना का संदेश भी हैः जो अंधकार से प्रकाश की ओर गतिशील भी है और संकल्पवान भीः–

"जागो, जागो आया प्रभातः
बीती वह, बीती अंध रात
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचल
बाँधो, बाँधे किरणें चेतन
तेजस्वी है तमजिञ्जीवन
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।"[133]

(2) ''गए रूप पहचान'' : राष्ट्रभाषा हिन्दी की अस्मिता का प्रश्न और सृजनात्मकत–भाषा की खोज

"सुनी राष्ट्रभाषा की जब से भव्य मनोहर तान।
गिरी मोह–माया की निद्रा गये रूप पहचान।।

छिपी छुरी नीचों के छल में,
देख दम्भ दुष्टों के दल में,
बढ़ आगे, हो सजग भेद तू क्षण में नाम–निशान।
मिटी मोह–माया की निद्रा नये रूप पहचान।।"[134]

महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की यह कविता 'गए रूप पहचान' 'मतवाला' के 08 सितंबर,1923 ई0 के अंक में प्रकाशित हुई थी जो एक ओर हिन्दी के दुश्मनों और राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्थापना के विरोधियों को पहचानने की ओर इशारा करती है तो दूसरी ओर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने हेतु महाकवि के संकल्प को भी रेखांकित करती है। निराला के समय में हिन्दी के दुश्मन एक ओर अंग्रेज थे तो दूसरी तरफ कई राजनेता एवं अन्य प्रांतीय लोग भी थे। इसके अलावा खड़ी बोली हिन्दी का और भाषा के मानकीकरण का अपना अलग संघर्ष था।

हिन्दी प्रदेश के नवजागरण में सन् 1857 के बाद भारतेंदु हरिश्चंद्र के युग और पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग का प्रमुख योगदान है। इन दोनों युग में साहित्य व समाज के मध्य एक अक्षुण्ण संबंध बढ़ा तो एक नई प्रकार की राजनीतिक चेतना का भी निर्माण हुआ। किन्तु, ये दोनों युग मातृभाषा हिन्दी के उन्नयन व उसे साहित्य व समाज में प्रतिष्ठित करने के संकल्प से भी जुड़े थे। भारतेंदु का तो सूत्र वाक्य ही थाः–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।"[135]

हिन्दी भाषा के प्रचार व प्रसार के लिए भारतेंदु ने कई पत्र–पत्रिकाएं निकाली थी और सन् 1873 में घोषणा की–'हिन्दी नई चाल में ढली।' यह

युग हिन्दी गद्य के विकास का युग था। भारतेंदु युग में भी हिन्दी उर्दू विवाद गहरा था। सन् 1874 ई0 में भारतेंदु ने 'उर्दू का स्यापा' प्रकाशित कियाः–

"है है उर्दू हाय हाय! कहाँ सिधारी हाय, हाय।
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्लर हाय हाय।"[136]

भारतेंदु युग में देशभक्ति एवं राजभक्ति का स्वर मिला–जुला हुआ था। दूसरी ओर उस युग में हिन्दी गद्य के रूप में तो खड़ी बोली हिन्दी का विकास हुआ था, पर पद्य में ब्रज–भाषा आसीन थी। हिन्दी काव्य के रूप में खड़ी बोली और ब्रज भाषा का विवाद उसी युग से शुरू हो गया था। प्रेमधन जैसे लोग देवनागरी लिपि के विकास में ज्यादा तल्लीन थे। कोर्ट–कचहरी की भाषा उस समय फारसी बनी हुई थी। अंग्रेज हिन्दी को गंवारू बोली की तरह देखते थे। अंग्रेज 'फूट डालो और राज करो' की नीति पर विश्वास करनेवाले थे। फिर भी उस समय हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तान एक ओजस्वी मंत्र था।

द्विवेदी युग में हिन्दी भाषा का परिष्कार होना शुरू हुआ। द्विवेदी जी ने आधुनिक हिन्दी को ज्ञान–विज्ञान के विविध विषयों से जोड़ा। उन्होंने कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। अंग्रेजी राज में अंग्रेजी शिक्षा, मातृभाषा के प्रसार और संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को स्थापित करने और हिन्दी–उर्दू समानता आदि के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। सन् 1902 में 'कुमार सम्भव सार' रचना के द्वारा द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को काव्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। हालांकि उनके पहले श्रीधर पाठक सन् 1884 में 'श्रांत–पथिक' की रचना कर चुके थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन में द्विवेदी जी ने 'संदेश' रचना के द्वारा हिन्दी भाषा का संदेश सुनायाः–

"अर्थ यथार्थ मातृभाषा का यदि तुम सबने जाना है,
मेरे अंतर्गत भावों को यदि तुमने पहचाना है।
कई करोड़ बोलनेवाले हैं मेरे भारतवासी,
इत भागिनी हाय तिस पर भी मरती मैं भूखी–प्यासी।"[137]

स्पष्ट है कि यह हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का संदेश था। उस समय अंग्रेजी की जगह हिन्दी को राजभाषा या संपर्क भाषा बनाने के लिए राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गाँधी भी प्रतिबद्ध दिखने लगे थे। द्विवेदी जी ने सन् 1903 में ही 'देशव्यापक भाषा' नाम से निबंध लिखकर अन्य भाषाओं के अधिकारों की चर्चा करते हुए हिन्दी को देशव्यापक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का आग्रह किया। सन् 1919 ई0 में द्विवेदी जी ने अंग्रेजी के विरूद्ध तमिल की वकालत की थी और सन् 1923 के भाषण में हिन्दी की जातीय चेतना को स्पष्ट किया था। उस युग में कई लोग अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी ही नहीं, अन्य देशी भाषाओं को भी स्थान देने की मांग कर रहे थे। 'सरस्वती', 1917 ई0 में प्रकाशित माधव राव सप्रे के लेख 'राष्ट्रीयता की हानि का कारण' में इसी विषय को उठाया गया था। फरवरी, 1919 में द्विवेदी जी ने 'कांग्रेस में हिन्दी' निबंध लिखकर उन कांग्रेसी वक्ताओं की प्रशंसा की थी जिन्होंने हिन्दी मातृभाषा न होने पर भी हिन्दी में भाषण दिया था। जिस 'सरस्वती' पत्रिका को द्विवेदी जी ने 'साहित्य का ज्ञानकांड' बनाया था, उससे वे 1910 ई0 में जुड़े और सन् 1920 में अलग हुए। तब तक निराला 'जूही की कली' द्वारा साहित्य में कदम रख चुके थे और सन् 1920 में ही उनकी प्रथम काव्य रचना 'जन्मभूमि' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। निराला द्विवेदी जी की प्रतिभा के कायल थे। यह और बात है कि निराला की 'जूही की कली' जैसी मुक्त छंद की रचनाओं और बाद में छायावाद के प्रति भी द्विवेदी जी सहानुभूति नहीं रखते थे। फिर भी, निराला हिन्दी साहित्य में उनकी भूमिका को स्वीकार करते हुए लिखते हैंः– *"खड़ी बोली की कविता में प्राण–प्रतिष्ठा सौभाग्यवान आचार्य पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी ने की है। इनके प्रोत्साहन और स्नेह ने खड़ी बोली की कविता के प्रथम तथा दूसरे काल के कितने ही सुकवि साहित्य–सेवक उत्पन्न किए। ब्रजभाषा के पक्षपातियों से इन्होंने लोहा लिया और बड़ी योग्यता से अपने पक्ष को प्रबल करते गए। नवीन युवक–शक्ति इन्हीं के साथ सम्मिलित हो गयी और ईश्वर–दत्त इनका साधन भी उस काल में सबसे प्रबल रहा। आज 'सरस्वती' के जोड़ की हिन्दी में कई पत्र–पत्रिकाएं हैं, पर उस समय 'सरस्वती' ही हिन्दी की सरस्वती थी।"*[138] आगे चलकर निराला ने आचार्य

द्विवेदी को 'डी–लिट्' प्रदान करने का विरोध करनेवालों को आड़े हाथ लिया था। जुलाई, 1933 ई0 की अपनी एक टिप्पणी 'आचार्य अमर हो' में निराला द्विवेदी जी के संदर्भ में लिखते हैं:– *"वह तो अपने को राष्ट्रभाषा के विनम्र सेवक बतलाते हैं, राष्ट्रभाषा उन्हें अपना निर्माता कहकर पुकारती हैं। दोनों एक–दूसरे के अनन्य भक्त हैं, प्रगाढ़ प्रेमी हैं। हम दोनों के उपासक हैं। राष्ट्रभाषा हमें प्राणों से प्यारी है, आचार्य भी हमें उतने ही प्रिय हैं।"*[139] यहाँ हिन्दी और हिन्दी के निर्माता के प्रति एक अन्य हिन्दी के साधक का प्रेम व श्रद्धा देखने योग्य है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने द्विवेदी युग के संदर्भ में ठीक ही लिखा है:– *"इस युग की सही पहचान तभी हो सकती है जब हम एक तरफ गद्य और भारतेंदु युग से उसका संबंध पहचानें और दूसरी तरफ छायावादी युग, विशेष रूप से निराला के साहित्य से उसके संबंध पर ध्यान दें।"*[140]

कलकत्ता से प्रकाशित 'समन्वय' पत्रिका के मई–जून, 1923 के अंक में निराला जी का एक लेख प्रकाशित हुआ–'हिन्दी भाषा कैसी होनी चाहिए।' उक्त लेख में निराला जी हिन्दी के उद्भव पर चर्चा करते हुए संस्कृत व उर्दू से संबंधित इसका विवाद दर्शाया है। निराला जी ने लिखा है कि जब से हिन्दी में संस्कृत शब्दों की संख्या बढ़ने लगी, वह पण्डिताऊ हो गई और फिर 'इस गढ़ से बचने के लिए आधुनिक शिक्षा की रोशनी पाए कुछ लोग हिन्दी को जबरदस्ती फारसी–अरबी के विकट शब्दों से लादने लगे।' इससे हिन्दी–भाषी और उर्दू–भाषी जनसाधारण के बीच एक पहाड़ सा खड़ा हो गया। निराला जी उर्दू को क्लिष्ट और फारसी लिपि को कठिन मानते थे। उन्होंने हिन्दी में विदेशज शब्दों को अपनाने का विरोध नहीं किया,बशर्त्ते समय की गति देखकर उन बेढ़व शब्दों में उच्चारण व व्याकरण की दृष्टि से स्वाभाविक हेर–फेर कर 'देशज पोशाक' पहना दी जाए। उक्त लेख में हिन्दी भाषा के विकास के प्रति निराला जी का उदारवादी एवं समन्यवादी दृष्टिकोण झलकता है। उन्होंने आगे लिखा है– *"राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी को सरल और तेजस्वी होना चाहिए। भाषा भाव को प्रकट करने का एक साधन है। इसलिए सब प्रकार के उच्च भावों को प्रकट करने की शक्ति हिन्दी में होनी चाहिए। यदि उसमें किसी नए उच्च भाव के लिए उचित शब्द न हो तो उसे गढ़ लेना चाहिए। पहले*

संस्कृत के खजाने से, फिर उसमें न मिलने पर किसी प्रांतीय भाषा से–क्योंकि प्रांतीय भाषाओं की चर्चा देश में होती ही रहेगी और इसी से वे उतने कठिन मालूम न होंगे–और अन्त में फ़ारसी, अंग्रेजी और विदेशी भाषाओं से। इसमें सरलता और उपयोगिता का ध्यान रखना होगा। आपस की फूट बढ़ाना बुद्धि का काम नहीं।"[441] स्पष्ट है कि निराला 'व्यर्थ की मनमानी हाँकने' के बदले विभिन्न प्रांतवासियों का ध्यान रखते हुए हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए हिन्दी प्रेमियों को प्रेरित कर रहे थे।

'समन्वय' में ही सितम्बर–अक्टूबर, 1923 ई0 में निराला का दूसरा लेख प्रकाशित हुआ–'भाषा की गति और हिन्दी की शैली'। उक्त निबंध में निराला ने हिन्दी भाषा में प्रयुक्त विराम चिह्नों से प्रांतीय लोगों को हिन्दी पढ़ने में होनेवाली असुविधा का जिक्र किया है और 'जीवन को कर्मयुद्ध' करने और भाषा की गति बढ़ाने के लिए अधिकाधिक विराम चिह्नों एवं उच्चारण में कठिन शब्दों के प्रयोग करने पर बल दिया है। निराला 'हिन्दी को संस्कृत की जेठी लड़की' बताए जाने की धारणा का बहुत पक्ष नहीं लेते। उनका मानना है कि 'संस्कृत और देहाती प्रचलित शब्दों द्वारा उर्दू का नवीन संस्कार कर हिन्दी का उद्धार किया गया है। केवल संस्कृत प्रचुर हिन्दी का कोई इस्तेमाल नहीं करता, प्रांत की मातृभाषा के शब्द उसमें आते ही हैं। निराला की कविताओं में देंखे तो एक ओर 'राम की शक्ति–पूजा' जैसी संस्कृत–प्रचुर हिन्दी मिलेगी तो दूसरी ओर देशज संस्कार से रंगी 'कुकुरमुत्ता' और 'नए पत्ते' की कविताएँ। दूसरी ओर निराला ने उर्दू में हिन्दी का पुट देकर गजलों में भी हाथ आजमाए थे। 'भाषा की गति और हिन्दी की शैली' निबंध में निराला ने हिन्दी भाषा के शब्द–भंडार और साहित्य के भाव–भंडार हेतु बड़े ही रोचक ढंग से कई निर्देश दिए हैं। दो उदाहरण दृष्टव्य हैं:–

(क) *"माल की तरह किसी भी भाव की पूर्ति भाषा की थैली में भरकर की जाती है। जिस भाषा के तहखाने या मालखाने में पूंजी या रकम कम होती है या उसके मालिक चतुर नहीं होते या बनिये डांडी मारना नहीं जानते–हाथ की सफाई नहीं दिखाते, वे अक्सर घाटा ही उठाते हैं; वहाँ धर्म ढकोसला कहलाता है–बुद्धिमान जन आँखों*

में धूल तो झोंक ही जाते हैं किन्तु एक नसीहत भी जिन्दगी–भर याद रखने के लिए छोड़ जाते हैं और यह कि घर का जला, बेशऊर नाम ऊपर से पड़ा। अतएव जब तक जीवित रहने के लिए संसार के प्रत्येक कर्म–चतुर मनुष्य और उसकी भाषा से हमें नाता नहीं तोड़ना है तो हमें उसकी भाषा की प्रगति पर भी वही नजर रखनी चाहिए जो एक जौहरी हीरे पर रखता है।[142]

(ख) *"विदेशियों की बनायी हुई ऐसी बहुत–सी चीजें हैं–शिक्षा की बहुत–सी शाखाएँ हैं जिन्हें अपनाइए तो विदेशी शब्दों को ही साहित्य में जगह देनी पड़ेगी। बंगाल ने ऐसा ही किया है। हिन्दी के लेखक भी अब इस उपाय का आदर करने लगे हैं। यह उपाय स्तुत्य है। हर एक भाषा की उन्नति इसी प्रकार हुई है। लोटे और लंगोटे के अतिरिक्त तीसरा शब्द संभव है, संन्यास –जीवन के लिए हानिकारक हो परंतु भोग की जन्मभूमि गृहस्थाश्रम के लोग काव्य, नाटक, उपन्यास आदि जिनके मनोविनोद की सामग्री है, यदि संसार के संग्रहणीय योग्य भावों तथा ज्ञातव्य विषयों का संचय न करके केवल सत्तू से ही संतुष्ट रह जाएँ तो परमात्मा जाने, साहित्य के उन्नयन का दूसरा कौन–सा उपाय है?*[143]

दोनों उदाहरण से स्पष्ट है कि निराला भाषा व साहित्य के विकास की दृष्टि से प्रांतीय एंव विदेशीय शब्दों व भावों को अपनी भाषा व साहित्य में संस्कार करना बुरा नहीं समझते थे।

'सुधा' के जून, 1930 के अंक में निराला जी की दो महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ प्रकाशित हुई जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने को लेकर उनके संकल्प को प्रकट करती हैं। ये दो टिप्पणियाँ थीं–'राष्ट्रभाषा का प्रश्न' और 'भारत की राष्ट्रभाषा'। निराला जी का मानना था कि 'राष्ट्रीयता की भावना के उदय के साथ–साथ राष्ट्रभाषा का प्रश्न आप से आप खड़ा होता है। निराला जी ने भारतीय संस्कृति को ध्वस्त करने में अंग्रेजों की भूमिका को बखूबी पहचाना। 'राष्ट्रभाषा का प्रश्न' टिप्पणी में उन्होंने यह बतलाया कि अंग्रेजों ने जहाँ–जहाँ व्यापार फैलाया, वहाँ अपना धर्म और अपनी भाषा भी फैलायी। परंतु, यूरोप के कई देश ईसाई होने के बावजूद इंग्लैंड की भाषा

से दूर ही रहे। परंतु, एशिया व अफ्रीका के देश इंग्लैंड की संस्कृति–विरोधी नीति के झांसे में आ गए। निराला जी लिखते हैं– *"अंग्रेजों की नीति हुई भारत के इतिहास को विकृत कर दो, और हो सके, तो उसकी भाषा को मिटा दो। चेष्टाएँ की जाने लगी। भारतीय सभ्यता और संस्कृति तुलना में नीची दिखायी जाने लगी। हमारी भाषाएँ गँवारू, असाहित्यिक और अविकसित बताई जाने लगी। हमारा प्राचीन इतिहास अंधकार में डाल दिया गया। बाकायदा अंग्रेजी की पढ़ाई होने लगी।"*[144] अंग्रेज अपनी भाषा के पक्ष में यह तर्क देते थे कि भारतवर्ष में हर प्रांत की अपनी भाषा है और छोटी–छोटी भाषाओं से देश उन्नति नहीं कर सकता, इसलिए सबको अंग्रेजी पढ़नी चाहिए। परंतु, बंगाल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और स्वामी दयानंद सरस्वती आदि विचारक अपनी सभ्यता व संस्कृति की रक्षा में आगे आए। अब प्रश्न अंग्रेजी के विरूद्ध अपनी प्रांतीय भाषा की रक्षा का बन गया। निराला अंग्रेजों की उस नीति को देख रहे थे जिसमे अंग्रेज प्रांतीय भाषाओं को गंवारू, असाहित्यिक और अविकसित बता रहे हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा ने इस ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा हैः– *"निराला ने साम्राज्यवाद की कुटिल नीति बारे में जब यह लिखा था, तब उनका ध्यान केवल हिन्दी की ओर नहीं था, वह समस्त भारतीय भाषाओं की बात कर रहे थे।"*[145] दरअसल राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति के साथ प्रदेशों की जनता भी अपनी भाषा व संस्कृति के प्रति जागरूक हो रही थी। इसी बीच कुछ लोगों ने यह तर्क दिया कि प्रांतों का विभाजन भाषा के आधार पर हो अलग–अलग प्रांत अपनी प्रांतीय भाषा का विकास करें। हिन्दी के क्षेत्र से डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा भी यही तर्क दे रहे थे। इसी संदर्भ में निराला का मानना था कि इससे विभिन्न प्रांतों के विश्वविद्यालय अपनी भाषा को ही महत्व देंगे, इससे राष्ट्रभाषा का प्रश्न हल नहीं होगा। उन्होंने 'भारत की राष्ट्रभाषा' नामक टिप्पणी में लिखा हैः– *"प्रांतों का विभाजन केवल भाषा के आधार पर हो, हम नहीं मानते और इसे बहुत कुछ अव्यवहार्य भी समझते हैं। पर यहाँ हमको इस मतभेद से कोई मतलब नहीं। यह तो भविष्य की राजनीतिक परिस्थिति पर निर्भर है। क्या होगा, अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। पर प्रांतों की संकीर्ण घेरे में भाषाओं को बाँट देने से राष्ट्रभाषा का प्रश्न हल नहीं होगा।.....साहित्यिक*

उत्कर्ष के साथ ही भावों के सार्वदेशिक सुगम विनिमय का ध्यान रखना पड़ेगा और यही राष्ट्रभाषा का प्रश्न है।[146] निराला विभिन्न प्रांतीय नेताओं को यह बतलाना चाहते थे कि 'साहित्यिक उत्कर्ष और भावों की सुगमता' की दृष्टि से हिन्दी राष्ट्रभाषा बनने के योग्य है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के विरोध में विभिन्न प्रांतों से विशेषकर बंगाल से कई आवाजें उठ रही थीं। निराला जी ने 'सुधा' के 16 जुलाई, 1934 के अंक में इस विषय पर एक टिप्पणी दी– 'हिन्दी भाषा के संबंध में बंगाली मनोवृत्ति।' उक्त निबंध में उन्होंने बंगाल की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'विचित्रा' में प्रकाशित श्री सुशील कुमार बसु नामक एक बंगाली सज्जन के विचार पर अपनी सम्मति दी है। श्री सुनील कुमार बसु का मानना था कि हिन्दी भाषियों की संख्या बंगला–भाषियों की अपेक्षा भी कम है और यह केवल महात्मा गाँधी जैसे नेताओं के प्रताप से राष्ट्रभाषा होने का दावा पेश कर रही है। उनका मानना था कि यदि बंगाली नेता चाहते तो बंगला भाषा का अधिकार प्रतिष्ठित करने की चेष्टा कर सकते थे। दरअसल बसु महोदय को न प्रांतीय भाषाओं का ठीक से ज्ञान था, न ही हिन्दी भाषा की विभिन्न उपबोलियों का। इस संदर्भ में निराला लिखते हैंः– *"बसु महोदय ने हिन्दी के टुकड़े–टुकड़े कर डाले हैं और उनका कथन है कि वह सब अंग एक–दूसरे से भिन्न है, जबकि वास्तव में वे परस्पर घुले–मिले हुए है। उनकी राय में पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी से भिन्न है। बिहारी हिन्दी के अंतर्गत नहीं है, वरन् संपूर्ण स्वतंत्र भाषा है, एवं हिन्दी की अपेक्षा बंगला के साथ ही उसका संपर्क अधिकार है। और, हिन्दी के साथ उर्दू का पार्थक्य इतना अधिक है कि हिन्दी सीखकर कोई सहसा उर्दू समझने में समर्थ नहीं हो सकता। इस प्रकार यह हिन्दी की दीनता सिद्ध करना चाहते हैं।*[147] दरअसल श्रीमान् बसु डॉ0 ग्रियर्सन और डॉ0 सुनीति कुमार चाटुर्ज्या जैसे विद्वानों द्वारा भ्रामक ज्ञान फैलाए जाने के शिकार थे। वे दोनों भी अवधि, भोजपुरी, मैथिली आदि को हिन्दी से अलग स्वतंत्र भाषा के रूप में देखते थे। हलांकि, दोनों ने सरल हिन्दी को देश में सबसे ज्यादा समझे जाने वाली भाषा स्वीकारा था।

बंगालियों की तरफ से दूसरा आक्षेप हिन्दी की साहित्यिक उत्कर्षता को लेकर भी था। भरतपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए उसके साहित्य की श्री–वृद्धि करने और उसे आकर्षक व सर्वग्राही बनाने पर जोर दिया था। रवि बाबू की सलाह या यूं कहें आक्षेप का उत्तर देते हुए निराला ने 'भारत की राष्ट्र–भाषा' नामक टिप्पणी में लिखाः–*"रवि बाबू भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि और साहित्यिक हैं, इसलिए उन्होंने राष्ट्र–भाषा के प्रश्न को भी साहित्यिक दृष्टि से देखा तो आश्चर्य नहीं। पर जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, साहित्य और भाषा का प्रश्न बहुत कुछ एक होते हुए भी बहुत कुछ अलग भी है। बंगला का आधुनिक साहित्य बहुत कुछ उच्च कोटि का बतलाया जाता है, पर बंग भाषियों की संख्या में इस कारण कुछ विशेष वृद्धि हो गयी हो, यह बात शायद नहीं है। साहित्यिक उत्कर्ष की ओर थोड़े से विद्वानों का ही ध्यान रहता है, भाषा के सामूहिक प्रचार में वह कम ही सहायक होता है।"*[148] यहाँ निराला रवि बाबू के प्रति आदर व श्रद्धा का भाव रखने के कारण उनका कठोर विरोध नहीं कर सके। किंतु, जब कुछ ऐसा ही प्रश्न 'विचित्रा' में श्री सुनील कुमार बसु महोदय ने उठाया तो उसका दो टूक शब्दों में उत्तर देते हुए निराला ने 'हिन्दी भाषा के संबंध में बंगाली मनोवृत्ति' नामक टिप्पणी में लिखाः–*"भारतवर्ष के लिए एक साधारण और चलित भाषा का निर्वाचन करते समय यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि भारत की प्रधान भाषाओं में साहित्यिक उत्कर्ष किसका बड़ा है। इस विषय में हिन्दी किसी प्रांतीय भाषा के पीछे नहीं है। यद्यपि हम मानते हैं कि बंगला–साहित्य कई दृष्टियों में औरों की अपेक्षा उत्कृष्ट है, परंतु प्राचीन हिन्दी साहित्य का मुकाबला बंगला नहीं कर सकती। ब्रजभाषा का प्रभाव वैष्णव कवियों पर काफी पड़ा है। बंगाल में एक रवीन्द्र नाथ हैं, हिन्दी में तुलसी, सूर, कबीर तीन हैं।"*[149] यहाँ निराला का अपनी जातीय भाषा हिन्दी के प्रति गुमान बोल रहा था। यहाँ एक और प्रसंग का जिक्र करना होगा कि सन् 1930 के हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता वाले आयोजन में बंगाली विद्वान जे. एम. सेनगुप्त ने भाषण दिया था। निराला उस सम्मेलन में गए थे। निराला को वह भाषण 'गुरूर से भरा' और 'बंगाल की उच्चता से अहंकृत' दिखा था। सेनगुप्त साहब भी

बसु की तरह हिन्दी को महात्मा गाँधी की कृपा द्वारा ही राष्ट्रभाषा तक पहुँचता हुआ देख रहे थे। निराला को यह बहुत चुभा। उन्होंने इसका प्रतिवाद करने के लिए वहां कुछ बोलने का समय मांगा, पर उन्हें नहीं दिया गया। इसका कारण था कि आयोजन बंगाल में हो रहा था और अधिकारियों पर बंगला और बंगलावासियों का प्रभाव व दबाव था, दूसरी ओर हिन्दी–ज्ञान की शून्यता से रहित थे। इस संदर्भ में एक इंटरव्यू में निराला ने कहा हैः– *"उन्होंने किसी सभ्यता के ख्याल से मुझे नहीं रोका, बल्कि डर से रोका। यहाँ मैं स्पष्ट रूप से समझा कि हिन्दी कुछ असाहित्यकारों के हाथ की पुतली है–वह भक्तों के हृदय की सप्राण देवी नहीं। लेकिन इसका जवाब मैंने दिया, बंगीय साहित्य–परिषद में।"*[149] निराला जैसे हिन्दी के भक्त हिन्दी को इन्हीं 'असाहित्यिकों के हाथों की पुतली' से मुक्त कराना चाहते थे। बंगीय साहित्य परिषद् में अमृतलाल चक्रवर्ती ने हिन्दी के विषय में बंगला में बोला और पुरुषोत्तम दास टंडन जी ने 'मॉर्डन रिव्यू' के संपादक बाबू रामानंद चट्टोपध्याय द्वारा हिन्दी पर लगाए गए आरोपों का हिन्दी में उत्तर दिया। वहाँ पुरुषोत्तमदास टंडन की स्वीकृति से निराला ने 'तद्युगीन बंगला में, प्राचीन हिन्दी और नवीन बंगला' पर वक्तृता की और उच्चता में दोनों को बराबर ठहराया। निराला जी के भाषण और उनकी विशुद्ध बंगला के उच्चारण की बड़ी प्रशंसा हुई और इसे हिन्दी भाषा मात्र के महत्व के रूप में देखा गया। निराला जी बंगाल से जुड़े थे और बंगला परिधान भी धारण करते थे। बंगला से उनका कोई वैर भाव न था। नरोत्तम दास को दिए गए इंटरव्यू में उन्होंने कहा थाः– *"बंगीय साहित्य परिषद विरोधी प्लेटफार्म नहीं था। वह वास्तव में सरस्वती–मंदिर कहे जाने योग्य है और सरस्वती के उपासक किसी भी भिन्न वाणी की अवहेलना नहीं कर सकते।"*150 निराला और रवीन्द्रनाथ दोनों सरस्वती के सच्चे साधक थे। रवि बाबू हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का विरोध नहीं कर रहे थे तो निराला भी बंगभाषी परिषद् या बंगभाषियों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते थे।

निराला का मानना था कि बंगालियों ने सर्वप्रथम अंग्रेजी पढ़ी और सभ्य कहलाए और उनमें प्रांतीय संकीर्णता ज्यादा है। बंगाली लोग खुद को बंगाली और शेष भारतीय को ही 'हिन्दोस्तानी' के रूप में देखते थे।

निराला इसमें अर्ध–शिक्षित बंगालियों को ही ज्यादा संकीर्ण भाव वाला देखते हैं जो बंगाली को राष्ट्रभाषा मानने का दावा रखते थे। पर, निराला मानते थे कि सभी बंगाली ऐसे नहीं हैं। 'प्रबुद्ध भारत' में प्रकाशित एक आलेख में प्रसिद्ध बंगाली विद्वान स्वामी माधवानंद ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए कुछ तर्क दिए थे। निराला उस लेख को कट्टर बंगालियों को पढ़ने की सलाह देते हैं। उनके विचारों को संक्षेप में निराला ने इस प्रकार प्रकट किया हैः– *"हम राष्ट्र–भाषा के लिए उसी भाषा को चुने जो सरलता से सीखी जा सके, सहज में जिसका उच्चारण किया जा सके, जिसका अधिक प्रचार और प्रचलन हो, जिसे इच्छानुसार प्रयोग कर सकें और जिसका साहित्य संपन्न हो। यदि हम इन पाँच दृष्टियों से देखें तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनने की सबसे अधिक अधिकारिणी है।"*[151] दरअसल, यह स्वयं निराला का भी विचार था। हिन्दी भाषा पर लिखे अपने पहले ही आलेख 'हिन्दी भाषा कैसी होनी चाहिए' में निराला ने लिख दिया थाः– *"भारतवर्ष में आजकल जितनी भाषाएँ प्रचलित है, उनमें से हिन्दी का स्थान, व्यापकता की दृष्टि से सबसे ऊँचा है। और भी कई कारणों से हिन्दी भारतवर्ष भर की राष्ट्रभाषा होना चाहती है जिनमें एक तो उसका उच्चारण है जो अक्षरों के ही अनुरूप है। दूसरा कारण उसका आसानी से बोध होना है। दक्षिण भारत को छोड़कर भारत के प्रायः सभी प्रांतों में हिन्दी थोड़ी–बहुत समझी ही जाती है और हमें पूरा विश्वास है कि थोड़ा प्रचार होने पर दक्षिण–देश में भी वह सहज ही लोगों की समझ में आ जाएगी।"*[152]

बंगालियों या कतिपय दक्षिण–राज्य के लोगों के अलावा हिन्दी को चुनौती संस्कृत और उर्दू से भी थी। अंग्रेजी के विरूद्ध में कुछ लोग झोंक में संस्कृत को सामने रख उसे राष्ट्रभाषा बनाने की वकालत कर रहे थे। पर, निराला जी ने स्पष्ट कर दिया– *"संस्कृत कभी इस देश के जन–समाज की बोल–चाल की भाषा रही है, इसमें संदेह है। कुछ विद्वान इसे केवल साहित्य की भाषा स्वीकार करते हैं, और कुछ इसे किसी काल की प्रादेशिक भाषा बतलाते हैं। इसका प्रयोग शिष्ट जन ही करते हैं। वह संस्कृत अब हमारे घरों में बोली जाय, इस बात में प्राचीन–प्रियता, स्वदेश–प्रेम आदि चाहे जितना हो, पर भाषाशास्त्र के व्यावहारिक नियमों*

के सामने यह ठहर नहीं सकती।"[153] जहाँ तक हिन्दी–उर्दू विवाद का प्रश्न है, निराला बोलचाल की दृष्टि से उसमें कोई विशेष भेद भी नहीं मानते थे। निराला के समय कुछ लोग ऐसे थे जो हिन्दी–उर्दू विवाद को देखते हुए समझौतावादी दृष्टि से 'हिन्दुस्तानी' भाषा को आगे कर रहे थे। प्रेमचंद जी ने भी अपने एक लेख 'उर्दू' हिन्दी और हिन्दुस्तानी' में लिखा हैः– *"जो हो, भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा न तो उर्दू ही है और न हिन्दी बल्कि वह हिन्दुस्तानी है जो हिन्दुस्तान में समझी जाती है और उनके बहुत बड़े भाग में बोली जाती है, लेकिन फिर भी लिखी नहीं जाती।"*[154] प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य जीवन की शुरूआत उर्दू लेखन से ही की थी, अतएव उनका दृष्टिकोण हिन्दुस्तानी के प्रति उदार होना स्वाभाविक है। दरअसल उस समय जो हिन्दुस्तानी भाषा कही जा रही थी, वह नई पोशाक में आई उर्दू जबा़न ही थी। उदाहरण के लिए खड़ी बोली हिन्दी आंदोलन के सबसे बड़े प्रणेता अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'खड़ी बोली का पद्य' में अपने आदर्श राय सोहनलाल जी की 'हिन्दुस्तानी शैली' में रचित कविता प्रस्तुत की है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैंः–

"जमीं नूर और आसमां नूर था।
समा एक अनोखा बना नूर था।
हूनर का जिसे देख उड़ जाए रंग।
समझ सामने जिसके हो जाए ढंग।"[155]

यहाँ 'हिन्दुस्तानी शैली' में लिखी कविता 'उर्दू की नई पोशाक' नहीं थी और क्या थी? अकारण नहीं है कि उस समय के हिन्दी के सबसे बड़े आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने राजनीतिक और हिन्दू–मुस्लिम एकता की दृष्टि मात्र से ही 'हिन्दुस्तानी' को जोड़ते हुए अपने एक लेख 'हिन्दी और हिन्दुस्तानी' में भारतीय जनता को आगाह करते हुए लिखा– *"इस हिन्दुस्तानी का समर्थन कुछ उदार समझे जाने वाले मुसलमान और उर्दू के गोद में पले हिन्दू भी कर रहे हैं। हम भोली–भाली जनता को 'हिन्दुस्तानी' से सावधान करना अत्यंत आवश्यक समझते हैं। जो हिन्दुस्तानी इन लोगों के ध्यान में है, वह थोड़ी छनी हुई उर्दू के सिवा और कुछ नहीं हैं।"*[156]

निराला हिन्दी और हिन्दुस्तानी के विवाद में बहुत दूर तक नहीं पड़े। हाँ! इतना अवश्य है कि उन्होंने 'सुधा' के अगस्त, 1932 के अंक में एक टिप्पणी लिखी–'हिन्दी का रूप और प्रभाव' जिसमें उन्होंने डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी के 'विशाल भारत' में प्रकाशित, 'कलकत्ते की बाजारी हिन्दुस्तानी' का संदर्भ दिया है। उक्त टिप्पणी में निराला 'हिन्दुस्तानी' पर विचार करते हुए लिखते हैं:– *"हम इस बिगड़ी हुई हिन्दी के एक खास कारण पर पहुँचना चाहते हैं, जिसका सूत्र–रूप से डॉ0 चटर्जी साहब ने स्वयं भी उल्लेख किया है कि यहाँ की हिन्दुस्तानी असल में पूर्वीय युक्त प्रदेश और बिहार के निखर जनसाधारण की व्याकरणहीन हिन्दी है जिस पर बंगला के उच्चारण, शब्दों और मुहाविरों का रंग चढ़ा है। दूसरा कारण जो आपने बतलाया कि शुद्ध हिन्दी भाषा से बाजारी हिन्दुस्तानी का अंतर बोलनेवाले की मातृभाषा और उसके हिन्दी–ज्ञान के परिमाण के अनुसार घटा–बढ़ा करता है, यह भी बहुत दुरूस्त है।.....हिन्दी के इस वर्तमान रूप का कारण, हम जहाँ तक समझते हैं, हिन्दी है या उर्दू है। हिन्दी पर हमने इसलिए जोर दिया कि बहुत से लोग हिन्दी के इस रूप को हिन्दी के प्रथम चरण से ही साबित करते हैं और उर्दू बनी भी, तो हिन्दी का मुख्य आधार लिया गया।..... हिन्दुस्तानी के व्याकरण की जटिलता उसके शब्दों की विभिन्नता और मुहाविरों की बाहुल्यता आदि के कारण हिन्दुस्तानी सीखना फारसी सीखने से कहीं अधिक कठिन है।"*[157] उपर्युक्त वाक्य में निराला द्वारा हिन्दी व उर्दू में 'अधिक फर्क न देखना' द्रष्टव्य है। दूसरी बात कलकत्ते की 'हिन्दुस्तानी' भाषा बंगला के रंग से रंगी थी। हाँ! निराला ने यह जरूर माना कि ऐसी हिन्दुस्तानी सीखना फारसी सीखने से भी कठिन है।

कुछ लोग हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए 'हिन्दी' की जगह 'हिन्दवी' शब्द को प्रयुक्त करने की वकालत कर रहे थे। ध्यातव्य है 'हिन्दवी की हिन्दुई, जवान–ए–हिन्द, देहलवी नामों से भी पुकारते थे। सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने मध्य देश की भाषा के लिए 'हिन्दवी' का प्रयोग किया था और उसके प्रचार के लिए एक फारसी–हिन्दी कोश 'खालिक बारी' की भी रचना की थी। 'हिन्दवी' को हिन्दी व उर्दू दोनों के जनक के रूप में देखा जाता है क्योंकि तेरहवीं से अठारहवीं सदी तक हिन्दी–उर्दू में कोई

मौलिक भेद नहीं था। उर्दू के बड़े लेखक उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक अपनी भाषा को हिन्दी या हिन्दवी ही कहते रहे। आचार्य शुक्ल का भी मानना था कि *"उर्दू को एक नई भाषा बतलाना भ्रम है, वह यथार्थ में फारसी, अरबी मिश्रित खड़ी हिन्दी है।"*[158] आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी और हिन्दुस्तानी' लेख में उर्दू काव्यधारा का विकास दिखाते हुए स्पष्ट किया है कि दक्खिनी हिन्दी से उर्दू का घनिष्ठ संबंध है। पहले उर्दू कवियों में ब्रज भाषा का पुट था, बाद में लखनऊ संप्रदाय के कवि नासिख ने 'उर्दू' नाम से एक अलग भाषा बना ली। निराला 'वैदान्तिक ज्ञान साम्य' के सूत्र से राष्ट्रभाषा के लिए 'हिन्दवी' शब्द तक पहुँचते हैं और यह विश्वास रखते हैं कि विचारवान राष्ट्रीय भाववाले मुसलमानों को 'हिन्दवी' नाम से राष्ट्रभाषा बनाने में कोई आपत्ति नहीं होगी। हलाँकि उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दियाः– *"हिन्दू शब्द से 'हिन्दवी' में कोई फर्क नहीं। सिवा इसके प्रथमोक्त शब्द प्राचीन अनेक संस्कारों, अनेक ऐतिहासिक तथा राजनीतिक घृणाओं और आपत्तियों से मिला हुआ, दूसरों को दिया हुआ जातीय शब्द है और शेषोक्त सुधार के शंखनाद से भरा हुआ, तमाम भेदों को दूर करने की ध्वनि करता, अपनी ही मौलिकता से चमकता हुआ शब्द। यदि इससे अच्छा और व्यापक तथा सुरूचि–संयुक्त दूसरा शब्द कोई गढ़ा जो सके, जो राष्ट्रभाषा के महत्व की रक्षा करता हुआ राष्ट्र को एक ही भाव की रज्जू से बाँध सकता हो, तो हमें उसे मान लेने में कोई ऐतराज नहीं।..... भारती या भारतीय भी एक शब्द हो सकता है।"*[159] स्पष्ट है कि निराला शब्दों के हेर–फेर में ज्यादा पड़नेवालों में से नहीं थे। चाहे राष्ट्रभाषा को हिन्दी कहे, 'हिन्दवी' कहे, 'भारती' कहे या 'भारतीय' कहें, बस उसे पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने की शक्ति होनी चाहिए। यहाँ 'भारती' शब्द गौर–ए–मतलब है। इस दृष्टि से निराला की कविता 'भारति' जय विजयकरे' न केवल भारत–प्रेम, जन्मभूमि प्रेम की ही कविता नहीं, हिन्दी की भी साधना है। कविता की अंतिम पंक्ति 'शतमुख– शतरव–मुखरे' में कई संभावनाएँ छिपी हुई है। भारती माँ सरस्वती को भी कहते हैं और इसका विराट रूप 'नये पत्ते' की 'देवी सरस्वती' कविता में दिखता है जहाँ कवि हिन्दी के सभी महान कवियों–सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, दादू सबको याद करते हैं और देवी सरस्वती के प्रति लिखते हैंः–

"भारत की प्रांतीय
सभ्यता का आलेखन
राजनीति का जीवन
जगती का सम्मोहन।"[160]

यह हिन्दी के लिए भी सत्य है।

हिन्दी भाषा की कई बोलियाँ हैं। उसमें से खड़ी बोली हिन्दी को हिन्दी का मानक रूप माना जाता है। खड़ी बोली हिन्दी का क्षेत्र दिल्ली और उसके आसपास का मेरठ, मुजफ्फरनगर आदि का इलाका आता है। निराला देख रहे थे कि कुछ लोग दिल्ली के आसपास की भाषा को हिन्दी का यथार्थ रूप मानते हैं और अन्य प्रांतों के शब्दों को भाषा में स्थान देना उचित नहीं समझते। इस संदर्भ में निराला ने 'भाषा की गति और हिन्दी की शैली' निबंध में लिखा है:– *"उर्दू–फारसी के चिरकाल पड़ोस पर रहने की वजह, दिल्ली की सरहद की जवान पर असर पड़ा, उसे कोई दिल्ली निवासी या उसका पक्ष लेनेवाला भक्ति की सहज प्रेरणा से भविष्य राष्ट्रभाषा का सार्वभौमिक रूप भले ही दे डाले, परन्तु कोई साहित्यिक निगरानी के लिए जब हिन्दी का साहित्य–भंडार टटोलता है तब ग्रन्थ–महोदधि से निकले हुए रत्नों में से एक–तिहाई बंगोपसागर के और एक–तिहाई अरब समुद्र के गुजरात और महाराष्ट्र उपकूल के चुने हुए दिखते हैं और रहे–सहे एक–तिहाई रत्न आर्यों के आदिम आलय से आरंभ करके मुक्त वेणी के छोर तथा उत्तर–दक्षिण सभी भू–भागों में बिखरे हुए। फिर भी हमें, दिल्ली के इलाके में न तुलसी मिलते हैं और न हरिशचंद्र। अस्तु, हमारे बिना जाने ही जब कि हमारी भाषा ने इतना विस्तार कर लिया, तो उस पर प्रांतीयता का इलज़ाम न लगना चाहिए और जब कि राष्ट्रभाषा से प्रांतवासियों का अविच्छेद्य संबंध है।"*[161] दरअसल, निराला को अपनी साहित्यिक विरासत, पुराने–कवियों पर बहुत गर्व था। इसके अलावा उन्हें अपने प्रांत उत्तर प्रदेश से भी बहुत लगाव था। अकारण नहीं है कि महात्मा गाँधी जी द्वारा यू.पी. वालों द्वारा हिन्दी लेखन में की जाने वाले अशुद्धियों का जिक्र करते हुए निराला यू.पी. वालों को शर्म करने और 'यू. पी.एन.' की रक्षा की बात करते हैं। फिर भी, उन्होंने माना कि स्वामी

विवेकानंद ने यदि राजधानी की भाषा अर्थात् कलकत्ते की भाषा को ही बंगला के लिए शुद्ध रूप कहा है, तो उस आधार पर भारत की राजधानी दिल्ली के आस–पास की भाषा को हिन्दी का शुद्ध रूप मानने से इंकार नहीं करते; हलांकि उन्होंने यह भी लिखाः–*"दिल्ली राजधानी है, लखनऊ भी अपनी शान में अद्वितीय। उर्दू के अनुकरण या हिन्दी के वैशिष्ट्य के कारण दिल्ली और लखनऊ के दोनों स्कूल मान्य हैं। खड़ी बोली का मार्जन करनेवाले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी लखनऊ स्कूल के ही अंतर्गत आते हैं। इसलिए लखनऊ और दिल्ली की साहित्यिक हिन्दी सभ्य जनों का आदर्श है, हो भी रही है।"*[162] यहाँ भी, निराला हिन्दू–मुस्लिम एकता और हिन्दी को संपर्क भाषा बनाने के लिए समझौतावादी दृष्टिकोण रखने की ही माँग कर रहे हैं।

समझौते वाली बात निराला 'गाँधी जी से बातचीत' इंटरव्यू आधारित लेख में फिर से उठाते हैं। उन्होंने कहाः–*"मैनें जो निरपेक्ष ज्ञान की बात कही है, निरपेक्ष ज्ञान के साथ वस्तुओं और विषयों की यही सापेक्षता सिद्ध होती है–उस निरपेक्षता में सामयिक वस्तु और विषय जहाँ तक पहुँचते हैं, वहाँ हिन्दू और मुसलमान का सवाल नहीं, वहाँ भाषा भी वाह्य रूप छोड़ देती है, अर्थात् 'क' को चाहे, 'क' लिखिए या 'के' कुछ नहीं आता जाता। यही निरपेक्षता है। 'के' के पीछे लट्ठ लेकर पड़नेवाले पहली ही गति से साबित कर देते हैं कि वे पराधीन हैं, वे लड़ेंगे, समझौता नहीं करेंगे। मैं हिन्दी साहित्यिक की हैसियत से विनय के साथ कहता हूँ, देश के वर्तमान हिन्दू और वर्त्तमान मुलसलमान, वर्त्तमान सिख और वर्त्तमान पारसी सापेक्षता में ही, पुरानी रूढ़ियों के पाबंद रहने के कारण अंग्रेजी पढ़कर यूरोप के नक्काल होने के कारण, निरपेक्षता से दूर है–वे अपने मन की चाहते हैं। स्वाधीनता और पराधीनता का यह बहुत सीधा रहस्य है। हिन्दी में इधर जो काम हुआ है, उसमें सिर्फ आदमी बड़ा हैं।"*[163] यहाँ सिर्फ आदमी बड़ा है, कह कर निराला हिन्दी भाषा व साहित्य में एक दलबंदी की प्रक्रिया की ओर इंगित कर रहे हैं। निराला के अनुसार, समझौता हिन्दी भाषा व साहित्य के विकास के लिए होना चाहिए न कि राजनीतिक उद्देश्य से किसी खास वर्ग या दल को खुश करने के लिए। ध्यातव्य है महात्मा गाँधी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रबल समर्थक थे। सन्

1935–36 के इंदौर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन में गाँधी जी पुनः हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बनते हैं और खिलाफत आंदोलन में मिले मुस्लिमों के साथ से अब 'हिन्दी' की जगह 'हिन्दुस्तानी' भाषा की बात करने लगते हैं। यह सिर्फ गाँधी जी ही नहीं, पूरे कांग्रेस की आरंभ से तृष्टिकरण की नीति रही हैं। निराला इस तृष्टिकरण के सख्त खिलाफ थे। हिन्दी में उर्दू शब्दों के प्रयोग के वे हिमायती थे, पर हिन्दी को पूरी 'उर्दू की पोशाक' पहनाने के नहीं। निराला दो टूक शब्दों में इसकी आलोचना करते हुए कहते हैंः– *"इंदौर मे, इस बार रूपए के मामले में गाँधी जी से जो भाव–ताव हुआ था और जो परिणाम उसका उल्लेख अनावश्यक है। यहाँ उन्होंने हिन्दी के साथ 'हिन्दुस्तानी' का एक लफ़्ज और जोड़ा था, वह ध्यान देने की बात है। जब भी महात्मा गाँधी खिलाफत आंदोलन को मुसलमानों को साथ दे चुके थे और हिन्दी की सीधी खिचड़ी शैली के ही पक्षपाती थे– यह काम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी उनसे बहुत पहले कर चुके थे–फिर भी इंदौर वाले हिन्दुस्तानी में साधारण मजाक नहीं रहा। मैं समझता हूँ नेता हिन्दूओं का नेता तो बन ही चुका था, मुसलमानों का भी बनना है।"*[164]

निराला महात्मा गाँधी के नेतृत्व क्षमता, सामाजिक सुधार कार्यक्रमों और राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के प्रचार के प्रबल समर्थक थे। परंतु, गाँधी जी द्वारा अचानक हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी का नाम लेने से निराला लिखते हैंः– *"संवाद –पत्र के पाठक यह भी जानते हैं कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनानेवाले गाँधी–तिलक के मुकाबले सिर उठाते हुए देश के सामने आनेवाले गाँधी, हिन्दी के प्रश्न पर स्वयं बदल गए हैं। उनके एक आवाज उठाने के साथ तमाम हिन्दी भाषी उनके साथ हो गए नेता को भी यही चाहिए। तिलक हिन्दी नहीं जानते थे, लोगों को मालूम होगा। गाँधी जी हिन्दी साहित्य–सम्मेलन के सभापति एक इसी आवाज पर हुए थे–इंदौर में पहले। नेता को कुछ काम भी करना पड़ता है, सहानुभूति पाने के लिए या लोकप्रियता के लिए।"*[165] यहाँ निराला ने गाँधी जी के हिन्दी प्रेम के पीछे का राजनीतिक स्वार्थ खोल कर रख दिया। इंदौर साहित्य सम्मेलन के प्रथम बार सभापति के दौरान उन्होंने हिन्दुस्तानी का नाम तक नहीं लिया था। वहीं खिलाफ़त आंदोलन के बाद गाँधी बदल

गए। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इंदौर के दूसरी बार सभापति बनने पर उन्होंने हिन्दी का रवीन्द्रनाथ कौन हैं–प्रश्न उठाया? निराला ने उसके प्रत्युत्तर में गाँधी जी से जो बात कही, वह गौरतलब हैः–*"यानी आप रवीन्द्रनाथ का जैसा साहित्यिक हिन्दी में नहीं देखना चाहते, प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर का नाती या नोबल–पुरस्कार मनुष्य देखना चाहते हैं, यह!"*[166] निराला के इस जवाब भरे प्रश्न से पूरी सभा सन्न हो गयी। दरअसल यहाँ यह बताना चाह रहे थे कि उन जैसे हिन्दी के सच्चे साधक की हिन्दी में इसलिए कद्र नहीं होती क्योंकि वे किसी अमीर खानदान के नहीं हैं या उन्हें नोबल पुरस्कार नहीं मिला। निराला ने गाँधी जी से यह निवेदन भी किया कि वे उनकी कुछ रचनाएँ सुन लें क्योंकि आम जनता में उनकी कोई कद्र नहीं हुई है। निराला को अपनी किताबें भेजने की बात कर गाँधी जी टाल गए। निराला जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति राजनेताओं का निहितार्थ समझ चुका था, उन्होंने किताब भेजना उचित नहीं समझा। लेकिन आगे चलकर 'वनबेला' कविता में कवि का यह दर्द झलका कि यदि वे भी विदेश से पढ़े या अमीर घराने के होते तो हिन्दी साहित्य सम्मेलन में कभी पीछे नहीं बैठते। निराला ने कल्पनात्मक ढंग से लिखाः–

"निज अभिप्राय, मैं सभ्य मान जाता झुककर
होता फिर खड़ा इधर को मुखकर कभी उधर,
बीसियों भाव की दृष्टि सतत् नीचे ऊपर,
फिर देता दृढ़ संदेश देश को मर्मान्तिक,
भाषा के बिना न रहती अन्य गंध प्रान्तिक।"[167]

यहाँ निराला ने जिस शैली में भाषण देने का नाटकीय अंदाज और भाषण की विषय–वस्तु का सार दिया है, वही तो नेताओं की ओढ़ी गई नाटकीय मुद्रा होती है।

निराला हिन्दी के प्रचार–प्रसार में कमी का एक कारण भारतीय राजनीति में भी देखते थे। निराला ने देखा कि देश के राजनीतिक क्षेत्र में अंग्रेजी कार्यकारी भाषा है। लखनऊ में 14–15 सितंबर, 1929 ई0 को 'संयुक्त प्रांतीय युवक कानफ़रेस' का आयोजन श्रीमती सरोजिनी नायडू के सभापतित्व में हुआ था। निराला ने वहाँ अंगेजी का आधिपत्य देख कर

लिखा *"इसके अतिरिक्त कमरे की सजावट भी हमें खटकी। जो युवक भारतीयता और राष्ट्रीयता के उत्थान के लिए प्रयत्न करते हों, उन्हें सजावट के लिए अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी उद्धरणों की ओर ही आते देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ सारे कमरे भर में एक भी हिन्दुस्तानी उद्धरण न था। उर्दू और हिन्दी का पूरा बायकाट किया गया था। परन्तु संभव है, यह गलती कार्यकर्त्ताओं की अनुभव हीनता का परिणाम हो।"*[168] उक्त कॉन्फ्रेंस में सरोजिनी नायडू ने अंग्रेजी में भाषण दिया था। परन्तु, निराला को उनके अंग्रेजी भाषा में दिए गए भाषण से अशुद्ध, टूटी–फूटी, परन्तु सीधी–सादी हिन्दोस्तानी में दिया गया भाषण अधिक अच्छा लगता था। निराला का मानना था कि देश के नेताओं को हिन्दोस्तानी भाषा सीखना और जानना जरूरी है। अन्यत्र 'साहित्य की आकांक्षा' टिप्पणी में निराला ने लिखा है:– *"हमारे कुछ ही ऐसे तीक्ष्ण नेता हैं, जो हिन्दी बोलते हैं, अधिकांश हिन्दी की असम्भवता पर विश्वास रखनेवाले गोया उनके दिमाग में राष्ट्रभाषा की व्याप्ति असंभव है और पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति संभव।"*[169] निराला जी को क्षोभ तब हुआ जब उन्होंने राजे–महराजों में भी नेता बनने की होड़ देखी जिन्हें स्वतंत्रता से ज्यादा स्वार्थ प्यारा था। 'हिन्दी की अभिनय कुशलता' नामक टिप्पणी में निराला जी ने इस विषय पर लिखा है:– *"राजे महाराजे भी अनेक हैं। पर जिन्हें कुछ नवीनता से प्रेम है, वे बेचारे नेता बनने के लिए ही मर रहे हैं। जैसे तमाम इन बलीवर्दों के बल पर ही वे स्वतंत्र हो जायेंगे। स्वतंत्रता के जो आलंबन है उसके लिए जो मार्जन जरूरी है, समाज तथा भाषा और भावों में जो संस्कार आवश्यक है उन सबको वे एक ही छलांग में पार कर जाते हैं।"*[170]

निराला भाषा और राजनीति के खेल में हिन्दी साहित्य की दुर्गति से भी व्यथित थे। साहित्य में होने दलबंदी और मठाधीशों जिन्हें निराला 'साहित्य के मशहूर लंठ आचार्य कहा करते थे, के द्वारा अपने हितैषियों व करीबियों को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ लेखक घोषित किए जाने की प्रवृत्ति के विरोध में निराला ने लिखा है:– *"हिन्दी मे तृप्ति की सांस लेते हुए साहित्य सेवा करनेवाले जितने लोग देख पड़ते हैं, अधिकांश स्पष्टवादिता के बाहर केवल दलबंदी के बल पर साहित्य का उद्धार करनेवाले चाचा–भतीजे लोग हैं। चचा साहित्याचार्य और भतीजे संपादक। फिर क्यों, पत्र हाथ में*

है तो दल बाँध लेने में देर कहाँ? 'परस्पर प्रशंसन्ति' होने लगा। यह साहित्य के क्षेत्र में महा अधम कार्य है।[171] यही दलबंदी व हथंकडे निराला को हिन्दी साहित्य सम्मेलनों में दिख पड़ा। फैजाबाद के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में निराला ने ऐसे 'राजनीतिक सभापतियों' द्वारा हिन्दी को प्रहसन बनाते देख उन्होंने देखा कि सम्मेलन में अधिकांश स्कूल–मास्टर्स बुलाए गए थे जो आधुनिक कांग्रेस सरकार के मातहत थे। उक्त सम्मेलन में पहले दिन कला प्रदर्शनी के उद्घाटनकर्त्ता श्री संपूर्णानंद जी ने अपने भाषण में कवियों को राजनीतिज्ञों का साथ देने की मांग की इस पर निराला ने प्रतिरोध करते हुए हिन्दी के कवियों को राजनीतिज्ञों से आगे बताया। सम्मेलन के दूसरे दिन स्वागताध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देव जी द्वारा जनता के संबोधन में केवल दो ही विद्वान बाबू पुरूषोत्तमदास जी टण्डन और संपूर्णानंद जी का नाम उल्लेख करना निराला जी को खटका, जबकि वहीं साहित्य विभाग के सभापति आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी बैठे हुए थे। आचार्य शुक्ल से अपने तमाम मतभेद के बावजूद हिन्दी के ऐसे विद्वान आलोचक की उपेक्षा और आचार्य नरेन्द्र देव जी द्वारा साहित्य को राजनीतिक की दृष्टि से देखना निराला को तर्कसंगत न लगा। बाद में सम्मेलन के सभापति श्री पुरूषोत्तमदास टंडन का भाषण भी निराला को राजनीतिक ही लगा। इस संबंध में उन्होंने श्री नरोत्तम प्रसाद नागर को दिए अपने एक इंटरव्यू में कहा है:– *"टण्डन जी पूर्ण रूप से राजनीति को प्राधान्य दे चले, जैसे सरस्वती राजनीति की दासी हो। उदार व्यक्ति साहित्य और राजनीति को बराबर महत्व देता है। लेकिन साहित्य के मंच पर समवेत साहित्यिकों के सामने राजनीति के महत्व की घोषणा इस आसन का अपमान है। ..... इस प्रांत के राजनीतिक जितने बड़े–बड़े व्यक्ति हैं, निस्संदेह साहित्यिक उनसे बड़े हैं।*[172] दरअसल निराला स्वयं को भी किसी राजनेता से कम बड़े नहीं समझते थे। लखनऊ कांग्रेस के दौरान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय का उद्घाटन करने महात्मा गाँधी आए थे। जब निराला उनसे मिलने पहुँचे तो द्वार पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध निबंध–लेखक श्री सीतला सहाय ने उन्हें द्वार पर मिलने से रोका, जबकि कई अन्य बड़े नेता अंदर गाँधी जी से मुलाकात कर रहे थे। इस पर निराला ने गर्व से कहा:– *"ये जितने बड़े नेता हैं, मैं उनसे बड़ा*

साहित्यिक हूँ और हिन्दी–साहित्य सम्मेलन के सभापति को मुझसे मिलने में किसी तरह का संकोच नहीं होना चाहिए।[173] निराला ने गाँधी जी के निजी सचिव महादेव देसाई से भी यही कहा कि 'वे राजनीतिक महात्मा जी से नहीं, हिन्दी साहित्य के सभापति गाँधी जी से मिलना चाहते हैं। इससे दो बाते स्पष्ट हैं कि निराला को अपने हिन्दी सेवा और बड़े साहित्यिक होने पर गर्व था; जैसा कि उन्होंने 'स्नेह–निर्झर बह गया' कविता में लिखा हैः–

"दिए हैं मैंने जगत को फूल–फल
किया है अपनी प्रतिभा से चकित–बल।"[174]

इस प्रकार का अभिमान निराला को हमेशा रहा। दूसरी बात यह है कि निराला राजनेताओं से बाहरी स्वतंत्रता के बदले आतंरिक स्वतंत्रता और विशेषकर हिन्दी भाषा व साहित्य की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा दिलाने के लिए युद्धरत थे। इस बात का प्रमाण इस तथ्य से मिल सकता है कि निराला ने अपने समय के और भारतीय स्वाधीनता संग्राम के तीन महान विभूतियों महात्मा गाँधी, जवाहलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस से हिन्दी भाषा व साहित्य को समझने व पर्याप्त महत्व देने का आग्रह किया।

निराला जी को महात्मा गाँधी से इस बात की आपत्ति थी कि वे रवीन्द्रनाथ जी को जरूरत से अधिक महत्व देते हुए हिन्दी के प्राचीन महाकवियों तुलसी, सूर, कबीर आदि को अनदेखा करते हैं। दूसरी बात कि वे हिन्दी की नवीन काव्यधारा से भी अवगत नहीं हैं, इसलिए 'हिन्दी के रवीन्द्रनाथ' पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं। तीसरी बात महात्मा जी का मानना था कि यू.पी. वाले अशुद्ध हिन्दी लिखते हैं और चौथी बात कि महात्मा गाँधी ने हिन्दी साहित्य में बढ़ते अश्लीलता का आरोप लगाया। एक और महत्वपूर्ण बात निराला ने उठाई कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति को हिन्दी साहित्य का विशेष ज्ञान हीं नहीं क्योंकि महात्मा जी अपने भाषण में अपने भक्तों को ही हिन्दी साहित्यकारों में महत्व दिया जिनका हिन्दी साहित्य में उल्लेखनीय स्थान है ही नहीं। निराला ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति महात्मा गाँधी के अधूरे हिन्दी ज्ञान को लक्ष्य कर 'सम्मेलन और महात्मा जी' नामक अपनी टिप्पणी में लिखाः–*"महात्मा*

जी ने हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन के सभापति के आसन से भाषण करते हुए हिन्दी को तीसरा या इससे भी घटकर स्थान दिया है। यह असत्य होने के कारण श्रेष्ठ का अपमान है। प्राचीन ब्रजभाषा हिन्दी को मिलाने पर प्रांतीय कोई भाषा उसका मुकाबला नहीं कर सकती फिर नवीन हिन्दी, खड़ी बोली के रूप में थोड़े दिनों से प्रचलित हुई है। इतने कम समय के अंदर इससे जितनी तरक्की की है, उतनी बंगला–मराठा किसी ने नहीं की। यहाँ महात्मा जी का विवेचन बहुत ही अधूरा जान पड़ता है।"[175]
दरअसल, निराला साहित्य सम्मेलन के सभापति पद हेतु किसी योग्य हिन्दी भाषा के अनन्य सेवक को ही योग्य समझते थे, राजनेता को नहीं। जब गोरखपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति के तौर पर श्रीयुत् गणेश शंकर विद्यार्थी को चुना गया जिसकी निराला ने भूरि–भूरि प्रशंसा की। किन्तु, राजनीतिक हथकंडों के कारण जब सम्मेलन को स्थगित किया गया तो निराला ने आक्रोश में लिखाः– *"हम अच्छी तरह जानते हैं, विद्यार्थी जी का सभापति चुना जाना बहुतों की आँखों में मिर्च का काम कर गया और दिल में छाले का। जाति की गुलामी के साथ–साथ यह भी एक प्रकार की भाषा की गुलामी है। अपने को बड़ा तो करीब–करीब सभी समझते हैं, जरूरत है दूसरे को बड़ा समझने की।"*[176]

दूसरा प्रसंग पं0 जवाहरलाल नेहरू से संबंधित है। एक बार युक्त प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन का सभापतित्व करने जा रहे पं0 जवाहरलाल नेहरू से इलाहाबाद स्टेशन पर ट्रेन के डिब्बे में बातचीत करते हुए निराला ने कहाः– *"पंडित जी, हम लोगों ने भी कुछ विचार लड़ाये हैं, हिन्दुस्तानी की कामयाबी के बारे में और इस सिद्धांत पर पहुँचे हैं कि जीवन के साधारण महकमें तक ही उसकी पहुँच है। मैं राजनीति की बातें नहीं करता, साहित्य की बातें करता हूँ। राजनीति में भी बिना अंग्रेजी के सहारे के, संस्कृत, अरबी या फारसी के वह लंगड़ी होगी।"*[177] यहाँ निराला का यह कहना मैं राजनीति की बातें नहीं करता, साहित्य की बातें करता हूँ। यह दर्शाता है कि निराला स्वाधीनता संग्राम को साहित्यिक दृष्टि से देखते थे, राजनीतिक विचारधाराओं के वे शिकार नहीं होते थे। निराला ने उस घटना का भी जिक्र किया है जब काशी के 'रत्नाकर रसिक–मंडल' की ओर से पंडित नेहरू जी का सम्मान किया और स्वयं आचार्य रामचंद्र

शुक्ल ने पंडित जी को मानपत्र भेंट किया। उस सभा में आचार्य शुक्ल के अलावा जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद भी मौजूद थे, उन सभी के सामने पं0 नेहरू ने हिन्दी पर यह आरोप लगाया कि 'हिन्दी में अभी तक दरबारी ढंग की ही कविता हो रही है।' निराला जी ने जब यह प्रसंग जाना तो उन्हें बहुत बुरा लगा। वही सभा में मौजूद विद्वान अपने अतिथि को उत्तर देकर उनका अपमान तो कर नहीं सकते पर इसका उत्तर दिया निराला ने। 'पं0 जवाहरलाल नेहरू और हिन्दी' नामक टिप्पणी में निराला लिखते हैंः– *"पं0 जवाहरलाल जी उस जगह रहते हैं जहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन है, जहाँ की केवल 'सरस्वती' हिन्दी साहित्य का बहुत कुछ युगांतर–इतिहास कह सकती है। पर पंडित जी को राष्ट्र के निर्माणोद्देश में इतनी तल्लीनता रही कि राष्ट्रभाषा की कभी याद भी न हुई, उसकी शिक्षा राष्ट्र के लिए आवश्यक प्रतीत हुई ही नहीं।"*[178] जब निराला की नेहरू से बात हुई तो निराला ने यह याद दिलाया कि उस सभा में काव्य व नाटक के विद्वान जयशंकर प्रसाद, कथा–साहित्य के विद्वान प्रेमचंद और आलोचना–साहित्य के विद्वान आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समक्ष हिन्दी की कविता को दरबारी कहना कितना हास्यास्पद था। निराला का मानना था कि ब्रजभाषा से खड़ी बोली में कविता के उतरने से कविता का दरबारीपन भी जाता रहा और आधुनिक कविता नए विषयों व छंदों में व्यक्त हुई है। निराला ने नेहरू जी से को दो टूक शब्दों में कहाः– *"अगर हिन्दी की सच्ची जानकारी, उसकी कमजोरी और शहजोरी–दोनों की आपको होती, अगर आप हिन्दी के साहित्यकारों में एक शुमार किये जाते तो उस भाषा को कितना बड़ा बल प्राप्त होता। एक तो हिन्दी के साहित्यिक साधारण श्रेणी के लोग हैं, एक हाथ से वार झलते, दूसरे से लिखते हुए; दूसरे आप जैसे बड़े–बड़े व्यक्तियों को मैदान में वे मुखालिफत करते देखते हैं। अगर आप या आपकी तरह के व्यक्ति एक भिन्न दृष्टिकोण लेकर दूसरे तौर–तरीके अख्तियार करते हुए आवाज उठायें तो स्वाभावतः बीसियों साल के मारें सहकर एक चीज तैयार करनेवाले आदमी जनता को साथ लेने की जगह उसके हाथ से दूर जाते हैं। जनता समझती है कि जनता की तरफ़दारी करनेवाले आप उसके सच्चे साहित्यिक हैं और बीस साल से साहित्य के मैदान में आया हुआ साहित्यिक उसका है।"*[179] स्पष्ट है कि निराला मानते

थे कि राजनेताओं की बातों का जनता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। गुजराती भाषा क्षेत्र के महात्मा गाँधी हिन्दी साहित्य से अनभिज्ञ रहे, हो सकता है और गाँधी जी यह स्वीकार भी करते थे। किन्तु, वो राजनेता जो हिन्दी पट्टी उत्तर प्रदेश का हो, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पास रहता हो और जहाँ 'सरस्वती' जैसी हिन्दी की महान पत्रिका का प्रकाशन होता हो, उस क्षेत्र का कांग्रेस का बड़ा नेता हिन्दी साहित्य से अनभिज्ञ हो, हिन्दी में लेखन का अधिक आकांक्षी न हो, फिर भी राष्ट्रभाषा का समर्थक कहलाएं तो निराला के लिए यह अजीब विडंबना थी।

जब हिन्दी पट्टी के पं0 जवाहरलाल नेहरू हिन्दी साहित्य को ठीक से समझ नहीं पा रहे थे तो निराला बंगाल प्रांत के सुभाषचंद्र बोस से विशेष उम्मीद रख भी नहीं सकते थे। पंजाब के विद्यार्थियों के आमंत्रण पर सुभाष बाबू ने लाहौर में एक राजनीतिक व्याख्यान दिया था, जिसका शीर्षक थाः–'इंडिया हैज ए मिशन टू फूलफिल' (भारत को एक उद्देश्य पूरा करना है)। तमाम राजनीतिक चर्चाओं के साथ सुभाष बाबू ने बंगला–साहित्य में पंजाब के बड़े–बड़े मनीषियों का जिक्र किया, परंतु राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर कुछ भी नहीं कहा। सुभाष जी यह भाषण वीर यतीन्द्रनाथ दास की स्मृति में दे रहे थे जिन्होंने 63 दिन की भूख हड़ताल के बाद लाहौर जेल में प्राण त्यागे थे। मृत्यु के अंतिम समय में यतीन्द्रनाथ ने कहा था कि वे बंगाली नहीं भारतीय हैं। निराला जी को सुभाष जी का यह व्यवहार खटका। सुभाष बाबू कलकत्ते के राष्ट्रभाषा सम्मेलन में कई बार शिरकत कर चुके थे, हिन्दी के बारे में बोला भी था। परंतु, सुभाष बाबू हिन्दी को मजदूरों के ही काम की समझते थे। इन तमाम बातों पर आरोप लगाते हुए निराला ने 'सुधा' के दिसंबर,1929 ई0 की टिप्पणी 'बाबू सुभाषचंद्र बसु का व्याख्यान' में लिखाः–*"हमलोग बंग–साहित्य तथा उसके वर्त्तमान काल के अमर निर्माताओं का हृदय से आदर करते हैं। सुभाष बाबू स्वयं सोचे, मैं बंगाली नहीं–भारतीय हूँ, इस वाक्य की क्या ध्वनि है। राष्ट्र पर बोलते समय राष्ट्र की भाषा की कोई बात न कहना कहाँ तक युक्तिसंगत है, यह क्या सुभाष बाबू जैसे मनुष्य को समझने की जरूरत है?.....सुभाष बाबू ने एक व्याख्यान में कहा है, (जबकि उन्हें लोग घेर–घारकर ले आए थे) कि हिन्दी हमें इसलिए सीखनी चाहिए कि हमें*

मिलों में मजदूरों से काम लेना है। सुनते हैं आप लोग? यह कद्र है हिन्दी की। हिन्दी इस तरह के लोगों की भाषा है सुभाष बाबू की दृष्टि में।[480] निराला के अनुसार, हिन्दी के प्रति उदासीनता, बंगला की प्रांतीयता अधिकांश बंगालियों की खास निशानी है जो अंग्रेजी शिक्षा से पैदा हुए अभिमान के कारण आया है। दूसरा, बंगालियों से हिन्दी के उच्चारण का जोड़ भी नहीं बैठता। निराला को लगता है कि बंगाली लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का इसलिए विरोध करते हैं क्योंकि वे अंग्रेजी और बंगाली के अलावा तीसरी भाषा का अकारण दबाव नहीं चाहते। पर, सुभाष चंद्र बोस केवल बंगाल के ही नहीं, हिन्दुस्तान के महान नेता हैं, निराला सुभाष को बस यही याद दिलाना चाहते थे। जब निराला हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के बारे में 'गए रूप पहचान' कह रहे थे तो निराला तमाम हिन्दी विरोधियों को बेनकाब कर रहे थे।

निराला ने न केवल हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की माँग की, वरन् इसके विकास व उन्नयन के लिए उनके पास एक 'विज़न; एक रोडमैप' था। निराला शिक्षा को मातृभाषा से जोड़कर देखते थे। न केवल स्कूली स्तर पर वरन् विश्वविद्यालय के स्तर पर भी। निराला को लगता है कि विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी के प्रति रूझान ज्यादा है और पाठ्यक्रम कठिन। लखनऊ विश्वविद्यालय और हिन्दी टिप्पणी में निराला ने हिन्दी के उन्नति के लिए विश्वविद्यालय के अध्यापकों का हिन्दी–प्रेमी होना जरूरी बताया और 'शिक्षा समस्या और हिन्दी' टिप्पणी में निराला ने आग्रह कियाः– *"जब तक शिक्षा विद्यार्थी को उसी की मातृभाषा में नहीं दी जाती, तब तक उसकी पूरी तरह प्राप्ति असंभव है। हमारे देश में ऐसे विद्वानों की कमी नहीं, जो विश्वविद्यालय के हर विभाग के कोर्स अपनी मातृभाषा में तैयार कर दें। बहुत कुछ है, पर जो कमी पाठ्यग्रंथों की होगी, वह पूरी हो सकती है। इससे देश आमदनी का भी एक जरिया प्राप्त होगा। अभी तो अधिकांश किताबें विदेश से ही आती हैं और उनकी आमदनी का सोलहों आने हिस्सा विदेशी विद्वान और प्रकाशक खा जाते हैं।*[481] यह है निराला का स्वदेशी अभियान। अपनी भाषा से भी आय हो सकती है, निराला ने बहुत पहले ही बता दिया था। भारतीय भाषाओं की पढ़ाई आजकल विदेशों

में भी हो रही है। निराला के शिक्षा–संबंधी विचार उनकी कुछ कविताओं में भी व्यक्त होते हैं। 'राह पर बैठे.....' गज़ल का यह अंश देंखेः–

"बदल शिक्षा–क्रम बना इतिहास सच्चा, दम न ले,
सज्जनों को प्रगति–पद प्रहलाद तू जब तक न कर।
सुत सुलझा मत विदेशी देश के खातिरजमा,
हाथ धो ले, वयन को अपवाद तू जब तक न कर।"[182]

निराला साहित्य व कला के क्षेत्र में भी यही स्वदेशीपन चाहते थे। हिन्दी नाटकों में पारसी रंगमंच व शैली का प्रभाव व अनुकरण उन्हें बहुत खटकता था। निराला ने 'हिन्दी की अभिनय कुशलता' नामक टिप्पणी में नाटक को 'भाषा की प्रसिद्धि' और उसके 'सार्वभौमिक प्रसार' के लिए आवश्यक माना और वैसे धनाढ्य मखाड़ियों पर व्यंग्य किया है जो रूपए झोंक कर पारसी के अनुकरण का फूहड़ मनोरंजन तो देखते हैं, पर अपना रंगमंच नहीं तैयार करते। निराला के शब्दों में– *"हिन्दी में नाटकों की उपज़ समाज की ही तरफ से रुकी हुई है। कलकत्ता–बम्बई जैसे शहरों में नाटकों के द्वारा रूचि परिवर्तित करने की चेष्टाएँ की जाती; तो अब तक रास्ता बहुत कुछ साफ हो जाता। परन्तु इसके लिए दिल्ली अभी दूर है।"*[183] निराला जहाँ हिन्दी का अपना रंगमंच चाहते थे, वहीं उनकी इच्छा थी कि एक फिल्म निर्माण केन्द्र हिन्दी प्रदेश में हो। वे चाहते थे कि हिन्दी में अपनी फिल्म कंपनी हो जिससे बंबई और बंगाल में फिल्म व्यवसाय का जो करोड़ो रुपया जाता है, वह हिन्दी प्रदेश में ही रहे। निराला ने 'फिल्म व्यवसाय, कला और हिन्दी' टिप्पणी में लिखा हैः– *"बोलते हुए छायाचित्रों का व्यवसाय जो हिन्दी में इतना प्रसार पाता जा रहा है, इसका कारण अवश्य व्यावसायियों का राष्ट्रभाषा प्रेम कदापि नहीं। इसका कारण हिन्दी के बाजार से अधिक रुपयों का वसूल होना है। बम्बई और कलकत्ते की मराठी, गुजरात और बंगला मिली हिन्दी नट और नटियों की जवान से सुनकर उनके हिन्दी प्रेम का परिताप, हमें मालूम हो जाता है।.....हिन्दी भाषी जनता के ही रुपये से फिल्म–व्यवसाय इस कसरत से चलता है, पर हिन्दी–भाषी नट–नटियों तथा लेखकों को लब्ध अर्थ का कितना हिस्सा प्राप्त होता है? बहुत थोड़ा, नहीं के बराबर।"*[184]

निराला चाहते थे कि 'फिल्मों में हिन्दी प्रदेश का अपना संगीत हो, अपने साहित्य की झलक हो।' निराला ने बंबईया फिल्मी व्यवसाय की वाणिज्य–बुद्धि के सामने हिन्दी का अपना चलचित्र–समाज खड़ा करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने हिन्दी में पटकथा–लेखन के लिए अच्छे साहित्यकारों का आह्वान किया। 'कथानक का विकास और फिल्म निर्देशन' में निराला ने लिखा है:– *"भारतीय फिल्मों में कहानियाँ इसलिए अधिकांश में बुरी आती हैं, क्योंकि आजतक के डायरेक्टरों की योग्यता सीमित है, और वे अपने कार्य के उत्तरदायित्व को नहीं समझते। उनका यह कार्य कथानक–लेखक के महत्व को छिपाए हुए हैं, किन्तु यह निश्चय है कि ज्यों–ज्यों देश में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार बढ़ता जाएगा, त्यों–त्यों प्रतिष्ठित हिन्दी लेखक भी, अधिक आमदनी के लोभ के कारण सिनेमा की ओर झुकेंगे और तभी संभव है कि कथानक–लेखक का पद डायरेक्टर के पद से नीचा न रहकर ऊँचा हो जाए।"*[185] निराला ने भविष्य की संभावना की तरफ पहले ही संकेत कर दिया था। हिन्दी के अच्छे साहित्यकार अच्छे पटकथा–निर्देशक रह चुके हैं।

निराला हिन्दी को साहित्य व कला के साथ–साथ कृषि व विज्ञान के क्षेत्र में भी उन्नत बनाना चाहते थे। 'किसान और उसका साहित्य' टिप्पणी में उन्होंने जहाँ किसानों के लिए 'किसान कुसुमावली' नाम की पुस्तकसाला निकालने की बात कही वही वह विश्वास दिलाया:– *"साधारण कानून और आवश्यक राजनीति तथा साहित्य–धर्म आदि पर भी सीधी भाषा में पुस्तकें लिखी जायेंगी। इस प्रकार मिल के श्रम जीवियों के लिए भी मिल, कारखाने खरीद–फरोख्त कर, भाव, कारण, मुनाफा आदि की भिन्न–भिन्न व्यावसायिक आवश्यक पुस्तकें लिखवाने का विचार है।"*[186] निराला हिन्दी भाषा में समाज के सामान्य वर्गों के लिए जहाँ सामान्य ज्ञान की बातें करते हैं, वहीं सर्वसाधारण के लिए विशेष ज्ञान अर्थात् विज्ञान–लेखन को भी प्रोत्साहन देने की मांग करते हैं। 'विज्ञान और वैज्ञानिक पत्र कला' नामक टिप्पणी में निराला लिखते हैं:– *"हमें आशा है, हिन्दी के उदीयमान वैज्ञानिक लेखक हमारे इन विचारों पर ध्यान देंगे और विज्ञान के विभिन्न विषयों पर ऐसे लेख प्रस्तुत करेंगे, जिनसे सर्वसाधारण का मनोरंजन ही नहीं, उपकार भी होगा।"*[187] स्पष्ट है कि निराला हिन्दी

को खास से अधिक सर्वमान्य जनों तक पहुँचाना चाहते थे। पर उसके लिए निराला ने पाठक वर्ग से भी सहयोग की मांग की– *"कितने दुःख की बात है यह! किताब न खरीदेंगे ऊपर से साहित्य को खरी–खोटी सुनायेंगे। जहाँ पढ़े–लिखे आदमियों का यह हाल है, वहाँ साधारण शिक्षित जनों से क्या आशा की जाए? साहित्य की वृद्धि व्यापक सहयोग चाहती है।"*[188] वर्त्तमान में हिन्दी में पठनीयता के संकट की जो बात कही जाती है, उसे निराला बहुत पहले ही महसूस कर चुके थे। हिन्दी का लेखक वर्ग अन्य भाषाओं की अपेक्षा कितना विपन्न हैं, यह सबको पता है। निराला तो स्वयं इस विपन्नता के शिकार हुए थे।

निराला ने अपने युगीन परिस्थितियों को समझते हुए हिन्दी भाषा की अस्मिता के लिए संघर्ष किया था। परंतु, उनसे हिन्दी साहित्यकारों की उपेक्षा व दयनीय दशा भी छिपी हुई नहीं थी। 'सुधा' के जून,1935 के अंक में प्रकाशित 'साहित्य का प्रचार' नामक टिप्पणी में निराला ने इस ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा हैः– *"हिन्दी में जो अच्छे–अच्छे कवि, नाटककार, औपन्यासिक और निबंध–लेखक हैं, उन्होंने हिन्दी के पीछे तो अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया हैं, पर हिन्दी भाषियों ने उनकी तरफ वैसा ध्यान नहीं दिया –शतांश भी नहीं। वे साहित्यिक इस समय जिस कठिनता का सामना कर रहे हैं, उसे देखकर किसी भी सहृदय की आँखों में आँसू आ जायेंगे। चुपचाप वे आर्थिक कष्ट को सहन करते हुए साहित्य का निर्माण करते जा रहे हैं। बदले में उन्हें अनाधिकारी साहित्यिकों से लांछन और असंस्कृत जनता से अनादर प्राप्त हो रहा है, उनकी कृतियों की जैसी ब्रिकी होनी चाहिए था, नहीं मिलता, फल यह होता कि उनके आर्थिक कष्ट दिन–दिन बढते जा रहे हैं।"*[189] निराला ने इस आर्थिक कष्ट को, लांछन को व अनादर को झेला था और आर्थिक विपन्नता के कारण अपनी पुत्री सरोज को खोया भी था। 'सरोज–स्मृति' कविता में निराला इसे 'हिन्दी की स्नेहोपार' कहते हुए लिखते हैं':–

"यह हिन्दी का स्नेहोपार
यह नहीं हार मेरी, भास्वर
वह रत्नहार–लोकोत्तर वर।

अन्यथा; जहाँ है भाव–शुद्ध
साहित्य–कला कौशल प्रबुद्ध
हैं दिए हुए मेरे प्रमाण
कुछ वहाँ, प्राप्ति को समाधान।"[190]

सच्चा साधक भले ही थोड़ी देर के लिए पराजित अनुभव करे, परन्तु जीवन–समर में डटा रहता है। निराला ने अपने समय की साहित्यिक गतिविधियों, पूर्व की साहित्यिक विरासत और विभिन्न भाषाओं में रची उत्कृष्ट रचनाओं, शिल्प–प्रयोग आदि में ध्यान से देखा, अच्छी चीजों को ग्रहण किया, परंतु जन–विरोधी सामंती व अभिजात्य बंधनों को तोड़ फेंका। निराला ने विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य से हिन्दी भाषा व साहित्य को कहाँ तक समृद्ध किया, यह आगे विवेचित किया जाएगा। यहाँ बस निराला की हिन्दी साधना के प्रति उन्हीं के शब्दों में बस यही कहा जा सकता है:–

"यह सच है:–
तुमने जो दिया दान वह,
हिन्दी के हित का अभिमान वह,
जनता का जन–ताका, ज्ञान वह,
सच्चा कल्याण वह अथच है–
यह सच है।"[191]

(3) ''जला दे जीर्ण–शीर्ण प्राचीन'' : साहित्यिक विरासत और निराला की नव्याकांक्षा – परंपरा और प्रयोग

"जला दे जीर्ण–शीर्ण प्राचीन;
क्या करूंगा तन जीवन–हीन?
माँ, तू भारत की पृथ्वी पर
उतर रूपमय माया तन धर,
देवव्रत नरवर पैदा कर,
फैला शक्ति नवीन– ।"[192]

निराला के काव्य का बीज मंत्र है–नवीनता। 'गीतिका' में संकलित उपर्युक्त गीत निराला की नव्याकांक्षा और साहित्य के प्रति उनके दृष्टिकोण को भी इंगित करता है। डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं:– *"'गीतिका' के इस गीत में सामाजिक रूढ़ियों का विरोध है, साहित्यिक रूढ़ियों का भी। 'उद्‌बोधन' कविता में नये–पुराने पत्ते साहित्य और समाज दोनों के लिए सार्थक प्रतीत है। साहित्य और समाज की रूढ़ियाँ परस्पर सम्बद्ध है। स्वभावतः जो परिवर्त्तन एक क्षेत्र में होगा, वह दूसरे क्षेत्र को प्रभावित करेगा। फिर भी साहित्य की अपनी सत्ता है। यह सत्ता सापेक्ष रूप से स्वतंत्र है, साहित्य में परिवर्तन और विकास की अपनी समस्याएँ है।"*[193] निराला साहित्य और समाज की परस्पर रूढ़ियों से भी अवगत थे और साहित्य में परिवर्तन और विकास की अपनी समस्याओं से भी। नवीनता व पुरातनता के संबंध को निराला 'साहित्य को फूल अपने ही वृत्त पर' निबंध में समझाते हुए लिखते हैं:– *"नित्य नवीन, चापल्यतल्प, अप्रसंग काव्य, साहित्य की एक ही कल्पलता है। जिसे पुरानापन कहते हैं, वह जैसे एक युग तक एक खास तौर की कला पर नजर फेरते हुए अभ्यास के जंग की ही मलिनता हो; फिर जैसे सुबह के सूरज के किरणों से निखरा, शबनम को धुला हुआ नया फूल अकल डाल पर उत्तीर्ण कला का एक नैसर्गिक चुम्बन बन रहा हो। साहित्य की जमीन खिल उठती है।"*[194] निराला साहित्य की विवेचना में 'समय के प्रवाह' या 'सामयिक लिबास' को महत्वपूर्ण मानते थे जो पुरातन में से नवीन के लिए संघर्ष और नवीन को

भी काल–प्रवाह में पुरातन बना देता है। किन्तु, निराला जब इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य की विरासत और तद्युगीन हिन्दी जगत को देखते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं:– *"अज्ञात अनादि काल से लेकर आज तक समय के परिवर्तन के साथ–ही–साथ हमारे भाषा साहित्य का भी परिवर्तन होता गया। जैसे साहित्य भी सृष्टि की नश्वरता के नियमों में बँधा हो– 'नवीन गृहणाति' के अनुकूल चल रहा है।"*[195] स्पष्ट है, जो नया होगा, वही समय के प्रवाह में पुराना हो जाएगा। परंतु, 'नवीन गृहणाति' तो गीता में शरीर के लिए प्रयुक्त हुआ है, आत्मा के लिए नहीं। मतलब निराला काव्य की आत्मा को एक मानते हैं; फर्क सिर्फ शरीर अर्थात् विषय–वस्तु के प्रस्तुतिकरण व रूप–विन्यास का है। निराला स्पष्ट कर देते हैं:– *"हम नवीनता को ही यहाँ सनातन कहेंगे। आत्मा पुराना नहीं होता, चोला पुराना होता है।"*[196] निराला जब अपने साहित्यिक विरासत पर दृष्टिपात करते हैं तो उसके 'चोले' को ही देखते हैं। वे सौंदर्य–दर्शन, विषय–वस्तु, रूप–विन्यास, कलात्मक प्रस्तुति आदि को नवीनता की कसौटी पर कसते हैं, और अपने पूर्ववर्त्ती व सहयोग कवियों का मूल्यांकन करते हैं।

यदि हिन्दी की आदिकालीन कविताओं पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि आदिकाल में मुख्यतः आश्रयदाताओं की प्रशंसा, युद्धों का सजीव वर्णन, संकुचित राष्ट्रीयता तथा वीर व शृंगार रस आदि की प्रधानता मिलती है। इस युग में एक ओर सिद्धों, नाथों व जैन कवियों का साहित्य मिलता है तो दूसरी ओर रासो काव्य भी। इस काल में मुक्तक तथा प्रबंध दोनों प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। जैन साहित्य में चरित्र साहित्य, पुराण साहित्य, राम काव्य, कृष्ण काव्य, रोमांटिक काव्य अधिक मिलते हैं। लोक साहित्य गीति शैली में लिखे गए हैं। इस काल में मुख्य भाषा डिंगल व पिंगल भाषा थी। जैन साहित्य पश्चिमी अपभ्रंश और सिद्ध साहित्य पूर्वी अपभ्रंश में लिखा गया है। लौकिक काव्य पिंगल और खड़ी बोली की ओर उन्मुख है। इस काल में जितने वीरगाथात्मक काव्य है, उनमें से अधिकांशतः रासो काव्य है जो रासक शैली में लिखा गया है। 'रासक' गद्य रूपक को कहते हैं। रासो लोक प्रचलित 'नाट्य रस' से निकला शब्द है जिसमें गीत और नाट्य दोनों का मिश्रण है। जैन अपभ्रंश में जो रास की लंबी परंपरा है, वह मूलतः सांप्रदायिक है जो साहित्यिक दृष्टि से वीर व

शृंगार रस में परिणत दिखता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'रासो' ग्रंथों को लक्ष्य कर ही इस युग को 'वीरगाथाकाल' का नाम दिया था। आचार्य शुक्ल इस युग की असंदिग्ध सामग्री की भाषा को अपभ्रंश अर्थात् 'प्राकृताभास हिन्दी' बतलाते हैं। दूसरी ओर उन्होंने विद्यापति द्वारा प्रयोग की जाने वाली 'बोलचाल की देशी भाषा' का भी जिक्र किया है। किन्तु, उन्होंने विद्यापति को 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में फुटकल रचनाओं के अंतर्गत रखा है और फुटकल रचनाओं वाले प्रकरण की शुरूआत इस प्रकार की हैः—*"वीरगाथाकाल के समाप्त होते होते हमें जनता की बहुत कुछ असली रूप का पता चलता है। पता देनेवाले हैं दिल्ली के खुसरो मियां और तिरहुत के विद्यापति।'.....लिखित साहित्य के रूप में ठीक बोलचाल की भाषा या जनसाधारण के बीच कहे—सुने जानेवाले गीत, पद्य आदि रक्षित रखने की ओर मानो किसी का ध्यान ही नहीं था। जैसे पुराना चावल ही बड़ें आदमियों के खाने योग्य समझा जाता है, वैसे ही अपने समय से कुछ पुरानी पड़ी हुई परंपरा के गौरव से युक्त भाषा ही पुस्तक रचनेवाली के व्यवहार योग्य समझ जाती है। पश्चिम की बोलचाल, गीत, मुख प्रचलित पद्य आदि का नमूना जिस प्रकार खुसरो की कृति में पाते हैं, उसी प्रकार पूरब का नमूना विद्यापति की पदावली।"*[196] इस प्रकार देंखे तो देशी भाषा में पहली प्राण—प्रतिष्ठा का श्रेय विद्यापति को ही जाता है।

निराला ने आदिकालीन हिन्दी कविताओं पर कुछ नहीं लिखा, सिवाय विद्यापति के काव्य पर। शायद उन्होंने चारण काव्यों को विशेष योग्य नहीं समझा। विद्यापति पर भी उन्होंने जो कुछ लिखा, वह बंगाल के आदि कवि चण्डिदास की तुलना में। शायद निराला यह दिखलाना चाहते थे कि हमारे आदिकालीन कवि देशी भाषा के प्रचार एवं काव्य—सौंदर्य में संसार के किसी भाषा के कवियों से कम नहीं। उनका मानना है कि 'विद्यापति कवि—प्रतिभा में कालिदास' नामक निबंध 'सुधा' के अगस्त, 1928 ई0 में प्रकाशित हुआ था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' का प्रथम संस्करण 1929 ई0 में प्रकाशित हुआ था। किन्तु, आचार्य शुक्ल ने विद्यापति को फुटकर रचनाकारों में ही डाला था, उनके काव्य—कला की विशेष व्याख्या नहीं की थी, सिवाय 'आध्यात्मिक रंग के चश्मे' से उनके साहित्य को न देखकर शृंगार की दृष्टि से उनकी रचनाओं

को देखने को कहा था। किन्तु, निराला उनके काव्य में विद्वता, भावुकता, कविता की कारीगरी, वर्णात्मक पाठ–सुख, संगीत, तन्मयतापूर्ण सौंदर्य–दृष्टि, सरसता आदि गुणों के आधार पर उन्हें चण्डिदास ही नहीं अन्य कई समवर्त्ती या पूर्ववर्त्ती कवियों से श्रेष्ठ बतलाया है। आचार्य शुक्ल ने विद्यापति के प्रसिद्ध पद 'जनम अवधि हम रूप निहारल' का जिक्र तक नहीं किया, जो प्रेम की पवित्रता वह प्रेम की नवीनता को प्रदर्शित करती है। परंतु, निराला ने यहाँ तक लिख दियाः–*"ये पंक्तियाँ संसार के शृंगार–साहित्य में सर्वोत्तम स्थान अधिकृत करने की शक्ति रखती है।"*[197] यह है कवि–शिरोमणि विद्यापति की सच्ची पहचान। विद्यापति के शृंगार वर्णन की डूबकर प्रशंसा करते हुए निराला लिखते हैंः–*"कविशेखर की मधुर पदावलियों की मनोनिवेशपूर्वक पढ़िए, तो सहज ही मालूम हो जाता है कि वह कल्पना की अत्युच्च भूमि पर विचरण करनेवाले महान् से भी महान् थे। उनमें रस–ग्रहण की अद्‌भुत शक्ति थी। भावुकता के विचार से भी उनका आसन बहुत ऊँचा है। शृंगार में इतनी सूक्ष्मदर्शिता, इतनी सरस वर्णना मैंने बहुत कम देखी है। शैशव और यौवन के संधि–स्थल पर लिखते हुए कविशेखर ने कितनी सूक्ष्मदर्शिता दिखलाई है।"*[198] निश्चय ही विद्यापति की कविता की विशद व्याख्या करनेवाले निराला हिन्दी के प्रथम आलोचक ठहरते हैं। जो लोग विद्यापति के पदों को अश्लील ठहराते थे, उनके संदर्भ में निराला ने यहाँ तक लिख दियाः–*"कुछ लोग कविशेखर को अश्लील कहते हैं। उन नीतिज्ञ महापुरूषों की कविता समझने की शक्ति पर मुझे संदेह है।"*[199] दरअसल, शृंगार व अश्लीलता की सीमा–रेखा के बीच निराला के अपने विचार थे, जिन्हें ब्रजभाषा के कवियों के वर्णन में उन्होंने व्यक्त किया है।

ब्रजभाषा के साहित्य के संदर्भ में निराला लिखते हैः–*"ब्रजभाषा–साहित्य को लीजिए। कबीर उसके वेदांत साहित्य के रचयिता, तुलसी उसके ज्ञान मिश्रित भक्ति–साहित्य के प्रणेता, सूर उसके अलौकिक प्रेम के प्रदर्शक और अन्यान्य भक्त–कवि उसके दिव्य भावों को पुष्ट करनेवाले, समाज के शिरोमणि, जाति के यथार्थ नेता होंगे। भूषण आदि ब्रजभाषा के ओज द्वारा उसकी शिथिल शिराओं में जातीयता को प्रवाह संचालित करनेवाले होंगे। मतिराज बिहारी, पद्‌माकर, देव आदि*

उसके गृह–शरीर की वासनाओं को रूप देनेवाले, गृहस्थों के मनोविनोद की सृष्टि करनेवाले होंगे। इस तरह ब्रजभाषा की मूर्ति हमारे समाने आ जाती है–जातीय प्रगति का उज्ज्वल चित्र हमारे सामने आज जाता है।[200]
यहाँ निराला ने कबीर और तुलसी को भी ब्रजभाषा साहित्य में गिन लिया है, जबकि कबीर की भाषा 'सुधक्कड़ी' जानी जाती है और तुलसी ब्रज और अवधी दोनों में लिखते थे। खैर, ये इतना महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है – ब्रजभाषा और हमारी जातीयता का प्रश्न और भक्तिकालीन कवियों के प्रति निराला की श्रद्धा, तभी उन्हें 'जाति के यथार्थ नेता' कहते हैं। रीतिकाल में बिहारी, पद्माकर, देव आदि को 'गृह–शरीर की वासनाओं की पूर्ति करनेवाला बतलाकर निराला ने उनकी काव्य–सीमा सीमित कर दी। हाँ! राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के कारण निराला भूषण की बहुत तारीफ करते थे। यह निराला का हिन्दी साहित्य की जातीयता और भिन्न–भिन्न कवियों द्वारा साहित्य के प्रति योगदान के प्रति गर्व और आदर भाव प्रकट होता है। दूसरी बात, निराला हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन के चक्कर में नहीं पड़ते, संपूर्ण मध्यकालीन साहित्य पर एक साथ विचार करते हैं।

'नए पत्ते' में संकलित 'देवी सरस्वती' कविता में निराला मध्यकालीन कवियों की पूरी काव्य–यात्रा को रेखांकित करते हैं, पर यहाँ भी रीतिकालीन कवि नदारद हैं, जो यह स्पष्ट करता है कि निराला 'साहित्य के ज्ञानकांड' के कितने प्रशंसक थेः–

"तुलसीदास ने महाकाव्य
लिखकर मन्वन्तर
भक्ति–भावना से रचना
आलोक–समन्वित
हुई उसी स्वाधीन
चेतना से उत्कल–चित्त।
सूरदास के गीत,
रसों के स्रोत निरन्तर,
फूटी सरिताएं
उमड़ा शशधर से सागर।

मीरा की मानसी
गीतिका सहृदयता की
छवि से भरी हुई
निरवधि कलियों की राखी।
ज्ञानलोक विकीर्ण हुआ,
कबीर से,निर्झर।
फूटे कितने, ज्ञानदास के,
दादू के स्वर।
तुम्हीं चिरन्तन जीवन की
उन्नायक भविता,
छवि विश्व की मोहिनी
कवि की सनयन कविता।"[201]

निराला मानते थे कि बंगाल के पास एक रवीन्द्रनाथ जैसा रत्न है तो हिन्दी में पहले से तुलसीदास, सूरदास और कबीरदास जैसे रत्न रहे हैं। निराला के साहित्य–चिंतन में तीनों भक्तकालीन कवियों को अलग–अलग स्थान प्राप्त है। कबीर को निराला 'कविता के ज्ञानकांड' के आरंभकर्त्ता के रूप में याद करते हैं। निर्गुण ब्रह्म की उपासना के कारण निराला उन्हें 'आधुनिक मनोवृत्ति के अनुकूल' मानते हैं। रवीन्द्रनाथ ने कबीर के कई पदों का अनुवाद भी किया था और छायावाद पर आलोचक रवीन्द्र के प्रभाव के कारण कबीर के रहस्यवाद से जोड़ रहे थे। निराला कबीर के उलटबांसियों में भी ज्ञान का तत्व देखते हैं। निराला के वेदांत व ब्रह्म संबंधी विचारों पर रवीन्द्रनाथ व कबीर के प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता। यह भी गौरतलब है कि कबीर ने कहीं भी अपने को घोषित रूप से कवि नहीं कहा। निराला कबीर की कविताओं को भाषा की दृष्टि से अमार्जित ही मानते हैं। फिर भी, 'गीतिका' की भूमिका में लिखा है:– *"जनता में कबीर से मीरा तक सभी के गीत प्राणों की सम्पत्ति है। आज तक इन्हीं गीतों के आधार पर लोग अपने प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को जकड़े हुए है; परंतु यह सब होते हुए भी आधुनिक दृष्टि से जो एक दोष पदों में है, वही एक दूसरे रूप से सूर, तुलसी और मीरा में है।"*[202] निराला सूर व तुलसी में भाषा–संस्कार तो देखते है, पर

सगुणोपसाना के कारण आधुनिक रूचि के अनुकूल नहीं मानते। यद्यपि उन्हें सूर की पदावलियों के गेयता और तुलसी की काव्य–कला अधिक प्रिय हैं। संत साहित्य पर निराला ने लिखाः– *"संत पदावली से एक बहुत बड़ा उपकार जनता का हुआ। वहाँ संगीत की कला–दरबार में तरह–तरह की उखाड़–पछाड़ों से पीड़ित हो रही थी, भावपूर्ण सीधा–सीधा स्वर लुप्त हो रहा था; वहाँ भक्त साधकों ओर साधिकाओं के रचे गीत और स्वर यथार्थ संगीत की रक्षा कर रहे थे, और जनता पूरे आग्रह से यथा–साध्य इनका अनुकरण करती थी–भजन की महत्ता का यही कारण है।*[203] राज दरबार से कविता को जनता के बीच प्रतिष्ठित करना और जनभाषा को काव्य–रचना के लिए चुनना निश्चय ही भक्ति–साहित्य की जनपक्षधरता थी।

निराला यह तो मानते हैं कि भक्त–कवियों ने संस्कृत की जगह जन–भाषा को काव्य–रचना का आधार बनाया, पर यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि उनकी भाषा साहित्यिक दृष्टि से आसान नहीं है। 'साहित्य और भाषा' निबंध में निराला ने लिखा है कि तुलसीदास के 'मानस' में कहीं–कहीं भाव कठिन है और साद्यन्त सालंकार है, जिसे अनुभवी विद्वान ही समझ सकता है। सूरदास को भी निराला अलंकारों के सिवा एक कदम चलने वाला नहीं माना है। कबीर के लिए भी निराला मानते हैं कि पंडित होने के बावजूद भी वे अलंकार लिखते थे। केशव तो क्लिष्ट थे ही, बिहारी भी बिना टीका देखे ठीक से समझ में नहीं आते। इस आधार पर निराला का निष्कर्ष हैंः– *"वृहत् साहित्य यानी ऊँचे भावों से भरा हुआ साहित्य कभी देश काल या संख्या में नहीं रहा, और उसी देश, कला और संख्या का अब तक यथार्थ कल्याण हुआ है। उन प्राचीन बड़े–बड़े साहित्यिकों की भाषा कभी जनता की भाषा नहीं रही। सोलह आने में चार आने जनता के लायक रहना साहित्य का ही स्वभाव है, क्योंकि सब तरह की अभिव्यक्तियाँ साहित्य में होती है।*[204] जाहिर है, निराला यहाँ 'जनता की भाषा' का अर्थ 'बोलचाल की भाषा' लगा रहे हैं और साहित्यिक भाषा व बोलचाल की भाषा में अंतर स्पष्ट कर रहे हैं।

भक्त कवियों में तुलसीदास निराला के सबसे प्रिय रहे। निराला ने न केवल तुलसीदास पर लंबी कविता लिखी, वरन् उन पर कई निबंध भी लिखे। 'तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्व', 'तुलसीकृत रामायण का आदर्श', 'तुलसीकृत रामायण की व्यापकता', 'तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ' आदि निबंधों में निराला ने 'रामचरितमानस' के अद्वैत तत्व, अर्थ–गांभीर्य, भाव–माधुर्य, साधना–अनुभव, राज–नीति, धर्म–नीति, समाज–नीति आदि का प्रशंसा करते हैं। 'तुलसीकृत रामायण का आदर्श' निबंध में निराला लिखते हैंः– *"भारत की वर्तमान परिस्थिति पर ध्यान दीजिए तो यह बात स्वतः सिद्ध सिद्धांत के समान जान पड़ती है कि 'हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तान' का सबसे अधिक उपकार गोस्वामी जी ने ही किया है। अपढ़ जनता के मर्म–स्थान की मानो वह जान गए थे। उनकी अंतर्दृष्टि के निकट मानो भारत के भविष्य का रहस्य खुल गया था। वह समाज–संचालन क्रिया का पर्यवेक्षण करके समझ गए थे कि पतनोन्मुख हिन्दू–जाति को उन्नतिशील बनाना अभी दुःसाहस ही नहीं, असाध्य है। उनका गिरना रोकना मानो उसे और भी गिराना है। यही कारण है, जो गोस्वामी जी ने समय की प्रतीक्षा की और भावी संतान को सुपथ–गामी करने के लिए रामायण के रूप में अपने श्रेष्ठ और अमूल्य विचार भारत को सौंप गए।"..... हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद केवल रामायण को महत्व दिलाने के लिए दिया जाएगा।"*[205] स्पष्ट है कि निराला ह्रासशील भारतीय संस्कृति में नवजीवन फूंकने का श्रेय तुलसीदास को देते हैं और हिन्दू के साथ–साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी की अस्मिता का रक्षक भी बतलाते हैं। अकारण नहीं है कि 'तुलसीदास' कविता की शुरूआत इन पंक्तियों से होती हैः–

"भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे–तमस्तसूर्य दिड्मंडल
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।"[206]

और अतः–

संकुचित, खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख–जल
प्राची–दिगन्त, उर में पुष्कल रवि–रेखा।"[207]

यह अस्त होती संस्कृति का जागृत उदय है।

आचार्य शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में देश में मुसलमानों के राज्य प्रतिष्ठित होने पर भक्ति काव्य को हिन्दू जनता या 'पौरूष से हताश जाति' को भगवान की शक्ति के प्रति जाने की विवशता के रूप में देख रहे थे। निराला हिन्दी साहित्य पर मुसलमानी प्रभाव को अनदेखा नहीं करते। तात्कालिक स्वाधीनता संग्राम और वेदांत के मानवतावाद के आधार पर निराला हमेशा 'साहित्य की समतल भूमि' और समाज में हिन्दू व मुस्लिम ऐक्य की बात करते रहे। परन्तु, मुगलों के शासनकाल व भारतीय संस्कृति के पराभव का जो घटनाक्रम निराला ने 'तुलसीदास' में दिखलाया है, वह एक और लंबी कविता 'महाराज शिवाजी को पत्र' में भी दिखता है। तुलसीदास में यदि 'मोगल–दल–बल के जलद यान' है तो 'महाराज शिवाजी को पत्र में 'मोगल–दल विगलित–बल' प्रयुक्त होता है। दूधनाथ सिंह ने ठीक लिखा है:– *"जिस सांस्कृतिक क्षय की चिंता निराला को 'शिवाजी का पत्र' में सालती है, वही 'सांस्कृतिक अंधकार' के रूप में 'तुलसीदास में व्यक्त हुई है।"*[208] 'कवि और कविता' निबंध में निराला मध्यकालीन हिन्दी काव्य पर मुसलमानी प्रभाव का चित्रण करते हुए लिखते हैं:– *"तत्कालीन हिन्दू समाज पर मुलसमान वेश, मुसलमान भाषा, मुसलमान रीति–रिवाज़ किबहुना मुसलमानों के प्रत्येक विषय का प्रभाव पड़ा है। उस समय के हमारे हिन्दी साहित्य में आधे से अधिक शब्द और प्रायः सभी मुहावरे मुसलमानों की दी हुई भीख है अथवा यह कहिए कि मुसलमान कवियों से मुसलमान साहित्य के स्पर्धा और प्रतिद्वन्दिता करने के लिए हमारे विद्वानों और कवियों ने उनके शब्दों और मुहावरों को अपने साहित्य में स्थान दिया है, अथवा मुसलमान आधिपत्य के कारण उनकी भाषा, उनके शब्द आप–ही–आप हमारे समाज में आकर हमारी सम्पत्ति बन गये हैं।.....भाषा प्राणों की वस्तु जो है। वह निर्जीव हिन्दू जाति के प्राणों के साथ स्पन्दित, प्रतिध्वनित और प्रतिमुहूर्त स्फुरित होकर उसकी अपनी वस्तु*

बन गई थी।[209] यहाँ 'निर्जीव हिन्दू जाति' शब्द ठीक उसी प्रकार है जैसे आचार्य शुक्ल का 'पौरूष से हताश जाति' शब्द। खैर, यहाँ समस्त प्रसंग का उद्देश्य यही है कि निराला ने युग व परिवेश का संबंध संस्कृति व साहित्य दोनों से जोड़कर देखता है।

'सुधा' के जुलाई, 1935 ई0 में 'सुधा' में निराला जी की एक टिप्पणी छपी थी–'हिन्दी में आलोचना'। उक्त टिप्पणी में निराला लिखते हैंः– *"इधर नए स्कूल से कुछ अच्छे आलोचक निकले हैं, पर वे प्राचीन साहित्यिकों के ब्रह्म–परिवार में अभी अन्त्यज ही है। उदाहरण में हम कबीर, सूर और तुलसी का साहित्य लेते हैं। प्राचीन जितने भी आलोचक हैं, एक–एक करके सबको देखते जाइए, किसी ने भी उक्त कवियों की अच्छी आलोचना नहीं की। आलोचना अच्छी यह है जो कृति के पीछे न रहे, चाहिए कि बढ़ जाए।*[210] यहाँ यह गौरतलब है कि सन् 1923 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित 'तुलसीदास और सन् 1925 में भ्रमरगीत सार' भूमिका सहित प्रकाशित हो चुकी थी, जिसका हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान है। फिर भी निराला इन कवियों की अच्छी आलोचना का अभाव मान रहे थे। जाहिर है कि निराला आधुनिक मनोवृत्ति के अनुरूप इनकी आलोचना चाहते होंगे। हालांकि, निराला ने कबीर व सूर पर अलग से कोई निबंध या कविता नहीं लिखी है। सूर के पदों की गेयता के अलावा उन्होंने सूर के एक पद की पंक्ति 'समझयो सूर सकट पगु पेलत' में 'दर्शनशास्त्र की सर्वोत्तम युक्ति' देखी है। निराला के अनुसार श्रीकृष्ण का अपना अंगूठा चूसना और ब्रह्मांड का डोलना किसी एक केन्द्र के चेतन स्वरूप से समस्त संसार का गूथा होना है। निराला लिखते हैः– *"भारतीय विश्ववाद इस प्रकार का चेतनवाद है, जिसमें अगणित सौर–संसार अपने सृष्टि नियमों के चक्र से विवर्तित होते जा रहे हैं।..... हर एक केन्द्र में वह चेतनस्वरूप, वह आत्मा, वह विभु मौजूद हैं। सूर ने कृष्ण के उज्ज्वल केन्द्र को ग्रहण किया। तुलसी ने श्रीरामचंद्र के केन्द्र को और कबीर ने निर्गुण आत्मा को–बिना केन्द्र को। भारत के सिद्धांत के यथार्थ विश्व कवि यही हैं– कबीर, सूर और तुलसी जैसे महाशक्ति के आधार स्तंभ।*[211] स्पष्ट है निराला रवीन्द्रनाथ के 'विश्ववाद' का तोड़ इन कवियों के चेतनावाद या वेद्यान्तवेद्य अनंतवाद में देखते हैं। परन्तु, तुलसी की

प्रशंसा निराला केवल दर्शन, धर्म, समाज–नीति आदि के आधार पर ही नहीं करते, काव्य–कला की दृष्टि से भी लिखते हैं:– *"शृंखला के साथ पद–बंध, अनुप्रास, अलंकार आदि श्रेष्ठ काव्य गुण तो गोस्वामी जी ने उसमें दिखाये ही हैं; और उसकी यह सरल, स्वाभाविक और सुंदर गति उसकी लोकप्रियता का प्रधान कारण भी है। किन्तु, फिर भी, काव्य–कला से कहीं बढ़कर उसके वे भाव हैं जिनका जीवन के साथ, निम्नतम आदर्श से आरंभ कर सर्वोच्च सीमा तक घनिष्ठ संबंध है।*[212] अर्थात् भाव व भाषा दोनों की दृष्टि से तुलसी का मानस अप्रतिम है। महात्मा गाँधी तुलसीदास के बाद रवीन्द्रनाथ को ही महान कवि मानते थे। निराला स्वयं को हिन्दी का रवीन्द्रनाथ मानते थे परंतु रवीन्द्रनाथ के मुकाबले उनके पास हिन्दी का अपना ब्रह्माशास्त्र तुलसीदास ही थे। गाँधी जी के कथन को आधार बनाकर ही निराला ने 'सुधा' के जनवरी, 1931 के अंक में 'तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ' नाम से एक टिप्पणी लिखी और यह स्पष्ट किया कि दोनों पूर्ण महाकवि हैं। हालांकि उन्होंने यह माना कि रवीन्द्रनाथ जैसी बारीकी तुलसीदास में भी है; किन्तु तुलसीदास जैसी महत्ता रवीन्द्रनाथ में नहीं मिलती, कवीन्द्र अपनी प्रतिभा द्वारा वर्णन को महान करते हैं। निराला के अनुसार, तुलसीदास 'भक्त कवि' हैं और रवीन्द्र केवल कवि वेह लिखते हैं:– *"भक्ति के भीतर से गोस्वामी तुलसीदास जी का जो लक्ष्य रहा, मानवीय स्फूर्ति, सौंदर्य और भावनाओं के भीतर से वही रवीन्द्रनाथ का। भक्तिरस से परिप्लावित लोकोत्तरान्ददायक चित्रों को खींचने में तुलसीदास अद्वितीय हैं, अपार सौंदर्य और विराट चित्रण के भीतर से काव्य और दर्शन का रंग चढ़ाकर चित्रांकण करते हुए सत्य के द्वार तक ले जाने में रवीन्द्रनाथ अद्वितीय।*[213] जातीयता, संस्कृति, वेद्यान्तवेद्य अनंतवाद आदि के धरातल पर निराला को तुलसी प्रिय हैं, पर 'अपार सौंदर्य व विराट–चित्रण तथा दार्शनिक काव्य की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ।

निराला की 'तुलसीदास' कविता में तुलसीदास एक स्थान पर रत्नावली को तर्क देते हुए कहते हैं:–

"बंध के बिना कहाँ प्रगति?
गति–हीन जीव को कहाँ सुरति?

गति रहित कहाँ सुख? केवल क्षति–केवल क्षति;
यह क्रम विनाश; इससे चलकर
आता सत्वर मन निमग्न उतर;
छूटता अंत में चेतन स्तर, जाती मति।"[214]

इस संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा ने महत्वपूर्ण टिप्पणी की है:– *"वैष्णव कवियों ने शृंगार और ज्ञान लोक और परलोक दोनों साधे थे। निराला ने तर्क किया था, शृंगार के बिना वीररस की निष्पत्ति असंभव है। तुलसीदास ने भी ऐसा ही तर्क किया।"*[215] दरअसल यह तुलसीदास का नहीं, स्वयं निराला का अंतर्द्वन्द्व है। बंधन है तो गति है, उसे तोड़ने की और उसी में सुख है। ध्यातव्य है, निराला ब्रजभाषा की अतिशय शृंगारिकता व कामुकता को पूर्णतः अस्वीकार नहीं करते, कविता की बंधी–बँधाई, परिपाटी के बावजूद। बंध और प्रगति के इस संबंध को निराला ने 'पंत जी और पल्लव' निबंध में उभारा है। निराला ने लिखा है:– *"मैं यह मानता हूँ कि भारतवर्ष की उदारता, उसका विशाल हृदय, मुसलमानों से लड़ते–लड़ते प्रतिधातों के फल से धार्मिक संकीर्णता में मृदु स्पन्दित होने लगा था और उसकी व्यावहारिक पहली विशालता चौके के अंदर आ गयी थी।.....ब्रजभाषा–काल में इस दबाव का प्रभाव जातीय साहित्य में भी पड़ा और उस काल की हमारी हार हमारी संकुचित वृत्ति का यथेष्ट परिचय देती है, यह सब ठीक है, परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि वह दबाव आवश्यक था, जाति को संकुचित करके उसे शक्तिशाली सिद्ध करने के लिए –शेर जब शिकार पर टूटता है, तब पहले उसकी तमाम वृतियाँ–तमाम शरीर सिकुड़ जाता है और इस संकोच से ही उसमें दूर तक छलांग भरने की शक्ति आती है।"*[216] निराला इस छलांग को धर्म के नाम पर त्याग तथा वीरोचित दर्प वाली कविताओं तथा साहित्यिक रस की पूर्णता में देखते हैं। ध्यातव्य है, रीतिकाल में भिखारीदास ने काव्य का उद्देश्य मुख्यतः शृंगार को बतलाया था, राधा–कृष्ण भक्ति को 'बायप्रोडक्ट' ही बतलाया था:–

"आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कबिताई न तौ,
राधिका कन्हाई–सुमिरन को बहानो है।"[217]

हिन्दी के कई आलोचक व उस समय सुमित्रानंदन पंत भी ब्रजभाषा की इस अतिशय श्रृंगारिकता को संकुचित बता रहे थे। इसका जवाब देते हुए निराला ने लिखाः– *"जिस तरह धार्मिक छलाँग मारी गयी, उसी तरह साहित्यिक भी–हमेशा ध्यान रखा गया, एक पद्य के अंदर–एक छोटी–सी सीमा में भावों की विशालता ला दी जाए।.....पंत जी, क्या आप शराब, कवाब और बगल में बीबीवाले कवियों को अश्लील न कहेंगे? यदि कहते हैं तो यूरोप का एक प्रसिद्ध कवि निकालिए जो इन दुर्गुणों से बचा हो, और श्रृंगार की कविता में बाजी मार ले गया हो। ब्रज भाषावालों ने फिर भी कृष्ण जैसे श्रृंगार–रस के महापुरुष की आड़ में उस मदन को मूर्च्छित कर देने वाले कामजित् आदर्श की शरण में अपनी वासनाओं को चरितार्थ किया–यह क्या यूरोप की कविता में बालडांस से भी गया–बहा हो गया?"*[218] निराला उस अतिशय श्रृंगारिकता में कवियों की वासनाओं का विरेचन देखते हैं जिससे विषय–वस्तु की सीमा तो बंधी; पर सौंदर्य का विस्तार हुआ। निराला ने माना कि ब्रजभाषा के कवियों ने सौंदर्य को अनेक दृष्टियों से देखा और उसका कोई रूप नहीं छोड़ा। दूसरी ओर निराला यह भी मानते हैं कि रीतिग्रंथों में, अलंकार, छंद, रस, नायिका–भेद आदि में कविता–साहित्य का जो सुंदर विश्लेषण किया है, वह किसी आर्येत्तर भाषा के साहित्य में उपलब्ध नहीं। स्पष्ट है कि निराला को रीतिकालीन सीमाओं के बावजूद उनके काव्योग–निरूपण व काव्य–सौंदर्य को अपनी जातीय परंपरा से जोड़ते हैं, उस पर गर्व करते हैं।

निराला मानते हैं कि 'कारीगरी के विचार से ब्रजभाषा काल में जो शब्दों की छानबीन हुई' वह भाषा–विज्ञान की दृष्टि एवं सहृदयता व रसनिष्पत्ति के ढंग से भी ऊँचे स्थान की अधिकारी है। निराला जी ब्रजभाषा में फैली अश्लीलता को भी अमानवीय नहीं बताते। उन्होंने लिखा है:– *"एशिया के कवियों में उमर खैयाम की यूरोप में अधिक प्रशंसा होने का कारण जितना उसकी कविता नहीं, उससे अधिक उसके उपकरण, शराब, कवाब, नायिका और निर्जन है। ब्रजभाषा की कविता का जितना अंश अश्लीलता के प्रसंग से अशिष्ट बतलाया जाता है, वह फिर भी मानवीय है, आसुरी नहीं; रहा आह भरना, कटाक्ष करना और नीर–भरी गगरी ढरकाना सो मानवीय सृष्टि में श्रृंगार का परिपाक नायिकाओं के*

इन्हीं व्यवहारों इन्हीं आचरणों सामाजिक इन्हीं नियमों के आश्रय से हो सकता है। न ब्रजभाषा–काल में अंग्रेजी सभ्यता को प्रकोप भारतवर्ष में हुआ, न गधे के चित्रण (art) दिखलाने की कवियों को जरूरत मालूम पड़ी। यह मैं मानता हूँ कि मानवीय सृष्टि में उस समय अश्लील की हद कुछ अधिक हो गयी थी, मनुष्यों के नैतिक पतन के कारण।[219] ध्यातव्य है, महात्मा गाँधी ने हिन्दी साहित्य पर अश्लीलता का आरोप लगाया था और नेहरू जी ने दरबारीपन का। इस आधार पर कविता में अतिशय सदाचार की मांग और नारी सौंदर्य के चित्रण का विरोध कर रहे थे। रवीन्द्रनाथ की कविता में दर्शन भी था और शृंगारिकता भी। कई आलोचक इसे यूरोप की नकल बता रहे थे और छायावाद को बंगला की नकल अर्थात् नकल का भी नकल। निराला स्वयं भोगी थे और नारी–सौंदर्य के चित्रण को एक साधना ही मानते थे। 'नारी और कवि' नामक टिप्पणी में निराला लिखते हैं:– *"प्रेम के उपासक, कृष्ण के भक्त कवियों ने गोपियों के प्रेम के व्यक्त करने में भाषा, छंद तथा भावों को भी नारी–मूर्ति के साथ चिरकाल के लिए शृंगार सिद्ध कर दिया। 'त्वमसि मम भव –जलधि–रत्नम्' के द्वारा उन कवियों ने नारी ही को संसार का उत्तम सृष्टि माना है। नारियों के भीतर ही इन लोगों ने अपनी साधना प्रत्यक्ष की और किसी अंश में भी इस शृंगार के साहित्य को वेदांत साहित्य के उपलब्ध ज्ञान के मुकाबले न्यून नहीं रखा।*[220] यह भोग को उचित ठहराने की एक दार्शनिक युक्ति थी और शृंगार–रस के विरोधियों और ब्रह्मचर्य का उपदेश देनेवालों का मखौल भी। किन्तु, यहाँ भी गौरतलब है कि निराला भक्त कवियों और रीतिकालीन कवियों की शृंगारिकता–चित्रण में भेद करना नहीं भूलते। रीतिकालीन कवियों की सीमाएँ बतलाते हुए निराला लिखते हैं:– *"ब्रजभाषा काल के शृंगारी कवियों के चित्र तथा भावनाएं इसी हद तक रह गयी है। इसलिए उसमें वह रस नहीं, जो कबीर, तुलसी, मीर और गालिब में है, जो मौलाना रुम, उमर और गेटे में है। चित्रों तथा भावनाओं के भीतर से चिरन्तन सत्य में पहुँचना, अपार सौंदर्य में भावना तथा चित्रों की कृतियों को मिला देना कविता की पूर्णता कहलाती है; यहाँ भी कुछ भेद है। भक्त कवि यह कार्य पवित्र भावना तथा निष्कलुष मूर्तियों का आश्रय लेकर करते हैं और केवल कवि–विलास तथा*

शृंगार के अनेकानेक उपकरण लेकर/कविता की पवित्रता का दावा इन्हें भी रहता है। वेश्याओं में अपार सौंदर्य का स्रोत खोलकर इन्हीं लोगों ने सौंदर्य के अपार महासागर से मिलाया है। रहस्यवादी केवल कवि और आध्यात्मिक कवि के इन उपकरणों का ही भेद है।[221] उपकरणों के भेद से सरसता व पूर्णता में भी बाधा पहुँचती है। ध्यातव्य है, निराला के समय आचार्य शुक्ल नारी–सौंदर्य आदि के चित्रण को 'लोकमंगल की सिद्धावस्था' में रख रहे थे, साधनावस्था में नहीं। इस आधार पर वे रीतिकालीन शृंगारिकता का विरोध कर रहे थे। पं. महावीर प्र0 द्विवेदी काव्य में नैतिकता के अधिक पक्षधर थे। इस प्रकार निराला द्वारा रीतिवादी काव्य के विरोध या सीमाएं बताए जाना, आचार्य शुक्ल व द्विवेदी की मानसिकता से भिन्न था। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने ठीक लिखा है:– *"अनेक गाँधीवादी विचारक रीतिवाद के विरोधी इसलिए थे कि उसमें शृंगार की अतिशयता थी, समाज के लिए उपयोग विचारों की कमी थी। निराला रीतिवाद का विरोध इसलिए नहीं करते कि उसमें शृंगार अधिक है, उनके विरोध का कारण यह है कि उसमें शृंगार का उत्कर्ष नहीं है। कालिदास, रवीन्द्रनाथ, वर्ड्सवर्थ और पंत की रचनाओं से नारी सौंदर्य के चित्र देकर वह रीतिवादी सौंदर्यबोध की तुलना में शृंगार के वास्तविक उत्कर्ष का समर्थन करते हैं।*[222] निराला के नारी–सौंदर्य संबंधी कविताओं के शिल्प–सौंदर्य को समझने के लिए इस तथ्य को समझना आवश्यक है।

रीतिकालीन कवियों में निराला ने बिहारी, पद्माकर और भूषण पर बहुत कुछ लिखा है। अपने निबंध 'कविवर बिहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र' में उन्होंने बिहारी और रवीन्द्रनाथ की तुलना में रवीन्द्रनाथ को श्रेष्ठ ठहराया है। निराला मानते हैं कि बिहारी नायिका भेद ही बतलाते हैं, रवीन्द्रनाथ स्त्रियों के स्वभाव का चित्रण करते हैं। बिहारी तटस्थ रहते हैं, चित्रण–कुशलता दिखाने में रहते हैं और कुछ कहना शेष नहीं रखते; जबकि रवीन्द्रनाथ डूब कर लिखते हैं, अपने विषय में मिल जाते हैं और पाठकों को कुछ सोचने का अवकाश देते हैं। सबसे बड़ी बात जिस पर निराला ध्यान दिलाते हैं:– *"बिहारी के काव्य–विवेक में उतनी नवीनता नहीं जितनी रवीन्द्रनाथ की कविता में है। बिहारी ने किसी नए छंद का आविष्कार नहीं किया, कोई ऐसा अनूठा भाव नहीं दिखलाया जिसे अपनाने*

के लिए संसार भर के मनुष्यों को लालच हो। रवीन्द्रनाथ में ऐसे एक नहीं, अनेक छंद हैं–अनेक भाव हैं। बिहारी के काव्य–क्षेत्र से रवीन्द्रनाथ का काव्य–क्षेत्र बहुत प्रशस्त है, विस्तृत है।.....बिहारी के आने से हिन्दी में किसी नवीन युग का आविर्भाव नहीं हुआ, परन्तु रवीन्द्रनाथ युग–प्रवर्तक हैं।[223] यहाँ निराला बिहारी के माध्यम से न केवल रीतिकालीन काव्य की सीमाएँ बता रहे हैं, वरन् कवि–धर्म भी समझा रहे हैं जिसमें उनकी नव्याकांक्षा वाली भावना सन्निहित है। यही कारण है कि निराला 'कवि और कविता' निबंध में बिहारी के 'तंत्री–नाद, भक्ति–रस' वाली काव्य–अवधारणा का ज्यादा समर्थन नहीं करते।

निराला 'सुकवि पद्माकर की कविताएँ' में भी पदमाकर के बहाने रीतिकालीन कविता की सीमाएँ बतलाई है। पद्माकर के संबंध में निराला लिखते हैं:– *"प्राचीन ज्ञान–लब्ध सम्मति जितनी बड़ी उनके पास थी, पठित कवित्व, लक्षण–भेद तथा छंदों आदि का जितना सहारा वे लोग लेते थे, उतनी बड़ी मौलिकता उनमें नहीं थी। करीब–करीब यही हाल अन्य कवियों का भी है।*[224] निराला मौलिकता के बिना किसी को अच्छा 'कवि स्वीकार ही नहीं' सकते थे इसलिए रीतिकाल के कवियों में वह 'संस्कार जन्य कृत्रिम कवित्व' ही देखते हैं। इसका कारण वह अर्थ–लोलुपता व दास–मनोवृत्ति बतलाते हैं। आगे निराला लिखते हैं:– *"मेरा मललब यह कि मानवीय भावनाओं के बने हुए हृदय से कविता की नैसर्गिक ज्योति जरा कम निकली है, प्रायः नहीं–क्योंकि हृदय और मस्तिष्क में पराधीनता की बहुत बड़ी छाप थी। 'अली कली ही ते फैस्यो आगे कौन हवाल' में कविता की दुर्दशा का भी हाल लिख गया है, जैसा कविता को छंद, मात्रा, अनुप्रास और रस अलंकारों की दासी बना दिया हो, शब्दों का व्यवसाय किया गया हो और यही अब उस काल के कवियों की तारीफ में आता है। 'कै कै सबै टलाटली अली चली सुख पाय' में सुख तो कुछ है ही नहीं, किन्तु अस्वस्थ समाज का ही दृश्य सामने आता है। मानवीय शृंगार के दिव्य ज्योति के दर्शन नहीं होते।*[225] 'अस्वस्थ समाज का दृश्य', 'कविता की दुर्दशा', 'हृदय व मस्तिष्क की पराधीनता', 'शब्दों का व्यवसाय' आदि टिप्पणियाँ निराला के रीतिकालीन सामंती साहित्य के विरोध को दिखलाने हेतु पर्याप्त था। निराला पराधीनता से मुक्ति और कविता की मुक्ति की

बात करनेवाले कवि थे। उपर्युक्त पंक्तियों में निराला, आचार्य शुक्ल की रीतिकालीन कविता की धारा 'वाग्धारा बंधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगा' के करीब दिखते हैं। रीतिकाल में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करनेवाले भूषण आचार्य शुक्ल और निराला दोनों के प्रिय रहे हैं। निराला ने सन् 1927 में ही लिख दिया था– *"ब्रजभाषा के एक भूषण ने भारतीय राष्ट्र के लिए जो कार्य किया, वैसा कार्य इधर तीन–सौ वर्षों के अंदर समग्र भारतवर्ष में अपनी कवित्व–प्रतिभा द्वारा कोई दूसरा कवि नहीं कर सका।"*[226] आचार्य शुक्ल ने भी 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में लिखाः– *"भूषण के वीररस के उद्‌गार सारी जनता के हृदय के संपत्ति हुए। भूषण की कविता कविकीर्ति संबंधी एक अविचल सत्य का दृष्टांत है।"*[227] अपने समय के एक महान कवि और एक महान आलोचक की रीतिवाद विरोधी एवं राष्ट्रीय चेतना के प्रति आशक्ति गौरतलब है।

ब्रजभाषा पर निराला ने जो भी विचार किया, वह कविता पर मुगल प्रभाव दिखलाने, काव्य व जातीयता के संबंध को दिखलाने व वेदांतवाद व श्रृंगार के प्रसंग में। परन्तु, निराला का युग खड़ी बोली कविता का युग था। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली गद्य का विकास तो हुआ, किन्तु खड़ी बोली कविता का नहीं। गद्य में रीतिवादी मानसिकता का विरोध उस युग में शुरू हो गया। उस समय के साहित्यकारों के सामने सबसे बड़ा उत्तरदायित्व साहित्य और जनजीवन के मध्य की खाई को दूर करना, राष्ट्रीय भावना को परिभाषा देना और 'निज भाषा की उन्नति' करना था। भारतेन्दु ने खड़ी बोली में तीन ही कविताएँ लिखीं, पर उनमें भी उनका मन नहीं रमा। परन्तु भारतेंदु एक युग थे और उनके योगदान को निराला जी भूलते नहीं। वह भारतेंदु को 'हिन्दी के आदि प्रवर्त्तक' के रूप में याद करते हैं। 'भारतेंदु अर्द्धशताब्दी' टिप्पणी में निराला लिखते हैंः– *"उन्होंने अपने अल्प जीवनकाल में हिन्दी की बड़ी सेवा की और अपना नाम अमर कर गए। आधुनिक काल में हमारे साहित्य को कोई दूसरा भारतेंदु के समान प्रतिभाशाली कवि तथा लेखक नहीं मिला और न किसी दूसरे को इतनी प्रतिष्ठा और सम्मान ही प्राप्त हुआ।"*[228] यहाँ यह भी बतलाना आवश्यक है कि भारतेंदु युग के नाटकों और प्रहसनों में एक छोटा–सा स्थान खड़ी बोली के पद्य को मिलने लगा था। भारतेंदु ने कविता में ब्रज

भाषा के प्रति झुकाव के बावजूद 10 जनवरी, 1872 के साप्ताहिक 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित 'हिन्दी कविता' के नाम से अपने संपादकीय लेख में लिखा थाः—*"अब हिन्दी खड़ी बोली से पद्य कविता नहीं, वर्ना पर जो ऐसी वृद्धि है तो आशा है कि वह भाषा सुधर जाएगी।"*[229] भारतेंदु की आशा सही साबित हुई। सन् 1886 में पं0 श्रीधर पाठक द्वारा 'एकांतवासी योगी' शीर्षक से खड़ी बोली का पद्य निकालने से खड़ी—बोली कविता नए राह पर चलने लगी थी। इसके बाद खड़ी बोली कविता का आंदोलन चल पड़ा और सन् 1887 में मुजफ्फरपुर निवासी अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'खड़ी बोली का पद्य' प्रकाशित कर इस आंदोलन का सूत्रपात किया और पद्य की भाषा भी खड़ी बोली करने की मांग की। 'खड़ी बोली के पद्य' की समीक्षा करते हुए पं0 बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी प्रदीप में 1887 में ब्रजभाषा को 'जनानी भाषा' बतलाया और लिखाः—*"कविता के लिए उत्तम और उपयुक्त भाषा ओज, माधुर्य गुण विशिष्ट बुंदेलखंड ही की मर्दानी बोली है।"*[230]

निराला भी ब्रजभाषा को कोमल व स्त्रीत्व भाव वाला ही मानते थे। 'जीवन—संग्राम की भाषा' मर्दानी बोली से ही संभव थी और कविता भी निराला के लिए समर ही था। 'खड़ी बोली के कवि और कविता' में निराला ब्रजभाषा काल में 'प्रबल जातिगत विचार', 'संस्कृति की कट्टरता' तथा 'व्यापक संसार की संस्कृति तथा शिक्षा—दीक्षा आदि से अनभिज्ञता' को रेखांकित करते हैं। अंग्रेजी दासता से लड़ने और नई शिक्षा से जन्मे नए ज्ञान—विज्ञान के परिवेश में निराला ब्रजभाषा को अनुपयुक्त मानते हुए लिखते हैंः—*"इस तरह जहाँ सार्वभौमिक दासता आ गयी थी, वहीं पर जाति के बुद्धि—संस्कार के साथ—ही—साथ भाषा संस्कार भी आवश्यक था। यह प्रसार, यह उदारता ब्रजभाषा के द्वारा संभव न थी।..... खड़ी बोली की कविता का उद्‌भव ऐसे समय बहुत ही सार्थक हुआ। कविता हृदय की सृष्टि है, जहाँ मातृजाति का स्थान है।"*[231] निराला का मानना था कि 'भाषा की गति के साथ ही हमारी मातृशक्ति का उत्थान होगा और उनके मुखों से सुन—सुनकर खड़ी बोली के बालक अपनी भाषा, समाज और राष्ट्र का कल्याण कर सकेंगे।

खड़ी बोली के कवियों पर विचार करते हुए पं0 श्रीधर पाठक में निराला काव्य की शुद्धता का अभाव देखते हैं। निराला उन्हें ग्राम्य–गीतों में ही अधिक सफल मानते हैं।

निराला के अनुसार, *"इन लोगों की खड़ी बोली की कृतियों में गत बीस–पच्चीस साल के साहित्य की जो झलक मिलती है, उसमें प्रतिभा का कहीं भी पूर्ण विकास नहीं दीख पड़ता।"*[232] अर्थात्, निराला पं0 श्रीधर पाठक पर प्राचीनता का ही अधिक प्रभाव देखते हैं। खड़ी बोली के उस काल में निराला अयोध्या सिंह जी उपाध्याय हरिऔध की काव्य–साधना को सहृदयता और कवित्व की दृष्टि से अग्रण्य बतलाते हैं। 'सुधा' के मार्च, 1928 के अंक में 'हिन्दी कविता–साहित्य की प्रगति' निबध में हरिऔध जी को 'आर्यभावना पर सफलता पाने वाला' खड़ी बोली के प्रथम कवि के रूप में याद किया है। निराला उक्त लेख में हरिऔध जी की दिव्य उपासना की प्रशंसा करते हुए उनके 'चौपदों की सजीवता और भाषा के ऐश्वर्य' को हिन्दी की मौलिक वस्तु बतलाते हैं। 'सुधा' के अगस्त, 1929 ई0 के अंक में प्रकाशित 'खड़ी बोली के कवि और कविता' निबंध में निराला हरिऔध जी को 'हिन्दी के सार्वभौम कवि' का खिताब देते हैं क्योंकि वे खड़ी बोली, उर्दू के मुहावरे, ब्रजभाषा कठिन व सरल सब प्रकार की काव्य–रचना एक अच्छे उस्ताद की तरह कर सकते थे। पर उनकी भी सीमाएं बतलाते हुए निराला लिखते हैं:– *"परन्तु संस्कृत के वृत्तों तथा प्रचलित समस्त पदों के प्रयोग की प्रथा यह भी नहीं छोड़ सके।.....मुहावरों के प्रयोगों पर जो रचनाएं इनकी हैं, वे कवित्व–विकास के विचार से कुछ भी नहीं, पर मुहावरें याद कराने की अनमोल लड़ियाँ है।"*[233] कहने का तात्पर्य, हरिऔध जी भी पुरातन से मोह छोड़ नहीं पाए और जहाँ नयापन है, वहाँ कवित्व कम है।

हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग खड़ी बोली हिन्दी कविता के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। आचार्य शुक्ल ने पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी को अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'पद्य रचना की एक प्रणाली के प्रवर्त्तक' के रूप में याद किया है। निराला का भी मानना है:– *"खड़ी बोली की कविता में प्राण–प्रतिष्ठा सौभाग्यवान् आचार्य पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी*

ने की है। इनके प्रोत्साहन तथा स्नेह ने खड़ी बोली की कविता के प्रथम तथा दूसरे काल के कितने सुकवि साहित्य–सेवक उत्पन्न किए। ब्रजभाषा के पक्षपातियों से इन्होंने लोहा लिया और बड़ी योग्यता से अपने पक्ष को प्रबल करते गए। नवीन युवक–शक्ति इन्हीं के साथ सम्मिलित हो गयी और ईश्वर–दत्त इनका साधन भी उस काल में सबसे प्रबल रहा।[234] निराला इस कार्य में 'सरस्वती' पत्रिका की भूमिका का भी उल्लेख करते हैं। परन्तु, उनकी कविता की विशेष तारीफ नहीं करते। यहाँ तक कि उन्हें 'गद्य का अप्रतिद्वन्दी लेखक मानते हैं, पर उन्हीं की भाषा में उन्हें कवि मानने से इंकार करते हैं। हाँ! दूसरों से कविता लिखवाने में; भाषा–संशोधन व संपादन करने में वह द्विवेदी जी की भूमिका स्वीकार करते हैं। द्विवेदी जी पर मराठी का प्रभाव होने के कारण उन्हें संस्कृत वृत्त ही अधिक प्रिय था और वे गद्य व पद्य की भाषा को एक करना चाह रहे थे, केवल जोर तुक पर था। अपने समय में आचार्य शुक्ल और निराला दोनों द्विवेदी जी की काव्य–कला में इस कमी को रेखांकित कर रहे थे। निराला द्विवेदी जी के छंद संबंधी ज्ञान पर भी आक्षेप करते हैं क्योंकि द्विवेदी जी ने निराला की कविता 'जूही की कली' को छंद के आधार पर ही प्रकाशित करने से इन्कार कर दिया था। 'छायावाद' के प्रति भी द्विवेदी जी का दृष्टिकोण सहानुभूति पूर्ण न था। निराला उनकी काव्य–पंक्तियाँ 'पाद–पीठ को शोभित करते हुए.....'को लक्ष्य करते हुए लिखते हैं:– *"परन्तु खंड छंद को एक आँख न देख सकनेवाले द्विवेदी जी कभी–कभी खंड छंद के लकड़ दादा छंद की सृष्टि कर बैठते हैं।*[235] निराला के अनुसार, जहाँ द्विवेदी जी ने 'छंद के तैमूरलंग' को संभाला तो भाषा बिगड़ गई और जहाँ भाषा को संभाला, तब छंद–शास्त्र के बागी' ही ठहरे। निराला द्विवेदी जी को बाबू मैथिलीशरण गुप्त, सनेही जी, पं0 रूपनारायण पांडेय, पं0 रामचरित उपाध्याय, पं0 लोचन प्रसाद पांडेय, ठाकुर श्री गोपालशरण सिंह जी, बाबू सियाराम गुप्त आदि सुकवियों के प्रोत्साहनकर्त्ता के रूप में अधिक याद करते हैं।

निराला अपने समय व द्विवेदी युग के कतिपय कवियों पं. नाथूराम शंकर जी, पंडित रामचरित उपध्याय, पं0 कामता प्रसाद गुरू, पं0 रुपनारायण जी, पांडेय कमलाकर आदि कवियों की काव्य–कला के

कतिपय उज्ज्वल पक्षों पर प्रकाश डाली है। परन्तु उपर्युक्त चारों कवियों की कुछ सीमाएँ भी बतलाई हैं जो क्रमानुसार नीचे दी जा रही हैः–

(क) *"ढकेलू ढंग ढांपने को' इस तरह शब्दों के गढ़ने की ओर इनकी रूचि तो मिलती है परन्तु सफलता के विचार से हमें कहना पड़ता है, इनके शब्द–संगठन में कवि के हृदय की रसप्रियता का परिचय नहीं मिलता। इनके शब्द इन्हीं के साहित्य तक परिमित रहे। प्रतिभा मे रस–ग्राहिता कम रहने के कारण लोगों पर केवल प्रतिभा का प्रभाव पड़ा। वे इनके शब्दों के रूपों को अपना कर लेने का साहस नहीं कर सके।*[236]

(ख) *"इधर कुछ वर्षों से यह दो अर्थ रखनेवाली कविताएँ लिखते हैं जिनता एक अर्थ राजनीतिक हुआ करता है। इन कविताओं में सहृदयता कम रहती है।*[237]

(ग) *"'गुरू' जी की भाषा में व्याकरण का खूब ध्यान रहता है। इसलिए मार्जन रहने पर भी रूखापन बहुत है। 'गुरू'जी कवि नहीं। व्याकरण का पुल बाँध खड़ी बोली के शब्द–जीवों को छंद शास्त्र की पक्की सड़क पर उतार लेते हैं, बस।*[238]

(घ) *"इन्होंने बहुत ज्यादा मौलिक कविताएँ नहीं लिखीं। अब भी हिन्दी अपने सरस हृदय कवियों का भरण–पोषण नहीं कर सकती। कदाचित यही कारण है कि कविता के क्षेत्र में अधिक काम करने का हौसला नहीं रहा, यह बंगला की उत्तमोत्तम पुस्तकों का अनुवाद करने लग गए।*[239]

उपर्युक्त चारों कवियों की सीमाएँ द्विवेदी युग की भी सीमाएँ हैं– प्रतिभा–प्रदर्शन, रूखापन, सहृदयता का अभाव व मौलिकता की कमी।

निराला 'खड़ी बोली के सांचा को दुरुस्त' करने का 'सेहरा' बाबू मैथिलीशरण गुप्त को पहनाते हैं। इनकी पुस्तक 'भारत भारती' को वह अर्द्ध शिक्षित मुनष्यों में जातीय अभिमान पैदा करनेवाला मानते हैं। भाषा की शुद्धता के कारण निराला ने उन्हें 'हिन्दी का आदर्श' और 'श्रेष्ठ कवि'

माना है। हलांकि निराला यह मानते हैं कि 'रस और अलंकार की बहार उनकी कविता में ज्यादा नहीं है। फिर भी, सहृदयता, भावुकता एवं भाषा के मार्जन के आधार पर उत्कृष्ट कवि माना है। निराला इनके बारे में लिखते हैं:– *"इनका दर्शन भी भक्ति रसाश्रित है। पढ़ने में रस मिलता है। भावना में माधुर्य है। दर्शन अवश्य बहुत ऊँचे दरजे का नहीं।*[240] निराला की कई कविताओं में दर्शन की छाप है। निराला यहाँ कविता और दर्शन का फर्क भी स्पष्ट कर रहे हैं। यदि दर्शन रसाश्रित है तो उत्तम काव्य संभव है।

मैथिलीशरण गुप्त की इतनी प्रशंसा करने के बावजूद निराला उनके समानान्तर पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी को रखते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सनेही जी को पुरानी और नयी दोनों चाल की कविताओं में सिद्धान्त और उर्दू कविता में भी प्रवीण बतलाया है और ये घोषित किया है:– *"ये हिन्दी के एक बड़े ही भावुक और सरस हृदय कवि हैं।*[241] निराला भी सहृदयता के मुकाबलें में सनेही जी को गुप्त जी बीस ही मानते हैं। मैथिली शरण गुप्त और सनेही जी की तुलना करते हुए निराला लिखते हैं:– *"गुप्त जी संस्कृत के शुद्ध प्रयोगों के पक्ष में रहते हैं और सनेही जी खिचड़ी शैली के पक्ष में; इतना ही अंतर इनमें मिलता है। सनेही जी की कविताएँ खिचड़ी शैली में होने के कारण स्वाभाविकता से विशेष संबंध रखकर चलती है। गुप्त जी की कविताएं भाषा की एक नीति के आधार पर लिखी गयी–सी जान पड़ती है परन्तु सनेही जी की कृतियां नीति के रहित अथवा खिचड़ी शैली ही उनकी भाषा की नीति–भूमि रही, यह कहना पड़ता है।*[242] 'भाषा की एक नीति' निराला को पंसद नहीं। उनकी कविताओं यथा, 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास' आदि में संस्कृतनिष्ठता है तो 'कुकुरमुत्ता' और 'नए पत्ते' की रचनाओं में खिचड़ी शैली भी मिलेगी जो 'स्वाभाविकता से विशेष संबंध' रखती है।

द्विवेदी युग में गद्य और पद्य की भाषा एक करने की मांग होनी लगी। कविता में बोलचाल की भाषा का प्रयोग और 'अटपटे भाव' एवं 'अटपटे शब्दों' का विरोध होने लगा। काव्य में नैतिकता का अधिक बोलबाला और मर्यादित श्रृंगार को ही समर्थन दिया जाने लगा।

काव्य–सौंदर्य से ज्यादा व्याकरण की शुद्धता को स्थान मिलने लगा। डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है:– *"स्थूल पौराणिक कथा–वृत्त, सीधी वर्णन की प्रणाली और गद्य जैसे वाक्य–विन्यास का ढंग, इन सब में मिलकर द्विवेदी युगीन कविता को इतिवृत्तात्मक शैली दी, जिसके प्रति आगे के छायावादी काव्य ने विद्रोह किया।"*[243] मैथिलीशरण गुप्त इस इतिवृत्तात्मक शैली के प्रतिनिधि कवि उभर कर सामने आते हैं। 'भारत–भारती' के पश्चात् गुप्त जी ने 'प्रगीत मुक्तकों', और 'अभिव्यंजना के वैचित्र्य' की ओर झुकाव दिखाते हुए 'साकेत' और 'यशोधरा' लिखा जिसकी ओर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में भी इशारा किया है। आचार्य शुक्ल को खड़ी बोली काव्य का प्रारंभिक स्वरूप काव्यात्मकता के विशेष अनुरूप लगा भी नहीं। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में द्विवेदी युगीन काव्य भाषा के संदर्भ में निराला लिखते हैं:– *"जो कविता को अपने से दूर की वस्तु समझते हैं वे भी गद्य में चलने वाली भाषा को पद्यबद्ध करने का अभ्यास करने लगे। उनकी रचनाएँ बराबर प्रकाशित होनी लगी। उनकी संबंध में यह स्पष्ट समझ रखना चाहिए कि वे अधिकतर इतिवृत्तात्मक गद्य निबंध के रूप में होती थीं। फल इसका यह हुआ कि काव्य–प्रेमियों को उसमें काव्यत्व नहीं दिखाई पड़ता था और ये खड़ी बोली की अधिकांश कविता को 'तुकबंदी' मात्र समझने लगे थे। आगे चलकर तृतीय उत्थान मे इस परिस्थिति के विरूद्ध गहरा प्रतिवर्त्तन (रिएक्शन) हुआ।"*[244] आचार्य शुक्ल जिसे तृतीय उत्थान की 'रिएक्शन' कह रहे हैं, दरअसल वही छायावाद के उदय की पृष्ठभूमि थी।

निराला 'सरोज' मे प्रकाशित (मई–जून 1928) एक निबंध में 'सौंदर्य दर्शन और कवि–कौशल' में द्विवेदी युग की सीमाएं और छायावाद व विशेषकर जयशंकर प्रसाद की कविता को लक्ष्य कर लिखा:– *"हिन्दी की वह प्राथमिक अवस्था थी। कविता के वसंत के आवाहन–मंत्र ही उसमें विशेष रूप से सुनायी पड़ते थे। अब हिन्दी साहित्य के उस युग के पतझड़ में नवीन पल्लवों की हरियाली दिखाई देने लगी है। जिस समय द्विवेदी काल का साहित्य–सरोज अन्तः सूत सलिला 'सरस्वती' के वक्षस्थल पर प्रभात की किरणों को पूर्व–मार्ग की ओर अर्द्धनिमीलित ध्यान–नयनों से निरीक्षण कर रहा था, मुझे आश्चर्य है, निःस्संग, निस्सहाय हिन्दी के इस*

नवीन युग के तपस्वी कवि का उस समय काशी में प्रभाती द्वारा स्वागत–गीतियों का रचनाक्रम आरंभ हो चुका था।[245] स्पष्ट है कि निराला द्विवेदी युग को 'साहित्य के पतझड़' के रूप में और छायावाद को 'नवीन पल्लवों की हरियाली' अर्थात् वसंत के रूप में चित्रित कर रहे हैं। अकारण नहीं है कि निराला ने स्वयं को 'बसंत का अग्रदूत' कहा है। परन्तु, यहाँ निराला जयशंकर प्रसाद जी को नवीन युग के सूत्रपात का श्रेय दे रहे हैं। निराला ने अपने सहयोगी छायावादी साहित्यकारों के संदर्भ में निबंधों व कविताओं में भी चर्चा की है, जिस पर अगले अध्याय में प्रकाश डाला जाएगा।

निराला ने यहाँ जिस 'नवीन युग' का जिक्र किया है, उसमें कवि मयंक जी प्रशंसा कला व सौंदर्य–विकास के आधार पर की है। माखनलाल चतुर्वेदी जी की कविताओं में निराला ने 'एक द्रवीभूत हृदय का परिचय' देखा है। जहाँ उनकी कविता में 'कला की चकाचौंध' नहीं, वहाँ 'आँसुओं का प्रस्रवण' ही अधिक देखा है। हालांकि उनकी कुछ कविताओं में उन्होंने पंक्तियों की असंबद्धता की ओर भी इशारा किया है। अन्य कवियों में गोविन्दवल्लभ पंत में निराला ने सहृदयता अधिक और कुछ काव्य–कमजोरियाँ भी देखी हैं। उस युग में कतिपय राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत रचनाएँ भी हो रही थीं जिसमें रामधारी सिंह 'दिनकर', बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि प्रमुख थे। दूसरी ओर हरिवंश राय बच्चन हालावादी रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हो रहे थे। जहाँ तक बालकृष्ण शर्मा नवीन का प्रश्न है, निराला को उनके 'विप्लव गायन' में हृदय की वह क्रुद्ध झंकार नहीं दिखी। निराला लिखते हैः–*"वे भी कवि हैं, परन्तु प्रबल भावों की अधिक उत्तेजना से उनके हृदय के तार जैसे टूट गए हों; वे जो कुछ चाहते हैं, वह उन्हें जैसे न मिला हो। अधिक रोने से जैसे गला बैठ जाता है, उस ध्वनि से एक असह्य दबाव पड़ने के सिवा करूणाश्रित रस का उद्रेक नहीं होता, वैसे ही उनकी पंक्तियों का हाल है।*[246] क्रांति केवल रोने या गला फाड़कर चिल्लाने से नहीं आती, उसके लिए पौरूषमयी, वाणी की जरूरत है। 'नवीन' जी की 'विप्लव गायन' और निराला के 'बादल राग' जैसी कविताओं में यही अंतर है।

द्विवेदी युगीन काव्य–प्रभाव से इतर और अपने अन्य समकालीन कवियों में निराला ने गुरू भक्त सिंह 'भक्त' के प्रकृति–चित्रण की बहुत प्रशंसा की है। स्फुट निबंध 'भक्त' जी और प्रकृति निरीक्षण में निराला उनके काव्य–चित्रण की सच्चाई की प्रशंसा करते हैं और उनकी एक कविता 'कृषक–बधूरी' की तारीफ करते हुए लिखते हैंः–*"कृषक–बधूरी शीर्षक पद्य में कृषक–बहू की सुंदर तस्वीर, उसके कार्यों के भीतर से हू–ब–हू वर्णन द्वारा आपकी आँखों के सामने खड़ी कर दी और साथ–साथ काव्य–रस का उत्स भी घोल दिया है।*[247] 'कृषक–बधूरी' में 'कृषक–बहू की सुंदर तस्वीर' देखकर ही शायद निराला ने 'वे किसान की नयी बहू की आँखें' कविता लिखी होगी।

निराला हिन्दी साहित्य में योगदान देनेवाली अपने समय की कई कवयित्रियों को भी नज़रअंदाज नहीं करते, जिनमें श्रीमती तोरणदेवी शुक्ल लाली, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा और रामेश्वरी देवी 'चकोरी' महत्वपूर्ण थी। चकोरी जी पर लिखित एक स्वतंत्र निबंध 'श्री चकोरी जी की कविता' में उनके काव्य–पाठ की कला की प्रशंसा करते हैं। उनकी कविता की करूणा भावना, छंद और सवैया लेखन–कला, भावानुकुल पुष्ट भाषा की भी निराला प्रशंसा करते हैं। इस निबंध में निराला जी खड़ी बोली कविता के तब तक के विकास को 'केवल शक्ति राशि या आकारहीन स्वर' ही माना है। 'सुधा' के नवंबर, 1934 के अंक में प्रकाशित उक्त लेख में निराला लिखते हैंः–*"खड़ी बोली के काव्य का मनुष्यावास–योग्य जीवन नहीं बन पाया। अभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपों से भिन्न–भिन्न कवियों के मस्तिष्क में उपदेवताओं की तरह यह चक्कर काट रही है, जैसे उन आवर्त्तों से सहस्र–सहस्र शरीर निर्मित हो रहे हों; प्राण और आत्मा से युक्त सुखद संलाप भी होते जाते हैं। पर ये अभी कवियों के भाव–संसार में जितने पूर्ण और संस्कृत हैं, खड़ी बोली के प्राकृत विश्व में उतने नहीं। साधारण जनता इस जीवन से अभी बहुत पीछे हैं।*[248] निराला ने यह बात तब लिखी जब छायावादी कविता उभार पर ही थी, हलांकि तभी तक 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास','सरोज–स्मृति', 'कामायनी' व 'ग्राम्या' जैसी महत्वपूर्ण कृतियाँ सामने नहीं आई थी। उपर्युक्त पंक्तियों में निराला ने जिस 'मनुष्यवास योग्य जीवन' का जिक्र

किया, उसकी खोज तो स्वयं निराला ने 1923 ई0 में लिखित अपनी 'अधिवास' कविता से शुरू कर दी थी। 'अधिवास' कविता की शुरूआत में ही निराला यह प्रश्न पूछते हैंः–

"कहाँ–
मेरा अधिवास कहाँ ?

क्या कहा ?– रूकती है गति जहाँ
भला इस गति का शेष
संभव है क्या
करूण स्वर का जब तक मुझमें रहता है आवेश?"[249]

यहाँ भी निराला के सामने तुलसीदास का वही द्वंद्व– 'बंध के बिना कहां प्रगति?' निराला गति–हीन नहीं होना चाहते थे और अपने रचनाक्रम में वे अनव्रत गतिशील रहे, परिवर्तन करते रहे और आम जनता के अंदर 'अधिवास' बनाए रखा।

'मतवाला' के 3 मई, 1924 के अंक में प्रकाशित 'कविवर सुमित्रानंदन पंत' निबंध में निराला लिखते हैंः– ***"हिन्दी में जब से खड़ी बोली की कविता का प्रचार हुआ, तब से आज तक उसमें स्वाभाविक कवि का अभाव ही था। जो पौधा लगाया गया था उसे कुसुमित करने के लिए अब तक के कवियों को सींचने का श्रेय जरूर दिया जा सकता है, परन्तु वे उस पौधे के माली ही हैं, कुसुम नहीं। किसी पौधे में फूल एकाएक नहीं लग जाते, वे समय होने पर ही आते हैं। खड़ी बोली की जिस कविता का प्रचार किया गया था, जिसके प्रचारकों और कवियों को कितनी तो गालियाँ खानी पड़ी थीं, उसका स्वाभाविक कवि अब इतने दिनों बाद आया और हिन्दी का वह गौरव–कुसुम श्री सुमित्रानंदन पंत है।"***[250] निराला की विनम्रता देखिए पहले द्विवेदी युगीन 'साहित्यिक पतझड़' में हरियाली लाने का श्रेय प्रसाद जी को दिया, फिर खड़ी बोली के 'स्वाभाविक कवि' का श्रेय पंत को; कहीं अपना नाम तक नहीं लिया। कदाचित् निराला से पहले जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानंदन पंत छायावादी कवियों में अपना स्थान बना चुके थे। परन्तु, चाहे बात प्रसाद जी की हो या पंत जी की, निराला

खड़ी बोली की कविता का फूल 'छायावाद' में ही देखते थे। हलाँकि 'छायावाद' में रहते हुए भी निराला कई स्थानों पर छायावादी विचारधारा का अतिक्रमण करते हैं क्योंकि निराला को बंधन पसंद नहीं था, चाहे वह समाज का हो या साहित्य का या किसी 'वाद' का। 'गति और नवीनता' निराला के दो साहित्यिक प्रस्थान–बिन्दु थे जिसकी मंजिल थी–'मुक्ति'–मनुष्य, समाज, राष्ट्र व कविता सबकी मुक्ति।

निराला ने 'सुधा' के मार्च,1928 के अंक में प्रकाशित अपने निबंध 'हिन्दी कविता–साहित्य की प्रगति' में तद्युगीन खड़ी बोली कविता का विकास दिखाने के बाद वैदिक संस्कृत से अवत्तीर्ण भारतवर्ष की दूसरी भाषाओं द्वारा 'साहित्य–शरीर की जीर्णता' को त्यागने पर ही 'अबाध मुक्ति' की बात की। इसी प्रकार निराला भी खड़ी बोली की प्रगति को मुक्ति से जोड़ते हुए आशा करते हैंः–*"यह मुक्ति उसे दिव्य भावना के बल से प्राप्त होगी। भारतवर्ष की जलवायु इसी के अनुकूल है। जड़ परमाणुओं के आघात–प्रतिघातों से, कविता में जड़त्व के प्रचार से, न भाषा की मुक्ति होगी, न उससे सम्बद्ध इस जाति की ही मुक्ति हो सकती है। यदि देश का अर्थ मिट्टी है, यदि विश्व के माने मिट्टी का एक बृहत् पिंड है, यदि देश के उद्धार से मिट्टी के उद्धार का अर्थ सिद्ध होता है, यदि विश्व–मैत्री का सिद्धांत जड़–शरीर से प्रेम करने की शिक्षा है और यदि आजकल के कवि इन्हीं भावनाओं की पुष्टि करेंगे तो निस्संदेह इससे भाषा के साथ भाषा के बोलनेवालों की मुक्ति असंभव होगी। इस जाति के प्राण जड़ से नहीं; चेतन से मिले हुए हैं।"*[251] निराला अपने पूर्ववर्त्ती साहित्यिक विरासत और तद्युगीन साहित्यिक प्रगति के 'जड़ तत्व' को ही 'जला दे जीर्ण–शीर्ण प्राचीन' कह कर त्यागने की बात करते हैं क्योंकि जहाँ जीर्णता–शीर्णता है वहाँ जड़ता है और जहाँ जड़ता है वहाँ चैतन्य का अभाव है। इसलिए इसे निराला 'क्या करूंगा तन जीवन–हीन'? कहते हैं और माँ भारती से 'नवीन शक्ति' फैलाने का आह्वान करते हैं। जब 'नवीनता का गान' निराला सुनते हैं तो निराला 'मुक्तधरा, मुक्तानन' का वितान देखने लगते हैंः–

"सरस तार, नवल गान

नव–नव स्वर के वितान।

x x x x

x x x x

उठे उत्स, उत्सुक मन
देखे वह मुक्त गगन
मुक्त धरा, मुक्तानन,
मिला दे आदित्य प्राण।[252]

संदर्भः–

1. मुक्तिबोध ; 'चाँद का मुँह टेढ़ा'; ('मुझे कदम–कदम पर' कविता); पृ. सं0–92
2. डॉ. रामविलास शर्मा ; 'भाषा, युगबोध और कविता'; ('काव्यभाषा और युगबोध' निबध); पृ. सं0–9
3. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('महाकवि का संकल्प' निबंध); पृ. सं0–60
4. वही ; ('साहित्य का फूल अपने ही वृत्त पर' निबंध); पृ. सं0–357–358
5. वही ; पृ. सं0–357
6. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('गहन है यह अंधकारा' कविता); पृ. सं0–76
7. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण' निबंध); पृ. सं0–83
8. वही ; ('देशी रियासतों का रंग' निबंध); पृ. सं0–367–368
9. निराला ; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–1); पृ. सं0–22
10. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('राजे ने अपनी रखवाली की' कविता); पृ. सं0–177
11. डॉ0 नंदकिशोर नवल ; 'निराला रचनावली' (भाग–3); (भूमिका); पृ. सं0–10
12. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–3); ('अलका' उपन्यास); पृ. सं0–153
13. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('इंगलैंड और भारत का संबंध' निबंध); पृ. सं0–269
14. वही ; ('संगठन का नया रूप' निबंध); पृ. सं0–329
15. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–3); ('अलका' उपन्यास); पृ. सं0–189
16. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('किसान और उसका साहित्य' निबंध); पृ. सं0–442–443
17. वही ; पृ. सं0–443
18. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('चर्खा चला' कविता); पृ. सं0–180
19. वही ; ('वर्षा' कविता); पृ. सं0–196
20. वही ; ('झींगुर डटकर बोला' कविता); पृ. सं0–182
21. डॉ0 रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–26
22. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('मार्जन और स्वतंत्रता' निबंध); पृ. सं0–312
23. वही ; ('बाहर और भीतर' निबंध); पृ. सं0–34
24. वही ; ('जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण' निबंध); पृ. सं0–40
25. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('स्वाधीनता पर–1' कविता); पृ. सं0–119

26. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('संगठन का एक रूप' कविता); पृ. सं0–328
27. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('स्वाधीनता पर–2' कविता); पृ. सं0–120–121
28. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण' निबंध); पृ. सं0–40–41
29. वही ; ('दिव्यता और वेदांत' निबंध); पृ. सं0–352
30. वही ; पृ. सं0–351
31. वही ; ('नेहरू से दो बातें'; इंटरव्यू द्वारा प्रश्न); पृ. सं0–219
32. वही ; ('साहित्यिक सन्निपात और वर्त्तमान धर्म' कविता); पृ. सं0–160
33. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('कला के विरह में जोशी बंधु' निबंध); पृ. सं0–266
34. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('विज्ञान और वैज्ञानिक पत्र कला' निबंध); पृ. सं0–377
35. वही ; ('वर्णाश्रम धर्म की वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–105
36. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('भगवान बुद्ध के प्रति' कविता); पृ. सं0–35
37. वही ; पृ. सं0–36
38. वही ; ('वैज्ञानिक और धर्म' निबंध); पृ. सं0–386
39. वही ; पृ. सं0–387
40. वही ; ('सांध्य–काकली' का गीत 'बरसो मेरे आँगन बादल'); पृ. सं0–465
41. डॉ0 रामविलास शर्मा ; ('निराला की साहित्य–साधना'; भाग–2); पृ. सं0–192
42. डॉ0 नंद किशोर नवल ; 'निराला–रचनावली' (भाग–2); (भूमिका); पृ. सं0–16
43. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('सामाजिक पराधीनता' निबंध); पृ. सं0–135
44. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; चिंतामणि (भाग–3); ('विश्व प्रपंच की भूमिका'); पृ. सं0–136
45. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('सामाजिक व्यवस्था' निबंध); पृ. सं0–305
46. वही ; ('महर्षि दयानंद सरस्वती और युगान्तर'); पृ. सं0–412–413
47. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('दलित जन पर करो करूणा' कविता); पृ. सं0–33
48. वही ; ('वर्णाश्रम धर्म की वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–103
49. वही ; ('महर्षि दयान्द सरस्वती और युगांतर' निबंध); पृ. सं0–414
50. वही ; ('सनातन धर्म और अछूत' निबंध); पृ. सं0–419
51. वही ; ('चरखा' निबंध); पृ. सं0–71
52. वही ; ('वर्णाश्रम धर्म और वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–104

53. वही ; पृ. सं0–100
54. वही ; ('राजनीति के लिए सामाजिक योग्यता' निबंध); पृ. सं0–404
55. वही ; ('राजनीति और समाज' निबंध); पृ. सं0–402
56. वही ; ('अधिकार समस्या' निबंध); पृ. सं0–422
57. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('प्रतिजन को करो सफल' कविता); पृ. सं0–164
58. वही ; ('चर्खा चला' कविता); पृ. सं0–179
59. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–273
60. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('उद्‌बोधन' कविता); पृ. सं0–66
61. वही ; ('जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ' कविता); पृ. सं0–162
62. वही ; ('महगू–महगा रहा' कविता); पृ. सं0–198
63. वही ; ('प्रेम–संगीत' कविता); पृ. सं0–29
64. डॉ0 रामविलास शर्मा ; निराला की साहित्य–साधना (भाग–2); पृ. सं0–474
65. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('वर्णाश्रम धर्म और वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–105
66. वही ; ('हिन्दुओं का जातीय संगठन' निबंध); पृ. सं0–373
67. वही ; ('सामाजिक व्यवस्था' निबंध); पृ. सं0–303
68. वही ; ('सामाजिक व्यवस्था' निबंध); पृ. सं0–303
69. वही ; ('हमारे हिन्दू और मुसलमान' निबंध); पृ. सं0–382
70. वही ; ('सामाजिक व्यवस्था' निबंध); पृ. सं0–303–304
71. वही ; ('हिन्दू–मुस्लिम समस्या' निबंध); पृ. सं0–451
72. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('उद्‌बोधन' कविता); पृ. सं0–66–67
73. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य की समतल भूमि' निबंध); पृ. सं0–157
74. वही ; ('मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार–साम्य' निबंध); पृ. सं0–325
75. वही ; ('लाहौर कांग्रेस के सभापति पं0 जवाहर लाल नेहरू का अभिभाषण' टिप्पणी); पृ. सं0–263
76. वही ; ('महात्मा जी की भाषण प्रतिज्ञा' निबंध); पृ. सं0–364
77. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('झिंगुर डटकर बोला' कविता); पृ. सं0–182
78. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार–साम्य' निबंध); पृ. सं0–335
79. वही ; ('वर्णाश्रम–धर्म की वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–107
80. वही ; ('बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' निबंध); पृ. सं0–122–123
81. वही ; ('रूस की स्त्रियाँ' टिप्पणी); पृ. सं0–474
82. वही ; ('कला और देवियाँ' निबंध); पृ. सं0–225–226

83. वही ; ('समाज और स्त्रियाँ' निबंध); पृ. सं0–242
84. हरिशंकर परसाई ; 'परसाई रचनावली' (भाग–3); कमला प्रसाद(संपादक); राजकमल प्रकाशन; चौथा संस्करण, 2005 (संस्कारों और शास्त्रों की लड़ाई' रचना); पृ. सं0–319
85. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('समाज और स्त्रियाँ' निबंध); पृ. सं0–243
86. वही ; ('बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' निबंध); पृ. सं0–121
87. वही ; ('सामाजिक पराधीनता' निबंध); पृ. सं0–135
88. वही ; ('हिन्दू अबला' निबंध); पृ. सं0–261
89. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('विधवा' कविता); पृ. सं0–61
90. वही ; ('तोड़ती पत्थर' कविता); पृ. सं0–324
91. वही ; ('किसान बहू की नई आँखें' कविता); पृ. सं0–343
92. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('रानी और कानी' कविता); पृ. सं0–32
93. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' निबंध); पृ. सं0–122
94. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–286
95. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('अचल सुहाग' समीक्षा); पृ. सं0–540
96. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('राम की शक्तिपूजा' कविता); पृ. सं0–317
97. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–8); ('वर्त्तमान आंदोलन में महिलाएं' टिप्पणी); पृ. सं0–302
98. वही ; ('बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' निबंध); पृ. सं0–122
99. वही ; ('समाज और महिलाएँ' निबंध); पृ. सं0–361
100. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('जन्मभूमि' कविता); पृ. सं0–29
101. वही ; ('भारती, जय, विजय करे'! कविता); पृ. सं0–232
102. डॉ0 नंदकिशोर नवल ; 'निराला काव्य की छवियाँ'; पृ. सं0–52
103. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('नर जीवन के स्वार्थ सकल' कविता); पृ. सं0–259
104. वही ; ('खंडहर के प्रति' कविता); पृ. सं0–69
105. वही ; ('दिल्ली' कविता); पृ. सं0–88
106. वही ; ('जागो फिर एक बार' कविता); पृ. सं0–141
107. वही ; ('गए रूप पहचान' कविता); पृ. सं0–55
108. वही ; ('महाराज शिवाजी का पत्र' कविता); पृ. सं0– 149–150
109. वही ; पृ. सं0–158
110. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('साम्राज्यवाद और सत्याग्रह' निबंध); पृ. सं0–365–366
111. वही ; ('राष्ट्र की युवक शक्ति' निबंध); पृ. सं0–253

112. वही ; ('कांग्रेस का रंगमंच' टिप्पणी); पृ. सं0–258
113. वही ; ('देश की स्थिति और सरकार' टिप्पणी); पृ. सं0–281
114. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('झिंगुर डटकर बोला' कविता); पृ. सं0–182
115. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('लखनऊ जिला कानफ़रेंस' टिप्पणी); पृ. सं0–240
116. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('जागो फिर एक बार–2' कविता); पृ. सं0–142
117. डॉ. रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना'(भाग–2); पृ. सं0–81–82
118. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('गाँधी जी से बातचीत' इंटरव्यू द्वारा); पृ. सं0–204
119. वही ; पृ. सं0–215
120. वही ; ('पं0 जवाहरलाल नेहरू' जीवनी); पृ. सं0–268
121. निराला ; 'निराला रचनावली'(भाग–2); ('महगू महगा रहा' कविता); पृ. सं0–297
122. वही ; पृ. सं0–198–199
123. नागार्जुन ; 'नागार्जुन मेरे बाबूजी' (संपा0–शोभाकांत), वाणी प्रका ान सं0–1996; पृ. सं0–200
124. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('कुकुरमुत्ता' कविता); पृ. सं0–47
125. वही ; ('मास्को डायेलाग्स' कविता); पृ. सं0–36–37
126. दूधनाध सिंह ; दूधनाथ सिंह–आत्महंता आस्था; पृ. सं0–153
127. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('रूस' टिप्पणी); पृ. सं0–362
128. वही ; ('नेहरू से दो बातें'–इंटरव्यू द्वारा प्राप्त); पृ. सं0–219
129. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('नए विचार के संसार में.....' कविता); पृ. सं0–150
130. निराला ; 'निराला रचनावली'(भाग–6); ('हिन्दुओं का जातीय संगठन' टिप्पणी); पृ. सं0–373
131. दूधनाथ सिंह ; 'निरालाः आत्महंता आस्था'; पृ. सं0–148
132. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('भारतीय और अंग्रेजी साहित्य' टिप्पणी); पृ. सं0–389
133. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–287
134. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('नये रूप पहचान' कविता); पृ. सं0–55
135. भारतेंदु हरिश्चंद्र; 'भारतेंदु समग्र' (संपा0)–हेमंत शर्मा; ('हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान'); पृ. सं0–228
136. भारतेंदु हरिश्चंद्र; 'वही'; ('उर्दू का स्यापा' कविता); पृ. सं0–209
137. महावीर प्र0 द्विवेदी ; 'द्विवेदी–काव्यमाला' (संग्रहकार)–देवीदत्त शुक्ल; 'संदेश' कविता); पृ. सं0–444

138. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('खड़ी बोली के कवि और कविता' निबंध); पृ. सं0–302
139. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('आचार्य अमर हो' टिप्पणी); पृ. सं0–399
140. आचार्य महावीर प्र0 द्विवेदी ; 'महावीर प्र0 द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण'; पृ. सं0–15 (भूमिका)
141. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('हिन्दी भाषा कैसी होनी चाहिए' निबंध); पृ. सं0–49
142. वही ; ('भाषा की गति और हिन्दी शैली' निबंध); पृ. सं0–50
143. वही ; पृ. सं0–53
144. वही ; ('राष्ट्र–भाषा का प्रश्न' टिप्पणी); पृ. सं0–295–296
145. डॉ. रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–63
146. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('भारत की राष्ट्रभाषा' टिप्पणी); पृ. सं0–297
147. वही ; ('हिन्दी भाषा के संबंध में बंगाली मनोवृत्ति' टिप्पणी); पृ. सं0–445
148. वही ; ('भारत की राष्ट्रभाषा' टिप्पणी); पृ. सं0–297–298
149. वही ; ('प्रांतीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद'; नरोत्तम दास द्वारा लिया इंटरव्यू) पृ. सं0–200
150. वही ; पृ. सं0–200
151. वही ; ('भारत की राष्ट्रभाषा' टिप्पणी); पृ. सं0–299
152. वही ; ('हिन्दी भाषा कैसी होनी चाहिए' निबंध); पृ. सं0–47
153. वही ;('भारत की राष्ट्रभाषा' टिप्पणी); पृ. सं0–297
154. प्रेमचंद ; 'साहित्य का उद्देश्य' ('उर्दू हिन्दी हिन्दुस्तानी' लेख); पृ. सं0–101
155. राय सोहनलाल जी ; उद्धृत–'खड़ी बोली का आंदोलन'(लेखक)–शितिकंठ मिश्र; पृ. सं0–161
156. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'चिंतामणि' (भाग–3); (संपा)–डॉ. नामवर सिंह, ('हिन्दी और हिन्दुस्तानी' निबंध); पृ. सं0–298
157. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('हिन्दी का रूप और प्रभाव' टिप्पणी); पृ. सं0–357
158. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'चिंतामणि' (भाग–3); ('हिन्दी की पूर्व और वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–112
159. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('हिन्दू या हिन्दवी' टिप्पणी); पृ. सं0–327
160. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('देवी सरस्वती' कविता); पृ. सं0–191
161. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('भाषा की गति और हिन्दी की शैली' निबंध); पृ. सं0–51–52
162. वही ; ('हिन्दी का रूप और प्रभाव' टिप्पणी); पृ. सं0–359
163. वही ; ('गाँधी जी से बातचीत, इंटरव्यू आधारित लेख) पृ. सं0–211

164. वही ; पृ. सं0–212
165. वही ; पृ. सं0–210–211
166. वही ; पृ. सं0–215
167. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('वनबेला' कविता); पृ. सं0–328
168. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('संयुक्त–प्रांतीय युवक–कान्फ्रेस' टिप्पणी); पृ. सं0–238
169. वही ; ('साहित्य की आकांक्षा' टिप्पणी); पृ. सं0–343
170. वही ; ('हिन्दी की अभिनय कुशलता' टिप्पणी); पृ. सं0–278
171. वही ; ('साहित्य की आकांक्षा' टिप्पणी); पृ. सं0–343
172. वही ; ('प्रांतीय साहित्य सम्मेलन, फैजाबाद'; इंटरव्यू); पृ. सं0–204
173. वही ; ('गाँधी जी से बातचीत'; इंटरव्यू द्वारा प्राप्त); पृ. सं0–213
174. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('स्नेह–निर्झर बह गया' कविता); पृ. सं0–84
175. वही ; ('सम्मेलन और महात्मा जी'; टिप्पणी); पृ. सं0–467–468
176. वही ; ('हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्थगित' टिप्पणी); पृ. सं0–255
177. वही ; ('नेहरू से दो बातें', इंटरव्यू द्वारा प्राप्त); पृ. सं0–219
178. वही ; ('पं0 जवाहर लाल नेहरू और हिन्दी' टिप्पणी); पृ. सं0–424
179. वही ; ('नेहरू से दो बातें'; इंटरव्यू द्वारा प्राप्त); पृ. सं0–220
180. वही ; ('बाबू सुभाषचन्द्र बसु का व्याख्यान' टिप्पणी); पृ. सं0–250
181. वही ; ('शिक्षा–समस्या और हिन्दी' टिप्पणी); पृ. सं0–430
182. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('राह पर बैठे'–गजल); पृ. सं0–139
183. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('हिन्दी की अभिनय कुशलता' टिप्पणी); पृ. सं0–279
184. वही ; ('फिल्म–व्यवसाय, कला और हिन्दी' टिप्पणी); पृ. सं0–456–457
185. वही ; ('कथानक का विकास और फिल्म– निर्देशन' टिप्पणी); पृ. सं0–464
186. वही ; ('किसान और उसका साहित्य' टिप्पणी); पृ. सं0–444
187. वही ; ('विज्ञान और वैज्ञानिक पत्र कला' टिप्पणी); पृ. सं0–382
188. वही ; ('साहित्य और लेखकों का संकट' टिप्पणी); पृ. सं0–453
189. वही ; ('साहित्य का प्रचार' टिप्पणी); पृ. सं0–465
190. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('सरोज–स्मृति' कविता); पृ. सं0–297
191. वही ; ('सच है' कविता); पृ. सं0–295
192. वही ; ('जला दे जीर्ण–शीर्ण प्राचीन' कविता); पृ. सं0–244
193. डॉ. राम विलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–171
194. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य का फूल अपने ही वृत्त पर' निबंध); पृ. सं0–356
195. वही ; ('हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' निबंध); पृ. सं0–208

196. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; हिन्दी साहित्य का इतिहास– (संशोधित संस्करण); पृ. सं0–30
197. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('विद्यापति और चण्डिदास' निबंध); पृ. सं0–240
198. वही ; पृ. सं0–235
199. वही ; पृ. सं0–246
200. वही ; ('हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' निबंध); पृ. सं0–209
201. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('देवी सरस्वती' कविता); पृ. सं0–191–192
202. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('गीतिका' की भूमिका); पृ. सं0–408
203. वही ; पृ. सं0–409
204. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य और भाषा' निबंध); पृ. सं0–363
205. वही ; ('तुलसीकृत रामायण का आदर्श' निबंध); पृ. सं0–132
206. निराला ; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–267
207. वही ; पृ. सं0–289
208. दूधनाथ सिंह ; 'निरालाः आत्महन्ता आस्था'; पृ. सं0–102
209. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('कवि और कविता' निबंध); पृ. सं0–155
210. वही ; ('हिन्दी की आलोचना' टिप्पणी); पृ. सं0–499
211. वही ; ('पंत जी और पल्लव' निबंध); पृ. सं0–190
212. वही ; ('तुलसीकृत रामायण का आदर्श' निबंध); पृ. सं0–133
213. वही ; ('तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ' टिप्पणी निबंध); पृ. सं0–475
214. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–278
215. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–247
216. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('पंतजी और पल्लव' निबंध); पृ. सं0–191
217. भिखारीदास ; 'काव्य–निर्णय'; 1/8; पृ0 सं0–4, नागरी प्रचारणी सभा, काशी; प्रथम संस्करण; संवत्:2014
218. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('पंत जी और पल्लव' निबंध); पृ. सं0–192
219. वही ; पृ. सं0–189
220. वही ; ('नारी और कवि' टिप्पणी); पृ. सं0–446–447
221. वही ; ('चित्रण कला' टिप्पणी); पृ. सं0–444–445
222. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य–साधना (भाग–2); पृ. सं0–135
223. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('कविवर बिहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र' निबंध); पृ. सं0–141
224. वही ; ('सुकवि पद्माकर की कविताएं' निबंध); पृ. सं0–338

225. वही ; पृ. सं0–339
226. वही ; ('पंत जी और पल्लव' निबंध); पृ. सं0–189
227. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशो0 संस्करण); पृ. सं0–141
228. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('भारतेंदु अर्द्धशताब्दी' टिप्पणी); पृ. सं0–459
229. भारतेंदु ; 'भारतेंदु समग्र' (संपा0)– हेमंत शर्मा; ('हिन्दी कविता' निबंध); पृ. सं0–1088
230. बालकृष्ण भट्ट ; 'हिन्दी प्रदीप', अक्टूबर–दिसंबर 1887 ई0, उद्धृत– 'हिन्दी आलोचना का विकास'; डॉ0 नंदकिशोर नवल; पृ. सं0–26
231. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('खड़ी बोली के कवि और कविता' निबंध); पृ. सं0–301
232. वही ; पृ. सं0–305
233. वही ; पृ. सं0–305
234. वही ; पृ. सं0–302
235. वही ; पृ. सं0–303
236. वही ; ('हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' निबंध); पृ. सं0–211
237. वही ; ('खड़ी बोली के कवि और कविता' निबंध); पृ. सं0–306
238. वही ; पृ. सं0–307
239. वही ; पृ. सं0–309
240. वही ; पृ. सं0–311
241. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'(संशोधन); पृ. सं0–341
242. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); (हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' निबंध); पृ. सं0–212
243. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ; 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास'; पृ. सं0–170
244. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'; पृ. सं0–337
245. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); (सौंदर्य–दर्शन और कवि कौशल' निबंध); पृ. सं0–215–216
246. वही ; पृ. सं0–221
247. वही ; ('भक्त जी और प्रकृति–निरीक्षण' निबंध); पृ. सं0–360
248. वही ; (श्री 'चकोरी जी की कविता' निबंध); पृ. सं0–388
249. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('अधिवास' कविता); पृ. सं0–35
250. वही ; ('कविवर सुमित्रानंदन पंत' निबंध); पृ. सं0–139
251. वही ; ('हिन्दी कविता–साहित्य की प्रगति' निबंध); पृ. सं0–214
252. निराला ; 'निराला रचनावली'(भाग–2); ('सरस वार, नवल गान' गीत, अणिमा); पृ. सं0–346

अध्याय–3

छायावाद और निराला की काव्य–चेतना एवं नवीन–प्रयोग

(1) 'टूटे सकल बंध': मुक्ति और शक्ति का काव्य छायावाद
(2) 'मैं ही वंसत का अग्रदूत' : निराला की प्रयोगधर्मिता
(3) अभी न होगा मेरा अंत : निराला में विद्रोह की प्रवृत्ति एवं नवीन–प्रयोग

अध्याय–3

छायावाद और निराला की काव्य–चेतना एवं नवीन–प्रयोग

"वीणापाणि वाणी लोकमानस–विहारिणी है,
लुकी–छिपी किसी–किसी कोने में न रहती,
परख पुरानी यह भारत की भास रही,
काल बल खाती काव्य–धारा बीच बहती।
पहुंचा उन्माद की दशा को जहाँ व्यक्तिवाद,
कविता वहां की रूप–हानि घोर सहती,
नाचती नटी–सी गिरी दंभ की सताई हुई,
सच्चे भोले भाव कभी भूल के न कहती।" [1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'पाखंड–प्रतिबोध' कविता की उपर्युक्त पंक्तियां उनकी साहित्यिक 'वाद' विरोधी मानसिकता और व्यक्तिवाद पर कटाक्ष दृष्टि का परिचायक है। आचार्य शुक्ल वादग्रस्त कवियों को 'मतवादी' की संज्ञा देते थे और मानते थे कि 'काव्यक्षेत्र में किसी वाद का प्रचार' धीरे–धीरे उसकी सारसत्ता को चर जाता है। वह वादग्रस्त कविताओं में 'काव्यभास' अधिक देखते थे और मानते थे कि 'सच्ची कविता जगत की अभिव्यक्ति को ही लेकर चलती है।' यह अधिकांश साहित्यिक वादों एवं प्रवृत्तियों का जनक व्यक्तिवाद' को बतलाते हुए लिखते हैंः– ***"इन बहुत सी 'वाद' व्याधियों को प्रवर्तक है 'व्यक्तिवाद' जो बहुत पुराना रोग है। पुराने रोग जल्दी पीछा नहीं छोड़ते। एक न एक रूप में बहुत दिनों तक बने रहते हैं। यही दशा 'व्यक्तिवाद' की है जिसकी नींव भेदभाव पर है।"*** [2] जिस व्यक्तिवाद को आचार्य शुक्ल 'बहुत सी वाद–व्याधियों का प्रवर्त्तक' बतला रहे थे, उसे वह तद्युगीन छायावादी काव्य में फलता–फूलता देख रहे थे। उन्होंने इन्दौर के चौबीसवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन में जो भाषण दिया वह 'काव्य में 'रहस्यवाद' नाम से (1929 ई0) के नाम से प्रकाशित हुआ, उसके केन्द्र में भी कहीं न कहीं छायावाद ही

था। पाश्चात्य जगत में उभरी–नई समीक्षा' में कवि–केंद्रित आलोचना की जगह जब कृति को स्थान दिया जाने लगा तो आचार्य शुक्ल ने इसे 'व्यक्तिवाद का एक प्रकार से जगह बदलना कहा था। इस पर मलयज ने टिप्पणी करते हुए लिखा था *:–"शुक्ल जी ने 'व्यक्तिवाद' का अच्छा नक्शा खींचा है। पर क्यों व्यक्तिवाद अनिवार्य हो उठा–किन ऐतिहासिक भैतिक शक्तियों ने उसका होना अनिवार्य बना दिया–उसे शुक्ल जी ठीक–ठीक नहीं देख सके। अतः वे व्यक्तिवाद की असंगतियों तक ही रह गए। व्यक्तिवाद ने सामंतवाद–आधारित चेतना को तोड़कर मनः ऊर्जा फैलायी, इसे वे अपनी भारतीय साहित्यशास्त्र पर टिकी समालोचनात्मक दृष्टि व मूल्यों के कारण सहृदयता से नहीं पहचान पाए।"*[3] जो बात मलयज ने आचार्य शुक्ल की व्यक्तिवादी साहित्य के प्रति टिप्पणी के प्रति कही, वही छायावाद के प्रसंग में भी सार्थक है। छायावाद के पीछे ऐतिहासिक, भौतिक शक्तियों' की पड़ताल करना और 'सामंत–विरोधी चेतना' को भी समझना जरूरी है।

यह सर्वविदित है कि हिन्दी साहित्य में छायावाद के उदय का काल सन् 1920 के आसपास माना जाता है, जब मुकुटधर पाण्डेय ने सन् 1920 की जुलाई, सितंबर, नवंबर और दिसंबर की 'श्री शारदा' (जबलपुर) में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से चार निबंधों की एक लेखमाला छपवाई थी। *लेखमाला के प्रथम निबंध 'कवि स्वातंत्र्य' में उन्होंने रीतियुगीन काव्य–प्रवृत्तियों से मुक्ति और भाव–भाषा व छंद की मौलिकता को आवश्यक माना था। दूसरे निबंध 'छायावाद' क्या है, में मुकुटधर पांडेय 'छायावाद' को 'मिस्टिसिज्म' से जोड़ा और लिखा, 'ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोकर संकेतिक चिह्न मात्र हुआ करते हैं।'*[4] कहने का तात्पर्य छायावाद 'भावराज्य की वस्तु है और भाषा भाव–प्रकाशन का एक गौण साधन है। उन्होंने सांकेतिकता को छायावाद की प्रधान प्रवृत्ति माना। उन्होंने छायावादी 'आत्मनिष्ठ अंर्तदृष्टि' और उनकी कल्पना–दृष्टि को 'मर्त्यलोक' से कम संबंध रखने वाला बतलाया था। कलापक्ष की दृष्टि से मुकुटधर जी ने छायावादी काव्य में 'चित्रकारी ओर संगीत के अपूर्व एकीकरण' पर प्रकाश डाला जो छायावादी शिल्प की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यह भी बतलाना आवश्यक है कि 'छायावाद' शब्द

मुकुटधर पांडेय ने उस समय की नई काव्य शैली के लिए उद्धृत किया था। इस काव्य शैली के लिए उन्होंने हिन्दी के आचार्यों से नामकरण हेतु नाम माँगे थे। अतंतः 'छायावाद' शब्द उन्होंने स्वयं रखा। इस संदर्भ में उन्होंने स्वयं कहा है:—*"बंगला में 'छायावाद' शब्द का चलन नहीं हुआ था। अतः यह शब्द बंगला से नहीं आया। यह नाम सर्वथा मेरा गढ़ा हुआ है और मैंने परोक्ष सत्ता के प्रति अस्पष्ट रूप से व्यक्ति भावों की रचना के लिए इसे प्रयुक्त किया है।———बख्शी जी ने भक्तिवाद नाम सुझाया था और द्विवेदी जी ने आध्यात्मवाद।"*[6] एक और बात उन्होंने बतलाई कि उनकी एक रचना 'कुररी के प्रति', जो उन्होंने क्रौंच पक्षी के करूण क्रंदन पर बिस्तर पर बैठे–बैठे ही लिख ली थी– को लोग छायावाद की प्रतिनिधि रचना मानकर उन्हें 'छायावाद' के प्रवर्तक के रूप में गिनने लगे थे।

आगे चलकर जून 1921 ई0 की 'सरस्वती' में सुशील कुमार का 'हिन्दी में छायावाद' नाम से एक संवादात्मक निबंध निकला। उस संवाद में भाग लेनेवाले छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत भी थे। पंत जी व्यंग्यात्मक अंदाज में कविता की जगह 'कोरा कागज' प्रस्तुत करते हुए 'छायावाद का प्रधान गुण अस्पष्टता' बतलाते हैं। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी कृति छायावाद' में इसका जिक्र करते हुए लिखा है:—*"इस व्यंग्यात्मक निबंध से एक और बात सामने आती है कि उस समय के लोग छायावाद की कविता को टैगोर–स्कूल के छायाचित्रों के साथ रखकर देखते थे। यहां भी अभिव्यक्ति की अस्पष्टता को ही लेकर व्यंग्य किया गया है।"*[6]

'सुकवि–किंकर' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'छायावाद' को लक्ष्य कर मई, 1927 की 'सरस्वती' में एक निबंध लिखा–'आजकल के हिन्दी कवि और कविता', जिसमें उन्होंने छायावाद को 'मिस्टिीज्म' के अर्थ में न लेकर 'अन्योक्ति पद्धति' के अर्थ में लिया है। उनके शब्दों में – *"छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समय में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावो की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो छायावादी कविता कहना चाहिए।"*[7] द्विवेदी जी के अनुसार

'रवीन्द्रनाथ के अनुकरण से ही हिन्दी में यह अत्याचार हो रहा था। द्विवेदी जी ने रविन्द्रनाथ की कविताओं में तो 'आध्यात्मिक रहस्य 'माना' परंतु छायावाद को रहस्यवाद न कहा।

आगे चलकर सन् 1929 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'काव्य में रहस्यवाद' नामक निबंध में ईसाई मत में छाया के अर्थ में प्रयुक्त 'फैंटसमेटा' शब्द को ढूंढकर छायावादियों को नाम और भाव दोनों की दृष्टि से यूरोप का अनुकरणकर्ता माना। छायावादी कविता को सांप्रदायिक अथवा आध्यात्मिक रहस्यवाद के अंतर्गत मानकर आचार्य शुक्ल ने इसे एक और नाम दिया–'झूठा व कृत्रिम रहस्यवाद' (सूडो–मिस्टिसिज्म)। स्वाभाविक रहस्यवाद' को उन्होंने काव्य–क्षेत्र काव्य क्षेत्र में उपयोगी माना। छायावादी कविता में 'अज्ञात की लालसा' को उन्होंने अस्वीकार किया और कहा कि 'ज्ञात की लालसा' को ही भाषा की छिपानेवाली वृत्ति से 'अज्ञात की लालसा' कही जाती है। इस आधार पर निष्कर्ष दिया ***"रहस्यवाद की कविताओं में सबसे अधिक विरक्तिजनक दो बातें होती हैं–भावों की सचचाई का अभाव (इन–सिनसिएरिटी) और व्यंजना की कृत्रिमता (आटिफिसैलिटी)।"***[8] कहने का मतलब है कि आचार्य शुक्ल ने केवल आध्यात्मिक कविताओं को दृष्टिगत रखते हुए ही छायावाद पर फैसला सुना दिया। उन्होंने छायावाद में 'भावों की सच्चाई का अभाव' देखा और उसे एक 'शैली मात्र' माना जिसमें 'व्यंजना की कृत्रिमता' अधिक देखी।

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने भाव के क्षेत्र में रहस्यवाद को लाक्षणिक शैली से जोड़ते हुए सीधे 'रहस्यवाद' नाम दे दिया और नंददुलारे वाजपेई ने भी इसी 'आध्यात्मिक छाया' को 'छायावाद' की सर्वमान्य व्याख्या' से जोड़ दिया। उन्होंने लिखा–***"मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।"***[9] वाजपेयी जी के इस दृष्टिकोण पर डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं–***"वाजपेयी जी की इस परिभाषा के पीछे शांतिप्रिय द्विवेदी, महादेवी वर्मा, नगेन्द्र आदि की यह प्रचलित धारण भी है कि छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।"***[10]

इसी बीच आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सौजन्य से अंग्रेजी के 'रोमैंटिसिज्म' शब्द के अर्थ में हिन्दी में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द में आ गया। उन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि को स्वछन्दतावादी कवि माना। इन्हें नई धारा : द्वितीय उत्थान' वाले प्रकरण में रखा जबकि छायावादी कवियों को नयी धाराः तृतीय उत्थान' वाले प्रकरण में। तृतीय उत्थान के इन कवियों के बारे में आचार्य शुक्ल ने लिखा–*"आगे चलकर तृतीय उत्थान में उक्त परिस्थिति के कारण जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई वह भी स्वछन्दता की ओर न बढ़ पाई। बीच में रवीन्द्र बाबू की गीतांजलि की धूम उठ जाने के कारण नवीनता प्रदर्शन के इच्छुक नए कवियों में से कुछ लोग तो बंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं की रूपरेखा लाने लगे, कुछ लोग पाश्चात्य काव्य–पद्धति को विश्व साहित्य का लक्षण समझ उसके अनुसरण में तत्पर हुए। परिणाम यह हुआ कि रीतिकाल की रूढ़ियों और द्वितीय उत्थान की इतिवृत्तात्मकता से छूकर बहुत सी हिन्दी कविता विदेशों की अनुकूल रूढ़ियों और वादों में जा फंसी। इने–गिने नए कवि ही स्वच्छन्दता के मार्मिक और स्वाभाविक पथ पर चले।"*[11] स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल छायावाद को स्वच्छंदतावाद कहने से परहेज करते रहे। फिर भी हिन्दी पाठक समुदाय में छायावाद को स्वच्छंदतावाद का पर्याय मानने का भ्रम बना रहा। इस संदर्भ में डॉ. बच्चन सिंह ने अपनी कृति 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में ध्यान दिलाया है कि कुछ लोग इस काव्य–खंड की कविता को 'छायावादी' तो कहते हैं तथा नाटक, कहानी आदि को स्वच्छंदतावाद की श्रेणी में रखते हैं। डॉ. बच्चन सिंह 'छायावाद' को 'स्वच्छंदतावाद' नाम देना उपयुक्त समझते हुए लिखते हैं:–*"इस काल को 'स्वच्छंदतावाद युग' कहने में दो समस्याएं हल हो जाती हैं –एक तो तत्कालीन गद्य–पद्य को एक ही शीर्षक के अंतर्गत अधिक सार्थक ढंग से विवेचित किया जा सकता है, दूसरे यह कि अन्य भारतीय साहित्यों और भारतीयेत्तर साहित्यों के स्वच्दंतावादी आंदोलनों (रोमैंटिक मूवमेंटस) से जुड़ जाता है। अतः छायावाद के स्थान पर इस नए शब्द के चलन की ऐतिहासिक आवश्यकता है।"*[12]

वस्तुतः छायावाद को किसी विशेष विषय–वस्तु या शैली से जोड़कर देखने वाले आलोचक दरअसल उसका एकांगी मूल्यांकन ही करते हैं।

'छायावाद' शब्द व्यावहारिक दृष्टि से सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा की कविताओं विशेषकर 1918 से 1936 ई0 के बीच लिखे गए साहित्य के लिए रूढ़ हो गया है। 'छायावाद' के इन चार स्तंभों ने इसके लिए 'छायावाद' शब्द का ही प्रयुक्त किया। ये और बात है कि प्रसाद जी और महादेवी को छोड पंत और निरला छायावादी सीमा–रेखा का अतिक्रमण करते हैं। यह अतिक्रमण पंत द्वारा लिखित 1936 के बाद रचनाओं में अधिक दिखता है परंतु निराला शुरू से ही छायावादी सीमा–रेखा से अंदर–बाहर करते रहते हैं– भावबोध और शिल्प दोनों स्तरों पर। निराला विद्रोही कवि थे और विद्रोही कवि सीमा के बंधन में आ ही नहीं सकता। दरअसल 'छायावाद' में रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद, अध्यात्मवाद, विशेष काव्य–शैली, व्यक्तिवाद, प्रकृति–चित्रण, कल्पना आदि कई गुण समाहित हैं और सबसे ज्यादा है राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रम की आहट, नवीन जागरण और काव्य–मुक्ति के स्वर, जिसे तद्युगीन आलाचकों ने नजरअंदाज किया। इसलिए वे छायावाद की वर्गीय चेतना को समझने में असफल रहे। इसलिए डॉ. नामवर सिंह का यह कथन तर्कसंगत है– ***"छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और इसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का भी अर्थ–विस्तार होता गया।"***[13]

डॉ. नामवर सिंह के उपर्युक्त कथन के आधार पर यदि 'छायावाद' की व्याख्या की जाए तो निराला 'छायावाद' के पुरोधा कवि ठहरते हैं। 'मुक्ति की आकांक्षा' उनके साहित्य की सभी विधाओं में अभिव्यक्त हुई है, और उन्होंने जिन विविध विषय–वस्तुओं को छुआ है, उतना अन्य किसी छायावादी कवि ने नहीं। यहां एक बात और स्पष्ट कर देना उचित होगा कि निराला ने अलग से कोई लेख छायावादी काव्य–प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने के लिए नहीं लिखा। हाँ, अपने सहयोगी छायावादी कवियों, जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानंदन पंत पर जरूर लिखा, साथ ही कई लेखों में छायावाद पर लगे आरोपों का जवाब भी दिया, विशेषकर महावीर

प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि आलोचकों के संदर्भ में। निराला ने प्रसाद जी पर कविता लिखी और उस बहाने हिन्दी के समूचे नवीन साहित्यिक विकास को रेखांकित किया। उन्होंने कहीं भी स्वयं को 'छायावाद' के पुरोधा के रूप में स्थापित नहीं किया। अपितु प्रसाद जी और पंत को हमेशा आगे रखा। फिर भी निराला की 'साहित्य साधना' में डॉ. रामविलास शर्मा यह प्रश्न उठाते हैं–*"तब छायावाद क्या है? स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह? गांधीवाद का साहित्यिक प्रतिबिम्ब? निराला–साहित्य की विशेषताएं उसकी अपनी विशेषताएं हैं या छायावाद की सामान्य विशेषताएं हैं?*[14] डॉ. शर्मा ने अन्तिम प्रश्न के उत्तर में निराला को ही उस युग का अविघटित व्यक्तित्व' वाला प्रतिनिधि कवि माना है। आगे हम छायावादी काव्य–प्रवृत्तियेां व शिल्प की दृष्टि से निराला की वैचारिक यात्रा की छानबीन करेंगे। इस छानबीन का प्रस्थान बिन्दु है, सन् 1928 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में छायावाद पर दिया गया यह बीच वक्तव्य–*"रहस्यवाद और छायावाद की मूल धाराओं का समझने के लिए अध्ययन और मनन की आवश्यकता है–यह काव्य का ज्ञानकांड है।*[15]

(1) 'टूटे सकल बंध': मुक्ति और शक्ति का काव्य छायावाद

"टूटे सकल बंध
कलि के, दिशा–ज्ञान–गत हो बहे गन्ध।
रूद्र जो धार रे
शिखर –निर्झर झरे,
मधुर कलख भरे,
शून्य–शत–शत रन्ध्र।

रश्मि ऋजु खींच दे
चित्र–शत रंङ्क के,
वर्ण –जीवन फले,
जागे तिमिर अन्ध।"[16]

'गीतिका' में संकलित निराला की यह लघु कविता 'टूटे सकल बंध' केवल प्राकृतिक मुक्ति या कलि के बंध टूटने की ही बात नहीं कहती, वरन् प्रतीकों द्वारा मुक्ति, गति, दीप्ति व जागृति की पूरी कथा कहती है– जो छायावादी कविता के केन्द्र में था। बंध टूटने पर अवरूद्ध पड़ा जलधार निर्झर के रूप में फूट पड़ता है, यह गति है। बंधन के टूटने से गति आती है और फिर प्रकृति में जो प्रकाश बिंब है–वह दीप्ति है, ज्ञान का प्रकाश और फिर जागृति है। इस जागृति में 'अज्ञान का अंधकार तिरोहित हो जाता है। यह जागरण सांस्कृतिक जागरण है। जागरण व शक्ति का गहरा संबंध है। आतंरिक शक्ति के विकास के बिना सांस्कृतिक जागरण संभव नहीं है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी छायावादी काव्य को '**शक्ति काव्य**' बतलाते हुए लिखते हैं:–*"छायावादी काव्य में राष्ट्र जागरण से अधिक समग्र चेतना का जागरण और आह्वान है, उसमें अंतर्निहित शक्ति के विकास का रचनाक्रम उपक्रम है।"*[17] 'दरअसल छायावादी काव्य को **दीप्ति** व **जागृति**' के बिंबों व प्रतीकों में देखने की जरूरत है जो शक्ति–संचय या आत्मिक शक्ति के विकास से जुड़ते हैं। जिसका लक्ष्य है मुक्ति और निर्बाध गति।

'नमों छायावाद' को परिभाषित करते हुए जयशंकर प्रसाद ने 'मोती के भीतर छायी फैली तरलता' के अर्थ में '**छाया**' को लिया और 'यथार्थवाद और छायावाद' निबंध के अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचे–*"छाया–भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मक, लाक्षणिकता, सौन्दर्यात्मक प्रतीक–विधान तथा उपचार–वक्रता के स्थान स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएं हैं अपने भीतर से माती के पानी की तरह आंतर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमयी होती है।"*[18] यहां छायावाद की अभिव्यंजना शैली की विशेषता तो बतलाई गई है, साथ ही साथ 'छाया' शब्द की व्याख्या में विषय–वस्तु व भाव–भंगिमा के आधार पर चमक या कांति को भी महत्व दिया गया है। इस कांति को आप 'दीप्ति' भी कह सकते हैं। यही शक्ति का तेज भी है। ऐसे भी प्रसाद जी स्पष्ट कर दिया कि "छायावाद" के अंतर्गत केवल प्रकृति से संबंध रखने वाली कविताएँ ही नहीं आती बल्कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण से भी उसका गहरा संबंध है।

जयशंकर प्रसाद ने न केवल अपनी कविताओं में वरन् अपने ऐतिहासिक नाटकों 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगप्त' आदि में जातीय जागरण का प्रसार किया है। जयशंकर प्रसाद मानते हैं:–**"संस्कृति सौन्दर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है। इसलिए साहित्य के विवेचन में भारतीय संस्कृति और तदनुकूल सौन्दर्यानुभूति की खोज अप्रासंगिक नहीं, किन्तु आवश्यक है।"**[19] 'स्कन्दगुप्त' नाटक के प्रथम अंक में भारत की प्राचीन शक्ति का ज्ञान कराते हुए राष्ट्र के लिए बलिदान करने की भावना प्रकट की जाती है :–

"वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।
वही है शान्ति, वहीं शक्ति वही, हम दिव्य आर्य संतान।
जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर कर दे, हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।"[20]

'जनमेजय का नागयज्ञ' के एक गीत में आर्य–जाति का गुणगान करते हुए प्रसाद जी ने लिखा है :–

"यह अरूण पताका नभ तक है फहराती,
जो विजय–गीत मिल मलय पवन से गाती,
जय आर्य–भूमि की, आर्य–जाति की जय हो।
अरिगण के भय हो, विजय जनमेजय हो।"[21]

जयशंकर प्रसाद की कविता 'पेशोला की प्रतिध्वनि' की शुरूआत में जातीय सूर्य के अस्त होने का 'करूण बिंब' कुछ प्रकार प्रकट होता है :–

"अरूण करूण बिम्ब!
वह निधूर्म भस्म रहित ज्वलन पिंड
विकल विवर्तनों से
विरल परिवर्तनों से
श्रमित नामित–सा।"[22]

पेशोला की लहरों में महाराणा प्रताप का नहीं, पराधीन भारत का प्रश्न जैसे प्रश्न करता है :–

"कौन लेगा भार यह?
कौन विचलेगा नहीं?
दुर्बलता इस अस्थिमांस की–
ठोक कर लोहे से, परख कर वज्र से,
प्रलयोल्का खंड से निकष पर कस कर
चूर्ण अस्थि पुज जा हंसेगा अट्टाहास कौन?
साधना पिशाचों की बिखर चूर–चूर हो के,
धूलि से उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से।"[23]

"शेरसिंह का शस्त्र समर्पण" में शेरसिंह के माध्यम से अंग्रेजों को जवाब भी है और पंजाब प्रांत की वीरता के माध्यम से पूरे भारतवर्ष के शौर्य का बखान भी है :–

"आज विजयी हो तुम
और है पराजित हम
तुम तो कहोगे, इतिहास भी कहेगा यही,

किन्तु यह विजय प्रशंसा भरी मन की–
एक छलना है!
वीरभूमि पंचनद वीरता से रिक्त नहीं।
काठ के गोले जहां,
आटा बारूद हो।"[24]

यहाँ शौर्य का बखान है तो शक्ति–संचय का आह्वान जो 'कामायनी' की इन पंक्तियों में भी सुनाई पड़ता है:–

"शक्ति के विद्युतकण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरूपाय
समन्वय उसका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।"[25]

यहां समस्त मानवता के लिए शक्ति–संचय की बात है। पर मूल में है राष्ट्रीय चेतना और आत्म–शक्ति का जागरण। यह शक्ति तरंग कैसे निखरता है, इसे 'रहस्य सर्ग' में देखिए :–

"शक्ति तरंग प्रलय पावक का
उस त्रिकोण में निखर उठ–सा,
शृंग और डमरू निनाद बस
सकल विश्व में बिखर उठ–सा।"[26]

छायावादी कवियों में अतीत के प्रति भी मोह है। सुमित्रानंदन 'परिवर्तन' कविता में उस 'स्वर्ण युग' उस कांति या दीप्ति की खोज करते हैं :–

"कहां आज वह पूर्ण–पुरातन, वह सुवर्णों का काल!
भूतियों का दिगंत–छवि–जाल
ज्योति–चुबित–जगती का भाल।"[27]

छायावादी कवि उसे 'ज्योति–चुंबित–जगती' का अर्थात् कांतिमान, दीप्तिमान व शक्तिमान जगत का पुनरान्वेषण करते हैं। यह जगत बाह्य एवं मानसिक दोनों हैं। यह अनायास नहीं है कि पंत जी 'परिवर्तन' में

'जलते–बुझते शत–सहस्र रवि–शशि' देखते हुए जग की आंखें खोलने, अंधकार, हटाने की बात करते हैं, जो बाह्य और आतंरिक दोनों अर्थों में सही है :–

"खोल जगत के शत–शत नक्षत्रों से लोचंन,
भेदन करते अंधकार तुम, जग का क्षण।"[28]

पंत 'गुंजन' में तो जग में 'ज्योतिर्मय जीवन' की बात करते हैं :–

"जग के उर्वर आंगन में,
बरसों ज्योतिर्भय जीवन,
बरसों लघु–लघु तृण तरू पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन।"[29]

'ज्योतिर्मय जीवन' ही दीप्ति व शक्ति का प्रतीक है। 'गुंजन' की शुरूआत में ही कवि इसी के संचय की बात करते हैं:–

"जीवन मधु–संचय को उन्मन्
करते प्राणों के अलि गुंजन।"[30]

"पंत ने छायावादी युग में राष्ट्रीय जागरण से लिखी सीधी–सीधी कविताएं कम लिखी हैं जो बाद में 'ग्राम्या' या युगांत, 'युगवाणी' आदि में थोड़ी–बहुत मिलती है, जब वे भारत के ग्राम का या 'बापू के प्रति' लिखते हैं। 'वीणा' में पंत ने विवेकानंद की अल्मोड़ा यात्रा पर एक कविता लिखी है, जिसमें उन्होंने स्वामी जी को 'स्वामी जी तो प्रभावान हैं/वे प्रदीप थे पूजन में'[31] कहा और शायद ऐसे ही 'प्रभावान' पुंज को ही भारत में विकसित होते देखना चाहते हैं :–

"वह जागृति का जीवित गीत,
अलि वाला गाती सुपुनीत।
गूंज उठे इस मधु सेवा से,
दुर्बल हृदयों में नव बल
जीवन का, जग का मंगल।"[32]

छायावादी युग में महादेवी वर्मा का आविर्भाव तब हुआ, जब छायावाद अपने उफान पर था। उनकी कविताओं में पीड़ा की प्रधानता है पर वह सामाजिक जागरण से बिल्कुल परे नहीं है। जो लोग उनके काव्य को मैं नीर भरी दुःख की बदली' में समेटकर सिर्फ 'आंसुओं का देश' बतलाते हैं, वे 'सांध्यगीत' काव्य–संग्रह की इन पंक्तियों पर ध्यान दें :–

"एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूं!
.....रात के उर में दिवस की चाह का शेर हूँ।"[33]

उपर्युक्त पंक्तियों के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं :–

"निराला को छोड़कर किसी भी छायावादी कवि में जीवन की इतनी चाह नहीं है, जितनी महादेवी में है। निराशावाद की अंधेरी रात में जीवन प्रभात की यह चाह महादेवी की रचनाओं में बार–बार दीप्त हो उठती है। और जितना अंधेरा घना होता है, उतनी ही यह चाह और भी तीव्र हो जाती है।"[34] अंधेरी रात में प्रकाश की चाह का 'दीप्त' होना ही वह 'दीप्ति' है जिसकी तलाश छायावादी कविता में दिखलाई पड़ती है। महादेवी जी की कविताओं में यह प्रारंभ से ही दिखता है। उनके पहले काव्य–संग्रह 'नीहार' की पहली कविता 'विसर्जन' की निम्नांकित पंक्तियां देखिए :–

"निशा की, धो देता राकेश
चांदनी में जब अलकें खोल।"

'नीहार' की ही 'अधिकार' कविता में कवयित्री शुरूआत में ही यह स्पष्ट कर देती है :–

"वे मुस्कुराते फूल नहीं,
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं,
जिनको भाता है, बुझ जाना।"[36]

आगे कवयित्री "मिटने का अधिकार" मांगते हुए कहती है :–

"क्या अमरों को लोक मिलेगा
तेरी करूणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे।
यह मेरे मिटने का अधिकार।"[37]

"मिटने का अधिकार" केवल 'असीम' में या प्रियतम तक पहुंचने का चाह नहीं, इसका एक राष्ट्रीय व मानवतावादी मूल्य भी है। 'नीहार' की ही 'फिर एक बार' कविता में देश का स्तवन करती राष्ट्रीय चेतना देखिएः–

"मेरे भारत मेरे विशाल
मुझको कह लेने उदार!
फिर एक बार, बस एक बार!
जिनसे कहती बीती बहार
'मतवालों जीवन है असार'।
जिन झंकारों के मधुन गान
ले गया छीन कोई अजान।"[38]

आगे चलकर भारत के प्रति यह राष्ट्रीय चेतना 'जाग तुझको दूर जाना' जैसे जागरण गीतों में प्रकट होती है। जिसमें महादेवी देश के नवयुवकों को सीधे–सीधे देश की स्वाधीनता हेतु प्राणोत्सर्ग करने के लिए प्रेरित करती है :–

"वज्र का उर एक छोट अश्रुकण में धो गलाया,
दे किसे जीवन–सुधा दो घूंट मदिरा मांग लाया?
सो गई आंधी मलय की वात का उपाधान ले क्या?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बन कर पास आया?
अमरता–सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?
जाग तुझको दूर जाना!"[39]

ध्यातव्य है कि जिस कवयित्री की कविता को कुछ लोग 'आंसुओं का देश' बतलाते हैं, वही कवयित्री भारतीय नवयुवकों को आंसुओं से न पिघलने और वज्र–सा कठोर बनने का संदेश दे रही है। 'क्या अमरों को लोक मिलेगा' जैसी पंक्ति का विस्तार ही 'अमरता–सुत' चाहता 'क्यों मृत्यु

को उर में बसना' जैसी पंक्तियों में है। यह सीधे–सीधे राष्ट्र के लिए मर–मिटने का आह्वान है। एक और बात, महादेवी की कविता 'यथास्थितिवाद' बनाए रखने की कविता नहीं है, उसमें भी परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा है :–

"दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग एक समान,
अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर।"[40]

छायावादी कवियों में सबसे अधिक परिवर्तनाकांक्षी एवं शक्ति के उपासक कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला रहे हैं। क्रान्ति निराला की संगिनी है और उत्सर्ग कवि का धर्म है। 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' में उसी शक्ति स्वरूपा मां के तांडव का आह्वान है :–

"भैरवी! तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी तब तुझसे पंजा
लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रूधिर भरूंगा माँ
मैं अपनी अंजलि भर–भर,
उंगली के पोरों में दिन गिनता ही जाउँ क्या माँ–
एक बार बस और नाच तू श्यामा!"[41]

निराला की 'छत्रपति शिवाजी को पत्र' 'जागो फिर एक बार' और 'स्वाधीनता' जैसी कविताओं में उनकी राष्ट्रीय चेतना को हम पहले ही देख चुके हैं। 'राम की शक्तिपूजा' में रावण ब्रिटिश के साथ–साथ समस्त अन्यायी व अधर्मी तंत्र का प्रतीक है; जिसे निराला 'अन्याय जिधर है, उधर शक्ति' कहते हैं। राम युद्ध के प्रथम दिन उस शक्ति के आगे विवश दिखते हैं:–

"रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर–
यह रहा शक्ति का खेल सम, शंकर, शंकर!
करता मैं योजित बार–बार शर–निकट निशित

हो सकती जिनसे यह संसृति संपूर्ण विजित,
तो तेजःपुंज सृष्टि की रक्षा का विचार
है जिनमें निहित पतनघातक संस्कृति अपार–।"[42]

ध्यातव्य है क 'राम की शक्तिपूजा' कविता में राम का समर केवल स्वपत्नी जानकी के उद्धार का उपक्रम ही नहीं था अपितु, संपूर्ण सृष्टि एवं मानव–संस्कृति की रक्षा का भी संकल्प था। इसकी रक्षा के लिए जाम्बवान राम को परामर्श देते हैं :–

"आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर
तुम करो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर;
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक सिद्धि न हो, रघुनंदन!"[43]

यहाँ 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर' में ईंट का जबाव पत्थर से देने का भाव निहित है। पर इसके लिए जरूरी है 'संयत ओर दृढ़ शक्ति–उपासना का संकल्प और शक्ति की सिद्धि। 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना' में स्वदेशी चिंतन की छाप है जो किसी अनुकरण की क्रीतदासी नहीं है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं :– *"शक्ति की परिकल्पना अनुकरण में संभव नहीं, शक्ति को सदा मौलिक रूप में ही परिकल्पित किया जा सकता है। शताब्दियों से पराधीन देश की इसस बड़ी और सार्थक दृष्टि कोई नहीं दे सकता। यहां राम जितने अपने लिए हैं, उतने ही सामूहिक राष्ट्रीय मन के प्रतीक हैं और उतने ही स्वयं कवि–व्यक्ति के। ये कई अर्थ–स्तर एक–दूसरे से टकरा कर मानवीय आत्म–शक्ति का एक विराट अख्यान प्रस्तुत करते हैं।"*[44] यह 'आत्म–शक्ति' अंततः आंतरिक बल बनकर राम के अंदर सन्निहित हो जाती है :–

"होगी जय, होगी जय, हे पुरूषोत्तम नवीन!
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।"[45]

उपर्युक्त पंक्तियों को 'समन्वय' पत्रिका के दिसंबर, 1923 वाले अंक में प्रकाशित 'शक्ति–परिचय' की निम्नलिखित पंक्तियों से मेल कर देंखें तो अर्थ खुलेगा– *"चिरकाल तक गुप्त रूप से अवस्थित शक्ति का विकास जिस शरीर और मन के अवलम्ब से होता है या जिन्होंने अपनी अतंरात्मा में प्रकाशित शक्ति का पर्यवेक्षण किया, उन्हें हम श्रद्धा की अंजलि बांधकर उच्चासन पर बैठाते हैं।"*[46] ऐसा लगता है कि 'राम की शक्तिपूजा' का भावात्मक प्लॉट निराला लगभग तेरह वर्ष पूर्व ही उक्त निबंध में लिख चुके थे। 'राम की शक्तिपूजा' कविता की व्याख्या बिना इस निबंध को पढ़े नहीं हो सकती। इस शक्ति को निराला मर्यादित एवं उचित रूप में देखना चाहते हैं। 'महाराजा शिवाजी का पत्र' में निराला ने लिखा है :–

"मरजाद चाहती है आत्मत्याग–
शक्ति चाहती है अपनत्व प्रेम"[47]

अब इस 'शक्ति' में अपनत्व नहीं होता तो शक्ति–शक्ति का संघर्ष होता है और संघ–शक्ति बिखरती है। उक्त कविता में निराला इसे समूचे भारतीय संदर्भ में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं :–

"व्यक्तिगत भेद ने
छीन ली हमारी शक्ति।
कर्षण –विकर्षण–भाव
जारी रहेगा यदि
इसी तरह आपस में"[48]

यदि इस दृष्टि से देखें तो पूरी छायावादी कविता में राष्ट्रीय चेतना, दीप्ति, मुक्ति, जागृति व शक्ति के बीज मिलेंगे।छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता वैयक्तिक संवाद व संलाप भी है जिसमें आधुनिक मानस की आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट दिखती है। यह रीतिकालीन बंधी–बंधाई परिपाटी से भी विद्रोह है। यह एक प्रकार से 'राधा–कृष्ण सुमिरन' के बहाने के प्रति भी विद्रोह था और काव्य में संपन्न नायक–नायिका की जगह साधारण मानव की प्रतिष्ठा है। तभी निराला "मैं शैली" में अपनी निज–व्यथा–कथा के साथ–साथ साधारण मानव की

दीन–दशा सुना सके। यह व्यक्तिगत कहानी ही थी कि निराला 'सरोज–स्मृति' में अपने जीवन–समर को व्यक्त कर पाए या हिन्दी के सुमनों के प्रति यह कह पाएः–*"मैं जीण–साज बहु छिद्र आज/तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन।"*[49] उसी प्रकार जयशंकर प्रसाद ने ना–ना करते हुए भी प्रेमचंद जी को हंस के लिए अपना 'आत्मकथ्य' लिख भेजा–*"उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पन्था की/सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्या मेरे कन्था की?"*[50] पंत भी 'ग्रन्थि' में बाल्यावस्था में अपने मातृ–बिछोह का चित्रण करते हैं :–"बाल्य में ही हो गई थी लुप्त हो!/मातृ–बिछोह अंचल की अभय छाया मुझे।"[51] उसी प्रकार महादेवी कह पाती हैः– *"पर शेष नहीं होगी यह/मेरे प्राणों की क्रीड़ा/तुमको पीड़ा में ढूंढा/तुम में ढूंढूंगी पीड़ा।"*[52] इन व्यक्तिगत भावों के प्रकटीकरण में कहीं–कहीं निज वेदना का भाव भी प्रबल है। जयशंकर प्रसाद ने 'छायावाद' की परिभाषा में यहाँ तक लिख दियाः–*"कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश–विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया।"*[53] परन्तु, यहां यह भी ध्यान में रखना होगा कि छायावादी कवियों की निज–वेदना सामाजिक व वैश्विक स्तर पर मानवीय करूणा में रूपान्तरित हो जाती है और विश्व–वेदना में प्रसार पाने लगती है। अकारण नहीं है कि महादेवी 'रश्मि' की भूमिका में छायावाद के चक्कर में 'बाह्य विश्व के अस्तित्व' को न भूलने की सलाह देती है और कहती हैः–*"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसर को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है।"*[54] शायद, इसलिए कवयित्री कहती हैः–*"चुरा लाया जो विश्व–समीर/वही पीड़ा की पहली सांस।"*[55] 'गुंजन' में भी कवि पंत मन को विश्व–वेदना में लीन होने और स्वयं को 'जग–जीवन की ज्वाला' में गलने हेतु समर्पित करते हैं –

"तप रे मधुर–मधुर मन!
विश्व–वेदना में तप प्रतिपल,
जग–जीवन की ज्वाला में गल,

बन अकलुष, उज्ज्वल और कोमल,
तप रे विधुर–विधुर मन!"[56]

निराला तो जीवन की सार्थकता ही संसार के दुःख व पापों की मुक्ति में मानते हैं :–

"सार्थक करो प्राण!
जननि, दुःख–अवनि को
दुरित से दो त्राण!"[57]

निज वेदना के इस रचनात्मक करूणा के रूपांतरण से छायावाद का एक पक्ष पूरी तरह से संपृक्त है।

छायावाद में अतिशय–भावुकता, जिज्ञासा, कुतूहल और कल्पना को काव्य में बहुत स्थान मिला। डॉ. केदारनाथ सिंह का मानना हैः– *"छायावादी कवि के निकट उसका अभीष्ट जगत अधूरा था। परिणामतः उसे पूर्ण बनाने के लिए उन्हें कल्पना का सहारा लेना पड़ा। कल्पना वर्तमान की लपटों में उड़ नहीं सकती थी, अतः उसे नए आकाश की खोज करनी पड़ी। यह आकाश अतीत और भविष्य में मिला।"*[58] अकारण नहीं है कि जयशंकर प्रसाद का कल्पना के आकाश के प्रसार को समझते हुए 'कल्पना सुखदान' को 'तुम शिखर व्योम समान' कहते हैं और 'आंसू' में लिखते हैं :–

"कल्पना अखिल जीवन की
किरणों से दृग तारा की
अभिषेक करे प्रतिनिधि बन
आलोकमयी धारा की।"[59]

पंत अपने 'पल्लव' को 'कल्पना के ये विहवल बाल' कहते हैं और कल्पना के प्रसार से मानवीय मुक्ति और मानव–मैत्री के रूप में हृदय–प्रसार को देखते हुए 'अनंग' कविता में लिखते हैं :–

"विपुल कल्पना से, भावों से,
खोल हृदय के सौ–सौ द्वार,

जल, थल, अनिल, अनल, नभ से कर
जीवन को फिर एकाकार।"[60]

निराला 'मानस की कुसुमित वाणी' में 'कल्पना के कानन के रानी' का आहवान करते हैं और कवि की कल्पना को प्रकृति की वास्तविकता से ज्यादा सुंदर बतलाते हैं :–

"देखता हूं
फूलते नहीं हैं फूल वैसे वंसत में
जैसे तब कल्पना के डालों पर खिलते हैं।"[61]

कल्पना के द्वारा छायावादी कवि ने तदयुगीन संघर्षमय युग में अप्राप्य को पाने की कोशिश की, अतीत में झांकने और भविष्य का यूटोपिया रचने की कोशिश की। निराला जब कल्पना के डालों पर खिले फूल" की प्रशंसा करते हैं, मतलब कवि–कल्पना द्वारा रचे गए प्राकृतिक सौंन्दर्य–चित्रण एवं काव्य–शिल्प की सुंदरता की ओर भी संकते करते हैं।

छायावादी कविता में प्रकृति–प्रेम भी उत्कट रूप से प्रकट हुआ। यह व्यक्तिगत स्वच्छंदता का प्रसार था और देश की मिट्टी से जुड़ना भी। निराला की कविता 'दिल्ली' और 'यमुना के प्रति' में अतीत के प्राकृतिक–सौंदर्य की भी चित्र अंकित होता है। "दिल्ली" में निराला प्रश्न उठाते हैं :–

"खिलते सरोवर के कमल परागमय
हिलते–डुलते थे जहां,
स्नेह की वायु से प्रण के लोक में
आलोक प्राप्त कर?"[62]

निराला प्रकृति को ही शक्ति का स्रोत बतलाते हैं। "पंचवटी प्रसंग" में राम–लक्ष्मण से कहते हैं :–

"देखता है, सृष्टि –स्थिति प्रलय का
कारण–कार्य भी वही/उसकी इच्छा रचना चातुर्य में
पालन संहार में/अस्तु भाई हैं वे सब प्रकृति के गुण।

सच है, तन प्रकृति उसे सर्वशक्ति देती है–
अष्टसिद्धियां वह–/सर्व शक्तिमान होता;।"[63]

जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में विदेशी कर्नेलिया भारतीय संस्कृति व प्रकृति का गुणगान करती है–

"अरूण यह मधुमय देश हमारा
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे–भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मंदिर ऊंघते जब–जग कर रजनीभर तारा।"[64]

वस्तुतः छायावादी कवियों के लिए प्रकृति सहचरी, सखी, प्रेयसी, मां के साथ–साथ राष्ट्रीय चेतना व शक्ति की भी प्रतीक थी जो कभी–कभी विराट रूप में समस्त संसार का चैतन्य बन जाता है तो कभी अपनी व राष्ट्र की पहचान भी। महादेवी वर्मा 'पहिचान' कविता में लिखती हैं :'

"मूक हो जाता वारिद–घोष
जगा कर जब सारा संसार,
गंजती, टकराती असहाय
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार;
देश का जिसे न निज का भान
बतावे क्या अपनी पहिचान।"[65]

छायावादी कवि कभी–कभी प्राकृतिक–सौंदर्य चित्रण में असीम से मिलने या विश्रांत–स्थल की ओर चलने की बात करने लगता है जिसमें रहस्यवाद और पलायनवाद के दर्शन होने लगते हैं। प्रसाद जी की ले चल, वहाँ भुलावा देकर' वाली पंक्ति तो जैसे छायावादी काव्य को पलायनवादी ठहराने के लिए रूढ़ हो गई। इस सदंर्भ में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैंः– ***"इस कविता में विश्राम की मुद्रा का चित्रण है या पलायन की आकांक्षा है, समझने का यत्न नहीं किया गया। विश्राम तो श्रम का पूरक है और पलायन कर्म, श्रम, संघर्ष से भागना है। 'कर्म का भोग, भोग का कर्म' के माध्यम से कर्म और भोग की संशिलष्ट तथा आधुनिक संदर्भ में नई दृष्टि प्रस्तुत करने वाले कवि के लिए इससे बड़ी विडंबना***

की बात क्या हो सकती है कि उसे पलायनवादी करार दिया जाए।[66] ठीक इसी प्रकार रहस्यवाद के वर्गीय आधार को भी समझना पड़ेगा। 'असीम' की कामना अरअसल अपनी लघुता का आत्म–विस्तार है। 'रश्मि' की 'मैं और तू' कविता में महादेवी लिखती है :–

"जब प्रभात में मिट जाता
छाया का कारागार,
मिल दिन में असीम हो जाता
जिसका लघु आकार।"[67]

आगे चलकर महादेवी "असीम" में निज कारा से मुक्ति, स्त्री मुक्ति का द्वारा खोजने लगती है। वह कहती है –*"सीमा ही लघुता का बंधन।"*[68] और पुनः –*"कीर का प्रिय आज पिंजर खोल देते है/ ———अब अलस बंदी युगों का/ले उड़ेगा शिथिल कारा।"*[69] *'कामायानी' में मनु इस आत्म–प्रसार में व्यक्तिगत स्वंतंत्रता के लिए अबाध गति मस्त सदृश; हूँ चाह रहा अपने मन की।"*[70] यह "मरूत सदृश सा चाहना" नई शिक्षा के रंग में रंगा आधुनिक मानस है जो सीमित ज्ञान की परिधि तोड़कर जग के प्रति कुतूहल दृष्टि रखता है, प्रश्न करता है –

"प्रथम रश्चिम का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?"[71]

निराला की यह रहस्यवादी भावना विराट प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुई है। पंचवटी प्रसंग में निराला के राम जहां सीता को *"प्रेम का पयोनिधि तो उमड़ता है/सदा ही निःसीम भू पर"*[72] का उपदेश देते हैं, वहीं 'राम की शक्तिपूजा' में राम 'अन्याय जिधर है, उधर शक्ति का भान करने के बाद गरजते हुए सागर की पीठिका पर खड़े पर्वत को सिंह–स्थित शक्ति का प्रतीक मानकर कल्पना करते हैं :–

"देखो बंधुवर सामने स्थित जो यह भूधर,
शोभित शत–हरित–गुल्म–तृण से श्यामल सुन्दर
पार्वती कल्पना हैं इसकी, इसकी, मकरंद–बिन्दु,
गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिंधु;

दशदिक–समस्त हैं हस्त और देखो ऊपर
अंबर में दिगंबर अर्चित शशि–शेखर।"[73]

यह कितना विराट रहस्यवादी बिंब है। निराला हिन्दी में ऐसी ही विराट रूपों को प्रतिष्ठित करने पर बल देते थे। डॉ. नामवर सिंह इस संदर्भ में लिखते हैं:– *"वे नदी की तरंग के माध्य से अपने विशाल हृदय की तरंग को ही प्रकट करते हैं। 'विराट' की आकांक्षा में अपनी रूढ़िगत सीमाओं को तोड़ने का जितना साहस था, यह इसी से मालूम होता है कि छायावादी युग में निर्झर अथवा प्रपात पर जितनी कविताएं लिखीं, उतना शायद ही किसी और युग में लिखी गई होगी।"*[74]

उनकी कविता 'निर्झर' और 'प्रताप' स्वच्छंदता की प्रतीक हैं। बाधाओं को तोड़कर अबाध व मुक्त रूप से बहने वाले ये जलस्रोत मुक्ति, गति और प्रगतिशीलता के द्योतक हैं। लगभग सभी छायावादी कवियों ने इन विषयों पर कविता लिखी है या इनका बिंब प्रयोग किया है। महादेवी 'उस पार' कविता में लिखती हैं –

"कौन पहुंच देगा उस पार?
जहां के निर्झर नीरव गान,
सुना करते अमरत्व प्रदान;
सुनाता नभ अनन्त झंकार,
बजा देता है सारे तार;"[75]

महादेवी जहां 'निर्झर' से 'अनंत झंकार' और 'अमरत्व' का अनुभव करती है, वहीं जयशंकर प्रसाद 'झरना' की 'झरना' कविता में झरना द्वारा पहाड़ों को विदारित करना, शैलों को काटना जैसा श्रमसाध्य कार्य भी करते हैं, जो श्रमशक्ति का सूचक है:–

"कठिन गिरी कहां विदारित करना,
मधुर है स्रोत, मधुर है गहरी,
प्रथम वर्षा से इसका भरना,
स्मरण हो रहा शैल का कटना
———हृदय से झरना——।"[76]

सुमित्रानंदन पंत 'पल्लव' के निर्झर गान' में 'झरना' को मौन पहाड़ का 'मुखरित ज्ञान' बतलाते हैं और उसमें कर्म का आह्वान सुनते हैं :–

"विजनता का सा विशद–विपाद,
समय का–सा संवाद;
कर्म का–सा अजस्र–आहवान,
गगन का – सा आह्लाद;
मूक गिरिवर के मुखरित–ज्ञान!
भारती का–सा अक्षय–दान?"[77]

निराला छायावादी काव्य को 'कविता के ज्ञानकांड' के स्तर पर ही देखते थे। इसलिए प्रपात को भी वे अज्ञानता–निवारक और ज्ञानदाता मानते हैं। 'प्रपात के प्रति' कविता की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :–

"किसी पत्थर से टकराते हो
फिरकर जरा ठहर जाते हो;
उसे जब लेते हो पहचान––
समझ जाते हो उस जड़ का सारा अज्ञान,
फूट पड़ती है ओठों पर तन मृदु मुस्कान;
बस अजान की ओर इशारा करके चल देते हो,
भर जाते हो उसके अंतर में तुम अपनी तान।"[78]

'निर्झर' और 'प्रपात' के गतिशील बिंबों के अलावे कई अन्य प्राकृतिक गत्यात्मक बिंबों के अंतर्गत भी मनुष्य और प्रकृति का अभिन्न संबंध और जागृति, मुक्ति, दीप्ति एवं शक्ति का आह्वान दिखता है। इस कड़ी में छायावादी कविता के कई जागरण गीतों का उदाहरण दिया जा सकता है जिसमें मानवीय चैतन्य जागरण है तो समकालीन स्वाधीनता आंदोलन से भी उनके तार जुड़ते हैं। यथाः– जयशंकर प्रसाद की 'प्रथम प्रभात', 'जागो जीवन के प्रभात!' आंखों से अलख जगाने को 'बीती विभावरी जाग री' कविता सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'प्रथम प्रभात' 'जागो फिर एक बार' 'जागरण' 'प्रभाती' 'विस्मृत भोर' 'गई निशा वहां, हँसी दिशाएं' 'जागो जीवन धनिके' 'जागा दिशा ज्ञान' आदि कविताएं तो

महादेवी वर्मा की 'जाग बेसुध जाग' 'जाग तुझको दूर जाना' आदि कविताएं। इन कविताओं में प्रकृति–चित्रण व्यक्तिगत प्रणय और राष्ट्रीय चेतना आदि के स्वर घुले–मिले हैं। कहीं–कहीं सीधे–सीधे स्वंतंत्रता का आह्वान है। यथा जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक का यह गीत :–

"हिमाद्रि तुंग श्रृंगार से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती–
स्वंय प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती–
"अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पथ है–बढ़े चलो, बढ़े चलो।"[79]

निराला के लिए 'जागरण' मुक्ति का आत्म–स्वातंत्र्य का और ज्ञान–प्रसार का प्रतीक है। 'परिमल' की 'जागरण' कविता का अंश द्रष्टव्य है :–

"पाया स्वरूप निज/मुक्ति कूप से हुई/नीड़स्थ पक्षी की तम–विभावरी गयी–/विस्तृत अनंत पथ/गगन का मुक्त हुआ; मुक्त पंक उज्ज्वल प्रभात में/ज्योतिर्मय चारो ओर परिचय सब अपना ही/स्थित मैं आनंद में चिरकाल जाल–मुक्त! ज्ञानाम्बुधि/वीचिरहित!इच्छा हुई सृष्टि की"[80]

मुक्ति की कामना" छायावादी कविताओं के शिल्प–विधान में भी मिलती है। यह मुक्ति थी रीतिकालीन परंपरावादी प्रवृत्ति और द्विवेदी युग की अतिशय अभिधा प्रधान इतिवृत्तात्मकता से मुक्ति। 'पल्लव' की भूमिका में सुमित्रानंदन पंत ब्रजभाषा काव्य की मनोवृत्ति पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं:– *"अनुप्रासों की ऐसी अराजकता तथा अलंकारों का ऐसा व्यभिचार और कहीं देखने को नहीं मिलता। स्वस्थ वाणी में जो एक सौन्दर्य मिलता है उसका कहीं पता नहीं है।"*[81] यहां कविता के अलंकार, छंद आदि के चौखटे से बाहर निकलकर आधुनिक रूचि के मनोनुकूल सौन्दर्य दृष्टि से भाव व भाषा के समन्वय से स्वाभाविक हृदयोगार से कविता लिखने का भाव है जो सुसंस्कृत व स्वाभाविक हो। 'परिमल' की

भूमिका में निराला 'कविता की मुक्ति' की बात करते हुए लिखते हैं:– *"साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में देख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति–प्रयास का पता चलता है। धीरे–धीरे चित्रपियता छूटने लगती है। मन एक खुली हुई प्रशस्त भूमि में विहार करना चाहता है। चित्रों की सृष्टि तो होती है, पर वहां उन तमाम चित्रों को अनादि और अनंत सौंदर्य में मिलाने की चेष्ट रहती है। बर्फ में जैसे तमाम वर्णों की छटा, सौंदर्य आदि दिखाकर उसे फिर किसी ने वाष्प में विलीन कर दिया हो या असीम सागर में मिला दिया हो। साहित्य में इस समय यही प्रयत्न जोर पकड़ता जा रहा है और यही मुक्ति–प्रयास के चिह्न भी हैं।"*[82] छायावादी काव्य–शिल्प की इससे अच्छी कोई व्याख्या नहीं होगी। जहां काव्य के सभी घटकों–बिंब, छंद,लय, अलंकार, शब्द–शक्ति आदि सबका उचित समन्वय हो। इसे आधुनिक सौन्दर्य भावना से जोड़ते हुए डा. नामवर सिंह लिखते हैं :– *"इस सौन्दर्य भावना की पहली विशेषता है स्वाभाविक सौन्दर्य की अधिक से अधिक रक्षा तथा उसकी सहजता का ध्यान रखते हुए अतिरिक्त प्रसाधन का आरोप।"*[83] इस प्रकार कविता के रूप विन्यास में भावों को प्रधानता दी गई और अलंकार आदि को उसकी अभिव्यक्ति का एक साधन माना गया। इसका यह अर्थ नहीं है कि छायावादी कवियों ने अलंकारों, बिंबो प्रतीकों आदि की उपेक्षा की या कोई अत्यंत सरल भाषा में कविता लिखी हो। छायावादी कविताओं पर अधिकतः न समझ में आने का आरोप लगता रहा है। 'प्रबन्ध–पदम" के साहित्य ओर मांग' निबन्ध में निराला ने इस आरोप का निराकरण करते हुए लिखा है कि 'जहां भावों का अच्छा प्रकाशन नहीं हुआ है, वहीं धुंधलापन है।' निराला ने भाषा को भाव से जोड़ते हुए लिखा है :– *"गैर लोगों की अपने में मिलाने का तरीका भाषा को आसान करना नहीं, न मधुर करना, उसमें व्यापक भाव भरना और उसी के अनुसार चलना है।"*[84] इस भाव–प्रधानता का कारण है–हृदय की प्रधानता जिसे प्रसाद 'शुद्ध आत्मानुभूति की प्रधानता' मानते थे और महादेवी इसे 'हृदयवाद' जोड़ते हुए 'रश्मि' की भूमिका में लिखती हैं :– *"मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वछंद घूमते–घूमते थककर वह अपने लिए सहस्र बंधनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बंधनों से उबकर उनको तोड़ने में अपनी सारी शक्तियां लगा देता*

है। छायावाद के जन्म का मूलकारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है। उसके जन्म से प्रथम कविता के बंधन सीमा तक पहुंच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए उठा।[85] छायावाद और मुक्ति की आकांक्षा का इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा? छायावादी कवि के स्वच्छंद हृदय में जो सौंदर्य–सागर लहराया, वही कविता के रूप–विन्यास में मध्य रूप से प्रकट हुआ है। जयशंकर प्रसाद कृत 'झरना' में एक कविता ही है–'हृदय का सौंदर्य' जहां कवि हृदय से सौंदर्य–दर्शन करने या यूं कहें डूब कर देखने की मांग करते हें :–

"एक से एक मनोहर दृश्य/प्रकृति की क्रीड़ा के सब छंद;
सृष्टि में सब कुछ है अभिराम/सभी में है उन्नति या ह्रास।
बना लो अपना हृदय प्रशांत/तनिक देखो वह सौंदर्य;
चंद्रिका से उज्ज्वल आलोक/मल्लिका–सा मोहन मृदुहास।"[86]

तटस्थ होकर सौंदर्य–दर्शक और हृदय से डूब कर सौंदर्य देखने में अभिव्यक्ति व रूप–विन्यास का अंतर तो आएगा ही।

छायावादी कवियों ने काव्यभाष का प्राणतत्व 'राग' को मानते हुए चित्रभाषा के प्रयोग, शब्दों के विशिष्ट पर्यायों के सभिप्राय प्रयोग, ध्वान्यात्मकता आदि को काव्य–रचना में आवश्यक माना। द्विवेदी युग में व्याकरण की शुद्धता पर अधिक ध्यान था। छायावादी कवियों ने व्याकरण के प्रति अधिक उत्साह न दिखाते हुए विभिन्न शब्दों की ध्वनि एवं अर्थ–बोध को उनके लिंग निर्णायक तत्व के रूप में ग्रहण किया। सबसे बड़ी बात कि छायावादी कविता ने रूढ़िग्रस्त उपमानों की जगह नए उपमानों की खोज की और जहां पुराने रूढ़ उपमान ग्रहण किए, वहीं नवीन वक्रता के द्वारा नया चमत्कार पैदा किया। यथा–सुमित्रानंदन पंत की कविता में 'बादल' के ही कई उपमान मिलेंगे। कभी वह यमुना–जल में तैरते हुए 'विशाल–जल' की तरह दिखता है तो कभ गगन की शाखाओं पर "मकड़ी के जाल" की तरह फैल जाता है। 'पल्लव' की बादल कविता में कवि बादल को 'विपुल कल्पना से त्रिभुवन की विविध रूप' बतलाते हैं और परंपरागत उपमानों के साथ नए उपमानों में बांधते हैं :–

"कज्ञी चौकड़ी भरते मृग से,
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त–मत्तंगाज कभी झूमते,
सजग–शशक नभ को चरते।"[87]

उसी प्रकार परंपरागत उपमान का एक और नवीन वक्रता से प्रयोग देखिए गुंजन के 'नील कमल–सी है वे आंखे' वाले गीत में। आंखों के लिए 'नीलकमल' परंपरागत उपमान भी रहा है :–

"डूबे जिनके मधु में पांख–
मधु में मन–मधुकर के पांख;
नील जलज–सी हैं वे आंख।"[88]

निराला ने भी आंखों पर बहुत कुछ लिखा है। दो नए चित्र, उत्पेक्षा व उपमान देखिए। पहला उदाहरण 'वे किसान की नयी बहू' की आंखों काः–

"वे किसान की नयी बहू की आंखें
ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विहगं बंद कर पांखें।"[89]

'नेत्र' कविता में नेत्रों के लिए यह कहाना–

"एकता के वे मनोहर चित्र दो
एक पथ के पथिक प्रियतम मित्र दो।"[90]

आचार्य रामचंद शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आभ्यांतर प्रभाव साम्य और 'लाक्षणिक साहस' के आधार पर छायावाद की प्रंशसा की हैः–***"आभ्यांतर प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।"***[91] ध्यातव्य है कि आचार्य आचार्य शुक्ल हिन्दी के पहले आलोचक थे जिन्होंने 'आभ्यांतर प्रभाव साम्य' के आधार पर छायावादी उपमानों की प्रशंसा की थी और उसे छायावादी काव्य शैली की 'असली विशेषता' बतलाया, नकलवाली नहीं। आचार्य शुक्ल ने माना कि कहीं–कहीं आभ्यांतर प्रभाव साम्य लेकर 'अप्रस्तुतों का सन्निवेश' कर दिया गया है जो

'अधिकतर उपलक्षण के रूप में प्रतीकवत्' होते हैं। छायावादी कविता में प्रिय के असुंदर मुख के लिए 'शशि' तथा अश्रुओं की लिए 'तरल मोती', 'पाद से अनबीधे मोती' 'फेनिला फूल' आदि अप्रस्तुतों को साध्यवसाय रूप में प्रयोग हुआ है जो सादृश्यगर्भ प्रतीक हैं और मूलवर्ती वेदना के व्यंजक भी। हालांकि छायावादी काव्य में सादृश्यगर्भ प्रतीकों की अपेक्षा साधर्म्य के आश्रित प्रतीक अधिक हैं। महादेवी के विरह गीतों में ऐसे प्रतीक अधिक मिलेंगे। यथा–दुःख के लिए "शूल, सुख के लिए 'फूल', चैतन्य आत्मा के लिए 'ज्वाल का मोती', संसारिक रिश्तों के लिए 'मौत के बंध' आत्मा के लिए 'दीपक' आदि। 'रश्मि' की 'जीवनदीप' कविता में दीप को जीवन का प्रतीक बतलाते हुए महादेवी लिखती हैं–

"किन उपकरणों का दीपक,
किसका जलता है तेल?
किसकी कीर्ति, कौन करता
इसका ज्वाला से मेल?"[92]

महादेवी के प्रतीक अत्यंत सुकोमल, तरल, मधुर एवं स्निग्ध हैं, जबकि निराला अपनी विराट चेतना के कारण ध्वंसमूलक विराट प्रतीकों का संयोजन करते हैं। 'राम की शक्ति पूजा' में 'अमानिशा' गगन, विशाल अम्बुधि भूधर आदि प्रतीकों के माध्यम से राम के अंतर्मन के नैराश्य को व्यक्त किया है–

"है अमानिशा; उगलता गगन अंधकार;
खो रहा दिशा ज्ञान; स्तब्ध है पवन चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्याम मग्न; केवल जलती विशाल।"[93]

यह एक बिम्बमूल प्रतीक भी है। छायावादी काव्य में कल्पना का अतिशय मोह होने के कारण अभिव्यंजना के उपकरण में बिंबों को अधिक महत्व मिला भी है।

"पल्लव' की भूमिका में सुमित्रानंदन पंत ने कविता में 'बिंब–विधान' को महत्व देते हुए कहा है –*"कविता के लिए चित्र–भाषा की आवश्यकता*

पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिएं, जो बोलते हों–।[94] इस चित्र–भाषा में सब "इन्द्रिय ग्राहय" विषय – वर्ण, गंध, ध्वनि आदि सभी शामिल हैं। "पल्लव" की "उच्छ्वास" कविता में "पर्वत प्रदेश में पावस' का यह चाक्षुष बिम्ब द्रष्टव्य है ––

"मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार–बार
नीचे जल में निज महाकार;
–जिसके चरणों ममें पला ताल
दर्पण–सा फैला है विशाल!![95]

"लहर" का यह घ्राण–बिंब द्रष्टव्य है :–

"शत शतदलों की
मुद्रित मधुर गंध भीनी भीनी रोम में,
बहाती लावण्य धारा।"[96]

पंत की कृति 'गुंजन' से 'शांत सरोवर उर' के गीत की इन पंक्तियों में श्रव्य–बिम्ब द्रष्टव्य है :–

"सोये वीणा के सुर
क्यों मधुर स्पर्श से मर–मर
बज उठे प्रतिपल, प्रतिपल!"[97]

कविता का नाद–स्वर भी मुख्यतः ध्वन्यात्मक शब्दों पर आश्रित है। कविवर पंत पल्लव की भूमिका में लिखते हैं:– ***"भाषा संसार का नादमय–चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व के हृतन्त्री की झंकार है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता।***[98]

शायद इसी को निराला ने अपनी "गीतिका' की वर्ण–चमत्कार' कविता में "कहना चाहा है :–

"वर्ण–चमत्कार;
एक–एक शब्द बंध ध्वनिमय साकार।"[99]

निराला की कविता में 'शब्द–संगीत के आधार पर इस प्रकार की ध्वन्यात्मक वर्ण–संगतियों के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलेंगे। यथा :–

"नयनों का नयनों से बंधन
कांपे थर–थर थर–थर युग तन।"[100]

'संध्या सुंदरी' कविता का यह कोमल नाद देखें :–

"नुपुरों में भी रून–झुन–रून–झुन–रून–झुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द–सा "चुप–चुप–चुप।"[101]

इसी प्रकार पंत के 'गुंजन' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है ––

"जीवन का जलनिधि डोल–डोल
कल–कल, छल–छल, करता किलोल।"[102]

छायावादी कविताओं में इस प्रकार के नाद–सौंदर्य से संगीतात्मकता को अधिक स्थान मिला। छायावादी कविओं में शब्द–संगीत की सृष्टि के लिए अनुपासगत व्यंजन–मैत्री की अपेक्षा शब्दों के ध्वनिबोध के आधार पर ध्वन्यात्मक शब्दों का संयोजन अनुपात में अधिक किया है। आचार्य शुक्ल नाद–सौंदर्य का एक हद तक हिमायती थे। बशर्ते वह समन्वित अर्थ दे। छायावादी काव्य में उन्हें यह कमी दिखाई दी–*"प्रगीत पद्धति में नाद–सौंदर्य की ओर अधिक ध्यान रहने के कारण संगीत तत्व का समावेश देखा जाता है। परिणाम यह होता है कि समन्वित अर्थ की ओर झुकाव कम हो जाता है।"*[103] आचार्य शुक्ल का यह विचार आंशिक सत्य है। छायावादी कवितओं में कहीं जगहों पर नाद–सौंदर्य समन्वित अर्थ को बढ़ाने वाले हैं। यथा, जयशंकर प्रसाद जी का 'लहर' में यह कहना –*"इस सूखे तट पर छिटक छहर/–– भर जाती है अपनी तरल सिहर।"*[104] जैसे प्रयोग मानस–संसर्ग के कारण ध्वनिमात्र से ही विशिष्ठ अर्थ की व्यंजना कराते हैं।

आचार्य शुक्ल ने छायावादी रचनाओं का ज्यादातर प्रगीतात्मक होना दिखलाया था, जहां उन्हें अभिव्यक्ति कम दिखाई पड़ी। संभवतः उन्होनें निराला के गीतों का समग्र मूल्यांकन नहीं किया होगा जिन्होंने अभिव्यक्ति की पूर्णता में ही सौंदर्य व्याप्त है। निराला को 'मेरे गीत और कला' निषेध में अपनी रचना जूही की कली की पूर्ण व्याख्याकर कला की पूर्णता समझानी पड़ी थी। निराला ने लिखा– ***"रचना में केवल अलंकार रस या ध्वनि नहीं; इसका समन्वय है। इस तरह एक कला पूर्ण हुई।***[105] दूसरी बात छायावादी कवि मूलतः प्रगीतकार होते हुए भी प्रबंध–रचना में जीवन के व्यापक चित्रण करने में भी सफल हुए। प्रसाद जी के 'चित्रधार' तथा 'कानन कुमसुम' में संकलित 'अयोध्या का उद्धार' 'वन, मिलन', 'कुरूक्षेत्र', 'वीर बालक' आदि शीर्षक कविताएं पद्यबद्ध लघुकथा काव्य हैं। 'प्रेम पथिक' का ढांचा बहुत कुछ कथा–काव्य की तरह ही निरला की 'राम की शक्ति –पूजा', 'सरोज–स्मृति', 'तुलसीदास' आदि लंबी कथात्मक कविताएँ हैं जहाँ नाटकीयता भरी पड़ी है। जयशंकर प्रसाद का करूणालय 'गीतिकाव्य' की श्रेणी में रखा जा सकता है। डॉ. रामकुमार वर्मा कृत 'चितौड़ की चित्ता' को खण्डकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है, जिसमें रानी करूणा के जीवन–चरित्र के माध्यम से राजपूत स्त्रियों की गौरव गाथा का गान किया गया है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' महाकाव्य है जिसमें प्रबंध–शिल्प का चरम विकास हुआ है।इस प्रकार कह सकते हैं कि छायावादी कवि प्रगीत तत्व के प्रति लगाव रखने के बावजूद अपनी प्रतिमा को उत्तरोत्तर प्रबंध की तरह करने को तत्पर थे।

छायावादी कविता के छंदों को लेकर भी बहुत टिका–टिप्पणी हुई। हिन्दी कविता में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पंत ने मुक्त छंद की कविता को अधिक स्थान दिया। जयशंकर प्रसाद ने भी कुछ कविताएं मुक्त छंद में रची–जैसे पेशोला की प्रतिध्वनि, पर वे 'मुक्त छंद' को स्वीकार न कर पाए। आचार्य शुक्ल जैसे आलोचक 'मुक्त छंद' को रबड़ छंद या केंचुआ छंद की तरह ही देखते थे। ***निराला 'मुक्त छंद' को 'छंद की भूमिका' में रहकर भी 'मुक्त' मानते थे। उनके अनुसार मुक्त छंद/सहज प्रकाशन वह मन का।***[106] छायावादी कवियों ने शब्दों के ध्वनि–लय और आंतरिक संग्रीहयता को पहचाना। भाषा की अभिव्यंजना

शक्ति को निखारकर मुक्त छंद द्वारा सूक्ष्म भावनाओं का उन्मुक्त प्रकाश किया। मुक्त छंद में मात्रा, वर्णन, तुक आदि बंधनों से मुक्ति और स्वाधीन चेतना का संकल्प था। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार– ***"मुक्त छंद समूचे स्वछंदावाद की आत्मा है। एक ओर इसका संबंध छंद–मुक्ति से है तो दूसरी ओर विदेशी शासन की मुक्ति से है।–––––मुक्त छंद केवल काव्य के बाह्य कलेवर का परिवर्तन नहीं है। बल्कि एक क्रान्तिकारी सामाजिक बदलाव का भी सूचक है।"***[107] मुक्त छंद ने मात्रिक छंदों की एकरस लय को भंग किया तथा हिन्दी कविता में बोलचाल की लय को स्थापित कर भाषा की छिपी हुई शक्ति को उद्‌घाटित किया। मुक्त छंद ने एक नये युग की शुरूआत की। आगे चलकर सुमित्रानंदन पंत ने युगवाणी में लिखा–

"खुल गए छंद के बंद/प्रास के रजत पाश,
अनगीत मुक्त/औ युगवाणी बहतीत अयास।"[108]

छायावादी कविता में खड़ी बोली हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप वार्णिक की अपेक्षा मात्रिक छंदों का प्राचुर्य है फिर भी उसमें नवीन छंदों की स्वीकृति की गई है। छायावाद की अतुकांत और मुक्त छंद की रचनाओं पर अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का और बंगला का प्रभाव माना जाता है। उर्दू छंदों में गजल और रूबाई का प्रयोग भी छायावादी काव्य में बहुत हुआ है। शास्त्रीय छंदों के अंतगर्त छायावदी कवियों ने 'रोला', 'रूपमाला', 'शृंगार', 'सखि', पीयूषवर्ष, चौपाई, पद्धत्ति आदि अनेक सममात्रिक छंदों में यति, लय एवं गति के अनुसार स्वच्छंदानुसार भावानुकूल रूपांतरण कर छंद–बंधन की परंमपरागत रूढ़िग्रस्तता का तिरस्कार किया है। प्रसाद जी का 'आंसू और कामायनी' का आनंद सर्ग सखी छंद में है तो 'ग्रंथि' में 'राधिका छंद' सजीव हुई है।

छायावादी काव्य में पुराने छंदों को पुनजीर्वित करने के प्रसंग में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं :– ***"पुनरूत्थान भावना से छायावाद का पिंड नहीं छूट सका था।"***[109]

डॉ. नामवर सिंह ने अपनी कृति 'छायावाद' में छायावादी कपिताओं के पद–विन्यास और शब्द–चयन की नवीनता की ओर भी ध्यान दिलाया है। ब्रजभाषा से होड़ लेते हुए भी छायावादी कविता ने भाषा की कोमलता को बचाए रखा। पंत अपनी कोमलकांत पदावली के लिए विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। यहां तक कि 'संस्कृत के गुंजायमान शब्दों' के प्रयोग में भी छायावादी कवियों ने विशेष मोहकता लाई है। यथा :–पंत के 'पल्लव' की 'बीचि–विलास' का निम्नलिखित अंश देखिए :–

"ताल–ताल में थिरक अमन्द,
सौ–सौ छंदों में स्वछन्द,
गाती हो निस्तल के गान,
सिन्धु–गिरा सी अगम अनंत।"[110]

यहाँ अमंद', स्वच्छंद–निस्तल, अनंत आदि जैसे छोटे–छोटे तत्सम शब्दों से जो बिंब खींचा गया है, वह द्विवेदी युगीन 'सुरम्य–रूपे, रस–राशि रंजिते' वाली कविता में भी नहीं दिखता। प्रसाद जी का 'कामायनी' कठिन तत्सम शब्दावली में 'साकेत' से थोड़ा कम ही, पर वहाँ भाव व भाषा का जो समन्वय व रस है, वह दुर्लभ है। छायावादी कवि शब्द–भण्डार से ज्यादा भाव–भण्डार के शौकीन थे। छायावादी कवियों ने तदभव व देशज शब्दों का भी यथासंभव प्रयोग किया । पंत जी ने 'अजान' 'अनजान' जैसे तदभव शब्दों को खुद बनाया। निराला पर बैसवाड़ा का, प्रसाद पर बनारस का, महादेवी पर फर्रूखाबाद का ओर पंत पर खड़ी बोली के प्रदेशों के लोक–प्रचलित शब्दों का विशेष प्रभाव रहा है। यथा–जयशंकर प्रसाद की कविता प्रियतम" की यह पंक्ति द्रष्टव्य है :–"***रक्खों जब तक आंखों में, फिर और ढार पर नहीं ढरो।***"[111] 'ढार' और 'भुसा' देशज शब्द हैं जो क्रमशः उतरन और फिसलने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। निराला की 'सेवा–आरंभ' कविता में मुसलमान बालिका का रोना देखें:– ***"कांपी वह सोच के/रोयी चिल्लाकर/ फिर ढाढ़ मार–मारकर।"***[112] चिल्लाकर रोने ओर दहाड़ मारकर रोने में कुछ तो फर्क है, उसे निराला ने बिल्कुल ग्रामीण भाषा में लिखा है –'ढाढ़ मार–मारकर'।

छायावाद में कुछ अतिशय प्रचलित शब्द थे जिनका प्रयोग बहुधा कविताओं में हुआ करता था और लगभग सभी कवियों ने इनका प्रयोग किया है। यथा–असीम, अनंत, तंद्रिल, स्पंदन, नीरव, मृदु, कंपन, निःश्वास, उन्मन, मधुमय आदि। इन शब्दों में एक 'मधुमय', शब्द पर डॉ. रामविलास शर्मा, श्री रघुपति सहाय फिराक की एक बडी दिलचस्पी आपत्ति पेश की है। 'परंपरा का मूल्यांकन' का अंश है :– *"शेखचिल्ली की शेखी और शेखी का एक उदाहरण और लीजिए। निराला जी ने लिखा–'मौन प्रिय, मेरा मधुमय गान।' बस मुंशी जी 'मधुमय' शब्द देखकर उबल पड़े। बोले–इन कवियों को शहद की नहर में इतनी देर तक डबकोइयां दें कि जन्म भर 'मधु' या 'मधुमय' शब्द लिखना भूल जाएं; ऐसी लहर में इन कवियों से इन्डयूरैंस स्वीमिंग कराना चाहिए। फिर देखिए, कै घंटे यह लोग छपकोइया मारते हैं।"*[113] दरअसल पाश्चात्य कवियों में टेनिसन, वर्डसवर्थ, कीटस आदि कई कवियों ने 'हनिंग' शब्द अर्थात मधुमय को विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया है और रवीन्द्रनाथ को भी 'मधु' और 'मधुमाखा' जैसे शब्द काफी प्रिय थे। दरअसल हर कवि की प्रकृति, प्रतिभा, भाव–क्षेत्र और शिल्पगत विशेषता के अनुरूप उनका कुछ प्रिय शब्द होता है और ये शब्द कवि के जीवनानुभव को भी इंगित करते हैं। पंत के शब्द चयन में कल्पना का आधिक्य, प्रसाद के शब्द चयन में आत्मा की गहन अनुभूति; महादेवी की कविताओं में अतिशय अलंकृति, वेदना व रसनों की चमक मिलती है तो निराला के शब्द चयन उन्हीं के व्यक्तित्व के अनुरूप विराटता व विद्रोह की अभिव्यक्ति करते हैं। डॉ. नामवर सिंह ने इस ओर ध्यान दिलाया है :– *"पंत के यहां स्वपनिल, उर्मिल, मृदुल आदि ज्यादा हैं; प्रसाद के यहां मधु, माधव, माधवी आदि; निराला के यहां नव या विराटता के बोधक बड़े–बड़े शब्द और महादेवी के यहां दीप, बाती, तूली, ओस, अश्रु आदि। हर छायावादी कवि के अपने कुछ प्रिय शब्द हैं और उन शब्दों से उनकी पूरी प्रवृत्ति का पता चलता है।"*[114] निराला के शिल्प, चिंतन पर विचार करते हुए डॉ. नामवर सिंह के इन संकेतों की समीक्षा की जा सकती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद पर एक आरोप 'नाना अर्थभूमियों पर प्रसार का रूक जाना' भी लगाया था और 'काव्य में रहस्वाद' नामक निबंध में छायावाद को नवीन जागृति का चिह्न मानने से इन्कार करते

हुए लिखा–*"भला देश की इस नवीन–'जागृति' से देशवासियों की दारूण दशा की अनुभूति से और असीम, ससीम के मिलन, अव्यक्त और अज्ञान की झांकी आदि से क्या संबंध।"*[115] आचार्य शुक्ल लोकमंगल की साधनावस्था वाले अपने सिद्धान्त के कारण छायावादी कविता के वर्गीय चेतना को आरंभ में नहीं समझ पाए। पर यहाँ भी गौर मतलब है कि आचार्य शुक्ल ने यह बात 1929 में कही थी, और उस समय निराला की 'परिमल', गीतिका' और अनामिका' (द्वितीया जैसे काव्य संग्रह) और तोड़ती पत्थर, राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'सरोज–स्मृति' जैसी काव्यमयी कविताएं या फिर पंत की 'गुंजन' व 'ग्राम्या', महादेवी की 'रश्मि', 'नीरजा', सांध्यगीत', दीपशिखा काव्य–संग्रह तथा कविवर जयंशकर प्रसाद का प्रसिद्ध महाकाव्य 'कामायनी' प्रकाश में नहीं आया था। जन आचार्य शुक्ल ने छायावादी कवियों के रचना–जगत से पूर्णतः परिचय किया और निराला की महत्वपूर्ण कविताओं को देखा तो उन्हें 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के संशोधित संस्करण में लिखना पड़ा –*"शैली के वैलक्षण्य द्वारा प्रतिक्रिया प्रदर्शन का वेग कम हो जाने से अर्थ भूमि के रमणीय प्रसार के चिन्ह भी छायावादी कहे जाने वाले कवियों की रचनाओं में दिखाई पड़ रहे हैं।"*[116] रही बात आचार्य शुक्ल द्वारा छायावाद पर लगाए गए आंरभिक आरोप की तो वह पूर्णतः बेबुनियाद नहीं थी। *छायावाद के आरंभ को राष्ट्रीय प्रश्नों से अलग हटकर देखते हुए कविवर पंत ने 'रश्मिबंध' की भूमिका में छायावादी युग में 'मध्यम वर्ग की क्रान्ति' 'सामाजिक विषमताओं के प्रति क्षोभ' और सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर असंतोष व स्याह रंग का अभाव देखा था।"*[117] अकारण नहीं है कि छायावादी कविता में वैलक्षण्य प्रदर्शन व अलंकारिता की बढ़ती प्रवृत्ति देखकर पंत उसे 'अलंकृत संगीत' कहकर छायावाद से बिल्कुल अलग रास्तों पर चल पड़े। महादेवी भी आगे चलकर छायावाद का कुछ ऐसा ही मूल्यांकन करती हुई लिखती हैंः–*"मानव चेतना तब युग की बदलती हुई कठोर वास्तविकता के निकट संपर्क में नहीं आ सकी थी। उसकी समन्वय तथा सांमजस्य की भावना केवल मनोभूमि पर ही प्रतिष्ठित थी। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वह सर्वधर्म समन्वय, सांस्कृतिक समन्वय, ससीम–असीम, तथा इहलोक–परलोक संबंधी समन्वय की अमूर्त भावना अपर्याप्त लगने लगी, जिससे छायावाद ने प्रारंभिक प्रेरणा ग्रहण की*

थी।[418] महादेवी के इस कथन से तो यही लगता है कि वह छायावाद को एक सीमा के बाद बदली परिस्थितियों में संकुचित भाव–बोध का मानने लगी थीं। छायावादी कविताओं को प्रगतिवादियों व प्रयोगवादियों व बाद में नई कविता के कवियों ने भी 'करूणा–विलास व यथार्थ अलग संकुचित भाव–भूमि वाला ही मानने लगे। खासकर मध्यम वर्ग के कष्टप्रद जीवन का उत्तर छायावादी रोमांटिक कविताओं में नहीं मिलता है। इसलिए आगे चलकर मुक्तिबोध ने भी 'नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' में लिखा– *"स्वर्गीय पंडित रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में छायावाद के प्रति जो क्षोभ प्रकट किया, वह एक निःसार और अनर्गल है, यह नहीं कहा जा सकता। उन्होंने बार–बार यह शिकायत की है कि छायावाद में अर्थ–भूमि का संकोच हो गया है। मानव–मन के बहुत ही अल्प और अ–महत्वपूर्ण विषयों की ओर ध्यान दिया गया है।*[419] कहने का तात्पर्य यह है कि छायावादी कविता एक विशेष सामाजिक व साहित्यिक परिस्थितियों की उपज थी जो दूसरी विस्तृत परिस्थिति और समय की भिन्न मांग के कारण पर्यवसान की ओर भी चली गई। फिर भी अभिव्यंजना शैली की दृष्टि से यह अप्रतिम थी और हमारी हिन्दी साहित्य की परम्परा का स्वाभाविक विकास भी। रही बात अर्थभूमि के संकोच की' तो छायावादी कवियों में यदि निराला को आचार्य शुक्ल अलग करके देख लेते तो उनका यह आरोप भी थोड़ा धूमिल पड़ जाता। निराला ने छायावादी युग में भी विभिन्न भाव–भूमि की कविताएं लिखीं और प्रगतिवाद आने के बाद निराला 'कुकुरमुत्ता' और 'नए पत्ते' जैसी कृतियों में बिल्कुल अलग रंग में दिखते हैं।' डॉ. बच्चन सिंह ने एक महत्वपूर्ण बात आचार्य शुक्ल के आरोप और छायावाद के संदर्भ में कही है:– *"कविता के क्षेत्र में भी देश–प्रेम, कीर्तिगीत–मुक्त प्रेम, मानवीय समता, ऐतिहासिक–पौराणिक मिथक–सामंत–साम्राज्यवाद विरोध आदि को समेट लिया गया है। यदि शुक्ल जी ने निराला की कविताओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया होता तो उन्हें अपने नकारात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन करना पड़ता। अंतर्विरोध उनकी प्रणाली में ही है––विषय–वस्तु की निंदा और प्रगल्भ शैली की प्रशंसा।*[420] हालांकि आगे चलकर आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' के संशोधित संस्करण में निराला जी को 'बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा'

का धनी बतलाते हुए 'जगत के अनेक रूपों और व्यापारों' को व्यक्त करनेवाली निराला की काव्य–संवेदना की तारीफ भी की थी।

दरअसल, निराला समस्त छायावादी कवियों में सबसे अलग थे। उनकी 'बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा' पर आगे चर्चा की जाएगी। यहां निराला जी के एक निबंध 'मेरे गीत और कला' का एक उद्धरण देखने योग्य है जिसमें उन्होंने अपनी कविता 'जूही की कली' की व्याख्या करने के बाद अंत में सार देते हुए लिखा :– ***"कली की सुप्ति–आत्म–विस्मृति–मन के अन्धकार के बाद है जागरण–आत्म परिचय–प्रिय–साक्षात्कार–मन का प्रकाश–खिलना। कली सोते से जगी हुई, प्रिय से मिली हुई, खिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप में, सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या सी सामने आती है या नहीं, देखें। कई आलोचक यदि इसका एक अंश उद्धृत करके संतुष्ट रहें और दूसरों को संतोष दें इसके साथ न्याय होता है या अन्याय यह भी समझें। मैं इसे ही परिणति कहता हूं और उत्कृष्ट कला का एक उदाहरण 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की काव्य में उतारी हुई यह तस्वीर है या नहीं, परीक्षा करें।"***[121] निराला की उपर्युक्त पंक्तियों पर तसल्ली से गौर फरमाएं। 'जूही की कली' कविता की शुरूआत 'विजन–वल्लरी पर/सोतीथी सुहागभरी–स्नेह–स्वप्न–मग्न' से होती है और अंत–'नम्रमुखी हंसी खिली/खेल रंग प्यारे संग' से होती है। निराला 'जागरण' के बाद 'आत्म–परिचय' अर्थात आत्म ज्ञान की बात करते हैं, फिर खिली हुई पूर्ण मुक्ति। मतलब पूरा एक क्रम बनता है–अंधकार–सुप्ति–आत्म विस्मृति–दीप्ति–जागृति–आत्म–शक्ति–ज्ञान–मुक्ति। यह क्रम स्वयं निराला की यात्रा का है और पूरे छायावाद की यात्रा का भी जिसे निराला कविता का ज्ञानकांड कहते हैं। निराला जिस 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की बात कर रहे हैं, वही तो अज्ञान के अंधकार से ज्ञान की ओर यात्रा है। यह यात्रा आपको प्रत्येक छायावादी कवियों में दिखाई देगी। सुमित्रानंदन पंत की गुंजन की 'एक तारा' कविता की शुरूआत होती है–

"नीरव संध्या में प्रशांत
डूबा है सारा ग्राम प्रांत।"[122]

और अंत अंधियारे के बावजूद आत्म–प्रकाश में रंगे मन द्वारा जग–दर्शन से होता है :–

"जगमग–जगमग नभ का आंगन,
लद गया कुंद कलियो घन
वह आत्म और यह जग–दर्शन।"[123]

उसी प्रकार पंत की कृति 'पल्लव' की 'स्वप्न' कविता की शुरूआत में 'जग की अविरत–निद्रा' की बात है, पर अंत में कवि प्रकाश की चाह रखता है। यह प्रकाश बाह्य और भीतरी आत्म–ज्ञान का प्रकाश भी है :–

"अली क्या कहती है प्राची से
फिर उज्ज्वल होगा आकाश?
पर मेरे तम पूर्ण हृदय में
कौन भरेगा प्रकृत–प्रकाश!"[124]

जयशंकर प्रसाद कृत 'प्रथम प्रभात' कविता में शुरूआत 'मनोवृत्तियां खग–कुल सी थी सो रहीं' से होता है तो अंत :–

"सद्य स्नान हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में,
मन पवित्र उत्साह –पूर्ण सा हो गया,
विश्व, विमल आनंद–भवन सा हो गया
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था।"[125]

जाहिर है जितना उजाला जगत में है, उतना अतःकरण में भी । उनकी झेलम की पावस–प्रभात 'दीप' 'दर्शन' हृदय का सौंदर्य, सुधा में गरल आदि कविताओं में अंधकार से प्रकाश का, एक प्रत्याशा का स्वर पड़ता है। 'लहर' में कवि प्रसाद यह कामना प्रकट करते हैं :–

"जाकर सूनेपन के तम में–
बन किरन कभी जाना।"[126]

'आंसू' के बाद हिस्से में एक पूरा का पूरा खंड प्रातः कालीन बिंब से सजा और जागरण का गीत सुनता है। प्रसाद की 'कामायनी' के आरंभ में

प्रलय का चित्रण है। इस प्रलय की गहनतम छाया को लेकर जो यात्रा शुरू होती है, वह विभिन्न सर्गों में मानस जीवन की अंतस की यात्रा में तब्दील हो जाती है जो सर्गों के नाम से भी परिलक्षित है। 'चिंता' सर्ग के आरंभ में 'मणि–दीपों के अंधकारमय अरे निराश्यपूर्ण' की चिंता अंत में 'आस' बनकर दिखती है :–

"बाष्प बन उड़ता जाता था
या वह भीषण जल–संघात,
सौर चक्र में आवर्त्तन था
प्रलय निशा का होता प्रात।"[127]

'चिंता' रूपी रात्रि का जब नाश होता है तो उषा विकसती है; आशा हंसती है। 'चिंता सर्ग के बाद' आशा सर्ग' के शुरूआत में ही पंक्तियां आती हैं :–

"उषा सुनहले नीर बरसती
जय–लक्ष्मी सी उदित हुई;
उधर पराजित कालरात्रि भी
जल में अंतर्निहित हुई।"[128]

'कामायनी' की यात्रा 'चिंता सर्ग' से 'आनंद सर्ग' की यात्रा है, जहां 'आनंद अखंण्ड घना' है। भले ही वह समस्या का दार्शनिक या लादा हुआ समाधान हो, पर यह भी एक प्रकार से अंधकार में निराशा से व्याप्त मनु की आनंद के प्रकाश तक की यात्रा है। 'कामायनी' को 'फैटेंसी मानने के बावजूद मुक्तिबोध ने उसमें 'सांस्कृतिक जागरण' की झलक सुनते हुए लिखते हैं:– ***"उस राष्ट्रवाद की वह एकाकी विषण्ण स्थिति दूर हुई और भविष्य में आस्था प्रकट करते हुए मुक्ति–संघर्षों की मंजिले नापने के लिए अपने विराट भुजदंड बढ़ाए। उसके प्रथम आत्मविश्वास की सांस्कृतिक झलक न केवल कामायनी में वरन् प्रसाद जी के अन्य साहित्य में मिलते हैं।"***[129]

छायावदी कवयित्री महादेवी वर्मा जो अपनी वेदनात्मक बिंबों व प्रतीकों तथा दुःखवाद के लिए प्रसिद्ध है, वह भी 'रश्मि' की भूमिका में

दुख–सुख की यात्रा का अपना स्वप्न बतलाती हुए कहती हैः– *"जिस प्रकार जीवन के उषाकाल में मेरे सुखों को उपहास–सा करती हुई विश्व के कण–कण से एक करूणा की धारा उमड़ पड़ी है, उसी प्रकार संध्या काल में जब लंबी यात्रा से थाका हुआ जीवन अपने ही भार से दब कर कातर क्रंदन कर उठेगा, तब विश्व के काने–कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्कुरा पड़ेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।"*[130] महादेवी परिवर्तन को ही जीवन कहती है और तमाम रजनी के बिंबो व अंधेरे के बावजूद अपनी आत्मा का दीपक जलाए रखती है। 'रश्मि' की 'आशा' कविता में वह कहती है :–

"मूक हुआ जो शिशिर –निशा में,
मेरे जीवन का संगीत,
मधु–प्रभात में भर देगा वह,
अंतहीन लय कण–कण में।"[131]

छायावादी कविता में अंधकार से प्रकाश की यात्रा सबसे अधिक निराला में दिखाई देती है, चाहे वह 'तुलसीदास' नामक कविता हो या 'राम की शक्तिपूजा' दोनों जगहों में 'अस्त' से 'प्रभात' की नाटकीयता का तनाना–बाना बुना गया है। 'बन–बेला' कविता में भी आरंभ की कुछ पंक्तियों के बाद यह दृश्य आता है :–

"यह सांध्य समय
प्रलय का दृश्य भरत अंबर।"[132]

और यही, कवि विचार करता है, आत्मामंथन करता है–अपने जीवन की व्यर्थता पर विचार करता है और अंत में बड़े–छोटे सब में समानता का आत्म–ज्ञान कर जब वनबेला विदा लेती है तो उषाकाल का चित्र आता है और अंत –

"देखती रही,
निस्वन, प्रभात की वायु वही।"[133]

निराला इस प्रातः काल में आत्म–साक्षात्कार करते हैं, आत्मज्ञान द्वारा शक्ति–संचय करते हैं। यही है –'कविता का ज्ञानकांड।' निराला ने

प्रबंध–प्रतिमा' की भूमिका में लिखा है –*"विचार साहित्य का ज्ञानकांड है। उपयोगी साहित्य या कर्मकांड की बातें उसमें कम होती हैं। आज राजनीति के प्राबल्य से उपयोगी साहित्य की बातें ही प्रबल हैं। मैं इस उपयोगी साहित्य को यद्यपि कम महत्व नहीं देता, फिर भी, जैसी पहले धारणा है कि कर्मकांड ज्ञानकांड की पुष्टि के लिए है। अतः महत्व और सम्मान में वह ज्ञानकोड से नीचे है –ज्ञान उसकी परिणति है।, मैं छोड नहीं सकता, क्योंकि यह सत्य है और खंड–सत्य नहीं, अखंड सत्य है।*[134] जाहिर है यह बात निराला ने अपने निबंधों को लेकर कही थी पर यह उनके काव्य के लिए भी सत्य है। अगर छायावादी काव्य के परिप्रेक्ष्य में देखें तो छायावादी कवियों ने द्विवेदी युगीन उपदेशात्मक वृति का कविता में निषेध किया है। सीधे–सीधे उपदेश देना 'कर्मकांड' है। निराला पहले 'ज्ञान' की बात करते हैं; विचार की बात करते हैं। छायावादी काव्य ने भी साहित्यिक उपयोगिता को उतना महत्व न देकर कला–रूपों का संस्कार किया और उसी बहाने जागरण का संदेश दिया। निराला ने छायावाद का पर्यवसान और प्रगतिवाद व प्रयोगवाद जैसी काव्य–धारा का अभ्युत्थान भी देखा। सन् 1940 में 'प्रबंध–प्रतिमा' की भूमिका लिखते हुए उन्होंने ध्यान दिलाया –*"आज के प्रचलित या उधार लिए कुछ–कुछ वादों के धक्के भारत कर्म समन्वित ज्ञान को अपने अज्ञान के कारण लग रहे हैं, उनके विशेषणों से मुझे यही कहना है कि वे वैज्ञानिकता में आगे हैं, यह वे प्रमाणित कर सकते हैं तो करें। मैं जानता हूं; वे नहीं कर सकेंगे; रोटी न मिलने का कारण अज्ञान है, ज्ञान नहीं; अकर्मण्यता भी अज्ञान के कारण बढ़ती है।*[135] यह थी निराला की ज्ञान–साधना जिसमें "कर्म–समन्वित ज्ञान" और ज्ञान के वाद कर्मण्यता का संदेश छिपा है। निराला की वैचारिक यात्रा में इन तथ्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा। यहां सिर्फ इतना बतलाना पर्याप्त होगा कि 'कामायनी' में भी प्रसाद जी ने मन, कर्म और ज्ञान की आराजकता का चित्रण किया है और एक विशेष प्रकार के तर्क का विरोध करते हैं, बुद्धिमात्र का नहीं। वह मन–वचन–कर्म की एकता को संपादित करते हैं, जब श्रद्धा कहती है :–

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक–दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।"[136]

डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में –"कामायनी ज्ञान, कर्म और इच्छा तीनों लोगों को सम्बद्ध कर देती है। इसलिए प्रसाद का दर्शन बुद्धिवाद विरोधी नहीं है वरन् वह ज्ञान को मानव की सहृदयता से संबंद्ध करता है।"[137] छायावाद के अंदर ज्ञान व सहृदयता तथा ज्ञानकांड व कर्मकांड के बीच इस संबंध पर पुनर्विचार की जरूरत है।

कुल मिलाकर छायावाद द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक, अत्याधिक उपदेशपरकता का विरोधी काव्य था। गौरतलब है कि अधिकांश आलोचक द्विवेदी युग को 'साहित्य का ज्ञानकांड' कहते हैं, पर निराला उस साहित्य में से 'काव्य–विधा' को बाहर निकाल देते हैं। अत्याधिक उपदेशपरकता के कारण उनके लिए द्विवेदी युगीन काव्य 'कर्मकांड' से ज्यादा नहीं। छायावादी काव्य राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति है, सांस्कृतिक अस्मिता की खोज है, ज्ञान की दीप्ति में जागृत होकर शक्ति–संचय करने और मुक्ति की आकांक्षा का काव्य है। यह मुक्ति साहित्य और काव्य दोनों की है जिसे निराला 'टूट गए सकाम बंध' कहते हैं। यह मुक्ति के आलोक में आत्म–साक्षात्कार की आत्मशक्ति–जागरण की कविता है। यह कविता का "ज्ञानकांड" है। जो आत्म–साक्षात्कार की दिशा व दशा का ज्ञान कराती है। जगत के मुक्त व्यपार में कवि को आत्मज्ञान का अवसर देती है और भाव व भाषा दोनों के स्तर पर स्वच्छंदता और आत्म–प्रसार से जगत–प्रसार की यात्रा पर ले जाती है। निराला की कविता 'जागा दिश–ज्ञान' से कतिपय पंक्तियाँ उधार लेकर कहें तो :–

"जागा दिशा–ज्ञान;
उषा रवि पूर्व का गगन में, नव–यान!
....किरण–दृक्–पात आरक्त किसलय सकल;

शक्त–द्रुम,कोमल–कलि, पवन–जल–स्पर्श–चल;
भाव से सतत् बह चले पथ प्राण!
हार हुए सकल दैन्य छलमल चले–
जीते हुए लगे जीत हुए गले
बन्द वह विश्व में गूंजा विजय –गान।"[138]

(2) 'मैं ही वंसत का अग्रदूत' : निराला की प्रयोगधर्मिता

"मैं जीर्ण–साज बहु छिद्र आज
तुम सुबल सुरंग सुवास सुमन
मैं हूं केवल पदतल–आसन,
तुम सहज विराजे महाराज।
ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे यद्यपि
मैं ही वसंत का अग्रदूत
ब्राह्म्ण समाज मे ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि।[139]

निराला ने अपने उपर 'विशाल भारत' के संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी के सुनियोजित हमले और छायावादी कवियों पर प्रगतिशील आलोचकों और अज्ञेय जैसे तद्युगीन नव–प्रयोगवादियों के आक्षेपों से त्रस्त होकर आक्रोश और दुःख में कविता लिखी थी –'हिन्दी सुमनों के प्रति पत्र' जिसका रचनाकाल अगस्त, 1937 का है और यह द्वितीय अनामिका' के साथ सन! 1939 में पुनः प्रकाशित हुआ था। इस कविता में उन्होंने नए पीढ़ी के कवियों और अपने को सुंदर–सुमन और पतझड़ के पत्ते के रूप में दो विरोधी, रूप की व्यंजना की है। किन्तु, अगले ही बंध में निराला खुद को 'वसंत का अग्रदूत' बतलाते हैं। हालांकि पतझड़ के बाद वंसत की परिकल्पना सहज संभाव्य है, पर यहां निराला प्रकारांतर से स्वयं को हिन्दी काव्य उद्यान में सुमन व सुवास आदि का प्रतीक–प्रयोग किया है। सन् 1929 में 'परिमल' की भूमिका के आरंभ में निराला लिखते हैं– *"हिन्दी की वाटिका में खड़ी बोली की कविता की क्यारियां जो कुछ समय पहले दूरदर्शी बागवानों के परिश्रम से लग चुकी थी, आज धीरे–धीरे कलियां लेने लगी हैं। कहीं–कहीं किसी–किसी पेड़ के दो चार–सुमन पंखुडियां भी खोलने लगे हैं। उसकी अमन्द सौरभ लोगों को खूब पसंद आयी है। परन्तु यह हिन्दी के उद्यान में अभी प्रभातः–काल की स्वर्ग छटा फैली है।"*[140] ध्यातव्य है, कि 'दूरदर्शी बागवानों के द्वारा निराला छायावादी कवियों को ही ओर इशारा कर रहे हैं। 'हिन्दी के उद्यान के प्रभातकाल' का जिक्र इसलिए कि तभी तक छायावादी कवियों की 'गुंजन',

'कामायानी', 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति–पूजा', 'सरोज–स्मृति' आदि कई महत्वपूर्ण काव्य–संग्रह व रचनाएं नहीं प्रकाशित हुई थी। 'परिमल' की भूमिका की आरंभिक पंक्तियों को छायावाद से जोड़ते हुए डॉ. नंदकिशोर नवल लिखते हैं :– *"इससे यह भी स्पष्ट है कि हिन्दी की वाटिक में वसंत लाने वाला छायावाद है और जिस वृक्ष में दो–चार सुमन पंखुड़ियां खोल चुकें हैं, वह और कोई हो या नही, कवि निराला अवश्य हैं।"*[141]

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की एक और कविता है –'मित्र के प्रति' जो 'सुधा' के 15 अगस्त, 1935 ईस्वी के अंक में छपी थी। कहते हैं कि यह कविता निराला ने अपने मित्र उमाशंकर द्विवेदी को लक्ष्य कर लिखी थी जो ब्रजभाषा में कविताएं लिखकर रीतिवादी मानसिकता को पोषण कर रहे थे। कविता की शुरूआत में ही निराला उस मानसिकता पर कटाक्ष करते थे हुए लिखते हैं :–

"कहते हो नीरस यह
बंद करो गान–
कहाँ–छंद, कहाँ भाव
कहाँ यहाँ प्राण?"[142]

निराला ने देखा कि परंपरागत छंद, प्राचीन भाव सब नीरस हो चुके हैं। जीण–शीर्ण से ही प्राचीनतम को लगाव है और प्राचीन तद्युगीन गतिशीलता का काव्य या जिसने पुरानी जड़ता को अस्वीकार किया। निराला उन प्राचीन पंथियों से तर्क करते हैं :–

"इसी रूप में वह स्थिर,
इसी भाव में घिर–धिर
करोगे अपार तिमिर–
सागर को पार?"[143]

जो कवि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की काव्य–यात्रा को महत्व देता है और जो छायावादी कविता दीप्ति व गति की कविता है, वहां यह रीतिवादी स्थिरता भला कैसे स्वीकार होती। रीतिवादी मानसिकता से विरोध करना छायावाद का उद्देश्य भी था, वह निराला के लिए भी

आसान कर्म था। पर 'हिन्दी सुमनों के प्रति पत्र' कविता में विरोधी बदल गए। एक ओर निराला के पुराने आलोचक, कुछ समकालीन मित्र थे तो दूसरी तरफ छायावाद के पर्यवसान के समय नई धारा के उगते कवि भी। पर सबसे ज्यादा मुकाबला या दुःख छायावादी कवियों से था। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं :– ***"हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र 'में' संवाद की जगह निराला की उक्ति है। बोलने वाले हैं अकेले निराला, सामने संबोधित है रीतिवादी मित्रों की जगह समकालीन छायावादी कवि। रीतिवादी परास्त हुए– 'मित्र के प्रति' में यह विश्वास है। छायावादी कवियों में वह श्रेष्ठ नहीं माने जाते – यह क्षोभ 'हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र' में है।"***[144] अगर डॉ. शर्मा की इस मान्यता को आंशिक सत्य भी मान लिया जाए तो भी यह सत्य है कि 'वसंत का अग्रदूत' शब्द तद्युगीन नई काव्यधारा के प्रति अपना प्रेरणा सूत्र का संकेत है, साथ ही छायावादी काव्यधारा को वंसत के अग्रदूत का गर्व भी इसलिए छायावादी कवियों के प्रसंग में निराला के कथन का निहितार्थ और उन कवियों से उनके काव्य–गुणों की भिन्नता भी समझना जरूरी है।

छायावादी कवियों में निराला को सबसे अधिक अनुराग और मतभेद उनके मित्र कवि सुमित्रानंदन पंत से रहा। निराला ने सबसे अधिक आलोचना उन पर लिखी है। 'मतवाला' के 3 मई, 1924 के अंक में उनका एक आलेख प्रकाशित हुआ –'कविवर सुमित्रानंदन पंत' जिसमें निराला अपनी लेखनादतानुसार खड़ी बोली के उद्यान का चित्र खींचते हैं। उनके अनुसार, खड़ी बोली की कविता के पौधे को सींचने वाले माली तो बहुत हुए, किन्तु अभी तक कोई कुसुम नहीं निकला। निराला पंत को हिन्दी का स्वाभाविक कवि बतलाते हैं और लिखते हैं :– ***"खड़ी बोली की जिस कविता का प्रचार किया गया था, जिसके प्रचारकों और कवियों को कितनी ही गालियां खानी पड़ी थीं। पर उसका स्वाभाविक कवि अब इतने दिनों बाद आया है और हिन्दी का यह गौरव–कुसुम श्री सुमित्रानंदन पंत है।"***[145] हालांकि वह छायावाद पंत जी का भी शुरूआती दौर था, इसलिए निराला स्पष्ट कर देते हैं कि 'अभी यह कुसुम पूर्णतः विकसित नहीं हुआ है और न इसके परागों में सुरभि आई है, पर दो चार आलोचक या प्रंशंसक रूपी भौंरे इसके अर्द्धविकास की रागिनी गाने लगे हैं। निराला ने उनकी

'उच्छ्वास' कविता को खड़ी बोली की उत्कृष्ट कविता का प्रथम 'संगीत' माना है। उक्त कविता में 'पर्वत प्रदेश में 'पावस' के प्रसंग में आखिरी पंक्ति आती है –'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।' यहां व्याकरण की दृष्टि से मित्र के साथ 'मेरा' शब्द प्रयोग युक्तिसंगत था। इस संदर्भ में निराला ने लिखा है :– *"व्याकरण मेरी मनोरम मित्र' लिखने में बाधा देता है पर कवि हृदय बालिका के बाद 'मेरा मनोरम मित्र' लिखना अस्वीकार करता है। 'मेरी' में कितनी मधुरता आ गई है, यह सहृदय कवि ही समझ सकते हैं।"*[146] उच्छ्वास कविता बाद में "पल्लव" के साथ सन् 1928 में प्रकाशित हुई जिसके प्रवेश में पंत जी ने 'बालिका मेरी मनोरम मित्र' की ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा है –*"बालिका मेरी मनोरम मित्र थी' के बदले––'मेरा मनोरम मित्र थी' लिखना मुझे श्रुतिमधुर नहीं लगता।"*[147] निराला ने जब पंत पर यह लेख लिखा था तब तक उनका पंत से परिचय भी हुआ था। पंत निराला से उम्र में छोटे थे। उस समय निराला उन्हें बड़े भाई स्नेह दे रहे थे। लेख के अन्त में निराला ने उस 'अधखिले फूल' अर्थात पंत की काव्य–कला की प्रशंसा और उज्ज्वल भविष्य के लिए शुभकामना प्रकट की है। लगभग एक वर्ष बाद निराला की पंत से भेंट इलाहाबाद में हुई और पत्र–व्यवहार का सिलसिला चला।

दोनों के मध्य वैचारिक भिन्नता 'पल्लव' की भूमिका को लेकर हुई। सन् 1928 में प्रकाशित 'पल्लव' के प्रवेश में सुमित्रानंदन पंत जी ने सन् 1921 में प्रकाशित अपनी रचना 'उच्छवास' को स्वच्छन्द की रचना बतलाया और 'सम्मेलन' पत्रिका के माध्यम से स्वयं को मुक्त छंद का प्रवर्तक के रूप में पेश किया है। पंत जी ने निराला के अधिकांश मुक्त छंद की कविताओं को राग और भाषा के वार पर झूलता हुआ बतलाया है। उन्होंने लिखा है :–*"उनके कुछ छंद बंगला की तरह अक्षर–मात्रिक राग पर, कुछ हिन्दी के ह्रस्व– दीर्घ मात्रिक संकोच पर चलते हैं, तथा कुछ इस प्रकार मिश्रित हैं कि उनमें से कोई भी नियम नहीं मिलता। जहाँ पर उनक कविता ह्रस्व–दीर्ष मात्रिक संगीत पर चलती, उनकी उज्ज्वल भाव–राशि उनके रचना चातुर्य के सूत्र में गूंथी हुई, हीरो के हार की तरह चमक उठती है। किंतु जहां पर वह बंगला के अनुसार चलती वहां उनका राग हिन्दी के लिए अस्वाभाविक हो जाता है।"*[148] पंत जी ने निराला के

मुक्त छंद की कई कविताओं पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव या सीधा अनुकरण दिखलाया था। निराला पर 'मतवाला मण्डल' में श्रीयुत भावुक जी 'भावों की भिडंत' लेख द्वारा पहले ही आघात कर चुके थे और निराला की कविताओं को रवीन्द्रनाथ का प्रभाव दिखलाकर उन्हें अमौलिक घोषित किया था। निराला इस आघात को सह नहीं पाए। निराला ने इसके प्रतिवाद में 'माधुरी' के सितंबर और दिसंबर, 1927 तथा अप्रैल व मई व जुलाई 1928 के अंकों में पांच किश्तों में एक लेख प्रकाशित कराया–"पंत जी और पल्लव।' इसमें उन्होंने पंत जी की काव्य कला की भरपूर आलोचना की है। निराला ने पंत जी की शिक्षा पर प्रतिघात करते हुए उनके कई काव्यात्मक पंक्तियों को रवीन्द्रनाथ जी की बांग्ला कविता का सीधा अनुसरण मानते हुए लिखा – *"कहीं–कहीं जो थोड़ा सा रूपांतरण पंत जी ने किया है, वह केवल छंद की सुविधा के लिए। पंत जी चौर्य कला में निपुण हैं––कहीं–कहीं तो दूसरों के भावों को बदलकर उसमें कुछ अपना हिस्सा मिलाकर चमत्कार दिखलाने में इन्हें अच्छी सफलता हुई है, परन्तु अधिकांश स्थलों में सुंदर–से–सुंदर भावों को इन्होंने बुरी तरह नष्ट कर डाला है।"*[449] निराला ने भी पंत को सीधे–सीधे रवीन्द्रनाथ के भावों को चोरी करनेवाला बताया है। निराला ने पंत जी को स्वयं ब्रजभाषा का प्रवर्तक घोषित करने पर भी आक्षेप किया है। निराला अपनी रचना 'जूही की कली' को मुक्त छंद की पहली रचना मानते हैं। जिसे आरंभ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी सरस्वती में प्रकाशित करने से इंकार कर दिया था।

निराला ने पंत जी के 'उच्छ्वास' के संदर्भ में लिखा – *"पंत जी की कविताओं में स्वछंद छंद की एक लड़ी भी नहीं, परंतु वह कहते हैं –'प्रल्लभव' में पेटी अधिकांश रचनाएं इसी छंद में हैं जिसमें 'उच्छवास' 'आंसू' परिवर्तन' विशेष बड़ी है। यदि गीति–काव्य और स्वच्छंद का भेद दोनो की विशेषताएं पंत जी को मालूम होती तो वह ऐसा नहीं लिखते।"*[450] निराला ने पल्लव में प्रकाशित 'परिवर्तन' कविता को छोड़कर बाकी को बाल–रचनाएं घोषित किया है। दरअसल 'पल्लव' की भूमिका और निराला के इस लेख के कारण निराला और पंत जी के रिश्तों में कुछ खटास आने लगी। फिर भी, साहित्यिक शिष्टाचार बना रहा। पंत जी ने जब 'ज्योत्सना'

लिखी तो निराला ने भूमिका रूप में दो शब्द लिखे। जब निराला ने 'चमेली', 'बिललेसुर बकरिहा' आदि रचनाएं लिखीं तो पंत जी ने रामविलास जी से कहकर उन पर लेख लिखवाकर अपने 'रूपाभ' में प्रकाशित किया और स्वंय निराला पर 'रूपाभ' में कविता भी लिखी। फिर भी, ऐसी कई घटनाएं हुई जिनका जिक्र डॉ. रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' में किया है। यथा; पंत जी का निराला के लिए 'आई एम माइटी आफरेड ऑफ 'हिम' कहना या निराला को पंत जी को 'खप्पर' में भरकर तेरा खून पियूंगा' कहना दो समान रूप से महत्वपूर्ण कवियों में प्रतिस्पर्धा वश ऐसा हो भी जाता है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैंः– ***"जैसे निराला पंत को प्यार करते थे और उनकी लोकप्रियता से कष्ट पाते थे, वैसे ही पंत निराला को प्यार करते थे ओर उनके बौद्धिक दबाव से त्रस्त होते थे।"***[151]

ऐसा भी नहीं था कि निराला पंत जी की काव्य–कला के उत्तर गुणों से अपरिचित थे या उसकी उपेक्षा करते थे। 'पंत जी और पल्लव' निबंध के अंत में निराला पंत जी की काव्यकला पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैंः– ***"पंत जी ने सबसे जबरदस्त कौशल जो है, वह शैली की तरह अपने विषय को अनेक उपमाओं से संवारकर मधुर–से–मधुर और कोमल–से–कोमल कर देना। भावना की प्रबल जागृति तो नहीं; परन्तु सौंदर्य के मनोहर रूप जगह–जगह पंक्ति–पंक्ति में मिलते हैं। रूपक और अलंकार बांधना उनके बांए हाथ का खेल है।"***[152] उक्त निबंध के बाद 'सरोज' के मई–जून, 1928 के अंक में निराला जी का एक और लेख छपा–'सौंदर्य दर्शन और कवि–कौशल।' उक्त लेख में निराला ने जयशंकर प्रसाद और पंत दोनों की सौंदर्य–चेतना की प्रशंसा की है। निराला जी 'पल्लव' की 'वीचि–विलास' कविता के संदर्भ में लिखते हैं :– ***"इन पंक्तियों में छाया को निराश्रया नारी कल्पना कर कवि अनेक दृष्टियों से देख रहा है। प्रत्येक शब्द में जीवन है। सौंदर्य की सजीव–मूर्ति कविता के प्रत्येक चरण को संभाल रही है।"***[153] ध्यातव्य है कि पंत कोमलता लाने के लिए कविता में स्वयं को स्त्री रूप में अधिक कल्पना करते थे। यह दृष्टि उन पर इतना छा गई थी कि वह स्वयं की केश–सज्जा आदि भी स्त्री की तरह रखने लगे थे। डॉ. रामविलास शर्मा 'निराला की साहित्य साधना' में

पंत और निराला की तुलना करते हुए दोनों को अर्द्धनारीश्वर बतलाते हैं, परन्तु पंत में 'पार्वती' की अधिकता तो निराला में 'शिव' की अधिकता को रेखांकित करते हैं। पंत की स्त्री सुलभ प्रकृति के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं :– *"पंत में कोमलता, माधुर्य, सुकुमारता, सब–कुछ था, उर्जा की ही कमी थी जिसके बिना उदात्त की सृष्टि नहीं होती। पंत केवल मधुर, सुकुमार, कोमल नहीं हैं,उनमें –बौद्धिक स्तर पर कठोरता भी है। दोनो अर्द्धनारीश्वर, निराला में शिव अधिक, पंत में पार्वती।"*[154] पंत मे नारीत्व का अपने आप पर आरोप इतना दिखता है कि वह कई बार 'आत्मरति' या स्वयं पर मुग्ध दिखते हैं। यही पंत को 'प्रकृति का सुकुमार कवि' बनाता है और निराला के अदंर का 'शिवत्व' उन्हें विराट, उदात, ध्वंसात्मक, विद्रोही, उग्र, वैरागी आदि भाव भरता है।

पंत और निराला छायावाद के प्रमुख स्तंभ थे यद्यपि लोकप्रिय कवियों में से एक जयशंकर प्रसाद के प्रति दोनों का प्रेम भाव था। निराला ने सौंदर्य–दर्शन और कवि–कौशल निबंध में लिखा है– *"'प्रसाद और पंत' मेरे लिए दोनों 'ज्योतिर्गयन' हिन्दी के प्रियदर्शन कवि हैं एक ओर प्रसाद की संस्कृत योजना हिन्दी के धवल केशमनि, रत्नदीप–माला–मयूख–पठ कैर्दलितान्धकार', दूसरी ओर पंत में अंग्रेजी का विद्युत–प्रवाह, शीर्ण–कंकाल शब्द–राशि पर जीवन का अमृत–निर्झर।"*[155] निराला प्रसाद का 'निस्संग, निसहाय और नवीन युग के तपस्वी कवि के रूप में अभ्युदय देखते हैं और उनकी कविताओं को हिन्दी के हृदय–पट पर मार्जित कोमल रेखाओं' की तरह बतलाते हैं। निराला ने लिखा है– *"जिस समय खड़ी बोली के लिए विशेष साधन उपलब्ध न थे, उस समय प्रसाद जी ने वैसे इतने मार्जित और मनोहर शब्दों के आभूषण से अपनी कविता को अलंकृत कर दिया।"*[156] महाकवि निराला ने प्रसाद जी की 'कामायनी' पर भी एक संक्षिप्त मंतव्य दिया था। वे इसे 'रहस्यवाद का प्रथम महाकाव्य मानते हैं। निराला जी के अनुसार 'कामायनी' सृष्टि के रहस्य पर भारतीय मनस्तहव प्रधान विचार को परिश्रय देती है। निराला ने प्रसाद जी की प्रंशसा में लिखा हैः– *"हिन्दी के युगान्तर साहित्य के जो तीन प्रजापति हैं; उनमें प्रसाद जी एक श्रद्धा देवो व मनु हैं। बाकी दो स्वर्गीय प्रेमचंद जी और बाबू मैथिलीशरण जी।————साहित्य का उनका रहस्यवादी या*

छायावादी पक्ष एक ओर करने पर हिन्दी का अवखण्ड सम्मेलन होता है और प्रसार जी इसके सर्वमान्य प्रधान।[157] उक्त समीक्षा के अंत में निराला लिखते हैं :– *"ऐसी किताब जिसमें मनुष्य मन का इतना अच्छा चित्र; जिस समझादारी के साथ चित्रित हुआ, मैंने हिन्दी और बंगला के नीवन साहित्य में नहीं देखा।" काव्य के सुंदर–से–सुंदर पद इसमें हैं। कुल पंद्रह प्रकरणों में यह महाकाव्य समाप्त हुआ है। मैं इसकी विस्तृत आलोचना अन्य लेख में दे रहा हं, इसलिए समाप्त कर रहा हूं।*[158] हालांकि निराला का 'कामायनी' पर लिखा अन्य आलोचनात्मक लेख प्रकाशित नहीं हो पाता। यदि हो पाता तो कविवर प्रसाद के संदर्भ में उनकी आलोचना दृष्टि का और पता लग पाता।

कविवर जयशंकर प्रसाद का देहावसान नवंबर, 1937 में हुआ। निराला ने दिसंबर 1940 की 'माधुरी' में प्रसाद जी पर श्रदांजलि स्वरूप एक कविता लिखी –'आदरणीय प्रसाद जी के प्रति।' उक्त कविता में निराला ने हिन्दी में प्रसाद जी के योगदान को बेहतरीन ढंग से चित्रित किया है। कविता की शुरूआत होती है ––

"हिन्दी के जीवन हे, दूर गगन के द्रुतदर
ज्योतिर्मय तारा – से उतरे तुम पृथ्वी पर;
अंधकार कारा यह, बंदी हुए मुक्ति धन
भरने को प्रकाश करने को जनमन चेतन।"[159]

निराला ने यहां जिसे अंधकार कारा' का जिक्र किया है, वह स्वयं निराला का युग था जिसे उन्होंने आगे चलकर 'गहन है यह अंधकारा' कविता मे ंप्रकट किया है। निराला की कविता इसी कारा मुक्ति का आह्वान है। निराला प्रसाद को भी उसी मुक्ति से जोड़ते हैं। आगे उन्होंने जो प्रसाद पर लिखा, वह हिन्दी साहित्य में अमर पंक्तियां बन गई :–

"किया मूल को मुखर, लिया कुछ, दिया, अधिकतर
पिया गरल, पर किया जाति–साहित्य को अमर
तुम वंसत से मृदु , सरसी के सुप्त सलिल पर,
मंद अनिल से उठा गए हो कंप मनोहर।"[160]

'पिया गरल' वाली पंक्ति स्वयं निराला पर भ लागू होती है। यहाँ भी 'वसंत' का बिंब दिया गया है। कविता में निराला ने प्रसाद जी के सहयोगी और उनकी विजय–ध्वजा धारण कर, आगे बढ़नेवाली कवियों की लंबी फेरहिस्त दी है, जिसमें पंत, महादेवी, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, अचल, जानकीवल्लभ आदि कई कवि शामिल हैं। कविता के अंत में प्रसाद जी को युग–प्रवर्तक घोषित करते हुए निराला लिखते हैं :–

"वर्तमान की ओर बढ़ी अपने मेमं निश्चल
युग–प्रवर्तक, हुए शीत में व्याधि से विकल,
रहा साथ में नतमस्तक सेवा को, अग्रज,
चले गए तुम धरा छोड़ गौरव–विजय ध्वज।"[161]

निराला ने प्रसाद को हमेशा अग्रज माना और उनके प्रति श्रद्धावान रहें।

निराला ने महादेवी वर्मा पर विशेष नहीं लिखा है। 26 मार्च को महादेवी वर्मा की जयंती पर निराला ने उन पर एक लेख लिखा जो 26 मार्च, 1956 के 'भारत' पत्रिका के अंक में प्रकाशित हुआ। उक्त निबंध में निराल ने मुख्यतः प्रोफेसर महादेवी वर्मा की भाषण–कला की प्रशंसा की है, कवयित्री महादेवी पर नहीं। निराला ने मूलतः महिला छात्राओं के सशक्तीकरण में उनके योगदान की सराहना की थी। निराला ने उनकी साहित्यिक प्रतिभा पर बस इतना ही लिखा –*"देवी जी अब अपनी वाग्मिता और कृतियों से हिन्दी भाषा, आदमी–आदमी की आंख का तारा है। गोस्वामी तुलसीदास जी की उक्ति लागू होती है। सुरसरि कोउन अपावन कहहीं।"*[162] निराला ने इस कमी को पूरा किया, उन पर एक छोटी–सी कविता लिखकर –'युग प्रविर्तका श्रीमती महादेवी वर्मा' के प्रति। उक्त कविता में निराला ने महादेवी जी की रचनाओं का नाम लेते हुए एक प्रकार से उनकी काव्य–यात्रा को इंगित किया है। कविता की आरंभिक चार पंक्तियों में महादेवी जी के प्रति निराला के विचार बहुत कुछ स्पष्ट हो जाते हैं:–

"दिए व्यंग्य के उत्तर रचनाओं से रचनकर,
विदुषी रही विदूषक के समक्ष तुम तत्पर,
हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणा–पाणी,
स्फूर्ति चेतना–रचना की प्रतिभा कल्याणी।"[163]

महादेवी जी निराला को अपना अग्रज मानती थीं। इस बात का जिक्र उन्होंने अपने एक संस्मरण निराला भाई में किया है जो उनकी कृति 'पथ के साथी' में संकलित है। एक बहन ने भाई के जीवन को निकटता से देखा और पाया कि वह विद्रोही कवि जीवनयापन के बुनियादी साधनों से कितना हीन था, फिर भी दूसरों की पीड़ा के आगे सर्वस्व दान करने की शक्ति रखता था। महादेवी जी ने खुले हृदय से लिखा है:– *"प्रायः स्पर्धा का तार हमारे सौहार्द के फूलों को वेध कर उन्हें एकत्र रखता है। फूल के झड़ते या खिसकते ही काला तार मात्र रह जाता है। इसी से हमें किसी सहयोगी का विद्रोह अकेलेपन की तीव्र अनुभूति नहीं देता। निराला जी के सौहार्द और विरोध दोनों एक आत्मीयता के वृंत पर खिले दो फूल हैं।"*[164] यही वह कड़ी है जो छायावादी कवियों को एक सूत्र में पिरोती है।

छायावादी के यदि चारों प्रमुख स्तंभों पर प्रकाश डालें तो पाते हैं कि इनमें से कविवर जयशंकर प्रसाद ने आरंभ में ब्रजभाषा में कविताएं लिखीं। 'कामायनी' के रचनाकाल तक प्रसाद जी ने अपना काव्य–स्तर और भी उंचा किया। 'कानून–कुसुम' से 'लहर' तक रचना–प्रक्रिया में उनमें उत्थान तो देखा जा सकता है। परंतु लगभग सभी रचनाओं में उनका एक विशिष्ट जीवन–दर्शन एवं एकरसता ही दिखती है। डॉ. निर्मला जैन प्रसाद जी को 'ज्ञानात्मक संवेदन' का कवि बतलाती हैं जिसमें सांस्कृतिक चेतना की परंपरा का दबाव अधिक दिखाई पड़ता है। निर्मला जैन ने अन्य छायावादी कवियों से प्रसाद जी की तुलना करते हुए लिखा है– *"प्रसाद की अपेक्षा छायावाद के अन्य तीन कवियों के प्रति पाठकों में अधिक सुमुत्सुकता या ग्रहणशीलता दिखाई पड़ी। पर उसका कारण केवल प्रसाद में प्रासंगिकता की कमी नहीं हैं वस्तुतः उनमें निराला की संवेगात्मक उर्जा, महादेवी का वेदना–विगलन और पंत की सरल बटुल गति नहीं है। आवेग के क्षण उनके यहां बहुत कम आते हैं। यदि आते हैं तो अत्यंत चिराए*

और अनुशासित हैं। उनकी शब्द–लय में भी द्रुत नहीं, बिलंबित गति विन्यास है।[165] यह सच है कि 'चित्रधार' से 'कामायनी' तक प्रसाद एक लंबी छलांग लगाते हैं, परंतु भाषिक–संरचना की लगभग एक ही कोटि दिखाई पड़ती है। प्रसाद जी ने आरंभ से ही जिस संवेदना को पकड़ा और जिस भाषिक संरचना के पथ पर आगे बढ़े हैं, उन्हें वह अविरल और सघनतम बनाए आए हैं, बीच में कहीं डाइवर्ट नहीं होते हैं। यहां तक कि उनके ऐतिहासिक नाटकों में भी एक ही प्रकार की संवदेना दिखलाई पड़ती है। अगर 'कामायनी' को छोड़ दिया जाए तो प्रसाद जी की अन्य रचनाओं में उनका गीति–विधान किसी न किसी रूप में व्याप्त है। दूसरी बात है कि प्रसाद आजीवन दर्शन के व्यामोह में ही डूबे रहे। एक बार निराला ने उनको सन् 1936 के पत्र में उन्हें उपनिषद् से नीचे उतने का आग्रह किया था। इस सदंर्भ में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ध्यान दिलाते हुए लिखते हैं :– *"प्रसाद और निराला के बीच कुछ वैसा रिश्ता है जेसा इतिहास में परंपरा और विद्राही के बीच होना चाहिए। निराला अपने लिए प्रसाद से भिन्न मार्ग चुनते हैं, पर यथावश्यक रूप से उन्हें सम्मान देते हुए चलते हैं।*[166] यह विद्राह उपनषिदों के प्रति नहीं; वरन् काव्य और दर्शन की परंपरा से विद्रोह है। छंद के प्रति विद्रोह इसी का परिणाम है। डॉ. दूधनाथ सिंह स्पष्ट करते हैं– *"विवरणात्मकता से बिंबात्मकता की ओर बढ़ने और ध्वनि–लहरियों को और सघनता की ओर ले जाने की ओर–यही प्रवृत्ति प्रसाद की भाषिक–संरचना को समझने का मूल सूत्र है। इसलिए निराला की तरह अपनी ही स्व–अर्जित रचनात्मक समृद्धि को बार–बार ध्वस्त करने का प्रयास भी उनमें नहीं दिखाई देता।*[167]

छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा की कविताएं एकतान, बिल्कुल सरल रेखा में दिख पड़ती हैं जहां व्यक्तिगत वेदना के साथ–साथ रचनात्मक करूणा की भी अभिव्यक्ति है। एक ही प्रकार की नीरवता, मनस्ताप, उदासी की छाया के बीच नारी स्वातंत्र्य की भावना उनकी कविताओं में अभिव्यक्त होती है। महादेवी निज आंतरिक अनुभूति के बीच टेड़ीं देहभाषा के कवत हैं 'नीहार' से लेकर दीपशिखा तक महादेवी को काव्य शैली, भाषा–संस्कार एक जैसा है, भावना की गहनतम सच्चाई में थोड़ा बहुत अंतर हो सकता है। डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं –"*महादेवी की*

रचनाओं में वैविध्य नहीं मिलेगा। स्त्री की रचनाओं से पुरूष रचनाकारों की विविधता आ अभाव अस्वाभाविक नहीं है।——अन्य छायावादी कवियों की तरह उनकी रचनाओं का स्तर कहीं बहुत ऊंचा और कहीं बहुत नीचा नहीं है। ये सामान्य स्तर से कहीं भी नीचे नहीं जाती।[168] यही महादेवी और निराला में अंतर है कि महादेवी के यहाँ निराला की तरह भाव या भाषा जगत की विविधता नहीं है।

छायावादियों में कवि सुमित्रानंदन पंत ही सबसे अलग दिखते हैं। उनकी कविता 'परिवर्तन' की तरह उनके रचनात्मक सिद्धान्तों, काव्य रूपों और भाव–स्तर पर भी अनेक परिवर्तन और भटकाव है। पंत काल–विशेष के साथ चलते हैं और समय और परिस्थिति के अनुसार फिर दूसरा मार्ग अपना लेते हैं। प्रगतिवादी आंदोलन की शुरूआत के समय उन्होंने छायावाद को 'अलंकृत संगीत' कहकर उसका विरोध किया। दरअसल पंत में ठहराव नहीं है। नए विचार उन्हें ज्यादा आंदोलित करते हैं और वे उसे अपनी रचना में स्थान देने लगते हैं और फिर ऊबकर नया रास्ता अपना लेते हैं। डॉ. दूधनाथ सिंह लिखते हैंः– *"पंत की कविता में कई शुरूआतें और कई अंत है। प्रसाद की तरह एक ही शुरूआत और एक ही अंत वहां नहीं है। न ही निराला की तरह रचना–प्रक्रिया के अनेक उद्वेलन हर समय उन्हें विविध प्रकार की रचनाओं के लिए आंदोलित करते रहते हैं। एक समय–विशेष में एक ही विशेष ढंग की रचना में वे पूरी तरह संलग्न दिखाई देते हैं। इस दृष्टिकोण से देखें तो निराला फिर पंत से भी विपरित दिशा के कवि सिद्ध होते हैं।*[169] एक और बात, जब तक छायावादी काल रहा, कविवर पंत ने शायद ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम से जुड़े संघर्षों पर कोई कविता लिखी होगी। 'बापू के प्रति' कविता 'युगांत' में देखने को मिलेगी। यदि पंत काल सापेक्ष चलते थे तो भारतीय स्वाधीनता संग्राम की गूंज उनकी छायावादी कृतियों में क्यों नहीं सुनाई पड़ती जो निराला और जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में है। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा है –*"स्वाधीनता –संग्राम के प्रति निराला और पंत के दृष्टिकोणों में जो अंतर है, वह इतिहास के प्रति उनके दृष्टिकोण में भी है। भारत के अन्य संघर्षों को प्रेरणादायक मानकर पंत ने उन पर कविता लिखी हो, ऐसा भी नहीं है।*

गांधी जी के नेतृत्व में चलने वाले आंदोलनों पर भी पल्लव–गुंजन में उन्होंने कुछ नहीं लिखा। स्वाभावतः पंत की सारी क्रान्तियां मनुष्य के मन में होती हैं।"[170]

छायावादी काल की रचनाओं पर केवल दृष्टिपात करें तो एकमात्र निराला में ही भाव–भाषा संबंधी विविधता देखने को मिलती है। निरला में इन तीन कवियों की अपेक्षा गतिशीलता, स्वतंत्र जीवन–दृष्टि, विद्रोही प्रवृत्ति और नीवनता की आकांक्षा कहीं अधिक है। रही बात छायावाद के प्रवर्तन की तो निराला ने कभी इसके लिए कोई दावा नहीं किया। किन्तु, उनकी 'जूही की कली' कविता का रचनाकाल वह स्वयं 1916 बतलाते हैं। ऐसे भी डॉ. बच्चन सिंह का मानना है –*"प्रसाद को छायावाद (स्वच्छंदतावादी काव्य) का प्रवर्तक कहना कवि के प्रति अंधश्रद्धा का सूचक है। प्रसाद, निराला, पंत ने लगभग एक समय में लिखना प्रारम्भ किया था। किसी कवि के थोड़ा पहले जन्म लेने मात्र से किसी काव्यान्दोलन का प्रवर्तक नहीं ठहराया जा सकता। इसे विशिष्ट कालखंड का उत्पादन मानना चाहिए। आधुनिक काल के विकास क्रम की दृष्टि से देखा जाए तो यह नवजागरण की फलश्रुति है। प्रसाद का 'आंसू' जो उनकी पहली छायावादी कृति है, सन् 1925 में प्रकाशित हुई। इसके पहले निराला की अनामिका (प्रथम) सन् 1923 में छपी। पंत के पल्लव का प्रकाशन सन् 1926 में हुआ।"*[171] इस दृष्टि से देखा जाए तो डॉ. बच्चन सिंह निराला को ही छायावाद का प्रवर्तक ठहरा रहे हैं। 'हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र' कविता में 'तुलसीदास,' 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' जैसी महान कविताओं के रचनाकार ने अपनी आलोचना को जोरदार ढंग से अस्वीकार कर एक क्षोभ ही दिखाया है। अकारण नहीं है कि 'सरोज–स्मृति' में निराला बेहिचक घोषणा करते हैं :–

"अन्यथा, जहां है भाव शुद्ध,
साहित्य–कला–कौशल–प्रबुद्ध,
है दिए हुए मेरे प्रमाण
कुछ वहां, प्राप्ति को समाधान–

पार्श्व में अन्य रख कुशल हस्त
गद्य में पद्य में समाभ्यस्त।"[172]

यहां दावा गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों को लेकर है। किन्तु, निराला की इस प्रतिभा को छायावादी युग के बाद अन्य धारा के कवि भी सहजता से स्वीकार नहीं कर पाए। प्रयोगशीलता के प्रवक्ता अज्ञेय तो जयशंकर प्रसाद को केवल 'विश्वविद्यालयों का कवि 'कहकर एक तरह से कवि बिरादरी से बाहर करने का प्रस्ताव दे डाला और निराला को सीधे 'मृतप्रायः' ही घोषित कर दिया था। फिर भी यह सबसे बड़ा सत्य है कि छायावादी कवियों में निराला से ही आधुनिक कवि सहजता से जुड़ पाते हैं। डॉ. निर्मला जैन ने लिखा है – *"नए और बाद के कवियों ने छायावाद में जिस कवि में आत्मीयता की तलाश सबसे अधिक की, वे प्रसाद नहीं निराला थे।"*[173]

अगर यह मान लिया जाए कि निराला ने 'बसंल का अग्रदूत' कवियों को लक्ष्य कहा था तो इसकी भी समीक्षा कर सत्यता की जांच कर लेनी चाहिए। डॉ. नामवर सिंह ने 'कविता के नए प्रतिमान' गिनाते हुए यथा–स्थान निराला को अवश्य याद किया है। दरअसल, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. नागेन्द्र, श्री लक्ष्मीकांत वर्मा जैसे आलोचक नई कविता पर छायावादी काव्य–संस्कार का अधिक प्रभाव देखते थे। डॉ. नामवर सिंह ने कई बिन्दुओं पर छायावाद और नई कविता का विभेद स्पष्ट किया है, पर निराला को नजरअंदाज नहीं कर सके हैं। श्री विजयदेव नारायण साही ने सर्वप्रथम 'कविता के नए प्रतिमान' का प्रश्न उठाया था। डॉ. नामवर सिंह ने इसके मार्ग में सबसे बड़ी चुनौति 'छायावादी संस्कार' देखा है। डॉ. नामवर सिंह का मानना है कि *"निराला की विशेषता यह है कि छायावादोत्तर काल में जहां उनके अधिकांश समवर्तियों का क्रमशः स्पष्ट ह्रास हुआ, स्वयं निराला ने अपनी सृजनशील जागरूकता बराबर कायम रखी। 'अणिमा', 'बेला', 'नए पत्ते,' 'आराधना', 'गीतगुंज' आदि काव्य–संग्रहों से कम से कम दो दर्जन उत्कृष्ट कविताएं बड़ी आसानी से चुनी जा सकती हैं जिन्हें कोई नया कवि भी अपनी कहने से गौरव का अनुभव करेगा।"*[174] डॉ. नामवर सिंह ने यह ध्यान दिलाया है कि "*निराला*

की अनामिका में संकलित 1937–38 की कविताओं और आगे चलकर 1941 में प्रकाशित 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक लंबी कविता से स्पष्ट है कि हिन्दी में 'तार सप्तक' के प्रकाशन से पहले ही नए परिवर्तन की जोरदार हवा बह चुकी थी।[175] क्या प्रयोगवादी और नई कविता के पहले निराला ने भविष्य की कविताओं की नींव रख रही थी? इन कथनों से तो यही लगता है।

प्रयोगवादी कवियों से यदि निराला की तुलना उनकी उस दौर की रचनाओं से करें तो हम पायेंगे कि प्रयोगवादी कवियों का अधिकांश जोर भाषा–शैली पर था, विषय और भाव–पक्ष उनका उतना व्यपाक नहीं, जितना निराला के यहां है। कुकुरमुत्ता तो अपने भाषा प्रयोग के लिए प्रसिद्ध है ही, जरा, सर 1941 में प्रकाशित 'खजोहरा' कविता में 'वर्षा' के बादलों को 'होईकोर्ट' के काले चौगे पहने वकीलों के साथ रूपक बांधना' देखें। यह अज्ञेय के दौर में प्रयोगशीलता को एक चुनौती से कम नहीं है–

"दौड़ते हैं बादल ये काले–काले
हाईकोर्ट के वकले मतवाले।
जहां चाहिए, वहां नहीं बरसे
धान सूखे देखकर नहीं बरसे।
जहां पानी भरा वहां टूट पड़े
कहकहे लगाते हुए टूट पड़े।।"[176]

यहां बादलों की स्वच्छंदता तो है ही वकीलों का संवदेनाहीन जीवन और अर्थहीन हास–परिहास भी एक नवीन प्रयोग है।

नई कविता के दौर में कविता के मूल्यांकन में 'संरचना' को काफी महत्व दिया गया है। निराला ने अपने निबंध 'मेरे गीत और कला में' काव्य के 'आवयविक सिद्धान्त' की नींव रखते हुए कविता का मूल्यांकन पूर्णता के आधार पर करने का आग्रह किया था। कविता की आलोचना में 'खंड दृष्टि' का लाभ छायावाद में सुमित्रानंदन पंत तो नए कवियों में गिरिजाकुमार माथुर जैसे कवि उग आए। 'काव्य विन्यास की अखण्डता' और 'अन्विति व अंतग्रंर्थन' का प्रश्न नई कविता की आलोचना में काफी

स्थान पाया। निराला ने अपनी कविता 'मैं तोड़ती पत्थर' की व्याख्या कर की। कविता की संघन सरंचना में एक ही वाक्त की आवृत्ति हर बार नवीन अर्थ पैदा करती है। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं :– *"बहरलाल, प्रश्न यहां आकृति का उतना नहीं नहीं, जितना कविता की सरंचना में निहित अर्थ का है और कहना न होगा कि निराला ने आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य–संरचना का जो पथ प्रशस्त किया है, वह आलोचना के क्षेत्र में मूल्यांकन की पद्धति के लिए भी आवश्यक औजार है।"*[177]

'नई कविता' की एक और विशेषता थी–'विसंगति और बिडंबना।' डॉ. नामवर सिंह ने सरोज–स्मृति में आए 'पद फटे बिवाई के उधार' में वही विसंगति व विडंबना देखी है। अकस्मात् एक हल्की बात कहकर गंभीरता को झटके से तोड़ने की प्रवृति का तार–सप्तक के अधिकांश कवियों ने उपयोग किया है। डॉ. नामवर सिंह ने ठीक लिखा है। *–"छायावादी कविता में इस प्रकार के हल्के–फुल्केपन के लिए कोई गुंजाईश न थी। निराला जैसे बहुत–सी बातों में छायावाद के बीच अपवाद थे। इस मामले में भी छायावादी गंभीरता को तोड़नेवाले निकले और वह भी किसी ऐसे–वैसे प्रसंग में नहीं बल्कि सरोज–स्मृति जैसे शोक गीत में।"*[178] जाहिर है निराला छायावाद में रहकर भी छायावादी सिद्धान्तों को तोड़ते हैं, अतिक्रमण करते हैं और कविता के नए प्रतिमानों का सृजन करते हैं जो आगे आने वाले कवियों के लिए प्रेरणा स्रोत रहे हैं। 'मुक्तिबोध छंद प्रयोगों में निराल की भूमिका को रेखांकित करते हुए लिखते हैं :– *"मुक्त छंद प्रसाद और निराला ने भी खूब लिखे। यहाँ तक कि पद्यात्मक गद्य भी हमें निराला में मिलता है। 'तारसप्तक' वालों ने छायावादियों के इस नए छंद–प्रयोगों की स्वाधीनता का पूरा लाभ उठाया। आगे चलकर मुक्त छंद को ही नए कवियों ने पद्याभास गद्य का रूप दिया।"*[179] एक और बात आधुनिक हिन्दी कविता में आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता बढ़ी जो छायावादी कवियों में से निराला में सबसे अधिक थी क्योंकि उनकी कविता व व्यक्तित्व अद्वैत भाव से जुड़े हैं। निराला छायावादी कवियों में सबसे अधिक गतिशील यथार्थबोध के कवि हैं। छायावादी काल में भी 'भिक्षुक' 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताएं प्रगतिशील

मापदंडों को छूती थी। उनके यथार्थबोध का दबाव उनके काव्यरूप और काव्यभाषा को बदलता रहता है। डॉ. नंदकिशोर नवल ने ठीक लिखा है *–"इलियट ने महान कवि के जो तीन लक्षण बतलाए हैं, उनमें एक विविधता भी है। विविधता की दृष्टि से निराला हिन्दी के आधुनिक कवियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। उन्होंने कविता के क्षेत्र में जितने प्रयोग किए, उतने किसी अन्य कवि ने नहीं। सहसा यह विश्वास नहीं होता कि 'राम की शक्तिपूजा' और कुक्कुमुत्ता' का रचयिता एक ही है। इसी तरह 'जूही की कली' जैसी कविता ओर 'महगू महगा रहा' जैसी कविता के बीच भी अकल्पनीय दूरी है।"*[180] निश्चय ही निराला की प्रयोगशीलता भावी कवियों को चैलेंज देती है। निराला छायावादी कवियों में अप्रतिम थे और छायावादोत्तर नए कवियों के लिए प्रेरणा स्रोत भी।

अज्ञेय ने विश्वभारती क्वार्टरली' के अगस्त 1937 के अंक में 'माडर्न (पोस्ट वार) हिन्दी पोएट्री' शीर्षक आलेख में निराला पर कठोर आक्रमण किया था और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि 'निराला साहित्य में कोई शक्ति नहीं रही, उस रूप में वे मृत हो चुके हैं।' (.....ऐज ऐ लिटररी फोर्स, ऐट ऐनी रेट, निराला इज ऑलरेडी डैड।) निराला ने कहीं न कहीं इस बात को दिल पर लिया था। बाद में अज्ञेय को स्वयं अपने द्वारा कही गई बातों का दुःख हुआ। उन्होंने निराला पर एक संस्मरण लिखा–'वसंत के अग्रदूत' जो उनकी संस्मरणात्मक पुस्तक 'स्मृति लेख' (1982ई0) में संकलित है। उक्त संस्मरण में अज्ञेय जी ने सन् 1951 में उनसे हुई दोबारा मुलाकात का जिक्र किया है जिसमें वे शिवमंगल सिंह 'सुमन' के साथ निराला से मिलने गए थे। निराला बातचीत के क्रम में बराबर कहते रहे –'निराला इज डेड।' निराला ने अज्ञेय को अपनी कृति 'अर्चना' भेंट की थी। अज्ञेय ने उक्त संस्मरण में लिखा है कि निराला की 'तुलसीदास' कृति पढ़कर उनके प्रति धारणा बदल गई और श्रद्धा भाव पैदा हुआ। संस्मरण के अंत में निराला के प्रति अज्ञेय लिखते हैं *:– संसद के गंगा तटवर्ती बंगले को छोड़कर निराला जी फिर दारागंज की अपनी पुरानी कोठरी में चले गए, वहीं अवसाद और भक्ति का यह मिश्र स्वर मुखरतर होता गया। और वहीं गहरे धुंधलके और तीखे प्रकाश के बीच भंवराते हुए निराला उस स्थिति की ओर बढ़ते गए जहां एक ओर वह कह*

सकते थे, 'कौन निराला? निराला इज डैड।' और दूसरी ओर दृढ़ विश्वासपूर्वक 'हिन्दी के सुमनों के प्रति संबोधित होकर एक आहत किंक अखंड आत्मविश्वास के साथ यह भी कह सकते थे, 'मैं ही वसंत का अग्रदूत।' सचमुच वसंत पंचमी के दिन जन्म लेने वाले निराला हिन्दी काव्य के बसंत के अग्रदूत थे। लेकिन अब जब वह नहीं हैं तो उनकी कविताएं बार–बार पढ़ते हुए मेरा मन उनकी इस आत्मविश्वास भरी उक्ति पर न अटककर उनके 'तुलसीदास की कुछ पंक्तियों' पर ही अटकता है जहां मानों उनका कवि भवितव्यदर्शी हो उठता है–उस भवितव्य को देख लेता है जो खंडकाव्य के नायक तुलसीदास का नही, उसके रचयिता निराला का ही है –"यह जागा कवि अशेष छविधर।"[181] निश्चय ही, निराला हिन्दी काव्य–साहित्य के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। विद्रोह, वैविध्य, प्रयोग और गतिशील यथार्थवाद में वे अग्रगण्य हैं। वे बहुवस्तुस्पर्शिनी–प्रतिभा के धनी थे। उनके कृतित्व से गुजरते हुए इस बात को समझा जा सकता है। निराल 'ठूंठ' में भी वसंत की कल्पना करने वाले कवि थेः–

"रूखी री यह डाल–वसन वासन्ती लेगी।
देख खड़ी करती तप अपलक
हीर कली समीर–माला जप
शैल–सुता–अर्पण –अशना
पल्लव–वसंत बनेगी–
वसंत वासन्ती लेगी।"[182]

(3) अभी न होगा मेरा अंत : निराला में विद्रोह की प्रवृत्ति एवं नवीन–प्रयोग

"पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ
आशा का प्रदीप जलता है हृदय कुंज में
अंधकार पथ एक रश्मि से सुझा हुआ है
दिङनिर्णय ध्रुव से जसे नक्षत्र –पुंज में।
लीला का सम्वरण–समय फूलों का जैसे।
फलों–फले या झरे अफल, पाते के ऊपर
सिद्ध योगियों जैसे या साधारण मानव
ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर।"[183]

उपर्युक्त कविता का अंश निराला की अंतिम शीर्षक विहीन कविता से अवतरित है जिसे 'पत्रोत्कंठित जीव का विष बुझा हुआ' शीर्षक से कई पुस्तकों में संकलित है। हालाँकि, निराला की अंतिम कविता को लेकर कई विवाद हैं। स्वयं निराला के आत्मज स्व0 रामकृष्ण त्रिपाठी उनकी अंतिम कविता 'हाथ वीणा समासीणा' को मानते हैं। किन्तु, डॉ. नंदकिशोर नवल या डॉ. नामवर सिंह जैसे वरिष्ठ आलोचक 'पत्रोत्कंठित जीवन' को ही आखिरी कविता मानते हैं जिसमें मृत्यु आसन्न दिख रही है। निराला की इस आखिरी कविता के माध्यम से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की यात्रा को समझा जा सकता है।

कविता की प्रथम पंक्ति है –'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ' पहले शब्द 'पत्रोत्कंठित' पर गौर करे। डॉ. नंदकिशोर नवल का मानना है:– *"पत्रोत्कंठित जीवन का विष कविता में उनका संकेत पुनर्जन्म की तरफ है। वे अपने जीवन–वृक्ष को नए पत्ते के लिए उत्कंठित बतलाते हैं। मृत्यु के बाद पुनर्जन्म क्या है? जीवन–वृक्ष का नया हो जाना, उसमें नए पत्तों का निकलना।"*[184] अगर ध्यान से देखें तो इसके केन्द्र में है –नवलता और वंसत। अपने जीवन को पतझड़ रूप में देखना और फिर वसंत के आगमन की इच्छा करना उनकी कई कविताओं में व्यक्त है। 'आराधना' में संकलित 'दुखता रहता है अब जीवन' की कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :–

"तरू–तरूवर जितने पत्र नवल,
कर नए पत्ते रिक्त तनु का तरूदल।[185]

'रूखी री यह डाल' कविता में भी वंसत का संकेत है –*"रूखि री यह डाल, वंसत, वासंती लेगी।"*[186] आगे की पंक्तियां 'जीवन का विष' बुझ गया खुद में मर्मांतक हैं। यहाँ निराला का जीवन संघर्ष है जहाँ उन्हें गरल ही मिला ज्यों बात उन्होंने जयशंकर प्रसाद जी के लिए लिखी थी––'पिया गरल' पर किया 'जाति परिचय को अमर', यह बात निरला पर स्वयं लागू थी। बार–बार आरोप, हताशा, हार आदि का दुःख उनकी कई कविताओं में व्यक्त हुआ है। गीत का शीर्षक ही देखिए –'हार तुमसे बनी जय', 'हार गया, मरा हूँ हजार मरण' आदि। 'मरण' तो सत्य है, जीवन की सार्थकता क्या है? निराला जीवन की उपमा फूल से देते हैं। 'पत्रोत्कंठित' वाली कविता में फूल के झरने की सत्यता की ओर निराला संकेत करते हैं। फूल बिना फल बड़े भी झर सकते हैं, पर फल में ही उनकी सार्थकता है। यहीं सिद्ध योगियों और साधारण मानव के मरण में अंतर है। 'निराला का मरण' सिद्ध योगियों वाला है–सार्थक मरण है। जीवन को फल–फूल देने वाला – *"दिए हैं मैंने जगत को फूल–फल/ किया है अपनी प्रभा से चकित–चाल।"*[187] इस से निराला की साहित्य साधना पूर्ण साधना है। जब निराला 'भीष्म की शर–शय्या' की बात कहते हैं तो बड़ा कारूणिक बिंब उभरता है। मौत को ताकती वह आँखे जिसे इच्छा–मृत्यु का वरदान मिला है। निराला को जो लोग मरा हुआ मानने की घोषणा कर रहे थे, निराला ने पहले ही अपनी इच्छा–मृत्यु की घोषणा कर रखी थी :– *"अभी न होगा मेरा अंत/अभी–अभी ही तो आया है/ मेरे वन में मृदुल वंसत।"*[188] निराला ने हमेशा 'वसंत' का प्रतिनिधित्व किया। 'अंत' को स्वीकार कविता में निराला प्रारंभ से नहीं रहे। यही उनकी काव्य–यात्रा भी है। दूधनाथ सिंह ने सही इंगित किया है :–*"निराला की काव्यात्मक उपलब्धि उनकी शुरूआतों का कहीं अंत न होना ही है। उनकी कविता का सजग आवेग अंत कहीं नहीं होता। यह लगातार अपनी अर्थ–छवियों और अपने मौन–मधु से पाठक को आंदोलित करती चलती है और एक सर्वथा नए असंतोष का सृजन करती है। इस रूप से निराला का कहीं भी अंत नहीं होता। उनकी रचनात्मकता का कोई अंतिम पूर्ण विराम नहीं है।"*[189] निराला

'अनंत' के कवि हैं –"अनंत संभावनाओं को खोलते हैं। उनमें गत्यात्मकता है। यह गत्यात्मकता अंधकार से प्रकाश की ओर है, जिसे निराला 'पत्रोत्कंठित' वाली कविता में 'अंधकार पथ एक रश्मि से सुझा हुआ' कहते हैं। परंतु, इस 'तमसो–मा ज्योतिगर्मय', की यात्रा में कभी–कभी अंधकार गहराता है, वहाँ निराला हारा, थका, महसूस करते हैं, मृत्यु की बात करते हैं, पर प्रकाश, आशा व जीवन का दामन कहीं नही छोड़ते। 'साहस कभी न छोड़ा' कविता में निराला का स्पष्ट संदेश है :–

"साहस कभी न छोड़ा, आगे कदम बढ़ाए।
पट्टी पड़ी कब उनकी, झांसे में कब आए।"[190]

इसी आधार पर हम निराला की काव्य–यात्रा की समीक्षा कर सकते हैं।

महिषादल के राजा के यहाँ लिखा–पढ़ी का काम करते हुए ही निराला काव्य–रचना की ओर प्रवृत्त होते हैं। ऐसा सामान्य मत है कि उनकी पहली रचना 'जूही की कली' है जो 1916 ई0 में लिखी गई, किन्तु प्रकाशन के हिसाब से उनकी प्रथम कविता 'जन्मभूमि' ठहरती है जो सन् 1920 ई0 में प्रकाशित हुई। 1923 के अंत तक निराला 32 कविताएँ लिख चुके थे जिनमें से 9 कविताएँ सन् 1923 ई0 में 'अनामिका' नाम से छपी जो मात्र 40 पृष्ठ की थी। 'अनामिका' प्रकाशित करने वाले प्रकाशक मुंशी नवजादिक लाल ने निराला को युग–प्रवर्त्तक कवि घोषित कर दिया था। इसी बीच एक त्रासदी हो गई और निराला नए रास्ते पर चल दिए। महिषादल में राजा की नौकरी के दौरान उन पर चोरी का आरोप लगा और वह सन् 1921 की गर्मियों में गढ़कोला आ गए। वहाँ उन्होंने महावीर प्रसाद द्विवेदी के पैतृक गाँव दौलतपुर जाकर उनसे मुलाकात की। सन् 1921 में रामकृष्ण मिशन के प्रमुख संन्यासी स्वामी माधवानंद जी का जुहू आना हुआ। वह अद्वैत मत विषयक एक मासिक पत्र हिन्दी में निकालना चाहते थे। पं0 महावीर प्रसाद की संस्तुति पर भी माधवानंद जी ने निराला को नहीं मिला। इसी बीच निराला का एक लेख 'भारत में श्रीरामकृष्णावतार' के नाम से मई–जून, 1922 ई0 में प्रकाशित हुआ। इससे प्रभावित होकर रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों ने उन्हें 'समन्वय' में काम

करने के लिए कलकत्ता बुला दिया। निराला जुलाई, 1922 से कलकत्ता के उद्‌बोधन कार्यालय बाग बाजार में रहकर 'समन्वय' का कार्य करने लगे। यहाँ पर शारदानंद जी महाराज का निराला पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। निराला पहले से ही स्वामी रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानंद का साहित्य पढ़ चुके थे। कलकत्ता में रहते हुए निराला रवीन्द्रनाथ की कविताओं से विशेष रूप जुड़ने लगे जिसका प्रभाव उनके साहित्य पर देखा जा सकता है। 'समन्वय' पत्रिका जिस 'बालकृष्ण प्रैस' से छपती थी उसके मालिक थे महादेव प्रसाद सेठ। यहीं से 'मतवाला' साप्ताहिक भी छपता था। इसी प्रेस में निराला का मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव तथा शिवपूजन सहाय से परिचय हुआ और ढाई वर्ष 'समन्वय' में काम करने के पश्चात निराला ने 'समन्वय' से भी पल्ला झाड़ लिया। इसी बीच वह 'मतवाला' मंडल से भी जुड़ गए। निराला अपने ज्ञान के उत्कृट प्रदर्शन से शीघ्र ही मतवाला मंडल के सरताज बन गए। इसी बीच सन 1924 में ही 'भावों की भिडन्त' को लेकर निराला के विरूद्ध अभियान छेड़ा जिससे खिन्न होकर सन् 1924 में वे कलकत्ता से गढ़कोला चले आए। 'भावों की भिडन्त' में उन्हें रवीन्द्रनाथ टैगोर के भावों का चुरानेवाला ठहराया गया था। निराला ने दुःखी होकर 'मतवाला' से नाता तोड़ लिया। जब वापस कलकत्ता आए तो शुरू में उन्होंने 'मतवाला' को सहयोग नहीं किया। फिर धीरे–धीरे 'मतवाला' में अपनी कविताएं प्रकाशनार्थ देने लगें। 'मतवाला' काल में ही निराला राधामोहन गोकुल जी से जुड़े। गोकुल जी ने निराला का परिचय कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक मुजफ्फर अहमद से कराया। निराला थोड़ा राजनीति की ओर झुके ही थे, इसी बीच सन् 1926 में कलकत्ता में सांप्रदायिक दंगा भड़का। निराला जी किसी तरह इस दंगे से अपनी जान बचा सके। तब तक निराला जी की 'जागो फिर एक बार' तथा 'शिवाजी को पत्र' जैसी ओजपूर्ण क्रान्तिकारी कविताएं छप चुकी थी। इसी बीच 'मतवाला' में निराला जी की जगह उग्र जी को प्रधानता दी जाने लगी। फलतः निराला 'मतवाला' से दूर हटकर पुनः 'समन्वय' में सहयोग देने लगे। आर्थिक तंगी को दूर करने के लिए निराला बाजार में भी काम करने लगे। मारवाड़ी लड़कों को टयूशन भी पढ़ाया। पॉपुलर ट्रेडिंग के लिए उन्होंने बच्चों के लिए 'भक्त ध्रुव', 'प्रहलाद' तथा 'भीष्म'

जैसी पुस्तकें भी तैयार की। पुस्तक भंडार लहरिया सराय के लिए 'रस–अलंकार' नामक पुस्तक भी लिखी। 'मतवाला' से मन–भेद होने के बाद निराला आर्थिक तंगी से जूझने लगे और सन् 1929 में वह स्थायी रूप से गंगा–पुस्तक माला कार्यालय में काम करने लगे। वे लखनऊ में पहले 'भार्गव मैजेस्टिक होटल' में रूके, बाद में उनके नष्ट होने पर 58 नंबर, नारियल गली, के दुमंजिला मकान में भी कई साल तक रहे। किराया अदायगी की समस्या उन्हें हमेशा रहीं। इसी के साथ निराला पर चौतरफा आरोप भी चलते रहे। विशाल भारत के संपादक पं0 बनारसीदास निराला के विरूद्ध अभियान चलानेवालों में सबसे आगे थे। इसी बीच 'सरस्वती' पत्रिका में भी छायावाद को लेकर निराला पर तीखा प्रहार हो रहा था। निराला ने पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद शुक्ल जैसे बड़े ओलोचकों से छायावाद को लेकर वैचारिक दो–दो हाथ किया था।

निराला सन् 1920 से साहित्य, रचना में स्थान बनाने लगे। उनकी प्रारंभिक कविताओं पर बंगाल के काव्य का प्रभाव देखकर हिन्दी गढ़ के पाठकों को निराला के बंगाल–काव्य से किए जाने वाले भावाहरण की पोल खोलने की इच्छा जगी। प्रयाग की पत्रिका 'मनोरमा' के संपादक ने 'हिन्दी कविता की गति' लिखकर हिन्दी कविता को बंगला तथा अंग्रेजी की नकल बतलाया। इस टिप्पणी के उदाहरण स्वरूप 'मतवाला' के 14 जून, 1924 के अंक में छपी 'सिर्फ एक उन्माद' की कुछ पंक्तियाँ प्रकाशित की गई थीं। इसी कविता का मजाक उड़ाते हुए किसी ने 'भंगी की मौज' नामक एक पत्रिका छाप दी जिसमें निराला को 'कविता में टांग तोड़ने वाला' बताया। इसके प्रत्युत्तर में मुंशी नवजादिक लाल ने 'अंध परंपरा' नाम से एक शीर्षक लेख निकाला जिसमें निराला जी की कविता को हिन्दी की संपत्ति बतलाया। निराल के विरूद्ध 'प्रभा' के संपादक बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को प्रकाशनार्थ एक लेख भेजा गया। नवीन जी ने इसकी सूचना मुंशी जी को दी। फलतः निराला ने 30 अगस्त, 1924 को 'मतवाला' के संपादक को पत्र लिखकर अपनी मौलिकता सिद्ध की। इस पत्र के छपने के बाद श्रीयुत् भावुक जी ने 'भावों की भिडंत' लिख लिखकर निराला को बंगला से डाकेजनी करनेवाला सिद्ध किया। इसके

उत्तर में मुंशी जी ने मतवाला के 13 सितम्बर, 1924 में 'निराला बनाम रवीन्द्रनाथ' लेख छाप दिया। मुंशी जी के इस लेख का मजाक 'चोरी की सफाई' शीर्षक से प्रभा में छपा। किंतु, इस खींचतान में निराला मतवाला मंडल छोड़कर कर चले गए। इसी बीच विशाल भारत के संपादक पं0 बनारसीदास ने निराला को लेकर 'साहित्यिक सन्निपात' नाम से लेख छापा जो मुख्यतः उनके गद्य को लेकर थी। निराला ने 'भारत में वर्त्तमान धर्म' नाम से एक लेख प्रकाशित कर पौराणिक प्रतीकों मे माध्यम से धर्म की व्याख्या की थी। पर, बनारसीदास जी ने इस लेख का शीर्षक –'साहित्यिक सन्निपात' कर दिया। बनारस के एक नए पत्र जागरण ने 'चतुर्वेदी जी का विवाह' लिखकर बनारसीदास जी को आड़े हाथ लिया। इसके विरोध में चतुर्वेदी जी ने निराला के चरित्र पर छींटाकशी की। इधर हेमचंद्र जोशी का एक लेख छपा– 'माधुरी' में जिसमें छायावादी कवियों को कूपमंडक' कहा गया।

चतुर्वेदी जी ने अक्तूबर, 1932 के 'विशाल भारत' में 'साहित्यिक सन्निपात' लेख छापा था और उसी अंक में नाम दिए बिना 'वर्त्तमान धर्म' भी छाप दिया। उन्होंने लोगों से सम्मतियाँ भी मांगी और निराला को विक्षिप्त घोषित किया। चारों तरफ से आक्रमण झेलत हुए निराला ने 'सुधा' के दिसंबर, 1932 में अपना वक्तव्य प्रकाशित किया। पुनः निराला ने 'साहित्यिक सन्निपात या वर्त्तमान धर्म' निबंध लिखकर इसका जवाब दिया। निराला का यह लेख 'माधुरी' में क्रमशः प्रकाशित हुआ। इसके बाद बनारसी दास चतुर्वेदी जी के समर्थकों का मुंह बंद हो गया।

एक विवाद खत्म तो दूसरा शुरू। इलाहाबाद में बहस छिड़ी कि छायावादी कवियों, पंत और निराला में बड़ा कौन। इस संदर्भ में ज्योति प्रसाद निर्मल का एक लेख 'पंत, प्रसाद और निराला' अभ्युदय में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने निराला जी की कविता 'बादल राग' की आलोचना की। निराला ने इसके उत्तर में अभ्युदल में एक लेख लिखा –'समालोचना या प्रोपैगण्डा'। उक्त निबंध की कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –*"हिन्दी साहित्य के ज्ञाता इस बात से परिचित होंगे कि पंत जी की सर्वश्रेष्ठता को मैंने स्वयं कम सहायता नहीं पहुँचाई। मुझे अगर वह वास्तव में सर्वश्रेष्ठ*

जँचते तो मैं उनका पहला समर्थक होता, क्योंकि ऐसे सर्वश्रेष्ठत्व का भार मस्तिष्क को और हलका करता है। दुःख है, जिस कला को केवल कृतियों द्वारा विकसित करने का मैंने निश्चय किया था, उसका उपयोग पंत जी की रचनाओं पर आलोचना द्वारा भी मुझे करना होगा और यदि ईश्वर की निष्फलता के कारण वह पंत जी के प्रशंसकों की समझ में आ गयी तो छायावाद साहित्य के एक उज्ज्वल रत्नका प्रकाश मंद पड़ जाएगा।[191] जाहिर है, पंत जी के प्रति सम्मान के बावजूद निराला को अपने आलोचकों को 'कड़वी दवा' पिलानी पड़ी। इसके जवाब में निर्मल जी ने एक और लेख लिखा– 'निराला जी की काव्य कहानी : कितना दूध कितना पानी।' उक्त लेख में निर्मल जी ने निराला को 'दार्शनिकता की आड़ में' 'कर्कश ओर दुरूह' कविता लिखने वाला ठहराया। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं:– *"निर्मल ने प्रश्नशरों की वर्षा करते हुए निराला का अंग–प्रत्यंग बेध डाला।*[192] इधर पदम सिंह शर्मा उन्हें *'अहम्मन्यता की मूर्ति'* ठहरा रहे थे। आचार्य शुक्ल 'काव्य में रहस्यवाद' निबंध और अपनी कुछ कविताओं से छायावाद और निराला के छंदों पर आघात कर रहे थे। सन् 1929 में ही आचार्य शुक्ल के आघातों से तिलमिला कर निराला ने यहाँ तक लिख दिया–*"पं0 रामचंद्र शुक्ल की 'काव्य में रहस्यवाद' पुस्तक उनकी आलोचना से पहले उनके अहंकार, हठ मिथ्याभिमान, गुरूडम तथा रहस्यवादी या छायावादी कवि कहलान वालों के प्रति उनकी अपार घृणा सूचित करती है। ऐसे दुर्वासा–समालोचक कभी भी किसी कृति–शकुंतला का कुछ बिगाड़ नहीं सके, अपने शाप से उसे और चमका दिया है।*[193] निराला अपनी आलोचनाओं से व्यथित होते थे, तिलमिलाते थे, प्रधर करते थे, फिर शांत होकर जीवन की सार्थकता पर विचार करते हुए हार, मरण आदि की बात करने लगते थे। अचानक फिर उठते और नए सिरे से रचनाओं से जवाब देने लगते। आचार्य शुक्ल को 'दुर्वासा–समालोचक' कहना उसी तिलमिलाहट की निशानी थी। इसी तिलमिलाहट में निर्मल जी के प्रतिघात से व्यथित होकर निराला ने मुंशी नवजादिक लाल अपनी कविता से संबंध में लेख लिखने को कहा और जब मुंशी जी तैयार न हुए तो निराला ने स्वयं अपने उपर लेख लिखकर मुंशी जी के नाम से छपवाया। इधर आचार्य शुक्ल निराला के गद्य पर निशान लगाकर यह

प्रश्न उठा रहे थे –'यह कहाँ का गद्य है?' सच पूछिए तो सन् 1924 से 1934 तक निराला को लगातार आक्षेपों की शर–वर्षा सहनी पड़ी। यह 'यम–याचना' थी। 'नरक का द्वारा' था। इसी बीच पुत्री सरोज की बीमारी और उसकी मृत्यु। श्रावण शुक्ल प्रतिपदा, 1935 ईस्वी में सरोज ने आखिरी सांस ली। उसके पहले तक निराला मार्ग की बाधा को तोड़ने की बात कर रहे थे, मरण को महसूस करने के बावजूद। जून, 1935 की कविता **दे, मैं करूं वरण**' का यह अंश देखिएः–

"दे, मैं करूं वरूण
जननि, दुःखहरण पद–राग–रंजित मरण।
भीरूता के बँधे पाश सब छिन्न हों,
मार्ग के रोध विश्वास से भिन्न हों।"[194]

निराला सरोज की मृत्यु के बाद पूरी तरह टूट गए। 'सरोज–स्मृति' कविता में कवि निराला ने अपने ऊपर हुए आक्षेपों का कुछ यूं वर्णन किया हैः–

"एक साथ जब शत घात घूर्ण,
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण।
देखता रहा मैं खड़ा अपल
वह शर क्षेप, वह रण–कौशल।"[195]

निराला के सामने अब एक प्रश्न खड़ा हुआ–अपने कविता की सार्थकता का। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस संदर्भ में लिखा है :–"***सरोज की मृत्यु ने निराला के सारे जीवन की सार्थकता और निरर्थकता का प्रश्न बड़े विकट रूप में उनके सामने प्रस्तुत कर दिया। जिए तो किसके लिए? अब तक जीवन जो कुछ झेलते रहे, उसका फल क्या मिला?***"[196] निराला ने अक्टूबर, 1935 ई0 में कविता लिखी – 'सार्थक करो प्राण!' :–

"सार्थक करो प्राण!
जननि दुःख अवनि को
दुरित से दो त्राण!"[197]

निराला ने फरवरी, 1936 में कविता लिखी –'अस्ताचल रवि'– *"अस्ताचल रवि, जल छलछल–छवि/स्तब्ध विश्वकवि, जीवन उन्मन।"*[198] पर निराला की कविता में 'न अंत लंबा खींचता है, न अस्त'। फिर आई 'राम की शक्तिपूजा' जैसी अमर रचना, जहाँ 'रवि हुआ अस्त' से 'निशि हुई विगत' की यात्रा है। निराशा के बाद शक्ति–संचय है। 'सरोज–स्मृति' और 'राम की शक्ति–पूजा' जैसी कालजयी रचनाएं 'द्वितीय अनामिका' (1939 ई0) में संकलित है। हालाँकि यह पुस्तक 1938 में ही तैयार हो चुकी थी।

इस प्रकार निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विचार करने पर उनकी काव्य–रचना को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है। पहला चरण है–सन 1920 से 1938 ई0। प्रथम चरण के दौरान निराला की जो काव्य–कृतियां प्रकाशित हुई, वे हैं:– प्रथम 'अनामिका' (1923 ई0); 'परिमल' (1929 ई.), 'गीतिका' (1936 ई.), द्वितीय 'अनामिका' (1939 ई0)। 'तुलसीदास' (1939 ई0)। हलांकि यह बता देना जरूरी है कि 'तुलसीदास' निराला ने 1934 ई0 में रचा था, जो 1935 ई0 की 'सुधा' के अंकों में विस्तार निकली थी। वे और प्रबंधात्मक कविताएं लिखना चाहते थे, परन्तु केवल 'तुलसीदास' ही स्वतंत्र रूप से निकली। बाद में 'तुलसीदास' कविता को द्वितीय 'अनामिका' में शामिल कर लिया गया।

अगल पहले दौर की ही निराला की कविताओं पर विचार करें तो उसमें भाव–भाषा, शिल्प सभी स्तर पर विविधता मिलेगी। सन् 1920 से यदि सन् 1929 तक गौर करें तो विविधता का यह रूप कई कविताओं में मिलेगा। यथा–'जूही की कली', 'पंचवटी–प्रसंग', 'विधवा', 'खंडहर के प्रति' 'उद्‌बोधन', 'अधिवास', 'ध्वनि' 'बादल–राग', 'जागो फिर एक बार,' 'महाराज शिवाजी को पत्र' आदि कई महत्वपूर्ण कविताएं सामने आयेंगी जो रूप और वस्तु सभी भांति से विविध रंगों की हैं। 'अधिवास', पंचवटी–प्रसंग', 'तुम और मैं' 'प्रकाश', 'जग का एक तार' आदि कविताओं में निराला का दार्शनिक स्वर प्रकट हुआ है। एक दौर आता है, लगभग 1929 के बाद, जब निराला गीतों की ओर मुड़ते हैं। हलांकि पहले भी उनके गीत 'वाणी' शीर्षक से मतवाला में प्रकाशित होने लगे थे। बाद में

यह 'गीतिका' में प्रकाशित होता है। निराला की 'गीतिका' में आत्म–निवेदन, प्रार्थना–भाव, नारी–सौन्दर्य, प्रकृति वर्णन, दार्शनिक स्वर तथा राष्ट्रीय चेतना का शंखनाद सब सुनने को मिलेगा। अपने जमाने में निराला की खड़ी बोली में निरपेक्ष रूप से गाने के लिए गीत पर लिखे हुए हैं। आगे चलकर निराला गीत बनाए रखने के साथ–साथ लंबी कविताों की आरे मुड़ते हैं सन् 1934 से 1938 के मध्य निराला लंबी कालजयी कविताओं के साथ शिखर पर होते हैं। 'मित्र के प्रति' 'सरोज–स्मृति', 'प्रेयसी', 'राम की शक्ति पूजा','सम्राट एडवर्ड के प्रति' और 'बनबेला' आदि कुछ ऐसी ही कविताएं हैं। सच पूछिए तो ये चार साल 1934 से 1938 निराला के लिए स्वयं 'संधिकाल' था। आक्षेपों, आर्थिक तंगी के बाद अपनी पुत्री को खोना, फिर संभलना और आगे बढ़ना, ऐसे समय में जब 1936 से कविता में प्रगतिवादी स्वर सुनाई देने लगते हैं और छायावाद का अवसान हो जाता है; मायने रखता है। जानकीवल्लभ शास्त्री निराला को विशेष रूप से उनको 1936–38 तक ही आत्म–केन्द्रित मानते हैं। अवसाद काल में निराला ने स्वयं को केन्द्रित किया–शक्ति संचय किया, फिर श्रान्ति व विक्षेप दशा का भी समय आया। निराला किसी भी समय में विविधता नहीं छोड़ते। 'पंचवटी–प्रसंग' स्वच्छंतावादी काव्य–कृति है जिसमें संवाद की शैली हैं। निराला संगीत पद्धति, स्वच्छन्द शैली और लोकगीतों सबका अनुकरण करते हैं।

निराला की काव्य–यात्रा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि वह शीर्ष पर पहुँचकर रूप व भाषा सभी दृष्टि से अपना मार्ग बदल लेते हैं। दूसरे चरण में निराला पर जनवादी प्रभाव, भाषा की सरलता एवं हास्य–व्यंग्य प्रधान कविताओं का भी रंग देखा जा सकता है। 1939 से लेकर 1949 तक रचनाओं को निराला काव्य के दूसरे चरण के रूप में देखा जा सकता है। इस दौर में प्रकाशित रचनाएं हैं– 'कुकुरमुत्ता' (1942 ई0), 'अणिमा' (1943 ई0), 'बेला' (1946 ई0), 'नए पत्ते' (1946 ई0)। इसमें 'कुकुरमुत्ता' का द्वितीय संस्करण जुलाई, 1948 ई0 में प्रकाशित हुआ जिसमें बाकी सात कविताएं निकालकर 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता को फिर से संवारा गया। हलांकि 'अणिमा' के बाद निराला 'कांटा' नाम से अपनी कविताओं का संग्रह निकालना चाहते थे जो व्यंग्य प्रधान थी। इसकी सूचना उन्होंने

शास्त्री जी को 10 मार्च, 1944 को लिखे एक पत्र में दी थी। आगे उन्होंने 'काँटा' नाम की पुस्तक निकालने का विचार छोड़कर नई कविताओं के संग्रह के लिए नाम चुना–'नए पत्ते' जिसमें कुकुरमुत्ता वाली उन सात कविताओं को भी शामिल कर लिया गया था। डॉ. नन्दकिशोर नवल लिखते हैं –*"निराला काव्य के दूसरे चरण की सबसे बड़ी विशेषता उनका यथार्थवाद है। 'कुकुरमुत्ता' (प्रथम संस्करण), 'अणिमा', और 'नए पत्ते' की कविताओं में हास्य के तत्व देखे गए हैं लेकिन वे शुद्ध हास्य के तत्व नहीं हैं, क्योंकि उनके भीतर निराला का सामाजिक यथार्थ का गहरा बोध छिपा हुआ है।"*[199] कुकुरमुत्ता का व्यंग्य पूँजीपति वर्ग पर गहरा चोट है। 'कुकुरमुत्ता' का यह व्यंग्य तत्कालीन हिन्दी कविता में तथाकथित प्रगतिवादी और प्रयोगवादी धाराओं की अव्यवस्था और अराजकता पर भी है। डॉ. प्रभाकर माचवे 'कुकुरमुत्ता' से ही 'सुर्रियलिज्म' में गुण शुरू हो जाते हैं। 'खजोरहा' जैसी कविताओं में रोमानी सौन्दर्य–स्वप्न को मिटाने का पर्याप्त उत्साह है। इनमें प्रायः निराशा और अवसाद का वातावरण है। कुछ लोग 'अणिमा' को निराला की प्रतिभा और कला का विघटन मानते हैं। निराशा का यह स्वर देखिए– *"मरण को जिसने वरा है/उसी ने जीवन भरा है।"*[200] फिर भी 'अणिमा' में निराला की व्यंग्य शैली पाई जाती है। जीवन की विद्रूपता और यथार्थवादी स्वर गद्य भी है। :– *"यहाँ है बाजार/सौदा करते हैं सब यार।"*[201]

'बेला' में मुख्यतः फारसी छंद शास्त्र के निर्वाह पर अलग–अलग बहरों की गजलें है। यहां उर्दू की शैली भी अपनाई गई है। ये उर्दू की गजल शैली निराला के गीतों का सहज और परिष्कृत रूप है। परंतु, व्यंग्य और उक्ति की मार्मिकता वही है। दरअसल, उर्दू कवियों विशेषकर गालिब, मीर आदि को पढ़ने और फिराक आदि से जुड़ने के कारण निराला ने बस उूर्द के क्षेत्र में 'दो–दो हाथ आजमाए' हैं। फिर भी, निराला अपने जीवन का कटु सत्य कहना न भूले –"*बाहर मैं कर दिया गया हूं/भीतर पर भर दिया गया हूं।"*[202] निराला के दूसरे दौर के समय प्रयोगवाद हिन्दी काव्य में आ चुका था। अज्ञेय का आतंक था। कविता के नए प्रतिमानों और पुराने प्रतिमानों के बीच बड़ा महाभारत हो रहा था। अज्ञेय के आतंक और नए प्रतिमानों के डंकों ने उस समय के लोकप्रिय कवियों हरिवंश राय

'बच्चन', 'रामधारी सिंह दिनकर', माखनलाल चतुर्वेदी, 'बालकृष्ण शर्मा' 'नवीन' जैसे कवियों को उपेक्षित और अचर्चित बना दिया। इसी समय अज्ञेय और निराला के प्रयोगों के बीच तुलना भी हो रही थी। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे आलोचक निराला के प्रयोगों को पूरा रूप विधान बदलनेवाला मान रहे थ, जबकि अज्ञेय के प्रयोगों को केवल संवेदना तक सीमित रहने वाला। दरअसल निराला के यहाँ जो विद्रोह था, वहीं अज्ञेय के यहाँ 'प्रयोग' हो गया।

'नए पत्ते' में निराला बिल्कुल नए यथार्थवादी ढंग से सामने आते हैं जहाँ भदेसपन भी है। आप चाहें तो इसे सौंदर्य का 'एंटी क्लाइमेक्स' कह सकते हैं। 'स्फटिक शिला' कविता को तो कतिपय आलोचक अश्लील कुत्सित चित्र और प्रतिक्रियावादी भी मानते हैं तो कोई उसे 'भावना की उड़ान' मानता है। डॉ. नामवर सिंह का मानना है कि 'स्फटिक शिला' कविता पर और विचार करने की जरूरत है। वह लिखते हैं :– ***"'स्फटिक शिला' जैसी यथार्थ कविता में भी यह विद्रोही कवि कई रूढ़ियों, मान्यताओं को और सौंदर्य धारणाओं को तोड़कर किस प्रकार उस परंपरा को अपने संस्कार की रक्षा भी करता है।"***[203] निश्चय ही 'नए पत्ते' में 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगुर डट कर बोला', 'डिप्टी साहब आए' और 'मँहगू महँगा रहा', जैसी कविताएं नितांत यथार्थवादी हैं। यह कविता में भेदस काव्य–नायकों के सृजन का प्रयोग भी है और आम आदमी के सामर्थ्य और प्रतिरोध का किस्सा भी जो बाद में साठोत्तरी कविताओं का मुख्य आधार था और रघुबीर सहाय के 'रामदास' जैसे चरित्र में जीवित हो रहा था।

निराला काव्य का तीसरा चरण 1950 से उनके देहावसान तक (अक्टूबर, 1961) माना जाता है। इस दौर में निराला की जो प्रमुख काव्य–कृतियाँ प्रकाशित हुई, वे हैं अर्चना (1950 ई0), 'आराधना' (1953 ई0) तथा गीतगुंज (1959 ई0)। हलांकि 'गीतगुंज' का प्रथम संस्करण 1954 ई0 में प्रकाशित हुआ जिसमें कुल 26 गीत थे। बाद में द्वितीय संस्करण 1959 ई0 में आया जिसमें कुल 31 गीत थे। इसका तृतीय संस्करण उनके मरणोपरांत 1970 ई0 में प्रकाशित हुआ। निराला की

कविताओं का यह तृतीय दौर एक प्रकार से निराला का 'यू टर्न' जैसा लगता है। महान छायावादी कवि और फिर कुकुरमुत्ता, बेला, नए पत्ते के कारण प्रगतिवादी छवि धारण के बावजूद यह भक्ति–विभोर विनय गीत, आत्म–प्रवचंना थोड़ी अप्रत्याशित लगती है। जैसे भक्तिकालीन काव्य–शिरोमणी तुलसीदास 'रामचरित–मानस' के बाद 'विनय–पत्रिका' और 'हनुमान–बाहुक' लिख रहे हों। तुलसी का 'हनुमान बाहुक' उस आत्मा–पीड़ा की अभिव्यक्ति है, जहां सारे यूटोपिया नष्ट हो जाते हैं, प्रभु श्री राम के प्रति अगाध विश्वास भी विफल दिखता है। निराला के इस काव्योचित व्यवहार पर डॉ. रामविलास शर्मा जैसे प्रबुद्ध और सहृदय जैसे आलोचक ने इन गीतों की विवचेना 'आत्म–प्रवंचना' के अंतर्गत रखते हुए लिखा हैः– ***"निराला काल्पनिक इच्छापूर्ति, आत्म–प्रवंचना' और रहस्यवादी रूढ़ियों के कवि भी हैं। उनके साहित्य में इस तरह की प्रवृत्तियां उनकी साम्राज्यवादी क्रान्तिकारी चेतना, उनके यथार्थोन्मुख मानवतावाद के आड़े आती हैं, उसे कमजोर करती हैं।–––––एक स्तर भक्ति का है जहां प्रभु से या शक्ति की देवी से ऐसी प्रार्थना की गई जिसका विफल होना अनिवार्य है।"***[204] दरअसल 'वेदांत ज्ञान', आनंदमय ब्रह्म' 'माया से मुक्ति' जैसी रचनाएँ तो स्वीकार हो भी जाती हैं, पर सीधे मांगने वाले गीतों में वो ओज, औदात्य नहीं है। हाँ, जिन गीतों में उनके दुख और संघर्ष की अभिव्यक्ति है, अंतर का हाहाकार है और जिनमें वह सारे संसार के दुःख को दूर करने की माँग करते हैं, वह अवश्य ही जीवन व मन को प्रकाशित करनेवाला है। यथा :–

"कठिन यह संसार, कैसे विनिस्तार?
उर्भि का पाथार, कैसे करे पार?"[205]

डॉ. रामविलास शर्मा ने ऊपर जिस काल्पनिक इच्छापूर्ति की बात कही है उसे वह 'कुकुरमुत्ता' से ही देखते हैं। 'काल्पनिक इच्छापूर्ति' यूटोपिया का एक प्रति संसार है जो उत्तर–आधुनिकता और यूटोपिया का प्रति संसार है। इस पर भी गंभीर चर्चा की आवश्यकता है। कुकुरमत्ता की नजर में गुलाब पूंजीपति है। कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता

दिखता है। कहीं–कहीं बहुत कुछ मुक्तिबोध की फंतासी जैसा है। 'ठीक वैसा ही जैसे अंधेरे में' कविता में 'प्रोसेशन' चलता है :–

"चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर
बहार उसके पीछे जैसे भुक्खड़ फोलोवर
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर––
आधुनिक पोयेट (Poet)
पीछे बांदी बचत की सोचती
केपीटलिस्ट क्वेट।"[206]

नवाब और मालिन की लड़कियों का हिलना–मिलना तद्‌युगीन समाज में थोड़ा अप्रत्याशित था। हलांकि अब वर्ग–संघर्ष नहीं वर्ग–सहयोग का जमाना है। फिर भी, है तो यह एक यूटोपिया ही, ठीक उसी प्रकार जेसे कुकुरमुत्ते का बड़बोलापन। अंत में यह कहना ––'कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता'–उस 'यूटोपिया' के अंत की भी दास्तान है जो उत्तर–आधुनिकता का एक प्रमुख सूत्र है। निराला जब कहते हैं–'अभी न होगा मेरा अंत' तो दरअसल वो हर चीज के अंत की घोषणा करनेवाले उत्तर–आधुनिकता को चुनौती देते हैं, पर साथ ही पाठ में अर्थ की अनेक संभावनाओं को खेलते हैं। इसे ही कहते हैं–अनंत संभावना।

जहाँ तक निराला की भक्ति व अध्यात्म संबंधी रचनाओं का प्रश्न है, निराला भक्ति और अध्यात्म के गीत पहले से ही रचते थे। 'अणिमा' और 'बेला' में वैस कुछ गीत मिल जाएंगे। इसलिए इसे वापस पीछे लौटना, पलायन आदि कहना भी तर्कसंगत नहीं है। ऐसे 'लौटना' 'कोई गुनाह नहीं' है। केदारनाथ सिंह तो निराला के ग्राम जीवन से संबंधित रचना को 'परदेश से लौटे हुए कवि' की कविता कहते हैं। जीवन में अप्राप्य की तलाश भक्ति व विनय में होती ही है। परन्तु यह कोई धार्मिक कविता नहीं है। यह एक कवि की मानसिंक व्याकुलता है, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मोहभंग की स्थिति से पैदा हुआ है। जब समाज के ठेकेदार और देश के वजीर से सामाजिक बदलाव की दिशा में निराशा मिलती है तो मन का ईश्वर की ओर मुड़ना स्वाभाविक है। इसे चाहे आप वेदान्त के प्रभाव से जोड़ें या आर्थिक विपन्नता और आर्थिक तंगी के बीच अपना स्वाभिमान

बचाए कवि की दैन्यता से निराला व्यक्ति व समाज के प्रति नतमस्तक होनेवाले नहीं थे, पर परमात्मा के सामने कैसा अहंकार? दूसरी बाद कवि की व्यक्तिगत वेदना सामाजिक वेदना से विलग नहीं होती। अन्यथा निराला क्यों कहते –

"गीत गाने दो मुझे तो
वेदना को रोकने को।
.....भर गया है जहर से
संसार जैसे हार खाकर।"[207]

निराला की परवर्ती कविताओं कें संदर्भ में डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है:– ***"कहने का तात्पर्य यह है कि परवर्ती काव्य में पूर्ववर्ती कविताओं का औदात्य, ओज, पौरूष आवेग नहीं है। लगता है जैसे कोई महानद बंटे घाटों में बह रहा हो।"***[208] पर इस 'महानद के बंटे घाटों' के पीछे कारण क्या है? इस पर विचार करना जरूरी है। तीसरे दौर की रचना में जब इलाहाबाद में प्रयोगशील, नई कविता और प्रगतिशील कविता लिखी जा रही थी, फिर भी मुक्त छंद उस दौर में 'मुक्त छंद' का आदि प्रवर्तक गीत लिख रहा था; यह गौर करनेवाली बात है। आजादी के बाद निराला आजीवन 'नेहरू युग' में जिए। जिस नेहरू से उनहें कभी आशा–आकांक्षा थी, जिससे उन्होंने कभी दो टूक बात कही थी, उस नेहरू युग में भारत नए सिरे से उठ रहा था। पर, सामाजिक समानता का जो स्वप्न आजादी के बाद देखा गया था, वह पूरा नहीं हो पा रहा था। समाजवाद दूर की कौड़ी लगने लगी थी। निराला के लिए यह समय 'नरक–यात्रा' से कम नहीं था। जैसे 'रामचरितमानस' में 'रामराज्य' का यूटोपिया रचनेवाला कवि 'कवितावली' में यथार्थ धरातल पर 'गरीबी रूपी रावण' को महसूस कर लेता है। ठीक निराला उसी प्रकार बाहरी चमक–दमक के नीचे की गंदगी को देख रहे थे। क्यों निराला कहते हैं–'हार गया मैं, जब उस पार गया। यह युगीन आस्था की हार है। डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं:– ***"उन तमाम चीजों के माध्यम से मुझे लगता है कि निराला के भक्ति–गीत एक भारतीय ढांचे में, भारतीय मानस में उत्पन्न होनेवाली उस आधुनिकता की, उस आधुनिक बोध को, उस आधुनिक कविता की सृष्टि कर रहे थे जहाँ***

पश्चिमी आधुनिकता के आक्रांत लोग नहीं पहुँच पा रहे थे। ——उस दौर में ही निराला के गीतों ने उस नेहरूवाद के विकासवाद का, आधुनिकीकरण का निषेध करके मध्ययुग की भूमि पर शायद एक नए ढंग की आधुनिकता विकसित करने की कोशिश की थी।[209]

'सांध्य–काकली' निराला जी की अंतिम काव्य–कृति है जो उनकी मृत्यु के 8 वर्ष बाद 1969 ई0 में प्रकाशित हुआ। इसमें अधिकांशतः वर्षा, शरद और कुछ मृत्यु के गीत हैं। इस संकलन की एक कविता 'ताक कमसिन वारि' को मानसिक विक्षोभ की अभिव्यक्ति बतलाया जाता है। कतिपय आलोचक इसे ध्वनि –क्रीड़ा कहते हैं तो कुछ पहेली बुझौवल। पर ध्यान से अर्थ निकालने पर कठिनाई से कुछ प्राप्त हो ही जाता है। अगर दूसरे दृष्टि से देखें तो यह कविता उस युग में 'अकविता' की शुरूआत की रूपरेखा बना रही थी। इसलिए कहा जाता है कि निराला की कविता में अनंत संभावनाएं हैं। वहाँ कुछ भी निरर्थक नहीं है। कई चीजें आगे आनेवाले युग के लिए प्रेरणास्रोत हैं। डॉ. नामवर सिंह ने सही इंगित किया है –*"मैं चाहता हूँ साहित्य के पाठक के नाते, आलोचना कर्म करने के नाते, इस पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए कि इस दशक की जो नई कविता लिखी गई है अज्ञेय की, शमशेर की, सप्तकों के कवियों की, उसके समानान्तर निराला की कविता का क्या महत्व है?*[210]

निराला में हर युग में जो अनंत संभावनाओं के बीज मिलते हैं, उसका एक कारण है –उनकी बहु वस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा। इस ओर सर्वप्रथम ध्यान दिलाया है, निराला के प्रखर आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने। आचार्य शुक्ल के अनुसार, निराला बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा के धनी थे और उनकी 'वाणी बहुमुखी' थी। छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति लाक्षणिक वैचित्र्य लाने का आग्रह आचार्य शुक्ल निराला में कम पाते हैं और 'रहस्यवादी उड़ान ओर मर्म' पीड़ा के हास वाली शैली भी आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य' के संशोधित संस्करण में निराला को यथार्थवाद के अत्यंत करीब देखा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा हैः– *"निराला जी का रचना का क्षेत्र तो पहले पहले से कुछ विस्तृत रहा। उन्होंने जिस प्रकाश 'तुम और मैं' उस वाद वेग आकार सार' का नाम किया, 'जूही की कली' और*

'शेफालिका' में उन्मद प्रणय चेष्टाओं के पुष्पचिह्न खड़े किए उसी प्रकार जागरण वाणी बजायी। इस जगत के बीच विधवा के विधुर और करूण मूर्ति खड़ी की और इधर आकर 'इलाहाबाद के पथ पर' एक पत्थर तोड़ती दीन स्त्री के माथे पर के श्रमसीकर दिखाए। सारांश यह कि अब शैली के वैलक्षण्य द्वारा प्रतिक्रिया–प्रदर्शन का वेग कम हो जाने से अर्थभूमि के रमणीय प्रसार के चित्र भी छायावादी कहे जाने वाले कवियों की रचनाओं में दिखाई पड़ रहे हैं।[211] स्पष्ट है कि आगे चलकर आचार्य शुक्ल ने निराला की तद्युगीन रचनाओं को देखकर उसमें विविधता, विस्तृतपन और यथार्थवाद अधिक देखा और 'छायावाद' में आचार्य शुक्ल को निराला 'नाना अर्थभूमि के रमणीय प्रसार' का संकुचन दिख रहा था, वह निराला की रचनाओं के विवेचन से निर्मूल साबित होने लगा। दुर्भाग्यवश आचार्य शुक्ल अधिक वर्षों तक जीवित नहीं रह पाए और निराला की दूसरे और तीसरे दौर की रचनाओं से प्रायः अनभिज्ञ रहे।

निराला ने कई बार अपने आलोचकों को गलत साबित किया–जीवनकाल में भी और मरणोपरांत। उनके आलोचकों द्वारा उनकी रचनाओं का पुनरावलोकन करने के बाद भी। निराला राय बदलने को मजबूर करते हैं। आप उन्हें जितनी बार पढ़ जाए, वह भाव, भाषा, शैली रूपों में एक नए दृष्टिकोण से देखने का अवकाश छोड़ जाते हैं। अपनी अंतिम कविता के अंतिम चरण में निराला अपने आलोचकों को याद करते हुए आखिरी संदेश देते हैं ––

"बीत चुका है दिक्मुक्ति चतुरंग, काव्य, गति
यतिवाला, ध्वनि, अलंकार, रस, राग, बंध के
वाद्य छंद के रणित–गणित छूट चुके हाथ से
क्रीड़ाएं क्रीड़ा में परिणत, मल्ल भल्ल की
मारें मूर्छित हुईं। निशाने चूक गए हैं।
झूल चुकी हैं, ढाल–ढाल की तरह तनी थी
पुनः सवेरा एक और फेरा है जी का।[212]

निराला कह रहे हैं कि उनपर आक्रमण करने वाले आलोचकों की चतुरंगिनी सेना समाप्त हो चुकी है और उनके काव्य की गति, यति, छंद

लय भी समाप्त हो चुके हैं। निराला अपने विरोधियों की आलोचनापूर्ण रण–क्रीड़ाओं को लज्जाजनक मानते हैं और स्पष्ट कर देते हैं कि उन मल्लों और भल्लों यानि आक्षेपों के भालों से उनका कुछ नहीं बिगड़ा। सारे निशाने–चूक गए। निराला ने उन आक्षेपों को झेला। निराला की खाल ढाल की तरह उन्हें बचाती आई। निराला अंदर से लोहा थे, वज्र थे, न टूटनेवाले हीरक थे। हां! उम्र के साथ वह खाल झूल गई। निराला भीष्म की तरह इच्छा–मृत्यु वरण करते हैं। कविता में बार–बार यह बोलने के बावजूद – *"मरा हूं हजार मरण। पायी तन चरण–शरण।"*[213] निराला दुःख की घड़ी में मृत्यु, हताशा आदि की बात करते हैं, पर वह आंतरिक उल्लास को नहीं छोड़ते। निराला अपने जीवन की समाप्ति पर दूसरे जीवन को प्राप्त करने का उल्लास महसूस करते हैं।' 'पुनः सवेरा' कहकर निराला फिर प्रकाश का संकेत देते हैं जो उनकी कविता, उनकी चिंतन का केन्द्र–बिन्दु है। 'नए सवेरा' नया होता है। जो नया चाहेगा वह वेरे कीा इंतजार जरूर करेगा। नव्यता, सवेरा, गति, तोड़ना, विद्रोह आदि ऐसे कई बीज शब्द हैं जो निराला की वैचारिक चेतना के केन्द्र में हैं। उनके काव्य–चिंतन और काव्य–कला पर इसके प्रभाव का विवेचन हम अगले अध्याय में करेंगे। यहाँ, इतना बतलाना श्रेयस्कर है कि निराला अपनी अंतिम कविता की अंतिम पंक्ति में 'पुनः सवेरा एक और फेरा है जी का' की जो बात कर रहे हैं, वहां मोक्ष की कोई आशा नहीं है। डॉ. नंदकिशोर नवल लिखते हैंः– *"यह उनका वैष्णव मतवाद है जिसका धीरे–धीरे उन पर गहरा असर होता गया और जो मोक्ष में नहीं, वाह्य की पृथक सत्ता में विश्वास करता था।"*[214] पर, दार्शनिक विवेचन से थोड़ा हट कर देखें तो 'जीव का फेरा' आत्मा की अमरता का ही शंखनाद है और आत्मा अजर, अमर है। शरीर का अंत होता है, आत्मा का नहीं । निराला आज नहीं हैं, पर निराला की काव्य–आत्मा हर युग में अविनाशी है। 'अनंत' के कवि निराला हर युग की आनेवाली काव्य परंपरा को संदेश देते हैं :–

"मेरे ही अविकसित राग से
विकसित होगा बंधु दिगन्त––
अभी न होगा मेरा अंत।"[215]

संदर्भ :–

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'मधुस्रोत', (पाखंड–प्रतिषेध' कविता): पृ0सं0–86
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः 'रसमीमांसा' ('प्रस्तुत रूपविधान' निबंध; पं. सं0–243–244
3. मलयजः– 'रामचंद्र शुक्ल', राजकमल प्रकाशन–1987 ई0, पृ0सं0–63
4. मुकुधर पांडेय : 'छायावाद क्या है' निबंध; (संकलित)– श्री शारदा; सितंबर,1920 ई0, जबलपुर, पृ. सं.–341
5. मुकुटधर पांडेय : 'मध्यम्: वर्ष–1, अंक 2 जून, 1964 (सं0)–बालकृष्ण राव, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (उद्धृत)–विनयमोहन शर्मा का लेख –छायावादी कवि मुकुटधर पांडेय, पृ0 सं0–15
6. डॉ. नामवर सिंह : 'छायावाद', पृ0सं0–13
7. 'सुकवि किंकर' (आचार्य :'सरस्वती', मई, 1927 ई0,)(आजकल के हजारी प्रसाद द्विवेदी) (हिन्दी कवि और कविता 'निबंध), पृ0 सं0–532–533
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'चिंतामणि' (भाग–2); (काव्य में रहस्यवाद' निबंध): पं. सं0–89
9. नंददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' ('महादेवी वर्मा' निबंध); पृ0 सं0–161
10. डॉ. नामवर सिंहः 'छायावाद'; पृ0सं0–15
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशोधित,)पृ0 सं0–325–326.
12. डॉ. बच्चन सिंह : 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास': पृं0 सं–329
13. डां0 नामवर सिंह : 'छायावाद', पृ0 सं0–17
14. डॉ. रामविलास शर्मा : 'निराला का साहित्य साधना' (भाग–2), पृ0सं0–552
15. निरालाः 'निराला रचनावाली' (भाग–5)(श्री नंददुलारे वाजपेयी निबंध) पृं0सं0–435
16. निरालाः 'निराला रचनावाली' (भाग–2)('टूटे सकल बंध' कविता); पृ0सं0–253–254
17. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास'; पृं0सं0–114
18. जयशंकर प्रसादः 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध'; (यथार्थवाद और छायावाद' निबंध); पृ0 सं0–81
19. वही ; (काव्य और कला निबंध); पृ0 सं0–20
20. जयशंकर प्रसाद : 'स्कन्दगुप्त; पृ0 सं0–133 (प्रकाशन संस्थान, दिल्ली), प्रथम सं0
21. जयशंकर प्रसाद : 'जनमेजय का नागयज्ञ'; पृ0सं0–77
22. जयशंकर प्रसाद : ग्रंथावली प्रसाद वांङमय' (खण्ड–1): संपादक–जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करणः1977 ('लहर की पेशोला की प्रतिध्वनि' कविता); पृ0 संख्या–379
23. वही; पृष्ठ संख्या–380
24. वही; ('शेरसिंह का शस्त्र–समर्पण); पृष्ठ संख्या–375

25. वही; ('कामायनी' में श्रद्धा सर्ग); पृ0सं0–469
26. वही; ('कामायनी' में रहस्य सर्ग); पृ0सं0–683
27. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव'; ('परिवर्तन' कविता); इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम आवृति, पं0 सं0–112.
28. वही; पृ0सं0–130
29. सुमित्रानंदनपंत : 'गुंजन; ('आज शिशु के कवि को अनजान कविता); भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चौदहवां संस्करण, 1981; पृ0सं0–52
30. वही : पृ0सं0–130
31. सुमित्रानंदन पंत : 'वीणा–ग्रन्थि' भारती भंडार लीडर प्रैस, इलाहाबादः द्वितीय संस्करण, संवत् 2007 वि0 ('वीणा की मां अल्मोड़े में आए थे, कविता) : पृ0 सं0–48
32. वही ; ('उस विकसित, वासित मन में कविता) : पृ0सं0–50
33. महादेवी वर्मा : 'संघिनी'; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997 ई0 ('सांध्यगीत' की कविता 'शलभ मैं शापमय ना हूँ') पृ0सं0–105–106
34. डॉ रामविलास शर्मा : 'परंपरा का मूल्यांकन'; पृ0यं0–182
35. महादेवी वर्मा : 'नीहार'; गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार, प्रयाग; प्रथम आवृतित; ('विसर्जन' कविता): पृ0सं0–01
36. वही ; (अधिकार' कविता); पृ0 सं0:12
37. वही ;पृ0सं0–13
38. वही : (फिर एक बार 'कविता); पृ0 सं0–58–59
39. वही : 'महादेवी वर्मा : 'संघिनी'; ('सांध्यगीत' का गीत' जाग तुमको दूर जाना' कविता); पृ0सं0–112
40. महादेवी वर्मा : 'रश्मि'; साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, 1932 ई0 ; ('जीवन' कविता); पृ0 सं0–25
41. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' : 'निराला रचनावाली' (भाग–1); (आह्वान कविता): पृ0 सं0–13
42. वही ; ('राम की शक्ति पूजा' कविता): पृ0 सं0–315
43. वही ; पृ0सं0–316
44. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ; 'हिन्दी साहित्य और संवदेना का विकास' पृ0 स0–110
45. निराला : 'रचनावली' (भाग–1) ('महाराज शिवाजी का पत्र' कविता पृ0–154)
46. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('शक्ति–परिचय' निबंध) पृ0सं0–57
47. निराला : निराला रचनावली (भाग–1); ('महाराज शिवाजी का पत्र' कविता) पृ0–154
48. वही ; पृ0–154
49. वही ; (हिन्दी सुमनों के प्रति पत्र' कविता); पृ0 सं0–331

50. जयशंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावलीः प्रसाद वाङमय' (खंड–1); (लहर की आत्मकथ्य' कविता); पृ0सं0–337
51. सुमित्रानंदन पंत : 'वीणा–ग्रन्थि'; ('ग्रन्थि') पृ0 सं0–110
52. महादेवी वर्मा : 'नीहार'; (उत्तर–कविता); पृ0 सं0–50
53. जयशंकर प्रसादः 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' (यथार्थ और छायावाद' निबंध); पृ0 सं0–78
54. महादेवी वर्मा : 'रश्मि; साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, 1932, भूमिका, पृ0सं0–7
55. वही; ('पहिचान' कविता); पृ0 सं0–44
56. सुमित्रानंदन पंत : 'गुंजन'; ('वन–वन उपवन' कविता; पृ0 सं0–2)
57. निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('सार्थक करो प्राण' कविता) पृ0सं0–229
58. डॉ. केदारनाथ सिंह; 'कल्पना और 'छायावाद'; हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1957 ई0 पृ0सं0–47
59. जयशंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावलीः प्रसाद वाङमय (खंड–1), (आंसू); पृ0 सं0–328
60. सुमित्रानंदन पंतः 'पल्लव' ('अनंग' कविता) पृ0 सं0–41
61. सूर्यकांत त्रिपाठी निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('कवि' कविता); पृ0 सं0–193
62. वही; ('दिल्ली' कविता) पृ0 सं0–89
63. वही; ('पंचवटी प्रसंग' कविता); पृ0 सं0–47
64. जयशंकर प्रसादः 'चंद्रगुप्त मौर्य'; भारती भंडार, लीडर प्रैस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण; पृ0 सं0–57
65. महादेवी वर्मा; 'रश्मि'; ('पहिचान कविता); पृ0 सं0–43
66. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'हिन्दी साहित्य और संवदेना का विकास; पृ0 सं0–114
67. महादेवी वर्मा : 'रश्मि'; ('मैं और तू' कविता); पृ0 सं0–62
68. महादेवी वर्मा : 'संधिनी'; ('मधुर–मधुर मेरे दीपक जल' गीत) पृ0 सं0–84
69. वही; ('कीट का प्रिय आज पिंजर खोल दो' गीत) पृ0सं0–113
70. जयशंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावलीः प्रसाद वाङ्मय (खंड–1); (कामायनी', इड़ा सूत्र); पृ0सं0–567
71. सुमित्रानंदन पंत : 'वीणा ग्रन्थि'; (वीणा) पृ0 सं0–77
72. निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–1); (पंचवटी–प्रसंग 'कविता); पृ0 सं0–39
73. वही; ('राम की शक्ति पूजा' कविता); पृ0 सं0–317
74. डॉ. नामवर सिंह : 'छायावाद'; पृ0 सं0–27
75. महादेवी वर्माः "नीहार"; ('उस पार' कविता) पृ0 सं0–35
76. जयशंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावली; प्रसाद वांङ्मय (खंड–1); ('झरना' की 'झरना' कविता) ; पृ0 सं0–233
77. सुमित्रानंदन पंत 'पल्लव'; ('निर्झर गगन' कविता); पृ0सं0–64

78. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' : 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('प्रपात के प्रति' कविता); पृ0 सं0–97
79. जयशंकर प्रसाद : 'चंद्रगुप्त मौर्य'; (चतुर्थ अंक); पृ0 सं0–177
80. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('जागरण' कविता), पृ0 सं0–172
81. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव'; (प्रवेश); पृ0 सं0–25
82. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); (परिमल की भूमिका); पृ0 सं0–403
83. डॉ. नामवर सिंह :'छायावाद'; पृ0 सं0–93
84. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–5); (साहित्य और भाषा' निबंध) पृ0 सं0–365
85. महादेवी वर्मा : 'रश्मि'; ('अपनी बात'); पृ0 सं0–4–5
86. जयशंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावलीः प्रसाद वाङमय (खंड–1); ('झरना' की हृदय का सौंदर्य' कविता) पृ0 सं0–276
87. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव' ('बादल' कविता) पृ0 सं0–90
88. सुमित्रानंदन पंतः 'गुंजन' (नील कमल सी है वे आंखे' कविता) पृ0 सं0–29
89. निराला : निराला रचनावली' (भाग–1); ('वे किसान बहू की नयी आंखें' कविता) पृ0 सं0–347
90. वही ; (नेत्र' कविता); पृ0 सं0–170
91. आचार्य रामचंद शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशोधित सं0); पृ0 सं0–363
92. महादेवी वर्मा : 'रश्मि'; (जीवनदीप, कविता); पु0 सं0–17
93. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('राम की शक्ति पूजा' कविता); पृ0 सं0–311
94. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव'; (प्रवेश); पृ0 सं0–24
95. वही ('उच्छवास' कविता); पृ0 सं0–07
96. जयशंकर प्रसाद; 'ग्रंथावली : 'प्रसाद वांड्मय'(खंड–1); ('लहर' की 'प्रपंच की छाया' कविता); पृ0 सं0–383
97. सुमित्रानंदन पंत; 'गुंजन'; (गीत संख्या–2 :–शांत सरोवर का डर); पृ0 सं0–3
98. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव'; (प्रवेश); पृ0 सं0–18
99. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('वर्ण–चमत्कार' कविता); पृ0 सं0–261
100. वही (नयनों का नयनों से बंधन' कविता); पृ0सं0–234
101. वही; ('संध्या–मुंदरी' कविता); पृ0 सं0–35
102. वही; ('गुंजन'); (गीत संख्या–35); पु0 सं0–50
103. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'; पृ0 सं0–335 (संशो0)
104. जयशंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावली'; प्रसाद वांड्मय (खण्ड–1); (लहर); पृ0 सं0–335
105. निरालाः 'निराला रचनावली' (खण्ड–5); (मेरे गीत और गाथा, निबंध); पृ0 सं0–407

106. निरालाः 'निराला रचनावली' (खण्ड–1); ('जागरण' कविता); पृ0 सं0–173
107. डॉ. बच्चन सिंह : 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास'; पृ0 सं0–346
108. सुमित्रानंदन पंत : 'युगवाणी; राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली, 1998 ई0, ('नवदृष्टि' कविता); पृ0 सं0–03
109. डॉ. नामवर सिंह : 'छायावाद'; पृ0 संव–128
110. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव'; ('विथि–विलास' कविता), पृ0सं0–32
111. जयशंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावली : प्रसाद वाङमय (खण्ड–1); ('झरना' की 'प्रियतम 'कविता) पृ0 सं0–245
112. निराला; 'निराला रचनावली; ('सेवा–आरम्भ' कविता); पृ0 सं0–336
113. डॉ. रामविलास शर्मा : 'परम्परा का मूल्यांकन'; पृ0 सं0–245
114. डॉ. नामवर सिंह : 'छायावाद'; पृ0 सं0–118
115. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : ('चिंतामणि' भाग–2) ('काव्य में रचनावाद' निबंध) पृ0 सं0–112
116. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास (संशो0 सं0) पृ0 सं0–356
117. सुमित्रानंदन पंत : 'रश्मिबंध' : राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 1980 (परिदर्शन); पृ0 सं0–20
118. महादेवी वर्मा : 'महादेवी साहित्य–3'; (संपा0) : निर्मला जैन; वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1969ई0 ('छायावाद' निबंध); पृ0 सं0–476
119. गजानन माधव मुक्तिबोध : 'मुक्तिबोध रचनावली' (भाग–5); (संपा0–नेमिचन्द्र जैन); राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय सं0–1986 (छायावाद और नयी कविता' निबंध); पृ0 सं0–311
120. डॉ. बच्चन सिंह : हिन्दी साहितय का दूसरा इतिहास :–पृ0 सं0–332
121. 'निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('मेरे गीत और कला' निबंध): पृ0 सं0–407
122. सुमित्रानंदन पंत : 'गुंजन'; ('एक तारा' कविता) पृ0 सं0–56
123. वही– पृ0 सं0–57
124. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव' ('स्वप्न') कविता; पृ0 सं0– 57
125. जय शंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावली : प्रसाद वाङ्मय (खंड–1); ('झरना' की प्रथम प्रभात' कविता); पृ0 सं0–236
126. वही–;('लहर की 'शशि की तरह सुन्दर रूप विभा' गीत); पृ0 सं0–364
127. वही; ('कामायनी' का 'चिन्ता सर्ग'); पृ0 सं0–430
128. वही; ('आशा सर्ग') पृ0 सं0–433
129. मुक्तिबोध : 'मुक्तिबोध रचनावली' (भाग–4); ('कामायनी : एक पुनर्विचार' निबंध); पृ0 सं0–262 (संपा0–नेमिचन्द जैन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण :1956
130. महादेवी वर्मा : 'रश्मि' (अपनी बात') पृ0 सं0–8

131. वही; 'रश्मि'; ('आशा' कविता): पृ0 सं0–36
132. सूर्यकांत त्रिपाठी निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('वनबेला' कविता); पृ0 सं0–327
133. वही ; पृ0 सं0–330
134. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('प्रबन्ध प्रतिमा' की भूमिका); पृ0 सं0–533
135. वही; पृ0–533
136. जयशंकर प्रसाद : 'ग्रन्थावलीः प्रसाद वाङ्मय' (खण्ड–1); पृ0 सं0–682 ('कामायनी का रहस्य सर्ग')
137. डॉ. रामविलास शर्मा : 'परम्परा का मूल्यांकन'; पृ0 सृ0–139
138. निराला : 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); ('जागा दिशा ज्ञान' कविता); पृ0 सं0–259
139. निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('हिन्दी सुमनों के प्रति पत्र' कविता); पृ0 सं0–331
140. वही; ('परिमल' की भूमिका); पृ0 सं0–308
141. डॉ. नंद किशोर नवलः 'निराला काव्य की छवियां' पृ0संख्या–130
142. निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–1); (मित्र के प्रति कविता); पृ0 सं0–289
143. वही; पृ0 सं0–293
144. डॉ. रामनिलास शर्माः 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2) पृ0 सं0–289
145. निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('कविवर सुमित्रानंदन पंत' लेख) पृ0 स0–139
146. वही; पृ0 सं0–46
147. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव'; (विज्ञापन) पृ0 सं0 (घ)
148. वही; पृ0 सं0–46
149. निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–5); (पंत जी और पल्लव' निबंध); पृ0 सं0–168
150. वही; पृ0 सं0–181
151. डॉ. रामविलास शर्माः 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ0 सं0:502
152. निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('पंत जी और पल्लव' निबंध, पृ0 सं0 205
153. वही; 'सौंदर्य–दर्शन और कवि–कौशल' निबंध पृ0 सं0–219
154. डॉ. रामविलास शर्माः निराला की साहित्य–साधना (भाग–1); पृ0 सं0–505
155. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–5): (सौंदर्य–दर्शन और कवि–कौशल निबंध; पृ0 सं0–217
156. वही; पृ0 सं0–216
157. निराला : निराला रचनावली (भाग–6) ('कामायनी'; समीक्षाएं); पृ0 सं0–533
158. वही : पृ0 सं0–534
159. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–2); (आदरणीय प्रमाद जी के प्रति' कविता); पृ0 सं0–39

160. वही; पृ0 सं0–39
161. वही पृ0 सं0–41
162. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–1) ('महादेवी जी के जन्म दिवस पर 'निबंध); पृ0 सं0 231
163. निरालाः 'निराला रचनावली' (भाग–2) ('श्रीमती महादेवी वर्मा जी के प्रति' कविता); पृ0 सं0–89
164. महादेवी वर्मा :"पथ के साथी" (निराला भाई संस्करण); लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृ0 सं0–70
165. डॉ. निर्मला जैन,; "कविता का प्रति संसार"; पृ0सं0–70
166. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी; "प्रसाद, निराला और अज्ञेय"; पृ0 सं0–42
167. डॉ. दूधनाथ सिंह; "निरालाः आत्महन्ता आस्था; पृ0 सं0–23
168. डॉ. बच्चन सिंह; 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास; पृ0 सं0–366
169. डॉ. दूधनाथ सिंहः "निराला आत्महन्ता आस्था"; पृ0 सं0–23
170. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य–साधना, (भाग–2); पृ0 सं0–560
171. डॉ. बच्चन सिंह; 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', पृ0 सं0–334
172. निराला : 'निराला रचनावली' (भाग–1); 'सरोज स्मृति' कविता; पृ0 सं0–297
173. डॉ. निर्मला जैन; 'कविता का प्रति संसार'; पृ0 सं0–66
174. डॉ. नामवर सिंह; 'कविता के नए प्रतिमान'; पृ0 सं0–64
175. वही; पृ0 सं0–83
176. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); पृ0 सं0–57
177. डॉ. नामवर सिंह; 'कविता के नए प्रतिमान'; पृ0 सं0–134–135
178. वही; पृ0 सं0–83
179. मुक्तिबोध; 'मुक्तिबोध रचनावली'; पांच; (संपा0)–नेमिचन्द्र जैन; (नयी कविता की अतंःप्रकृतिः वर्तमान और भविष्य"; निबंध) पृ0 सं0–336
180. डॉ. नवलकिशोर नवल; "निराला : काव्य की छवियां" पृ0 सं0–61
181. सच्चिदानंद हीरनंद वात्सायन अज्ञेय : 'स्मृति लेख'; (वसंत का अग्रदूत संस्मरण); नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1982 ई0, पृ0 सं0–
182. निरालाः "निराला रचनावली (भाग–1); ('रूखी री यह डाल' "कविता"); पृ0 सं0–213
183. निराला : "निराला रचनावली (भाग–2); ('पत्रोत्कंठित जीवन का विष'); कविता पृ0सं0–484
184. डॉ. नंदकिशोर नवलः निराला काव्य की छविया, पृ0 सं0–185
185. निराला : "निराला रचनावली (भाग–2); ('दुःखता रहा अब जीवन' भक्ति) पृ0 सं0–411
186. निराला : "निराला रचनावली (भाग–1); ('रूखी री यह डाल'; कविता); पृ0 सं0–213

187. निराला : "निराला रचनावली (भाग–1); ('स्नेह निर्झर बह गया है'; कविता); पृ0 सं0–84
188. निरालाः "निराला रचनावली (भाग–1); ('ध्वनि' कविता) : पृ0 सं0–114
189. दूधनाथ सिंहः निरालाः आत्महन्ता आस्था; पृ0 सं0–24
190. निराला : निराला रचनावाली' (भाग–2); (साहस कभी न छोड़ा" कविता); पृ0 सं0–171
191. निराला : "निराला रचनावली" (भाग–5); (समालोचना या प्रोपगैंडा," निबंध); पृ0 सं0–378
192. डॉ. रामविलास शर्मा : 'निराला की साहित्य साधना (भाग–1); पृ0 सं0–205
193. निरालाः "निराला रचनावली (भाग–5); ("काव्य साहित्य" निबंध); पृ0 सं0–347
194. निरालाः "निराला रचनावली (भाग–1); ("दे मैं करूं वरण" कविता); पृ0 सं0–229
195. वही; ("सरोज स्मृति" कविता); पृ0 सं0–297
196. डॉ. रामविलास शर्मा : "निराला की साहित्य साधना (भाग–1) पृ0 सं0–260
197. निरालाः "निराला रचनावली" (भाग–1); ("सार्थक करो प्राण" कविता) पृ0 सं0–229
198. निरालाः "निराला रचनावली" (भाग–1) ("अस्ताचल रवि"; पृ0 सं0–231)
199. नंदकिशोर नवल : "निराला रचनावली" (भाग–2); (भूमिका); पृ0 सं0–13
200. "निराला रचनावली" (भाग–2); ('मरण को जिसने वरा है'; कविता; पृ0 सं0–85)
201. वही;(यह है बाजार); पृ0 सं0–67
202. वही;(बाहर मैं कर दिया गया हूं' कविता); पृ0 सं0–153
203. डॉ. नामवर सिंहः 'छायावादः प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत'; पृ0 सं0–82
204. डॉ. रामविलास शर्मा : 'निराला की साहित्स साधना' (भाग–2); पृ0 सं0–216
205. निराला : 'निराला रचनावली'; (भाग–2); (कठिन यह संसार–गीत) पृ0 सं0–376
206. वही; ("कुक्कुरमुत्ता" कविता): पृ0 सं0–55
207. वही; (गीत गाने दो मुझे वो" कविता); पृ0 सं0–367
208. डॉ. बच्चन सिंहः "हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास" पृ0 सं0–355
209. डॉ. नामवर सिंहः "छायावाद, प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत"; पृ0 सं0–85
210. वही; पृ0 सं0–83
211. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास"; (संशो0 सं); पृ0 सं0–356
212. निरालाः "निराला रचनावली" (भाग–2); ("पत्रोत्कंठित विष बुझ गया", कविता) पु0 सु0–484
213. वही; ("मरा हूं हजार मरण", गीत): पृ0 सं0–403
214. डॉ. नंदकिशोर नवल : "निराल काव्य की छवियां; पृ0 सं0–188
215. निराला : "निराला रचनावाली" (भाग–1); ("ध्वनि कविता); पृ0 सं0–115

अध्याय–4

निराला के काव्य–सिद्धांत, रचना–प्रक्रिया एवं शिल्प–सौष्ठव

(1) ''तोड़ो, तोड़ो कारा'': निराला के काव्य–सिद्धांत एवं काव्य–मुक्ति की अवधारणा

(2) ''मैंने 'मैं' शैली अपनायी'': निराला की काव्य–शैली एवं जीवन यथार्थ की खोज

(3) ''सुंदर, हे सुंदर'': निराला का काव्य–स्थापत्य एवं भाषा सौष्ठव

अध्याय–4

निराला के काव्य–सिद्वांत, रचना–प्रक्रिया एवं शिल्प–सौष्ठव

"मैं समय को अपनी आँखों से जानूँ
शब्द बनाने से पहले तय करूँ
उसकी आगामी भूमिका..... ।"[1]

हेमंत कुकरेती की उपर्युक्त काव्य–पंक्तियों के आलोक में हम कह सकते हैं कि काव्य–लेखन सादे कागज पर खाली दिमाग से नहीं हो सकता, अर्थात् भावानुभूति से शब्द–विधान की प्रक्रिया अनायास नहीं होती। शब्द–विधान की प्रक्रिया पुलिसया बयानदर्जी नहीं है, वरन् उसके पीछे कवि की जीवानुभूति, उसका काव्य–सिद्वांत व उसका सामाजिक भावबोध भी काम करता है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में दुष्यंत अपने विदूषक के समक्ष शकुंतला के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं:– *"चित्रे निवेश्य परिकल्पिता सत्वयोगा रूपोच्येन मनसा विधिना कृता नु।"[2]* अर्थात्, ''मन से रूप की जितनी परिकल्पना की जा सकती थी, उसका आयोजन करके विधाता ने मन से शंकुतला की रचना की है।'' अगर ध्यान दें तो विधाता की इस रचना–प्रक्रिया के उदाहरण में कवि–व्यापार और उसके अंतर्मन का महत्व भी निहित है।

काव्यभाषा के निर्माण में कवि का आत्मपक्ष भी समाहित होता है। राजशेखर ने एक पुरानी कहावत का उदाहरण देते हुए लिखा है– *"सः यस्वभावः कविस्तदनुरूपं काव्यम्।"[3]* अर्थात् जैसा कवि–स्वभाव होता है, वैसी ही उसकी कविता होती है। ये सारी बातें हम निराला की काव्य–रचना प्रक्रिया एवं कविता के स्थापत्य–निर्माण में भी देख सकते हैं। उसकी काव्य रचना–प्रक्रिया और काव्य–स्थापत्य में उनका जीवन–संघर्ष, उनका मानसिक द्वंद, विद्रोह, सामाजिक पृष्ठभूमि, समाज–दर्शन व युग बोध सब बोलता है। 'बेला' में संकलित निराला की एक कविता है–'मन में

आए संचित होकर' जिसमें उन्होंने जगत–व्यापार और मानस व्यवहार के संबंध को रेखांकित किया है:–

"मन में आए संचित होकर
हम जग के जीवन से रोकर।
भाव के सागर में स्रोत प्रखर
होते हैं नीचे से ऊपर
कितनी भूमि के नेमि–प्रस्तर,
बेबस घबराए धो–धोकर।"[4]

निराला इसी मानस– 'भूमि के नेमि–प्रस्तर' पर सर्जना की फसल बड़ी सजगता से उगाते हैं। इसके लिए उन्होंने अपने मानसिक द्वंदों से दो–दो हाथ किए, सामाजिक बंधन व काव्य–रूढ़ियाँ तोड़ी, कई बार खुद टूटे। परंतु, इसी टूट और पुनः नए जोश के साथ काव्य–सृजन की प्रक्रिया में संलग्न होने में ही निराला का काव्य–दर्शन व काव्य–सौंदर्य टिका है, जिसके पीछे है उनकी मुक्ति की कामना जो उनके काव्य–सिद्वांत का मूल था। निराला के काव्य–शिल्प के तत्वों पर चर्चा करने से पहले इन बातों को समझना जरूरी है।

(1) ''तोड़ो, तोड़ो कारा'': निराला के काव्य–सिद्धांत एवं काव्य–मुक्ति की अवधारणा

"तोड़ो तोड़ो तोड़ो
ये पत्थर ये चट्टानें
ये झूठे बंधन टूटें
तो धरती को हम जानें
सुनते हैं मिट्टी में रस है जिससे उगती दूब है
अपने मन के मैदानों पर व्यापी कैसी ऊब है।"[5]

'सीढ़ियों पर धूप में' (1960 ई.) काव्य–संग्रह में प्रकाशित रघुवीर सहाय जी की उपर्युक्त पंक्तियाँ जहाँ अकविता आंदोलन–जगत में व्याप्त निराशा व कुंठा पर प्रतिघात करते हुए जीवन–विरोधी स्थितियों को तोड़ने की वकालत करती है, वहीं सृजन–प्रक्रिया को भी व्याख्यायित करती है। कभी–कभी नव–सृजन के लिए विनाश आवश्यक होता है। महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने इस सत्य को पहले ही समझ रखा था कि पुरातन व रूढ़िवादी भावभूमि पर नवीन चिंतन व नव–सृजन का बीज अंकुरित नहीं हो सकता। अकारण नहीं है कि रघुवीर सहाय से कई दशक पूर्व ही उन्होंने 'मुक्ति' कविता में लिखा है:–

"तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकलो फिर
गंगा जल धारा!"[6]

निराला जी की यह मुक्ति कामना जीवन, समाज व साहित्य सभी स्तरों पर थी जहाँ वे सभी बंधनों व रूढ़ियों को तोड़ना चाहते थे। इसी 'तोड़ने' की प्रक्रिया में नवीन विचारों, भाव व भाषा से संबंधित उनके काव्य–सिद्धांत का स्वरूप भी छिपा है।

रघुवीर सहाय जी ने 'तोड़ो' कविता तो लिख दी, परंतु अपने समय में 'तोड़ने' का स्वरूप न समझने वाले कवियों की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता को भी भली–भाँति महसूस कर रहे थे। 'स्वतंत्रता के दिनों का संकट और मैं' निबंध में उन्होंने इस समस्या को उठाते हुए लिखा है:– ***"हम कुछ तोड़ रहे***

हैं पर क्या तोड़ रहे हैं? कभी–कभी हम कहते हैं कि हमने भाषा को तोड़ा है पर उसी जबान से हम यह भी कहते हैं कि हमसे पहले भाषा को जिन्होंने तोड़ा उन्होंने कुछ नहीं पाया था, साथ ही हम यह भी मानने को तैयार नहीं कि भाषा को हमारा तोड़ना हमें कुछ देगा ही। क्यों देगा? जबकि सब कुछ अर्थहीन है और हम अर्थ खोजना नहीं चाह रहे हैं क्योंकि हम अर्थ की रचना नहीं करना चाह रहे हैं क्योंकि हम सिर्फ उतनी ही तोड़–फोड़ करना चाह रहे हैं जो सिर्फ भाषा से हम कर सकते हैं, जिसके करने पर हमें कोई परिणाम नहीं भोगने पड़ते। इस परिस्थिति में हर तोड़ने वाले का उठा हुआ हाथ एक मुद्रा बन जाता है– जिसके जरिए ध्यान आकर्षित करना मनुष्य हो जाता है, तोड़ना गौण।[7] निराला जी केवल 'तोड़–फोड़' के लिए 'तोड़ने' वाले कवि नहीं थे और न ही साहित्य में 'उठे हुए हाथ की एक मुद्रा' मात्र; उनके पास 'तोड़ने' का पूरा 'रोडमैप' था– पहले व्यक्ति, फिर समाज व राष्ट्र और फिर साहित्य।

निराला जी की मान्यता थी कि *"और सब जीव पराधीन है, मनुष्य स्वतंत्र होकर पैदा होता है।"*[8] इसलिए उन्होंने हमेशा बाहरी स्वतंत्रता की बजाय भीतरी स्वतंत्रता की बात कही। 'समाज और मनुष्य' शीर्षक निबंध में उन्होंने लिखा है:– *"हमारे विचार से वाह्य स्वतंत्रता की प्राप्ति अपने ही भीतर के विचार तथा उद्यम से होती है।"*[9] इसलिए निराला 'मनुष्यों की मुक्ति' की बात करते हैं। कड़े अनुशासन व रूढ़ियों में बँधना उन्हें स्वयं प्रिय न था।' स्वाधीनता पर' कविता में निराला लिखते हैं:– *"माया नहीं जानता मैं...../जानता हूँ बस एक स्वाधीन शब्द।"*[10] पुनः 'स्वाधीनता पर' दूसरी कविता में निराला 'मेरे जाति, मेरे पददलित' को स्वप्न में भी पराधीन बताते हुए कहते हैं:– *"स्वाधीन का ही/एक और अर्थ 'निर्भय' है।"*[11] निराला ने काव्य व जीवन दोनों में जो कुछ किया पूरी स्वाधीन चेतना व निर्भयता के साथ–डंके की चोट पर। निर्झर की तरह तमाम अवरोधों को तोड़ते बढ़े–

"टूटे सकल बन्ध
कलि के दिशा–ज्ञान गत हो बहे गद्य।

रूद्र जो धार रे
शिखर–निर्झर झरे।"[12]

'बन्ध' अर्थात् दायरे को तोड़ने की बात निराला समाज व कविता के स्तर पर भी करते हैं। सितंबर,1930 ई0 की 'सुधा' में प्रकाशित 'हिन्दू या हिन्दवी' निबंध में निराला जी ने लिखा हैः–*"हमारे सामाजिक सुधार दायरे के अंदर कभी नहीं हो सकते क्योंकि दायरे को पार करना प्रकृति की स्वाभाविक क्रिया है।..... पूर्ण मनुष्य किसी देश में नहीं बांधा जा सकता।"*[13] निराला मनुष्य की तरह कविता को भी पूर्णता तक पहुँचाना चाहते थे। इस मार्ग में वे देश व काल को भी बाधक मानते हैं। 'साहित्य का आदर्श' निबंध में उन्होंने लिखा हैः–*"देश और काल का ही हमारे साहित्य में प्रधान शासन है और देश और काल ही हमारे साहित्य के आदर्श रूप। देश और काल दोनों में सीमा है, अतः बंधन। दोनों व्यक्ति और समय का ही निर्देश करते हैं; इसलिए सीमित हैं। दूसरी पराधीनता की तरह यह भी एक तरह की पराधीनता है।"*[14] देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर ही सार्वदेशिक व सार्वकालिक या यूँ कहें कि कालजयी रचनाओं का निर्माण हो सकता है। परंतु, 'लकीर के फकीर' बने रहने से और बँधी–बँधाई साहित्यिक रूढ़ियों की नींव पर कालजयी रचनाओं की इमारत नहीं खड़ी हो सकती। निराला ने स्पष्ट कहा–*"साहित्य को प्रतिक्षण नवीनता की आवश्यकता है। पर नवीनता उस मस्तिष्क से नहीं निकल सकती जो रूढ़िग्रस्त हो।"*[15] निराला की कविताओं में व्यक्त विप्लवी बादल पूंजीपतियों को डराने वाले क्रांति के प्रतीक हैं और साथ ही पृथ्वी के हृदय से नव–अंकुर का स्फुरण कराने वाले भी। 'बादल–राग' की कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैः–

"यह तेरी रण–तरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी–गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन को, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं ऐ विप्लव के बादल।"[16]

यहाँ क्रांति के रचनात्मक और ध्वंसात्मक पक्ष दोनों हैं तो कविता के स्तर पर माधुर्य व ओज समन्वित। इस संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं:– *"ललित कल्पना और क्रांतिकारी कविता में कोई आंतरिक विरोध नहीं है। जो क्रांतिकारी है, वह क्रांति के अलावा जीवन के अन्य कार्य भी करता है। वैसे ही कवि, क्रांति के गीत गाने के अलावा जीवन के अन्य कार्य भी करता है।..... निराला अपने साहित्य में जिस कवि को प्रतिष्ठित करते हैं; वह समग्र जीवन को व्यापक दृष्टि से देखता है, एक ही पक्ष लेकर नहीं चलता। 'अनामिका' वाले गीत में निराला ने कवि और क्रांतिकारी में तादात्म्य स्थापित किया है:–"'विद्युत–छवि उर में, कवि, नव जीवन वाले'।"*[17]

निराला की अनेक कविताएँ समाज व साहित्य दोनों का संस्पर्श कर चलती हैं। उनके यहाँ सामाजिक क्रांति का महत्वपूर्ण वाहक साहित्यिक क्रांति है। 'गीतिका' के एक गीत में निराला माँ सरस्वती से आह्वान करते हैं:–

"जला दे जीर्ण–शीर्ण प्राचीन
क्या करूँगा तन जीवन–हीन?"[18]

यहाँ साहित्य व समाज दोनों में पुरातनता के नाश की माँग है। निराला माँ सरस्वती के सच्चे साधक हैं। सरस्वती पर विभिन्न रूपों में जितनी कविता निराला ने लिखी, उतनी किसी अन्य कवि ने नहीं। 'देवी! कौन वह?', 'प्रलाप', 'वीणावादिनी', 'वर दे, वीणावादिनि वर दे!', 'देवी सरस्वती' आदि कई कविताओं में निराला माँ सरस्वती से संवाद करते हैं, कृतज्ञता–ज्ञापन करते हैं या फिर नवीन भाव–बोध भरने का आह्वान करते हैं:–

"नव गति, नव लय–ताल–छंद सब
नवल कंठ, नव जलद–मन्द्ररव
नव नभ के नव विहग वृन्द को
नव, पर नव स्वर दे।"[19]

उपर्युक्त पंक्तियों में तो जैसे नवीनता की माँग में पंक्तियों में 'नव' की आवृत्ति से नवल–संगीत ही रच दिया गया है।

ऐसे ध्यान से देखा जाए तो निराला के गीत में देवी, आदिशक्ति, सरस्वती सभी एक दूसरे में समाहित हैं। दूसरी ओर वही देवी सृजन की शक्ति भी हैं, काव्य–प्रेरणा भी हैंः–

"तुम्हीं गाती हो अपना गान,
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान।"[20]

सृजन की यह देवी संघर्षरत कवि को दुलार भी देती हैं और सृजन राह पर निर्भय बढ़ने की शक्ति भी। अकारण नहीं है कि 'तुलसीदास' की रत्नावली अचानक सरस्वती में परिवर्तित होकर काव्य–प्रेरणा व सृजन–शक्ति बन जाती हैः–

"देखा शारदा नील–वसना
है सम्मुख स्वयं सृष्टि–रशना,
.....दृष्टि से भारती से बँधकर
कवि उठता हुआ चला ऊपर।"[21]

इस 'उठता हुआ चला ऊपर' में तुलसीदास की उर्ध्वगामी सृजन यात्रा तो है ही, स्वयं कवि निराला की प्रगतिशील साहित्य–साधना भी। डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैंः–***"सरस्वती की उपासना का अर्थ है कठिन जीवन–संघर्ष, साहित्यिक संघर्ष और जीवन–संघर्ष परस्पर संबद्ध है।"[22]*** सृजन की यह देवी निराला के जीवन–संघर्ष की संबल है, जन के लिए उमड़े भाव की भाषा की शक्ति है। 'देवी ! कौन वह?' कविता में निराला यह अनुभूत करते हैः–

"भरी सभा के बीच बैठकर जब मैं सिकुड़ता जाता
करके दुख से मस्तक नीचा हूँ गरीब बन जाता,
विद्या की अधरों पर आती है जब पूर्ण पिपासा,
देवी ! कौन वह बन जाती जो भावुक जन की भाषा?"[23]

अगर ध्यान से देखें तो निराला की सरस्वती–साधना उनकी साहित्य साधना है, भाव और भाषा के संतुलन के खोज की साधना है, हिन्दी की प्रांजलता की तपचर्या है।

जिस समय निराला अपनी नवीन विद्रोही चेतना से काव्य को समृद्ध कर रहे थे, उस समय आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपनी तत्वान्वेषी दृष्टि से हिन्दी आलोचना में 'भाव व भाषा की छद्मवृत्ति' फैलाने वाले 'नकल–नवीसियों' को आड़े हाथ ले रहे थे। 'छायावाद' के भाव व भाषा जगत पर कुठाराघात करते हुए आचार्य शुक्ल ने 'पांखड प्रतिषेध' कविता में यहाँ तक लिख डालाः–

"भाषा हैं, न भाव हैं, न भूति भाँपने को आँख,
शिक्षा की सुभिक्षा भी न पाई कभी एक कन;
गाँथते हैं, गर्व–भरी गुरु ज्ञान–गूदड़ी वे
चुने हुए चीथड़ों से, किए ब्रह्म लीन मन।
कहीं बंग–भंग पद चकती चमक रही
कहीं अंग्रेजी अनुवाद का अनाड़ीपन;
ऐसे सिद्ध साँइयों की माँग मतवालों में है
काव्य में न झूठे स्वाँग खींचते कभी हैं मन।"[24]

आचार्य शुक्ल की छायावाद व रहस्यवाद को लेकर अपनी एक दृष्टि थी या यूँ कहें कि अपना अलग पूर्वग्रह था जो सीधे 'लोकमंगल की साधनावस्था' वाले आदर्श से जुड़ता था। परंतु, उपर्युक्त काव्यांश में 'मतवालों' का प्रयोग कर उन्होंने सीधी चोट 'मतवाला' मंडल से जुड़े कवि निराला पर की थी। निराला और आचार्य शुक्ल का आक्षेप–प्रतिक्षेप हिन्दी साहित्य जगत में प्रसिद्ध रहा है और एक–दूसरे के प्रति अंतर्मन से सम्मान का भाव भी। निराला छायावाद और विशेषकर अपने खिलाफ 'भाषा हैं, न भाव हैं, न भूति भाँपने को आँख' वाली बात स्वीकार नहीं सकते थे। जून–जुलाई, 1928 ई. में 'साहित्य समालोचक' में 'साहित्य की नवीन प्रगति पर' निबंध में निराला ने आचार्य शुक्ल को आड़े हाथ लेते हुए लिखाः– ***"साहित्य में इस तरह की आवाज प्रचार आदि इस समय असभ्यता और गँवारपन का परिचय देते हैं, परन्तु हमारे लिए इसके स्वीकार करने***

के सिवा दूसरा उपाय ही क्या है! अतएव शुक्ल जी गद्य में लिखें, हम उन्हें उत्तर देने के लिए तैयार हैं। अवश्य पद्य में इस तरह की बकवास करना हम नहीं जानते।[25] हालांकि निराला ने उक्त निबंध में आचार्य शुक्ल के सिद्धांतों का सहजता से प्रतिवाद किया, पर पद्य में अन्यत्र 'बकवास' करते हुए पूरी कविता 'कालेज का बचुआ' लिख डाली, जिसकी कतिपय पंक्तियाँ हैः–

"जब से एफ.ए. फेल हुआ
हमारा कालेज का बचुआ
....हिन्दी का लिक्खाड़ बड़ा वह
जब देखो तब अड़ा पड़ा वह
छायावाद रहस्यवाद के
भावों का बटुआ।"[26]

निश्चय ही शिष्ट साहित्य में ऐसे व्यक्तिगत आक्षेप तर्कसंगत नहीं कहे जा सकते, पर भाव व भाषा के सच्चे साधक की खीझ को सहज समझा जा सकता है। अकारण नहीं है कि निराला जी ने आचार्य शुक्ल की 'पाखंड प्रतिषेध' कविता में भाव व भाषा संबंधी कई दोष दिखलाए। 'माधुरी' के अगस्त, 1929 ई0 में प्रकाशित अपने निबंध 'खड़ी बोली के कवि और कविता' में निराला ने यहाँ तक लिख दियाः–*"इनकी कविता में दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न जरूर है, पर मेरे विचार से यह जैसे बहुपठित विद्वान हैं, वैसे कवि नहीं। इनकी कविता में इसके बहुदर्शिता का अच्छा प्रकाश है, पर कवित्व बहुत कम, कहीं–कहीं कविता अस्वाभाविक हो गयी है।.... इनकी प्रतिभा के पानी तक कविता की आँच पहुँचती ही नहीं।*[27] निराला ने आचार्य शुक्ल की काव्यालोचना तो कर दी, पर यह भी सत्य है कि अपने समय के महान आलोचक के एक–एक कथन को उन्होंने चैलेंज की तरह लिया। आचार्य शुक्ल द्वारा कही गई एक पंक्ति 'भाषा' है, न भाव है' का उत्तर निराला कई निबंधों में देते रहे और भाव व भाषा के सहज संबंध और नवीन भाव–बोध एवं नव भाषा–प्रयोग की आवश्यकता को समझाते रहे।

सितंबर, 1930 ई0 की सुधा में प्रकाशित निबंध 'भाव और भाषा' में निराला ने विस्तार के साथ भाव और भाषा के संबंध की पड़ताल की है; पर भाव को ही कविता में मुख्य स्थान पर बैठाया है। वे लिखते हैं:– *"भाव सभी साहित्यों की तरह काव्य साहित्य का भी सम्राट है। शब्दों के सैन्य का यह सेनापति है। उनकी जाँच इसी के हाथ में रहती है। फिर कोई शब्द एक–एक जरूरत पर भर्ती किए रंगरूट की तरह काव्य में नहीं आ सकता, वहाँ उसके शिक्षित सिपाही लड़ते हुए मिलेंगे। जरूरत पड़ने पर नये रंगरूट को भी वह शिक्षित कर मैदान में रक्खेगा।"*[28] निराला भाषा को जबरन 'भर्ती किए रंगरूट' नहीं बनाना चाहते थे। दूसरी बात 'नये रंगरूट को शिक्षित' करने का मतलब है–भाषा को संशोधित परिमार्जित कर उसे भाव के अनुकूल बनाना। तीसरी बात, भावों की सच्चाई से भाषा की युक्तिसंगतता का पता लग सकता है। 'साहित्य और भाषा' निबंध में निराला ने स्पष्ट कर दिया:– *"बड़े–बड़े साहित्यकारों ने प्रकृति के अनुकूल ही भाषा लिखी है। कठिन भावों को व्यक्त करने में प्रायः भाषा भी कठिन हो गयी है। जो मनुष्य जितना गहरा है, वह भाव तथा भाषा की उतनी ही गंभीरता तक पैठ सकता है और पैठता है। साहित्य में भावों की उच्चता का ही विचार रखना चाहिए। भाषा भावों की अनुगामिनी है।"*[29] यहाँ तीसरी पंक्ति में निराला ने 'जो मनुष्य जितना गहरा है' लिखकर भाव व भाषा के साथ कवि की जीवानुभूति की सघनता और कवि व्यक्तित्व की गंभीरता को भी संबद्ध कर दिया है।

निराला भाव–प्रधान कविताओं में 'भावात्मक चित्र या अभिव्यक्ति के लक्ष्य पर चलती हुई भाषा' को अलंकार प्रधान होना जरूरी नहीं मानते, न इसे दैन्य का लक्षण मानते हैं। उनके अनुसार, *"सालंकार होने पर भी यदि गणिका की गति में कला–जन्य भंगिमाओं के अतिरिक्त दूसरा विशद उद्देश्य नहीं तो वे अलंकार और वह कला पाठकों के मानसिक सूर्य के प्रकाश में प्रदीप की तरह निष्प्रभ, साहित्य की भूमि पर गौरी के गले की मन्दार–माला से टूटकर मदारों के विष गन्ध फूल हैं।"*[30] निराला के समय आचार्य शुक्ल भी कविता को 'भावयोग' मानते थे और अलंकारों को 'भावों को उत्कर्ष दिखाने' के रूप में ही स्वीकार करते थे। अपने समय में काव्यानुभूति और काव्यभाषा के बढ़ते फासले को देखकर और 'मुक्त

कल्पना' की सहायता से 'भाषा की छद्मवृत्ति' रचनेवाले कवियों का पोस्टमार्टम करने की वकालत करते हुए आचार्य शुक्ल ने कहा थाः—*"शब्दकाव्य की सिद्धि के लिए वस्तुकाव्य का अनुशीलन परम आवश्यक है।"*[31]

निराला भी कविता में 'शब्दकाव्य' और 'वस्तुकाव्य' के संबंधों की जाँच की बात करते हैं। ध्यातव्य है, आचार्य शुक्ल ने छायावाद का विरोध 'रहस्यवाद' के आधार पर करते हुए लिखा थाः—*"रहस्यवाद की कविताओं में सबसे अधिक विरक्ति जनक दो बातें होती हैं— भावों में सच्चाई का अभाव (इनसिनसिएरिटी) और व्यंजना की कृत्रिमता (आर्टीफिशीऐलिटी) उनमें व्यंजित अधिकांश भावों को कोई हृदय के सच्चे भाव नहीं कह सकता। अतः उनकी व्यंजना की उछल—कूद भी एक भद्दी नकल सी जान पड़ती है।"*[32] निराला भी इस ओर ध्यान दिलाते हुए 'भाव और भाषा' निबंध में लिखते हैंः— *"भाव और चित्र कोई भी कवि दूसरी भाषा से प्राप्त कर सकता है और उनमें कुछ परिवर्तन—परिवर्धन कर अपनी चीज कर सकता है। पर यह काव्य की कोई बहुत बड़ी ऊपज नहीं। और इस तरह किसी भाषा की कमी से कोई बहुत बड़ी चीज नहीं मिल सकती।"*[33] हालांकि, निराला भाव की छाया 'लेकर कविता रचनेवाले को कवि मानते हैं' पर अर्थ को चुरानेवाले अर्थात् 'जहाँ भाव वही रहे, भाषा बदल जाए', ऐसे रचनाकारों को कुकवि कहते हैं। निराला साहित्यिक चोरी पर कुठाराघात करते हुए कहते हैंः—*"जो एक—आध पद भी लेता है, वह चोर है और जो दूसरे को पूरा प्रबंध का प्रबंध लेकर अपना कह देते हैं, उनको तो नमस्कार ही है। उनके लिए कोई शब्द ही नहीं है। बस, भाव की छाया तक ग्रहण कर लेना क्षम्य माना गया है और यदि नये भाव मे कुछ उत्तमता पैदा कर दी जाए तो वह प्रतिभा का ही कार्य माना जाएगा।"*[34]

प्रतिभा कवि के लिए काव्य का प्रधान साधन है। भामह का मानना था कि काव्य की स्फूर्ति उसी व्यक्ति में होती है जो प्रतिभा से संपन्न होता हैः—*"काव्यं तु जायते जातु करयचित् प्रतिभावतः।"*[35] भट्टौत ने स्मृति, मति, बुद्धि, प्रज्ञा और प्रतिभा के लक्षण करके उनमें भेद आदि बताकर प्रतिभा को काव्य का हेतु कहा है और नव—नव ज्ञान को उन्मेषित करनेवाली प्रज्ञा

को ही प्रतिभा माना है। निराला भट्टौत का ही समर्थन करते हुए स्पष्ट करते हैं:– *"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।' अर्थात् जिस प्रज्ञा द्वारा नयी–नयी कल्पना होती है, उसे प्रतिभा कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि इस नवीनता की क्या सीमा है? एक मत से कोई भाव या विचार नया नहीं है और कुछ नहीं तो भाषा तो पुरानी ही है। जितने नवीन भवन रचे जाते हैं, वे सब पुरानी ही आधार–शिलाओं पर खड़े किए जाते हैं। मनुष्य पुराने ही सूतों से नया ताना–बाना जोड़ते हैं। इस संसार में नयी सामग्री नहीं बनती है। दूसरे मत से, सभी चीजें नवीन हैं। कोई दो मनुष्य एक–सा विचार नहीं करते। यदि मैं किसी के विचारों को दुहराऊ भी तो, तो दुहराने में भी अंतर आ जाता है। उसमें दुहरानेवाले के व्यक्तित्व की कुछ न कुछ छाप लग जाती है।"*[36] यहाँ निराला ने कई महत्वपूर्ण बातें एक साथ उठाई हैं। पहली कि जरूरी नहीं कि नवीनता बिल्कुल आकाश से उतरी एकदम अनोखी चीज हो। 'गीतिका' के एक गीत में निराला लिखते हैं:–

"विश्व की ही वाणी प्राचीन
आज रानी बन गई नवीन।"[37]

निराला की उपर्युक्त काव्य–पंक्तियों को परंपरा से जोड़ते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं:– *"साहित्य जगत की यह क्रांति एक ओर प्राचीन रूढ़ियों को नाश करनेवाली है, दूसरी ओर वह जीवंत साहित्यिक परंपरा की रक्षक भी है। समाज की अपेक्षा साहित्य में परम्परा की रक्षा के प्रति निराला का आग्रह अधिक है।"*[38] अकारण नहीं है कि निराला जी ने विद्यापति, रविदास, पद्माकर, बिहारी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, चंडीदास, तुलसीदास आदि कई कवियों पर अपनी आलोचनात्मक सम्मति दी है। एक ओर उन्होंने निर्गुण संतों में निम्न जाति के रविदास जी को *"ज्ञान के आकर मुनीश्वर थे परम/धरम के ध्वज, हुए उनमें अन्यतम"*[39] की उपमा देते हुए 'चरण छूकर नमस्कार' करते हैं तो दूसरी ओर सगुण काव्य–परंपरा के सूर्य गोस्वामी तुलसीदास के लिए *"देशकाल के शर से बिंधकर/यह जागा कवि अशेष छविधर,"*[40] जैसी गरिमामयी उक्तियों का प्रयोग कर मुखरता का संधान कर लेते हैं। 'देवी सरस्वती' कविता में

पौराणिक कवियों को याद करते हुए निराला शब्दों व छंदों का 'नवलोक' रचते हैं:–

"बाल्मीकि का क्रौञ्च–मिथुन
व्यास का जन्म–फल;
कालिदास की दशा,
हर्ष का मर्षण उत्कल;
नवलोक मञ्जुलतर
बकुलों से जैसे तुम
टूटी शब्द–शब्द पर
छन्द–छन्द पर, कुंकुम।"[41]

इसी कविता में आगे चलकर संस्कृत 'रामायण' की परंपरा से तुलसी के 'रामचरितमानस' का संबंध जोड़ते हुए बाल्मीकि के लिए ***"रामायण के मौलिक/प्राकृत–शम्भु–स्वयम्भू"***[42] शब्द का प्रयोग करते हैं। यहाँ प्रश्न उठता है– 'रामायण' के कवि मौलिक हैं तो तुलसीदास की क्या साहित्यिक उपायेदयता है? इसका उत्तर निराला 'प्रतिभा' निबंध में देते हुए लिखते हैं:– ***"मौलिकता क्या है? यदि देखा जाए तो एक प्रकार से सूर और तुलसी मौलिक नहीं है, किन्तु हम उनको साहित्य मंडल के सूर्य और राशि मानते हैं। यह किसलिए? इसलिए कि उन्होंने अपनी सामग्री का बहुत सुंदर सदुपयोग किया है।"***[43] यह सदुपयोग किन प्रकारों से संभव है, इसका उत्तर निराला देते हुए स्पष्ट करते हैं कि भावों को सांगोपांग बनाकर, भावों के अनुकूल भाषा रखकर, मूलभाव को उपमान या दृष्टांत या उत्तेजना योग्य पाकर नया भाव रचकर भी कविगण प्राचीन सामग्री का सदुपयोग कर सकते हैं। निराला की 'राम की शक्ति–पूजा' इसलिए अनुपम रचना है क्योंकि निराला ने प्राचीन सामग्री में भाव और भाषा दोनों स्तर पर नयापन दिया है। डॉ0 नंदकिशोर नवल के शब्दों में कहें, तो ***"राम की शक्ति–पूजा का कथा–प्रसंग निराला ने कृतिवासीय रामायण से लिया है, लेकिन उसका कच्चे माल की तरह इस्तेमाल कर उससे उन्होंने एक सर्वथा मौलिक कृति का निर्माण किया है।"***[44]

सन् 1936 के लखनऊ कांग्रेस–अधिवेशन के मौके पर निराला ने महात्मा गांधी से मिलकर बेधड़क एक बात कही थी– *"आप जानते हैं, हिन्दी वाले अधिकांश में रूढ़िग्रस्त हैं। वे जड़ रूप समझते हैं, तत्व नहीं। जो कथाएँ पुराणों में आई है, उनके स्थूल रूप में सूक्ष्मतम तत्व भी हैं। वास्तव में वेदों का सत्य पुराणों में कथाओं द्वारा विवृत हुआ है। यहाँ के लोग कथा को ही ऐतिहासिक सत्य की तरह मानते हैं। हिन्दी में इन तत्वों के परिष्करण की भी चेष्टा की गई है। साथ–साथ, नये–नये रूप, नये–नये छंद और नये–नये भाव भी दिए गए हैं। साधारण जन तो इनसे दूर है ही, संपादक और साहित्यिक भी, अधिक संख्या में, इनसे अज्ञ हैं। वे समझने की कोशिश नहीं करते, उल्टे मुखालिफ़त करते हैं। हमलोगों के भाव इसलिए प्रचलित नहीं हो पाए। देश की स्वतंत्रता के लिए पहले समझ की स्वतंत्रता जरूरी है।"*[45] गांधी जी को कथित इस बात में एक महान कवि का दर्द है–हिन्दी की रूढ़िग्रस्त मानसिकता के प्रति और अपने रचना–कर्म को आलोचकों व संपादकों द्वारा न समझने की अज्ञानतम वृत्ति के प्रति भी। परंतु, साथ में अपने कवि–कर्म के प्रति गर्व भी जहाँ तमाम रूढ़ियों का परिष्करण हुआ है, नए भाव, नए रूप और नए छंद का सृजन भी हुआ है। निराला संभवतः गांधी जी को पुरा–कथा पर आधारित 'राम की शक्ति–पूजा' जैसी कविताओं को ध्यान में रखकर संबोधित कर रहे थे। वे जानते थे कि पौराणिक आख्यानों की आवृत्ति कर न उन आख्यानों में निहित सत्य को नवीनता के साथ प्रकट किया जा सकता है, न ही कालजयी रचना की जा सकती है।

निराला के समय साहित्य में भी एक पुरातत्व विभाग चल रहा था। उस समय प्राचीन कवियों की रचनाएँ ढूँढ–ढूँढ कर निकाली जा रही थी। किसी प्राचीन कवि की कविता में स्थान–विशेष से जुड़े कतिपय शब्द पाकर उसे अपने प्रदेश या प्रादेशिक भाषा के कवि के रूप में स्थापित किया जा रहा था। इस संदर्भ में उस समय के महान आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'बुद्धचारित' (1922 ई0) की भूमिका में साहित्य में उपजी इस पुरातत्ववादी उद्योग पर व्यंग्य कसते हुए लिखा थाः– *"डर है कि कहीं हिन्दी वालों में भी लोग अपने गाँव के पास पुराने प्रसिद्ध कवियों की मूर्तियाँ खोद खोदकर न निकालने लगे।"*[46] निराला भी कुछ ऐसी स्थिति

अपने समय में देख रहे थे कि अधिकांश कॉलेज के अध्यापक तो एकदम 'पुरानी लकीर के फकीर' हैं। बिहारी और देव की लड़ाई में एक पूरा आलोचक–कुनबा लगा था। निराला महसूस कर रहे थे कि 'अलंकारों का पिष्टपेषण करते–करते' कुछ नया खोजने की जगह उसकी रही–सही चमक को भी 'प्राचीन परिपाटी के साहित्य–महारथियों' ने गायब कर दिया। निराला के सामने 'सबकी आँखों में' पुराने मोह का आलस्य था जो 'नवीन युग के तरुण प्रभात के स्वागत' के लिए तैयार नहीं लग रहा था। निराला हिन्दी भाषी क्षेत्र विशेषकर अपने गृह–प्रदेश उत्तर–प्रदेश में हिन्दी की ऐसी स्थिति देखकर दुखी थे। बंगाल से रवीन्द्रनाथ बंगला को राष्ट्रभाषा बनाने हेतु पूरी आवाज उठा रहे थे और हिन्दी की दुर्दशा की ओर भी ध्यान दिला रहे थे। उधर महात्मा गांधी पर भी रवीन्द्रनाथ का प्रभाव गहरा था। उन्होंने 'यू.पी.' वालों द्वारा अशुद्ध हिन्दी भाषा लिखने की निन्दा भी की थी। ऐसे में निराला अपने प्रदेश के लोगों को पुराने कवियों की मूर्तियाँ खोदते देख खीझकर लिखते हैं– *"किसी–किसी पत्रिका में तो चार सौ वर्ष के अज्ञात कवि को मुख–पृष्ठ पर छापकर 'यू.पी.एन' की रक्षा की जाती है और उसके संपादक इस 'यू.पी.एन.' के प्रचार करने में संकोच नहीं करते, जैसे उस चार सौ वर्ष पुराने यू.पी. को और चार सौ वर्ष तक कायम रखकर हिन्दी का कोई बड़ा उपकार करना चाहते हों। सच्ची बात जो इस तथ्य के भीतर झलक जाती है, उसे छिपा रखना चाहते हैं। कुछ दिन हुए, महात्मा जी ने यू.पी. के हिन्दी लिखने वालों की निन्दा की थी, उन्हें शुद्ध भाषा लिखने का ज्ञान नहीं, ऐसा लांछन लगाया था। पर 'मारे यू.पी. वालों' को इससे शर्म नहीं आई। किसी पत्र ने आज तक उस पर कोई टीका–टिप्पणी नहीं की और करें भी कैसे? पहले तो, हिम्मत का सर्वथा अभाव, दूसरे किस दृष्टि से महात्मा जी ने ऐसा लिखा, उसका ज्ञान नहीं, तीसरे 'यू.पी.एन. की रक्षा' भी तो करनी है।"*[47] निराला मौन रहकर आरोप सुननेवाले 'यू.पी.एन.' की श्रेणी में नहीं आना चाहते थे। 'यू. पी.एन.' को नवीन साहित्यिक प्रवृत्ति से जोड़ना यू.पी. की नहीं, संपूर्ण हिन्दी की रक्षा के संकल्प से जुड़ा था। परंपरा के नाम पर कालिदास और रवीन्द्रनाथ जैसे दूसरी भाषा के कवियों को निराला एक सीमा तक ही सम्मान देते हैं। उनके सामने वे हिन्दी भाषा का परचम झुकने नहीं देना

चाहते थे। जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे एक पत्र में निराला ने डंके की चोट पर कहा है:– *"मैं तो कालिदास और रवीन्द्रनाथ से अपनी माँ का मुख ही अधिक पहचानता हूँ।"*[48] अपनी माँ, मातृभूमि भी है और मातृभाषा हिन्दी भी। 'सरोज समृति' कविता में गहन पीड़ा में भी निराला दुख को 'यह हिन्दी का स्नेहोपहार' कहकर सारा दुःख स्वीकारने में संकोच नहीं करते, दूसरी ओर, हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र' में वे यह गर्वोक्ति करने से नहीं चुके– *"मैं ही वंसत का अग्रदूत।"*[49] यह 'वसंत' हिन्दी भाषा व साहित्य का भी वसंत था जिसे निराला ने 'नये पत्ते' ही नहीं दिया, 'परिमल' भी दिया। 'वसंत' प्रकृति की नवीनता का उल्लास है। निराला हिन्दी में उसी नवीन वसंत के अग्रदूत के हिमायती थे। जब निराला *"उमड़ प्राणों से गहनता छा गगन में अवनि के स्वर"*[50] कहते हैं तो यह धरती से ऊपर उठकर आसमान पर छाने वाला हिन्दी भाषा का स्वर ही प्रतीत होता है। डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दों में कहें तो– *"छंद की गति से, उदात्त शब्द सौंदर्य से, भाव–चित्र की गरिमा से निराला जिसका भविष्य चित्रित कर रहे हैं, वह आधुनिक हिन्दी है। प्रशस्त परंपरा वाली, नवयुग में नवजीवन से दीप्त यह हिन्दी भाषा निराला के लिए किसी भी देवी–देवता से अधिक पूज्य है।"*[51] अपनी इस मातृभाषा में 'यू.पी.एन.' का पुरातन–प्रेम देखकर निराला नवीन साहित्य की प्रगति का मार्ग नहीं देख पा रहे थे। इसलिए नए–पुराने की रस्साकशी में उलझे यू.पी. वालों को देखकर निराला ने लिखा:– *"मुँह में पुरानी परिपाटी के चने भरकर नई शहनाई का बजाना कुछ आसान तो है नहीं, बेचारे पुराने चने ही भरे रह गए।"*[52] इस नए व पुराने के द्वंद को देखकर गोपाल सिंह नेपाली की कुछ पंक्तियाँ याद आती हैं:–

"महल में पुराने दिए जल रहे हैं
रुकी जा रही है नए की रवानी
बुलाकर नए को शरण कौन देगा
जने हैं दुआरे–दुआरे पुराने
नई रोशनी को मिले राह कैसे
नजर है नई को नजर पुराने।"[53]

निराला 'मुँह में पुरानी परिपाटी के चने भरकर नई शहनाई बजाने वाले' नहीं थे। एक स्थान पर तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ की तुलना करते हुए उन्होंने लिखा हैः– *"जो लोग नवीन संसार के साथ–साथ नहीं चल सके या किसी अन्य कारणों से प्राचीन के प्रशंसक हैं, वे उसी तरह नवीन से लड़ते हैं और प्राचीन के पक्ष में रहते हैं।"*[64] स्पष्ट है निराला प्राचीन भावों व संदर्भों को भी नवीनता से संपृक्त करना चाहते थे। 'रचना रूप' नामक निबंध में निराला स्पष्ट घोषणा करते हैंः– *"सृष्टि का अर्थ नवीनता है। जहाँ कोई पिष्टपेषण में बदला की सारी मौलिकता के नाश समझिए। मौलिकता की नाश का अर्थ है मस्तिष्क का नाश और मस्तिष्क का नाश–पराधीनता–मस्तिष्क का दूसरों के वश में होना। हमारे साहित्य की यही शोचनीय दशा है। जिधर भी देखिए, रचनाओं में प्राचीन रूढ़िवाद, अंध परंपरा ही देख पड़ेगी। काव्य–साहित्य में राम और कृष्ण पर आज भी काफी लिखा गया, और लिखा जा रहा है। लिखने की बात नहीं, बात रचना की है। जो नयी रचनाएँ हुईं, उनमें राम और कृष्ण के संबंध में नवीन दृष्टि नहीं पड़ी बल्कि कवियों की अदूरदर्शिता ने भक्ति आदि की भावना से उन्हें प्राकृत मनुष्यों के रूप में ग्रहण कर जनता को और गिरा दिया।"*[65] निराला 'पिष्टपेषण' करनेवालों में से नहीं थे। उन्होंने 'रामायण की अंतर्कथाएँ' लिखीं, महाभारत पर भी लिखा पर सभी पर नवीन–दृष्टि और नवीन भाषा के साथ। 'इतिवृत्त' में नए प्राण–रस का संचार किस मौलिक रचनात्मक ऊर्जा के साथ किया जा सकता है, यह कोई निराला से सीखे। 'नवीनता' ही निराला का 'रचना–समर' और जीवन–संग्राम दोनों हैं, पुरातनता की बात महज परंपरा की नयी समझ को ही सूचित करने के लिए है। दूधनाथ सिंह ने यहाँ तक लिख दिया हैः– *"निराला अपने व्यक्तित्व और कवित्व दोनों की संरचना में निर्वाह के पक्षधर उतने नहीं हैं, जितने तोड़–फोड़ और प्रयोग के। वे कुछ ऐसा कर गुजरना चाहते हैं जो अब तक हिन्दी कविता या भारतीय साहित्य में कभी नहीं हुआ हो। उनका मुख्य मन यही है। इस प्रयत्न में जब–जब उन्हें यह खतरा दिखाई देता है कि शायद लोग इस तोड़–फोड़ को उनके असामर्थ्य का पर्याय मान बैठेंगे तो वे परंपरा–निर्वाह को दो–दो हाथ दिखा देते हैं कि जिसे तुम बड़े सामर्थ्य की चीज समझते हो वह तो मेरे बांये हाथ का खेल है।*

इसलिए वे संस्कृत कविता की व्याख्या, विवेचन, छंद–शास्त्र, ऋग्वेद, वैष्णव–दर्शन, वेदांत आदि की बातें करते हैं। उसमें अपने को निष्णात और पारंगत बताते हैं, जिससे कोई यह न कहने का साहस करें कि वह तोड़–फोड़ की कार्रवाई करनेवाला निराला कुछ जानता नहीं।[66] कहने का तात्पर्य है कि परंपरा को निराला अपनी नवीनता को प्रामाणिक बनाने और अपनी नवीनता को परंपरा–निर्वहन मात्र से भिन्न ठहराने के लिए प्रस्तुत करते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य था–तोड़–फोड़ और प्रयोग। यह और बात है कि परंपरा को पुनर्जीवित करने का श्रेय भी निराला को ही जाता है। परंपरा–मुक्त निराला मुक्त छंद के लिए प्रसिद्ध हैं और यह भी सत्य है कि उन्होंने छंदों में 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज–स्मृति' और 'तुलसीदास' जैसे कालजयी रचनाएँ भी लिखीं परन्तु, प्रयोग यहाँ भी है और भाव व भाषा के प्रति नवीन दृष्टि भी।

'तुलसीदास' कविता में निराला कविता के आरंभ में ही भारत के सांस्कृतिक सूर्य के अस्त होने, नैतिक पराजय अतीत के ध्वस्त वैभव आदि की बात करते हैं। सामाजिक रूढ़ियों, बंधन आदि के 'तिमिर मास' करने और 'सत्य का मिहिर द्वार' देखने का तुलसीदास में चित्रण करते हैं–

"कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनार्मियों के प्राण प्रथम
वह रूद्ध द्वार का छाया–तम करने को
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार–
तोड़ने को विषम वज्र द्वार;
उमड़े भारत का भ्रम अपार हरने को।"[57]

अगर ध्यान से देंखे तो निराला यहाँ स्वयं तुलसीदास की जगह प्रतिस्थापित हैं। निराला जिस तोड़–फोड़ को रचनात्मक रूप देना चाहते थे, दरअसल वह 'विषम वज्र द्वार' तोड़ने को तुलसी का ज्ञानोद्वत प्रहार ही है जो जीवन और कविता दोनों में अज्ञानता की दीवार को तोड़ता है।

निराला के पहले द्विवेदी युग में ज्ञान की साधना पर विशेष बल देते हुए पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान के नए आलोक में हमारी प्राचीन परंपराओं को

परखने की वकालत की गई थी। पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी ने *"साहित्य को ज्ञान–राशि का संचित कोश"*[58] माना था। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने और नवीन ज्ञान–विज्ञान को फैलाने का भरपूर काम किया था। डॉ0 रामविलास शर्मा ने स्वामी सत्यदेव के हवाले से 'सरस्वती' को ज्ञान पत्रिका बतलाते हुए लिखा है:– *"जनता को आवश्यकता थी नवीन ज्ञान की, स्वाधीनता की, पहचान की और आधुनिक ज्ञान–स्नान की। 'सरस्वती' द्वारा वे उस पुनीत कार्य को भले प्रकार से कर सकते थे। वे थे कुशल संपादक और कर्त्तव्य–परायण। ....उन्होंने 'सरस्वती' को ऊँचे दर्जे की ज्ञान–पत्रिका बनाने का दृढ़ संकल्प किया और वे थे धुन के पूरे।"*[59] इसलिए द्विवेदी युग को 'साहित्य का ज्ञान–कांड' कहा जाता है। निराला जीवन समाज व साहित्य तीनों में 'ज्ञान' को अत्यधिक महत्व देते थे। कविता को भी निराला ज्ञान–परंपरा से जोड़ना चाहते थे और सहृदयों से भी ज्ञानवान बनने की अपेक्षा रखते थे।

निराला ने पूर्ण स्वाधीनता के लिए ज्ञान को आवश्यक मानते हुए लिखा है:– *"विद्या ज्ञान है। ज्ञान का प्रकाश मार्जन। इससे मन और बुद्धि प्रखर होती है, चमकती है, जैसे अस्त्र शान पर। हमारी पराधीनता का कारण अविद्या है जिसके अंधकार में हम दिग्भ्रान्त पथिक की तरह लक्ष्य–शून्य चलते ही जा रहे हैं।"*[60] एक स्थान पर निराला ने नारी की स्वतंत्रता को ज्ञान से जोड़ते हुए यहाँ तक लिख दिया:– *"ज्ञान कभी भी पराधीन नहीं रह सकता। बल्कि यदि एक ही शब्द में स्वाधीनता की परिभाषा की जाए तो वह ज्ञान ही होगा।"*[61] जो व्यक्ति ज्ञान को ही स्वाधीनता की परिभाषा मानता है, वह कविता की स्वाधीनता में ज्ञान की उपेक्षा कैसे कर सकता था? 'नवीन काव्य' नामक निबंध में निराला जी ने खड़ी बोली की कविता में कल्पना और भावों की अपरिपक्वता पर चिंता जताई है। निराला ने खुद अनुभूत किया था कि जिसने अपने ज्ञान–बल व प्रतिभा से वह परिपक्वता हासिल भी कर ली तो उनका हौसला 'दूसरों के अज्ञान के प्रतिघातों से निस्तेज' हो जाता है। पाठकों और संपादकों की अज्ञानता अर्थात् काव्य की समझ के अभाव का प्रतिफल अच्छे कवियों को भोगना पड़ता था। उन्होंने माना कि सत्समालोचकों के अभाव के कारण

हमारे यहाँ प्रतिभा का स्फुरण नहीं हो पाता और जनता तक कवियों के भावों का विस्तार नहीं होता। परन्तु, निराला साहित्य में रचनाकारों की भी अपरिपक्वता देख रहे थे। निराला जी ने उक्त निबंध में ही लिखा है:– *"लेखकों और कवियों का भी ज्ञान परिपक्व नहीं। पत्रों में साधारण विचार ही निकलते हैं। अपने विषय के थोड़े ही ऐसे ज्ञाता है, जो दूसरी भाषाओं में मान्य हैं। आपस ही में सब लोग चढ़ा–बढ़ी करते हैं। फल यह होता है कि इस अज्ञान के कर्मकांड में कविता का ज्ञानकांड पीछे रह जाता है।"*[62] निराला हिन्दी के पहले आलोचक हैं जिन्होंने 'साहित्य के ज्ञानकांड' के युग के पश्चात् 'कविता के ज्ञानकांड' की बात की। निराला जो 'कविता का ज्ञानकांड' विकसित करना चाहते थे, उसके स्रोत व स्वरूप को भी समझना जरूरी है।

डॉ0 रामविलास शर्मा ने निराला के 'ज्ञानकांड' संबंधी अवधारणा पर लिखा है:– *"निराला के चिंतन में ज्ञान का ऐसा महत्व है। अज्ञान का अर्थ है दुर्बलता, पराधीनता। ज्ञान का अर्थ है शक्ति, स्वाधीनता। उसका स्रोत है वेदांत। सामाजिक व्यवहार के लिए उसका सारतत्व है मनुष्य मात्र की समानता।"*[63] निराला वेदांत को ज्ञान का ही दूसरा प्रतिरूप मानते थे। 'सुधा' के जनवरी, 1931 वाले अंक में निराला ने 'दिव्यता और वेदांत' निबंध में लिखा है:– *"वेदान्त निरवलंब, केवल ज्ञान है, अन्य ज्ञान सावलम्ब, इसलिए दूषित एकांग है, पार्थिव है। निरवंलम्ब ज्ञान से संसार के कार्य चलते हैं।"*[64] निश्चय ही, निराला वेदान्त के 'निरवलम्ब ज्ञान' में अद्वैत तत्व की अभिव्यक्ति और मनुष्य मात्र की समानता देखते हैं। निराला अपने समय में धार्मिक कट्टरता का बोलबाला देख रहे थे। निराला सभी धर्मों में 'सार भाग' देखने के समर्थक थे जहाँ सभी मानवमात्र परमात्मा का ही अंश है, इसलिए बराबर है। निराला को यह 'अद्वैत भावना' वाला धार्मिक एकता का सूत्र वेदांत में दिखा। 'धार्मिक एकदेशिकता' निबंध में निराला लिखते हैं:– *"वेद के ज्ञानकांड के साथ मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि अपने–अपने धर्म के भीतर से सहमत हैं। वेद के मानी भी किसी पुस्तक–विशेष के नहीं, वह ज्ञान–रूप होकर सभी जातियों में सम्मिलित है।"*[65] वेदांत के अद्वैत भाव का शंकराचार्य ने प्रसार किया। शंकराचार्य के लिए संसार माया है और ब्रह्म किसी स्वर्ग में नहीं मनुष्य के भीतर है। इस आधार पर

तैंतीस करोड़ देवताओं का अस्तित्व नहीं बनता और संसार के माया होने के कारण ऊँच–नीच, जाति धर्म आदि सामाजिक मान्यताएँ भी प्रपंच ठहरती हैं। निराला गालिब के शेर 'न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो ख़ुदा होता' में व्यष्टि और समष्टि, जीवन व ब्रह्म का अद्वैत देखते हैं और उसे विवेकानंद की मान्यता 'एका आमी होई बहु देखिते आपन रूप' से जोड़ते हैं। निराला के अनुसार, ***"गालिब की यह भूमि सार्वजनिक है। संसार के उन्नत और परिमार्जित विचारवाले मनुष्य उनके साथ सहमत हैं। यहाँ हिन्दू–मुसलमान और ईसाई का घेरा नहीं। सब साहित्यों की इसे सम्मेलन–भूमि कह सकते है।***[66] 'साहित्य की सम्मेलन–भूमि' को निराला 'साहित्य की समतल भूमि' भी कहते हैं और यह दिखलाने का प्रयत्न करते हैं कि 'हिन्दुओं से सम्पूर्णतः पृथक् मुसलमान जाति भी साहित्य और ज्ञान की भूमि में हिन्दुओं के समान ही है।' इसका श्रेय वे वेदांत को देते हुए लिखते हैं:– ***"ज्ञान का शिखर वेदान्त है। विश्वमैत्री इसकी शिक्षा है।***[67] ध्यातव्य है, निराला के समय में ही हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'विश्व प्रपंच' (1920 ई0) की भूमिका में लॉज के विचारों के हवाले से पहले ही लिख रखा था:– ***"यदि चैतन्य की नित्य सत्ता सर्वमान्य हो गई तो फिर सब मतों की भावना का समर्थन हुआ समझिए क्योंकि चैतन्य तर्क स्वरूप है। नाना भेदों में अभेद दृष्टि ही सच्ची तत्व दृष्टि है। इसी के द्वारा सत्य का अनुभव और मतमतांतर के रागद्वेष का परिहार हो सकता है।***[68] ध्यातव्य है, आचार्य शुक्ल ने लॉज के वक्तव्य का 'अखंडत्व' नाम से अनुवाद भी किया था। आचार्य शुक्ल ने 'नाना भेदों में अभेद' की इस दृष्टि को साहित्य में 'लोक सामान्य की भावभूमि' से जोड़ा और 'ज्ञान–प्रसार से भाव–प्रसार' का रास्ता देखा। निराला के लिए यही 'नाना भेदों में अभेद' 'वेदांत का कर्मकांड' था और 'लोकसामान्य की भावभूमि' 'साहित्य की समतलभूमि' बन गई, जहाँ निराला अनुभूत करते हैं:–

"जग का एक देख तार
कण्ठ अगणित, देह सप्तक
मधुर स्वर–झंकार

बहु सुमन, बहुरंग, निर्मित एक सुंदर हार
एक ही कर से गूंथा, उर एक शोभा भार।"[69]

'हमारा वर्तमान काव्य' निबंध में भी निराला 'साहित्य को दायरे से तोड़कर विश्वमानवतावाद से जोड़ने की वकालत करते हुए एक बार फिर 'ज्ञानकांड' को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं:– *"हमारे सामने एक दूसरा ही प्रश्न साहित्य के भीतर से हल होने के लिए आया है। वह है प्रसार, इतना कि समस्त विश्व के मनुष्य हमारी मनुष्यता दायरे में आ जाएं, हर तरह कर्म, वाणी और मन में भी। यही क्रिया हमारे काव्य में हो चली है। वैदिक काल ऐसा ही था। ज्ञानकांड इसलिए देश, काल और पात्र के भेद से रहित है। यही कारण है कि वह आज भी इस तरह चमकता हुआ सत्य है।"*[70] निराला जिस 'काव्य के ज्ञानकांड' को विकसित करना चाहते थे, वह देश, काल और पात्र से रहित सर्वकालिक व सार्वदेशिक ही हो सकता था।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाव्य एक ऐसा ही काव्य–जगत था जिसमें मानवतावाद को परिश्रय मिला और भक्ति के धरातल पर मानवीय एकता की स्थापना हुई। कबीर की कविता में भक्ति और सामाजिक दोनों धरातल पर जाति–धर्म की भावना तिरोहित है। निराला शंकर के अद्वैतवादी दर्शन के बाद कबीर के समतावादी काव्य में ज्ञानकांड का विस्तार देखते हैं:– *"कबीर एक ऐसे ऊँचे विचारवाले साहित्यिक हमारी हिन्दी में हैं जिनका जोड़ संसार में दुर्लभ है। क्या कहीं एक अपढ़ मनुष्य इतना बड़ा ज्ञानी कवि हुआ है? हिन्दी साहित्य का ज्ञान–कांड यदि कबीर के साहित्य को कहें तो अत्युक्ति न होगी। पर हिन्दी में ही कबीर का जैसा आदर होना चाहिए नहीं हुआ।.....कबीर की उलटबांसियों में विरोध के भीतर से जो सत्य है अज्ञान के कारण हिन्दी भाषी उन्हें नहीं समझते।"*[71] यहाँ यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि निराला के समय में 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' 'रहस्यवाद' को अभारतीय घोषित कर रहे थे। कबीर का 'साँप्रदायिक रहस्यवाद' उन्हें पसंद न था। कबीर, रवीन्द्रनाथ के प्रिय थे और रवीन्द्रनाथ ने कबीर की सौ कविताओं का अनुवाद भी किया था। छायावादी कवि रवीन्द्रनाथ के विचारों से प्रभावित थे। इसलिए छायावादी

कवियों का कबीर के प्रति झुकाव स्वाभाविक था। दूसरी बात यह है कि आचार्य शुक्ल ने कबीर की उलटबांसियों को ही लक्ष्य कर 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखाः— *"अनेक प्रकार के रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा ही इन्होंने ज्ञान की बातें कहीं हैं जो नयी न होने पर भी वाग्वैचित्र्य के कारण अपढ़ लोगों को चकित किया करती थीं।"*[72] निराला का मानना था कि इन उलटबांसियों में भी सत्य है। ऐसे भी निराला नहीं मानते थे कि कबीर की रचनाओं विशेषकर उल्टवांसियों को 'अपढ़ लोग' समझ सकते हैं। निराला ने यह माना कि भक्त कवियों ने यद्यपि उस समय की प्रचलित जन भाषा में ही अपना साहित्य रचा, फिर भी निराला यह नहीं मानते कि तुलसी, सूर, कबीर आदि भक्त कवियों की रचनाएँ सहज और बिल्कुल साधारण भाषा में 'अपढ़ लोगों' को भी बोधगम्य हो सकती है। 'साहित्य और भाषा' निबंध में निराला ने स्पष्ट लिखा हैः— *"यह सब साधारण जनों की समझ में आने लायक काव्य नहीं। कबीर तो अपनी विशेषता में और मुश्किल हैं। पंडित न होते हुए भी अलंकार लिखते हैं।"*[73] 'अन्यत्र' भाषा निबंध में भी निराला ने लिखा हैः— *"तुलसी, सूर, कबीर लोकनायक महाकवि थे। पर उनकी भाषा और भाव ऐसे नहीं कि साधारण लोग आसानी से समझ सकें। यदि सैकड़े में 25—30 पद्य सर्वसाधारण के समझ में आ भी जायें तो भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि लोग बहुत सीधी भाषा लिखते थे।"*[74] इन कवियों के तर्क द्वारा निराला अपनी भाषा पर क्लिष्टता लगाने वाले आरोप का जवाब दे रहे थे। पर, जैसा कि उन्होंने पहले कहा कि अज्ञानता के कारण हिन्दी भाषियों ने कबीर को नहीं समझा, दरअसल यह स्वयं कवि निराला का अपना दुःख था।

'सरोज—स्मृति' कविता में निराला ने अपनी रचनाओं पर होनेवाले प्रतिवाद को 'समर', 'शर—क्षेप', 'रण—कौशल' आदि शब्दों से इंगित करते हुए संपादक की अज्ञानता व उनकी रचनाओं को वापस करने के दर्द को इंगित करते हुए लिखा हैः—

"लिखता अबाध गति मुक्त छंद
पर संपादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर

दे एक–पंक्ति दो में उत्तर।
लौटती रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रांतर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन–गुन कर
संपादक के गुण; यथाभ्यास
पास की नोंचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर–उधर
भाव की चढ़ी पूजा उन पर।"[75]

दरअसल निराला अपनी कविताओं के अनादर के पीछे जनता के अज्ञान से ज्यादा समालोचकों व संपादकों की अज्ञानता मानते थे। जनवरी, 1933 के 'सुधा' में प्रकाशित 'हमारा वर्तमान काव्य' निबंध में निराला लिखते हैं:– *"हमारे साहित्य में भी काव्य के स्वतंत्र राजपथों का निर्माण होने लगा है। पर जनता अपने प्राचीन परिच्छेद के कारण उस पथ पर चलते हुए संकुचित होती है, अज्ञान के कारण आक्षेप करती है। हाँ, यह ठीक है कि इसमें जनता का उतना दोष नहीं दिखलायी पड़ता, जिनता समालोचकों और सहृदय टीकाकारों का अभाव दृष्टिगोचर होता है।"*[76] निराला को पूरा विश्वास था कि वे जो लिख रहे हैं, वह 'काव्य के स्वतंत्र राजपथ का निर्माण' करनेवाला बनेगा। यदि उनकी रचनाओं को यथोचित सम्मान नहीं मिल रहा, इसका मतलब था जनता में 'काव्य के ज्ञानकांड' की कम समझ। अगर वास्तव में देखा जाए तो साहित्य का संबंध 'अपढ़ लोगों' से नहीं, 'शिक्षित जनता' से अधिक होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास' में शिक्षित जनसमूह की बदलती हुई प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके' ही हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किया है। सरल भाषा लिखने की माँग को निराला अपढ़ या अर्द्धशिक्षित के ही काम की चीज समझते थे। 'साहित्य और भाषा' निबंध में निराला ने लिखा है:– *"भाषा–क्लिष्टता से संबंध रखनेवाले प्रश्न हिन्दी की तरह अपर भाषाओं में नहीं उठते। हिन्दी को राष्ट्रभाषा माननेवाले या बनानेवाले लोग साल में तेरह बार आर्तचीत्कार करते हैं–भाषा सरल होनी चाहिए, जिससे आबालवृद्ध समझ सकें। मैंने आज तक किसी को यह कहते हुए नहीं सुना*

कि शिक्षा भूमि विस्तृत होनी चाहिए, जिससे अपने शब्दों का लोगों को ज्ञान हो, जनता ऊँचे सोपान पर चढें।"[77] निराला के लिए 'काव्य का ज्ञानकांड' विकसित करने के लिए एक शर्त यह भी थी कि जनता अधिक शिक्षित हो भाषागत क्लिष्टता को भी समझ सके।

निराला द्वारा कबीर की कविता में 'ज्ञानकांड' देखने के कारण भक्ति व सामाजिक धरातल पर जाति–धर्म आदि से विभाजित मानव–मात्र की एकता थी और धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार भी। निराला का आलोचक मन तुलसी की कविता में वह सामाजिक समरसता नहीं देखता, भले ही कवि मन उनमें 'ज्ञानोद्वत प्रहार' देखता हो। आधुनिक मानस की विशेषता है कि वह हर मुद्दे को ज्ञान व तर्क के धरातल पर कसता है। यही कारण है कि निराला कबीर की कविता को तुलसी की कविता की अपेक्षा आधुनिक जनमानस से अधिक सम्बद्ध मानते हुए लिखते हैं:– *"कबीर निर्गुण ब्रह्म की उपासना से आधुनिक–से–आधुनिक के मनोनुकूल होते हुए भी भाषा–साहित्य में जैसे अमार्जित है, वैसे ही सूर, तुलसी आदि भाषा–संस्कार रखते हुए भी कृष्ण और राम की सगुण उपासना के कारण आधुनिकों की रूचि के अनुकूल नहीं है।"*[78] कहने का तात्पर्य कि कबीर के भाव आधुनिक मनोवृत्ति को छूते हैं, पर भाषा वैसी परिमार्जित नहीं है। गीतिकाव्य की दृष्टि से कबीर की भाषा को पूर्णतः खारिज करते हुए निराला ने स्पष्ट लिखा है:– *"हिन्दी में जो प्रचलित गीत हैं, उनमें कबीर के गीत शायद सबसे प्राचीन हैं, कई दृष्टियों से कबीर का बहुत ऊँचा स्थान है। कबीर की भाषा का ओज अन्यत्र कम प्राप्त होता है। फिर भी साहित्य और संगीत के विचार से, दोनों की संस्कृति की दृष्टि से, मुझे कबीर के गीत आदर्श नहीं मालूम होते। सूर के गीत साहित्यिक महत्व रखते हैं, तुलसी के भी ऐसे ही हैं। मीरा संगीत की देवी हैं।"*[79] ध्यातव्य है, कबीर की भाषा की साहित्यिकता के संदर्भ में आचार्य शुक्ल भी कुछ ऐसा ही विचार रखते थे। उन्हें निर्गुण संतों की रचनाओं में 'संस्कृत बुद्धि', 'संस्कृत हृदय' और 'संस्कृत वाणी' का अभाव दिखता था। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के प्रथम संस्करण में आचार्य शुक्ल ने कबीर की काव्यभाषा को 'सुसंस्कृत और साहित्यिक' नहीं बतलाया है। वहीं 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के संशोधित संस्करण में आचार्य शुक्ल ने लिखा है:– *"भाषा बहुत*

परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी कबीर की उक्तियों में कहीं–कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है।[80] स्पष्ट है कि काव्य की विषय–वस्तु को लेकर छायावादी कवियों और आचार्य शुक्ल में मतैक्य न हो, किन्तु काव्य–भाषा के प्रतिमान तय करने में आचार्य शुक्ल पर छायावादी संस्कार स्पष्ट परिलक्षित हैं। इस संदर्भ में डॉ0 नामवर सिंह ने 'कविता के नए प्रतिमान' में लिखा है:– *"इतिहास की यह भी एक विडंबना ही है कि छायावाद का विरोध करके भी आचार्य शुक्ल आधुनिक हिन्दी के काव्य–पाठक के संस्कार को बहुत कुछ छायावादी रुचि से संबलित कर गए जिसे छायावाद का पतन–जैसी पुस्तकें भी न तोड़ सकीं।*[81]

निराला ने कबीर व तुलसी के वैचारिक दर्शन व काव्यभाषा को लेकर जो बात कही थी, वही बात 'नयी कविता' के दौर में मुक्तिबोध ने भी कही थीं। 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' में 'मध्ययुगीन भक्ति–आंदोलन का एक पहलू बतलाते हुए मुक्तिबोध प्रश्न उठाते हैं– *"मेरे मन में बार–बार यह प्रश्न उठता है कि कबीर और निर्गुण पंथ के अन्य कवि तथा दक्षिण के कुछ महाराष्ट्रीय संत तुलसीदास की अपेक्षा आधुनिक क्यों लगते हैं?... कबीर हमें अपेक्षित रूप से आधुनिक क्यों लगते हैं, इस मूल प्रश्न का उत्तर भी उसी सांस्कृतिक इतिहास में कहीं छिपा हुआ है।*[82] आगे तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के प्रसंग में कबीर की अपेक्षा तुलसी की काव्यभाषा को श्रेष्ठ बतलाते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है:– *"जहाँ तक 'रामचरितमानस' की काव्यगत सफलताओं का प्रश्न है, हम उनके सम्मुख केवल इसलिए नतमस्तक नहीं है कि उसमें श्रेष्ठ कला के दर्शन होते हैं, बल्कि इसलिए कि उसमें उच्च मानव चरित्र थे, भव्य और मनोहर व्यक्तित्व–सत्ता के भी दर्शन होते हैं।...और जब कबीर आदि महान जनोन्मुख कवियों का संदेश देखते हैं, तो हम उनके रहस्यवाद से भी मुँह मोड़ना चाहते हैं।*[83] भले ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'वाणी का डिक्टेटर' घोषित किया हो, पर यह भी सत्य है कि नई भाषा के अन्वेषक के लिए कबीर की काव्य–भाषा आदर्श नहीं रही।

भाषा की सृजनशीलता के प्रश्न पर विजयदेव नारायण साही ने एक स्थान पर लिखा है:– *"सृजनशीलता आसान रास्ता छोड़कर नए रास्ते तैयार*

करती है जो शब्दों को परिपाटी ग्रस्त–अभिव्यक्ति और बाजारू अभिव्यक्ति, इन दोनों खतरों से बचाकर जीवित अभिव्यक्ति बनाती है। इसलिए सृजनशीलता है।[84] 'शब्दों की परिपाटी ग्रस्त अभिव्यक्ति' और 'बाजारू अभिव्यक्ति' से बचते हुए कविता के कथ्य व भाषा में संबंध स्थापित करना और नयी भाषा की खोज करना निराला व मुक्तिबोध दोनों का ध्येय था। इस विकट कर्म में मुक्तिबोध और निराला दोनों आरंभ में थोड़ा लड़खड़ाए थे। निराला के समक्ष चुनौती कविता के कथ्य व भाषा दोनों को आधुनिक मापदंडों से जोड़ने की थी। केदारनाथ सिंह जी ने इसे एक कठिन कार्य मानते हुए लिखा है:– *"आधुनिकता कोई आकस्मिक घटना नहीं, बल्कि एक लंबी विकास–क्रिया का परिणाम है। मुक्ति आंदोलन के समानान्तर और कई बार उसके आगे–पीछे यह प्रक्रिया पुराने मूल्यों से टकराती हुई और उन्हें छिन्न–भिन्न करती हुई अपने ढंग से चुपचाप चलती रही है। हिन्दी कवि को यह लड़ाई दो मोर्चों पर लड़नी पड़ी–पहले भाषा के मोर्चे पर और लगभग उसी के साथ संवेदना और विचार के मोर्चे पर भी। भाषा को आधुनिक बनाने का काम अधिक लंबा और अधिक जटिल था। लोक–व्यवहार में वह अपने ढंग से घटित हो रहा था। काव्यभाषा को उस लोक–स्पंदन तक पहुँचने में थोड़ा समय लगा इसलिए हम पाते हैं कि निराला जैसे श्रेष्ठ आधुनिक कवि की कविताओं में भी कई बार संवेदना और भाषा के बीच एक अजब किस्म का द्वन्द्व या तनाव दिखाई पड़ता है।*[85] शुरूआती स्तर पर यह द्वन्द्व या तनाव मुक्तिबोध के यहाँ भी है। केदारनाथ सिंह जी ने अपने एक अन्य निबंध कालबद्ध और पदार्थमय में 'मुक्तिबोध की भाषा के अजनबीपन' की बात करते हुए लिखा है:– *"उनकी घर की भाषा और कविता की भाषा का द्वंद्व उनकी पूरी कविता की बनावट में एक अजीब–सा रचनात्मक अजनबीपन पैदा करता है।*[86] ध्यान दें तो मुक्तिबोध के साधारण शब्दों के बीच इतने अजनबी समासबद्ध शब्द आ जाते हैं कि भाषा खुरदुरी हो जाती है। उसी धरातल पर 'निराला व मुक्तिबोध' के बीच संबंध स्थापित करते हुए डॉ0 नामवर सिंह ने 'कविता के नए प्रतिमान' में लिखा है:– *"निराला की आरंभिक कविताओं के समान मुक्तिबोध की आरंभिक कविताओं में भी बिदकने वाली उबड़–खाबड़ भाषा मिलती है जिसकी आवृत्ति आगे चलकर निराला के 'बेला', 'नए पत्ते' के*

प्रयोगकाल में भी दिखाई पड़ती है। किन्तु, इस अटपटेपन के बीच ही निराला ने एक ओर 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' की रचना की तो मुक्तिबोध ने चंबल की घाटी' में और अंधेरे में की। इसमें एक रीतिबद्ध भाषा की चमक, लालित्य, प्रसन्नता आदि गुण भले ही न हों किन्तु वह प्राणशक्ति असंदिग्ध है जो सृजनशीलता की अनिवार्य शर्त हैं।[87] यही कारण है कि डॉ0 नंदकिशोर नवल 'निराला और मुक्तिबोधः चार लंबी कविताएँ' में इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि *"निराला और मुक्तिबोध दोनों की कविताएँ ग्रंथिल हैं।*[88] जब कोई कविता की बंधी–बँधाई परिपाटी में नया प्रतिरोध करता है तो जल्दी मान्य नहीं होता। इस धरातल पर मुक्तिबोध और निराला की तुलना करते हुए एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर इशारा करते हुए डॉ0 नामवर सिंह लिखते हैंः– *"नई कविता के अंतर्गत मुक्तिबोध की स्थिति बहुत कुछ वही है जो छायावाद के अंतर्गत निराला की थी। छायावाद में सबसे पहले विरोध पंत का हुआ और वही सबसे पहले स्वीकृत हुए, फिर प्रसाद और अंत मे महादेवी। छायावाद के समाप्त होने तक निराला स्वीकृत नहीं हो पाए थे। नई कविता में सबसे पहले विरोध अज्ञेय का हुआ और स्वीकृत सबसे पहले वही हुए। मुक्तिबोध की ओर ध्यान तब गया, जब वे मृत्युशय्या पर थे।*[89] यह भी गौरतलब है कि पंत निराला की अपेक्षा और अज्ञेय मुक्तिबोध की अपेक्षा जीवन एवं काव्य भाषा के स्तर पर कहीं अधिक अभिजात्य भी थे। पंत जी की प्रतिष्ठा और अपनी उपेक्षा का ध्यान निराला को हमेशा रहा। अपने एक निबंध 'मेरे गीत और कला' में उन्होंने अपने ऊपर लगे आरोपों का उत्तर भी दिया है और पंत जी की कमियाँ भी गिनाई और कहा कि इस आलोचना को लिखने से पहले पंत जी और हिन्दी–दोनों के मुखों में से उन्हें 'हिन्दी का मुख' देखना अच्छा लगा। आगे उन्होंने लिखा हैः– *"मेरे प्रति बड़े–बड़े अधिकांश साहित्यकारों की विमुखता का यही कारण है–मैंने सदैव हिन्दी का मुख देखा है।*[90]

निराला के लिए 'हिन्दी का मुख' देखने का अर्थ था – एक नई सृजनशील भाषा का निर्माण। यह सत्य है कि निराला काव्य में भाव को अधिक महत्व देते थे। पर, एक स्थान पर उन्होंने लिखा हैः– *"केवल भाव–प्रधान जो कविता होती है, उसमें रूप नहीं होता। भावना की ही*

चाँदनी रहती है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक कविताएँ इसी तरह की होती हैं। वेदांत के भाव इसी तरह के हैं, पर रूप न रहने के कारण बहुत से समीक्षक उन पंक्तियों को कविता नहीं मानते।[91] निराला अपनी एक कविता 'जागरण' में वेदों की भाषा की विशेषता बतलाते हुए लिखते हैंः–

"ज्योति वह दिखाती थी/संचालित करती थी उसी ओर/
सहज भाषा में/समझाती थी ऊँचे तत्व/
अलंकार–लेश–रहित, श्लेष–हीन/शून्य विशेषणों से–/
नग्न–नीलिमा–सी व्यक्त/भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी।"[92]

'अलंकार–लेश–रहित, श्लेष–हीन' या दूसरों शब्दों में कहें तो 'रूप हीन' भाषा निराला का आदर्श कैसे हो सकती थी। वेदों का ज्ञानकांड विषय–स्तर पर उन्हें मान्य था, भाषा के स्तर पर नहीं। आखिरकार भाषा की कारीगरी भी कोई चीज है। विद्यापति और चंडीदास की तुलना करते हुए निराला ने विद्यापति को श्रेष्ठ बतलाते हुए लिखा हैः–*"कविशेखर विद्यापति कविता के कलावंत भी है। श्री हर्ष की तरह कालिदास की तरह भावुक भी, परंतु चंडीदास में कविता की कारीगरी उतनी नहीं, जितनी उनकी भावुकता प्रबल है। भावुकता या आवेश में ही कला के अनमोल रत्न, उनकी लेखनी से निकले हैं, उन्होंने ज्ञात भाव से कविता की (उच्च कोटि की) कारीगरी नहीं की। शायद वह इस तरह कर भी न सकते थे। कारण, उनकी पदावली के पाठ से जान पड़ता है, वह बहुत बड़े विद्वान न थे।*[93] इन बातों से दो निष्कर्ष निकलते हैं कि निराला भावों की प्रबलता के साथ–साथ भाषा की कारीगरी के भी पक्षधर थे और दूसरा इस कारीगरी के लिए कवि में विद्वता और काव्य समय का ज्ञान होना आवश्यक मानते थे।

निराला ने एक स्थान पर रीतिकालीन कवि पद्माकर को लक्ष्य कर अपने समय में कवि के लिए अनिवार्य शर्त्तों की व्याख्या करते हुए लिखा हैः–*"आजकल की भावना तथा कल्पना की सीमा जिस तरह बढ़ी हुई, कवि होने के लिए जितने बड़े ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है, जितना बड़ा अनुभव तथा अध्ययन चाहिए, मैं जहाँ तक 'संस्कृत प्राकृत पढ़े हैं गुनग्रामा*

हैं'– ऐसे पद्माकर को समझ सका हूँ, वे इस विचार से बहुत पीछे हैं, परन्तु वे, भाषा के मार्जन में अपने समय के कवियों से आगे हैं।[94] स्पष्ट है, निराला कवि होने के लिए काव्य–ज्ञान और 'भाषा के मार्जन' को एक अनिवार्य शर्त्त के रूप में देखते हैं। 'हमारे साहित्य का ध्येय' बतलाते हुए निराला लिखते हैं:– *"यह सच है कि इस समय देश की दशा में सुधार के लिए कार्यकारी सच्ची राष्ट्र–नीति की अत्यंत आवश्यकता है, पर यह भी सच है कि देश में नवीन संस्कृति के लिए व्यापक साहित्यिक ज्ञान भी उसी हद तक जरूरी है।*[95] निराला अपने समय के कवियों में इसी 'साहित्यिक ज्ञान' की कमी देख रहे थे। निराला जनता के 'साहित्यिक ज्ञान' को भी विकसित न कर केवल व्यवसाय–बुद्धि से लिखनेवाले साहित्यकारों की आलोचना करते हुए लिखते हैं:– *"जिनको संधि–समास का भी ज्ञान नहीं, ऊँचे साहित्य की सृष्टि उनके लिए नहीं, न असमस्त शब्दों की किताबें लिखने से राष्ट्रभाषा का उद्धार हुआ जाता है। जो लोग समय को देखते हुए अपनी पुस्तकों या पत्रों के प्रचार के लिए उनमें साधारण भाषा और सरल भावों को रखने का प्रयत्न करते हैं, वे ऐसा व्यवसाय की दृष्टि से करते हैं। यह हिन्दी का हित न हुआ। हित तो गहन शिक्षा द्वारा ही होगा।*[96] केवल व्यवसाय की दृष्टि से 'सरल भाव' और 'साधारण भाषा' से संकलित काव्य को निराला हेय मानते थे। उन्होंने कभी भी व्यवसाय की दृष्टि से न लिखा, यदि वे लिखते तो सरोज–स्मृति में निराला कदापि नहीं लिखते:–

"धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित–काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ–समर।"[97]

निराला का समय 'स्वार्थ समर' नहीं था, वह हिन्दी के हित का साहित्यिक–समर था जो अर्थ–लोलुप न था। दूसरी ओर वे केवल प्रशंसा के भी स्वार्थी न थे। प्रशंसा मात्र के लिए साहित्यिक ज्ञान प्रदर्शन करने

वालों के लिए निराला ने लिखा है:– *"बहुत से लोग काव्य की साधना करते–करते कुछ ही दिनों में तारीफ की साधना करने लगते हैं। उनका लक्ष्य काव्य–रचना की ओर जितना नहीं, प्रशंसा पाने की ओर उससे दस–गुना ज्यादा रहता है। हिन्दी में जितने शेली, कीट्स, बर्ड्सवर्थ, टैगोर और खय्याम हैं, शायद खय्याम ही की तरह कुछ रूबाइयाँ लिख कर खत्म हो गए। पक्तियाँ शिथिल, अपनी ही आँखों का मरीज मालूम पड़ती हैं। भाव गया, शब्दों के कसीदे पढ़ने लगे।"*[98] निराला अपनी ही काव्य–पंक्तियों को 'अपनी ही आँखों का मरीज' नहीं बनाना चाहते थे, न ही भाव रहित 'शब्दों के कसीदे' पढ़ने के हिमायती थे।

निराला के समय आचार्य शुक्ल ने 'काव्य में रहस्यवाद' निबंध में छायावादी रहस्यवाद की आलोचना के साथ–साथ एक महत्वपूर्ण बात लिखी थी:– *"भावुक जब कल्पना–संपन्न और भाषा पर अधिकार रखनेवाला होता है, तभी कवि होता है।"*[99] निराला आचार्य शुक्ल की इस बात से अपने समीक्षा सिद्धांत में पूर्णतः सहमत दिखते हैं। 'चित्रण–कला' निबंध में उन्होंने लिखा है:– *"भाषा के नियमों की पाबंदी न रखने वाले यदि कुशल कलाकार हैं, यदि उन्हें विकास का अच्छा ज्ञान है तो वे किसी भी प्रकार की भाषा का प्रयोग, जहाँ चाहे, कर सकते हैं।"*[100] उक्त निबंध में निराला ने प्राचीन गौरव के लिए 'खुले हुए पुष्प की तरह पूर्ण–विकच भाषा और ग्राम्य–चित्रों के लिए बहावदार, स्वच्छ व सरल भाषा' लिखने की बात कही है। यही 'भाषा का अधिकार' है जो निराला कवियों में विकसित होता हुआ देखना चाहते थे।

निराला के पूर्व महावीर प्रसाद द्विवेदी पद्य के नियम को 'कवि के लिए बेड़ियाँ' मानकर निराला जैसे कवियों की स्वाधीन चेतना को प्रोत्साहित कर रहे थे, परन्तु काव्यभाषा के प्रश्न पर द्विवेदी जी सरलता का पक्ष लेते हुए लिख रहे थे:– *"भाषा सरल हो, सार्वजनीन और सार्वकालिक हो।"*[101] मैथिलीशरण गुप्त ने भी सरल और सुस्पष्ट भाषा की वकालत करते हुए अपनी 'ब्रजभाषा और खड़ी बोली' शीर्षक कविता में लिखा है:–

"कहना सब सुस्पष्ट, सरल शब्दों में खुलकर,
बनकर रहें सुवर्ण वर्ण कांटे पर तुलकर।"[102]

निराला भाव और भाषा का स्पष्ट संबंध मानते थे और उन्हें भावों की वक्रता या उसका निरालापन पसंद था। यह बिल्कुल सरल भाषा में संभव नहीं था। निराला मानते थे कि 'किसी एक हद के अंदर भाषा की प्रकृति कभी बंध नहीं सकती।' एक ही काल में भाव और भाषा दोनों की दृष्टियों से कवियों में भी भेद होता है। परंतु, 'साहित्यिक ज्ञान' रखनेवाले भाषा मर्मज्ञ को वे सीधी व सरल भाषा लिखने की विवशता से मुक्त करते हैं। 'भाषा' निबंध में उन्होंने लिखा हैः– *"सीधी भाषा लिखने की आवाज उठाकर लोग अधिकांशतः अर्धशिक्षित और अल्पशिक्षितों की सहानुभूति प्राप्त कर प्रसिद्ध हो सकते हैं। परन्तु कुछ भी स्थैर्य रखकर विचार करनेवाले समझ सकेंगे कि वे साहित्य के हित के मूल में कितना कठोर कुठाराघात करते हैं। किसी भाषा–मर्मज्ञ को सीधी भाषा लिखने के लिए मजबूर करना उनका अपमान करना है।"*[103] निराला पर भाषागत क्लिष्टता के बहुत आरोप लगते रहते थे। निराला का मानना था कि तुलसीदास जैसे महान कवि ने केवल 'प्रचलित भाषा' और 'धर्म–प्रचार' का विचार रखा, भाषा की सरलता और क्लिष्टता का विवेचन नहीं किया। हालांकि, निराला यह मानते हैं कि तुलसीदास भाषा–मर्मज्ञ थे। निराला के अनुसार, भाषा–मर्मज्ञ को क्लिष्ट भाषा लिखने का पूरा अधिकार है। वे साहित्य को दूसरों को खुश करनेवाला नहीं बनाना चाहते थे। उन्होंने साफ लिखा कि 'साहित्य को लच्छेदार भाषा लिखने वालों की जरूरत नहीं है। निराला के अनुसार, *"ऐसी भाषा कोई भी साहित्यिक नहीं लिख सकता जिसके शब्द कोष में न हो, जिसका शब्द बंध व्याकरण–सम्मत न हो। ऐसी दशा में जनता की भाषा की भूमि से अग्रसर होने के लिए न कहकर साहित्यिक को सीधा लिखने के लिए मजबूर करना उसे साहित्यिक से मजदूर बनाना है।"*[104] निराला साहित्य साधक थे, दूसरों के हुकुम बजाने वाले मजदूर नहीं।

निराला के समय हिन्दी व उर्दू का विवाद और राष्ट्रभाषा के लिए 'हिन्दी' व 'हिन्दुस्तानी' का भी विवाद खूब चल रहा था। कुछ लोग

हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए 'उर्दू–मिश्रित 'हिन्दुस्तानी' भाषा की वकालत कर रहे थे तो कुछ साहित्यिक भाषा को सरल बनाने के लिए। निराला ने स्पष्ट कर दियाः–*"हिन्दी मुस्लिम ऐक्य के लिए ललित शब्दावली की टाँग तोड़कर लंगड़ी कर देने से लड़खड़ाती हुई भाषा अपनी प्रगति में पीछे ही रहेगी। हमारा यह अभिप्राय भी नहीं कि भाषा मुश्किल लिखी जाए; नहीं, उसका प्रवाह भावों के अनुकूल ही रहना चाहिए। अपने आप निकली हुई और गढ़ी हुई भाषा छिपती नहीं। भावानुसार भाषा कुछ मुश्किल होने पर भी समझ में आ जाती है।"*[105] निराला ने साफ कर दिया कि 'गैर लोगों को अपने में मिलाने का तरीका भाषा को आसान करना नहीं, न मधुर करना उसमें व्यापक भाव भरना और उसी के अनुसार चलना है।' निराला महसूस कर रहे थे कि संदर्भ और भाव के अनुसर कठिन भाषा लिखी ही नहीं जाती। 'भाषा' निबंध के आरंभ में ही उन्होंने लिखा हैः–*"हमारे साहित्य में धीरे–धीरे अब यह विचार जोर पकड़ता जा रहा है कि हमें बहुत ही सीधी भाषा का प्रयोग करना चाहिए, यद्यपि अभी मुश्किल और ठीक–ठीक मुश्किल लिखने की दो–एक को छोड़कर किसी भी साहित्यिक को तमीज नहीं।"*[106] यहाँ ठीक–ठीक मुश्किल' शब्द ध्यान देने के योग्य है। जरूरी नहीं कि जो मुश्किल हो वह 'ठीक–ठीक' हो। छायावादी कविताओं में निराला 'इस ठीक–ठीक मुश्किल' का निर्वाह एक सीमा तक देख रहे थे। 'प्रबंध–प्रतिमा' में संकलित 'साहित्य और भाषा' निबंध में छायावादी कविताओं के न समझ में आने का जवाब देते हुए लिखाः–*"छायावाद की कविताएँ भाषा–साहित्य के विकास के विचार से अधिक विकसित रूप हैं। जहाँ–जहाँ उन कविताओं में खूबी आ गयी, वहाँ–वहाँ बहुत अच्छी तरह यह प्रमाण मिल जाता है। जिन स्थानों में धुँधलापन है, भावों का अच्छा प्रकाशन नहीं हुआ, चित्र चमकते हुए नहीं नजर आते, वहाँ सामयिक दुर्बलता है जिससे आगे बढ़ने की साहित्य तथा साहित्यिकों को जरूरत है।"*[107] स्पष्ट है कि भाव व भाषा का सामंजस्य कितना जरूरी है।

निराला ने भाषा को साहित्यकार की रचना–प्रक्रिया और उसके अभिव्यक्ति सामर्थ्य का महत्वपूर्ण अंग मानते हुए लिखा हैः–*"भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छा मात्र से बदलने वाली देह है। इसलिए रचना और भाषा के अगणित स्वरूप भिन्न–भिन्न साहित्यिकों की विशेषताएँ*

जाहिर करते हुए देख पड़ते हैं। रचना युद्ध–कौशल है और भाषा तदनुरूप अस्त्र। इस अस्त्र का पारंगत वीर साहित्यिक ही यथासंभव समुचित प्रयोग कर सकता है।[108] भाव के अनुसार भाषा, छंद और लय का निर्वाह करने वाले निराला 'रचना के युद्ध–कौशल' में 'भाषा के अस्त्र' के साथ प्रचंड प्राणशक्ति, दुर्दमनीय जिजीविषा तथा सूक्ष्म संवेदना के साथ उतरे। 'पारंगत वीर साहित्यिक' की तरह निराला ने भाषा का 'यथासंगत समुचित प्रयोग' किया। एक तरफ उन्होंने पूर्ण तत्सम शब्दावली प्रधान भाषा 'राम की शक्ति–पूजा' और 'सहस्रोब्दि', 'बुद्ध के प्रति' जैसी रचनाओं में लिखी, यथाः–

"राघव–लाघव–रावण–वारण–गत–युग्म प्रहर
उद्धत–लंकापति–मंर्द्धित, कपि–दल–बल–विस्तर।"[109]

'कुकुरमुत्ता' जैसी कविताओं और गजलों में अरबी–फारसी, अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग करने से नहीं हिचके। यथा 'कुकुरमुत्ता' का एक उदाहरण द्रष्टव्य हैः–

"आया मौसिम, खिला फारस का गुलाब
बाग पर उसका पड़ा था रोबोदाब
वहीं गंदे में उगा देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठे–सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता
अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पायी खुशबू, रंगोआब
खून चूसा खाद को तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट।"[110]

उसी प्रकार 'नये पत्ते' की 'रानी और कानी', 'खजरोहा', 'घोड़े के पेट में बहुतों को आना पड़ा', 'गर्म पकौड़ी', स्फटिक शिला आदि कविताएँ देशज व लोकगीतों के ज्यादा निकट हैं।

बैल दो थे साँवलिया
और धौला/धौला गरियार था
बांये जुता/अक्सर चलती–चलती

गाड़ी मुड़ जाती थी बुरी तरह बांये को
पूँछ ऐंठकर धौले को फिर दांये को
हौकता था रामलाल का भाई
ता–ता–ता–ता करता। शहनाई
सुनकर मैं हँसता था।"[111]

कहने का तात्पर्य यह है कि निराला जी का भाषा पर पूरा अधिकार था। वे सही अर्थों में 'वाणी के डिक्टेटर' थे। संस्कृत की तत्सम शब्दावली में जहाँ वे एक ओर संधियुक्त शब्दों की भरमार लगा देते हैं, यथा–'शीतलच्छाय', 'तमस्तूर्य', 'गर्जितोमि' आदि तो दूसरी ओर नए अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। यथा– 'सुपरिसका', 'किन्नारगण', 'अरणी' आदि। जहाँ तक नाद–सौंदर्य का प्रश्न है, निराला इसके बादशाह हैं। यथा, 'वन–बेला', कविता का यह प्रसंग देखिए कि किस प्रकार ध्वनि–प्रवाह की भंगिमाओं द्वारा क्रियाओं को चित्रित किया गया है:–

"झुक–झुक, तन–तन, फिर झूम–झूम, हँस–हँस, झकोर
चिरपरिचित चितवन डाल, सहज मुखड़ा मरोर,
भर मुहुर्मुहर तन–गंध निकल बोली बेला–।"[112]

परन्तु, ध्वनि के मोह में कहीं–कहीं शाब्दिक–क्रीड़ा भी मिलेगी, जहाँ अर्थ है भी और नहीं भी। यथा 'सांध्या–काकली', में संकलित यह गीत:–

"ताककम सिनवारि
ताककम सिनवारि
ताककम सिन वारि
सिनवारि, सिनवारि।"[113]

डॉ0 रामविलास शर्मा इन पंक्तियों के संदर्भ में लिखते हैं:– ***"यहाँ निराला ध्रुपद जैसी पुरानी गायिकी के शब्दों के उलट–फेर कर रहे हैं, सामान्य कविता की तरह उसका अर्थ करना व्यर्थ होगा।"***[114]

निराला के इस निरालेपान के कारण उन पर सब कुछ उलट–पुलट करने के कई आरोप लगे। 'मेरे गीत और कला' में इसका उत्तर देते हुए

उन्होंने लिखाः–*"मैं खड़ी बोली का वाल्मीकि नहीं, न वाल्मीकि की 'प्रिये दास यह कैसे तुझको भाया मेरी पंक्ति है; पर 'भयो सिद्ध करि उलटा बापू' अगर किसी पर खप सकता है तो हिन्दी के इतिहास में एकमात्र मुझ पर। कबीर उल्लटबांसी के कारण विशेषता रखते हैं, पर वहाँ छंदों का साम्य है, उल्लटबांसी नहीं, यहाँ छंद और भाव दोनों की उल्टी गंगा बहती है। यह सब उलटापलट मैंने जान–बूझकर नहीं किया और यह उलटापलट है भी नहीं, इससे सीधा और प्राणों के पास पहुँचता रास्ता छंदों के इतिहास में दूसरा नहीं।"*[415] निराला ने यदि कोई 'उलटापट' की भी तो एक नई भाषा की खोज में। वे कालिदास और रवीन्द्रनाथ की भाषा 'में श–ष–ल–व' वर्णों के स्कूल का जीवनभर विरोध करते रहे। यहाँ तक कि सुमित्रानंदन पंत को भी उन्होंने 'श', 'ण', 'व' और 'ल' स्कूल का ही विद्यार्थी बतलाया। मेरे गीत और कला' निबंध में ही निराला लिखते हैंः–*"पंतजी का स्कूल हिन्दी का ष–ण–ल–व स्कूल कहा जा सकता है। 'श–ण–ल–व' के उच्चारण में शरीर की जैसी बनावट होती है। 'स–म–ब–ल' के उच्चारण इसके विपरीत है।"*[416] निराला ने 'श–ण–ल–व' की ध्वनियों को ब्रजभाषा के अनुकूल तो अपनी भाषा 'स–म–ब–ल' को बोलचाल की हिन्दी की ध्वनि–प्रकृति के अनुकूल बतलाया। इस संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं–*"आधुनिक हिन्दी की विशेषता यह है कि विभिन्न जनपदों की ध्वनि प्रकृति से यथेच्छ विशेषता अपनाते हुए संस्कृत की ध्वनि–प्रकृति से भी अपना संबंध कायम रखती है। उर्दू और ब्रजभाषा दोनों के कारण एक हद तक आधुनिक हिन्दी की ध्वनि प्रकृति भिन्न है। इस ध्वनि–प्रकृति का जैसा सहज ज्ञान निराला को है, वैसा दूसरे कवि को नहीं।"*[417]

निराला ने जो कुछ भी लिखा, वह हिन्दी की साधना के लिए, नवीनता के उन्मेष के लिए। जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे एक पत्र में उन्होंने डंके की चोट पर लिखाः–*"मैं जो कुछ लिखता हूँ, साहित्य समझकर। नहीं बन पड़ता, मेरी कमजोरी है। लोग क्या चाहते हैं, लोग जाने। मैं क्या देता हूँ, मैं समझता हूँ।" आज 'परिमल' के गीत आप चाहते हैं, जिन्हें पहले (उन गीतों के जमाने में) लोग नहीं चाहते थे। मुमकिन, फिर आज की चीजें आपको अच्छी लगने लगे।"*[418] निराला तात्कालिक

लाभ के लिए या जनता की तारीफ सुनने के लिए या 'जनकवि' कहलाने का लोभ रखनेवाले कवि नहीं थे। यद्यपि, डॉ रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य–साधना' में निराला की कई भ्रांतियों व कल्पनाओं को रेखांकित किया है। यथा–निराला द्वारा 'अप्सरा' को युगांतकारी उपन्यास समझना, खुद को सबसे बड़ा अद्वैतवादी मानना, बड़ा, दार्शनिक कवि समझना खुद को छायावाद का प्रवर्तक मानना या फिर अपने मुक्तछंद को हिन्दी काव्य की बहुत बड़ी देन मानना या फिर–खुद को हिन्दी के रवीन्द्रनाथ के रूप में पेश करना आदि। इसे चाहे अहंकार कहें या स्वाभिमान, परंतु, अर्थ–समर में जब निराला हारते तो कभी–कभी विचलित भी हो जाते हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैंः– *"प्रतिकूल परिस्थितियों से परेशान होकर वह सोचने लगते कि यदि वह राजपुत्र होते या किसी लक्षपति के कुमार होते तो उन्हें अधिक कीर्ति मिलती, उनका जीवन अधिक सुखी होता संभव है, उनका जीवन अधिक सुखी होता पर यह निश्चित है कि तब वह तुलसीदास के बाद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि न होते।"*[119] निराला ने खुद को राष्ट्रकति के रूप में व्यक्त करते हुए तारीफ के साधक कवियों पर टिप्पणी की हैः–

"पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा–गा गर्दभ–मर्दन–स्वर,
हिन्दी सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो उगभग।"[120]

ध्यातव्य है, यदि निराला महान बनने का स्वप्न देखते हैं तो उसके पीछे भी 'हिन्दी का हित' ही था। उपर्युक्त पंक्तियों में 'हिन्दी सम्मेलन में पीछे को पग' के रूप में निराला का वह दुःख प्रकट हुआ है जब उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन में खुद या फिर किसी अन्य प्रतिभावान को उपेक्षित होते हुए देखा था।

श्री नरोत्तम प्रसाद नागर को 'प्रांतीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद' के बारे में साक्षात्कार देते हुए निराला ने कहा थाः– *"दिल्ली–सम्मेलन से मेरी धारणा दृढ़ हो गयी कि हिन्दी में साहित्य का सही–सही युग नहीं आया। सदी–की–सदी साहित्य सदियों पीछे हैं।.....नवीन हिन्दी, नवीन खड़ी*

बोली, प्राचीन परंपरागत भावों से बद्धमूल है– सोचकर सम्मेलन जाना मैंने उचित नहीं समझा।[421] दरअसल, निराला साहित्य–सम्मेलनों में राजनीतिज्ञों को अधिक सम्मान देने और साहित्य से राजनीति को आगे रखने की बात से दुःखी थे। फैजाबाद, साहित्य सम्मेलन में निराला जी ने 'साहित्य को दायरे से छूटकर' और 'लोक से–सीमा–से प्रांत–से–देश से–विश्व से ऊँचा बतलाया। राजनीति और साहित्य के संबंध में उन्होंने साफ कहा कि 'साहित्य के मंच पर समवेत साहित्यकारों के सामने राजनीति के महत्व की घोषणा करना उसका अपमान है। निराला ने आगे कहाः–*"नवीन हिन्दी प्रसार में नवीन राजनीति से कितना आगे है, वह साहित्य के पृष्ठों पर लिखा जा चुका है। राजनीति भले ही किसी दायरे में रहे, क्योंकि उसे स्वार्थ–साधना करनी है–स्वार्थ व्यक्तिगत हो या देशगत, वह सीमित, इसलिए छोटा है–ऐसे स्वार्थ की वृहतम परिस्थिति नहीं हो सकती। ..... लेकिन साहित्य कभी भी दायरे की भावना से बँधकर सर्वोत्तम नहीं कहला सकता, न आज तक कहला सका। साहित्य के सामने मनुष्य मात्र के कल्याण का लक्ष्य है।*[422] निराला जी को इस बात का भी खेद था कि उस समय के दो बड़े राजनीतिज्ञ गांधी और नेहरू भी उनकी प्रतिभा को नहीं समझ रहे हैं। उन्होंने एक बार गांधी जी से कहा था कि यदि गांधी जी मैथिलीशरण गुप्त की भाषा को कठिन मानते हैं तो वे तुलसीदास और निराला की भाषा को क्या समझेंगे। नेहरू जी को उन्होंने दो टूक शब्दों में जवाब दिया–*"जिस समाज में हमारा जनसमूह है, वह पुराना समाज है, पुरानी रूढ़ियों का गुलाम। नये विचार, नये परिवर्तन, तथा नया उत्कर्ष जब तक नहीं होगा, अच्छे नाटक और उपन्यास लिखे नहीं जा सकेंगे।*[423] स्पष्ट है, निराला 'नये विचार', नये परिवर्तन' अैर 'नये उत्कर्ष' के आकांक्षी थे जहाँ पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति का संकल्प हो। अपने इस संकल्प को पूर्ण करने हेतु निराला निरंतर संघर्षरत रहे और राजनीतिज्ञ नेहरू की अपेक्षा कवि निराला को श्रेष्ठ मानते रहे। 23 नवंबर, 1943 के 'देवदूत' में प्रकाशित 'जवाहर' कविता का यह अंतिम अंश देखिएः–

"गीता की आवृत्ति करके
सुनायी मैंने
मैं हूँ कवि आज, धन्य
नेता है जवाहरलाल।"[124]

निराला जी के लिए काव्य–साधना, समाज सुधार व राजनीति से भी अधिक महत्व रखती थी। कवि का महत्व बतलाते हुए उन्होंने लिखा है:– *"कविता–कुमारी की समाराधना कर सिद्ध हुए संसार के बड़े–बड़े साहित्यिक किसी भी बड़े वीर, बड़े संत तथा बड़े राजनीतिक से बड़ा महत्व रखते हैं। इन्हीं निर्मल चित्रों तथा भावनाओं से धुली हुई आत्माएँ संसार के प्रत्येक प्रदेश के मनुष्यों से साम्य तथा मैत्री–स्थापना का अपार प्रेम भरकर सरिताओं की तरह दिगन्त–विस्तृत हो गयी हैं। मनुष्यों की सहानुभूति, स्नेह, प्रेम, ममता और करुणा की सहस्रों धाराओं में फूटकर अपने हृदय के अमृत से मनुष्यों को सिक्त कर दिया। वहाँ जाति, वर्ण और धर्म का विचार नहीं रहा।"*[125] यही है साहित्य का मानवतावाद और लोककल्याणकारी स्वरूप। पर इस मानवतावाद को निराला केवल आदर्शवाद से जोड़कर नहीं देखना चाहते थे। 'साहित्य का आदर्श' निबंध में निराला लिखते हैं:– *"केवल सत्साहित्य का समर्थन हो नहीं सकता। केवल सत्–सत् लिखने से सृष्टि अधूरी रह जाएगी, दूसरों को वह कभी जाँच नहीं सकता, उसमें कला का अभाव रहेगा। इसलिए सृष्टि की तरह भले और बुरे के मिश्रण से ही साहित्य की उत्पत्ति होती है।"*[126] यही है निराला की साहित्य–दृष्टि जो आदर्शवाद की अपेक्षा यथार्थवाद के अधिक निकट है। इस यथार्थवाद में साहित्य के सभी रूप व दिशाएँ सम्मिलित हैं। ऐसे भी निराला 'भोग न करो, रोग न होगा' जैसी उक्ति को यथार्थवाद से परे मानते थे। उन्हें प्रेमचंद का यह वाक्य युक्तिसंगत लगता था:–'जिसका पाचन दुर्बल है, वह मलाई का स्वाद क्या जाने।' निराला ने जीवन में भोग को निरर्थक नहीं माना। माँस–मदिरा उनके जीवन के अंग की तरह थे। निराला ने 'साहित्य का आदर्श' निबंध में महात्मा गांधी का जिक्र करते हुए उन्हें भी दोष–सहित बतलाया। यहाँ तक निराला ने अपनी एक कविता 'बापू के प्रति' में बापू से यह प्रश्न किया कि बापू यदि तुम मुर्गा खाते तो क्या तुमको लोग भजते? अंत में लिखा:–

"भजता होता तुमको मैं औ
मेरी प्यारी अल्लारक्खी
बापू,तुम मुर्गी खाते यदि!"[127]

भले ही यहाँ 'मुर्गी' का प्रश्न हिन्दू व मुस्लिम को जोड़ने के पक्ष में आया हो और भले ही निराला का यह प्रश्न बेमानी हो, पर एक बात साफ थी कि निराला न जीवन में निरा योगी या संत थे और न ही कविता में उन्होंने कोरे आदर्शवाद को अधिक प्रश्रय दिया है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने निराला के बारे में महत्वपूर्ण बात कही थीः—*"निराला इतने बड़े हैं कि उन्हें देवता और संत कहकर और बड़ा नहीं बनाया जा सकता। उन्हें शराबी—कबाबी पागल कहकर उनके बड़प्पन को खत्म भी नहीं किया जा सकता।"*[128] निराला का जो जीवन वही साहित्य दृष्टि भी। उन्होंने साफ कर दियाः—*"मनुष्य का आदर्श वही है जो निरंजन है। साहित्य सत् और असत् के भीतर से सदाचार और दुराचार के फंदे से छूटकर उसी लक्ष्य पर पहुँचना है।.... सत्साहित्य की सृष्टि के लिए जीवन की सभी दिशाएँ आवश्यक हैं क्योंकि कोई गिर जाता है तो उसके गिरने के कारण साहित्य के लिए उतने ही जरूरी है, जितने उठने वाले कारण।"*[129]

साहित्य के आदर्श से ही जुड़ा प्रश्न है— साहित्य की उपयोगिता। सन् 1936 में हिन्दी में प्रगतिवाद का आविर्भाव हो चुका था। 9—10 अप्रैल 1936 में लखनऊ में हुए हिन्दी के प्रगतिशील लेखक संघ की अध्यक्षता करते हुए प्रेमचंद ने कहा थाः—*"मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ।"*[130] किन्तु, इससे तीन साल पहले ही निराला जी ने साहित्य की उपयोगिता की सीमा पर प्रश्न उठाया और यह बताया कि 'स्थूल उपयोगितावाद' की दृष्टि से केवल जनता के हित को देखकर ही साहित्य को मूल्यवान घोषित किया जा रहा है। 'साहित्य और जनता' निबंध में कोरे उपयोगितावाद को निरर्थक मानकर उसे सौंदर्यवाद से जोड़कर देखते हैं। उन्होंने लिखा हैः—*"कभी—कभी उपयोगितावाद और सौंदर्यवाद एक—दूसरे से मिले रहते हैं जैसे मनुष्य जीवन अधिक स्वच्छ, सुंदर, सुखमय होकर अधिक स्वस्थ भी हो। इसी तरह किसी वाद—विशेष को साहित्य में अलग महत्व न देकर*

साहित्य के ही एक द्रुम से भिन्न शाखा की तरह सन्निविष्ट समझें तो विचार में मिट्टी, जल, आग, हवा और आसमान की तरह जुड़ी हुई सारी सृष्टियों को भिन्नता के भीतर से एक सूत्र में गूंथी हुई देख सकते हैं। यही उद्यम साहित्य का सर्वोत्तम विकास रहा है।[131] निराला ने आदर्श और यथार्थ तथा उपयोगितावाद व सौंदर्यवाद का समन्वय बनाकर रखा। 'कुकुरमुत्ता' हो या 'तोड़ती पत्थर' कविता यथार्थ के धरातल पर कविता के सौंदर्यशास्त्र का दर्शन हो रहा है। निराला जानते थे कि वे साहित्य में जो नया कर रहे हैं, उन्हें स्वीकृति और सहयोग तुरंत प्राप्त नहीं होता। उन्होंने साफ कहा कि 'कोई भी बड़ा नया प्रचलन अपने प्रथम चरण–क्षेप से ही जनता के हृदय की सहानुभूति प्राप्त नहीं करता। इसलिए निराला ने लिखा– *"जनता साहित्य के साथ नहीं रहती, साहित्य के साथ लाई जाती है और जिसे साहित्यिक उपयोगितावाद का आज एक रूप प्राप्त है, कल दूसरा प्राप्त होगा।*[132] निराला का साहित्यिक संघर्ष जनता को साहित्य के साथ लाने का संघर्ष था। जनता की विमूढ़ता को दूर कर उसका साहित्यिक ज्ञान विकसित कर उसे सत्साहित्य के योग्य बनाने का संघर्ष था।

निराला को इस बात का दुख था कि देश के 'धनी–मानी सज्जन' और राजीनतिज्ञ सत्साहित्य और सत्साहित्यकारों की कद्र नहीं करते, उल्टा उनके विरूद्ध प्रचार करते हैं। अन्य भाषाओं के साहित्यिकों के तलवे चाटनेवाले' और अपने यहाँ के सच्चे, त्यागी, अध्यवसायी, दूरदर्शी विद्वान साहित्यिकों की राह रोकनेवालों से निराला को सख्त नफरत थी। निराला को इस बात का दुख था कि महात्मा गांधी ने यह तो देखा कि हिन्दी में 'अश्लील साहित्य का प्रचार बढ़ गया है' पर 'हिन्दी सत्साहित्य की अभिवृद्धि' के बारे में उन्हें क्यों नहीं बताया गया। निराला के समय ऐसे हिन्दी के तथाकथित आलोचकों की कमी नहीं थी जो हिन्दी की अपेक्षा विदेशी भावों व समीक्षा सिद्धांतों का मुँह देखते थे। निराला जब साहित्य को 'दायरे' से निकलने की बात करते हैं तो साहित्य को विश्वजनीन बनाने की बात तो स्वीकारते हैं, जैसे उन्होंने 'एक बात' निबंध में लिखा है:– *"जरूतर यहाँ के विश्वजनीन भावों को समझने की है। जो भाव विश्व–भर के लिए है, वे विश्वभर के लिए हुए हैं।.....यही यथार्थ*

भारतीयता है। विश्व–धर्म, मनुष्य–धर्म या ऐसा हो कुछ किसी भी विशेष्य–विशेषण में कहा जाए, यह मानव–धर्म का स्वातंत्र्य हमारे साहित्यिकों के मस्तिष्क में स्मृति तथा नीति की सीमा में पड़कर अपने मूल–कारण को अमर–बेलि की तरह खो बैठा है।[133] परन्तु, यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि निराला मात्र साहित्यिक भाव के स्तर पर विश्वजनीन भाव, विश्व–धर्म या मानव–धर्म की बात करते हैं और 'भारतीयता' को विश्व–धर्म या मानव–धर्म के प्रतिस्थापक के रूप में बतलाते हैं। दरअसल, मानव–धर्म की स्थापना भारतीय साहित्य की अपनी विशेषता है। निराला बस यही कहना चाह रहे हैं, और जहाँ तक साहित्य में विषय–वस्तु व भाषा–शैली के स्तर पर विदेशी या विजातीय अन्धानुसरण का प्रश्न है, निराला उसके सख्त खिलाफ हैं। उक्त निबंध में ही निराला आगे लिखते हैं:– *"मैंने अनेक बार लिखा है, कार्लाइल और रस्किन, शेली या रवीन्द्रनाथ हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु नहीं बन सकते। उनकी अनुवादित भावनाएँ दूसरी जगह के खिले हुए फूलों को लाते–लाते मुरझाने की तरह हिन्दी में निष्प्रभ है। विकास अपने ही भीतर का विकास है और वही विश्व–विकास है। किसी–किसी साहित्यिक ने देश के ठक्कुरों को छोड़कर विदेश के कुक्कुरों की पूँछ बुरी तरह पकड़ी है। पर पूँछ जिसकी है, वह उसी के साथ रहती है, यह भूल गए। बदले में दंश–क्षत लेकर स्वेदश लौटे। बात यह कि पेट में जब तक दीनता के पिल्लें कूं–कूं करते रहेंगे, मनुष्य को अपनी पहचान अपने–आप न होगी, वह किसी ऊँची बात का अर्थ नहीं समझ सकता।*[134] निराला कला के क्षेत्र में अंर्तजातीय और देश–विदेश के आदान–प्रदान के प्रति उदासीन न थे, पर जब वे कहते हैं कि 'विकास अपने भीतर का विकास है' तो वे साहित्य को जातीय और देशीय विशिष्टताओं से जोड़े रखने की माँग करते हैं। निराला स्पष्ट देख रहे थे कि साहित्यकार के जातीय स्वाभिमान और अपनी अस्मिता की पहचान के पीछे यही 'दीनता के पिल्ले' हैं जो परमुखापेक्षी हो गये हैं। साहित्य का प्रचार निबंध में निराला स्पष्ट कर देते हैं:– *"जो साहित्य उन्नत दशा में हो और बहुत तीव्र गति से और भी समुन्नत हो रहा हो, उसकी पतित जनता को ऐसा न होना चाहिए। उसे दूसरे साहित्यिकों से बातचीत में कदापि नतमस्तक न होना चाहिए।.....*

अपनी भाषा और अपनी श्रेष्ठता का ज्ञान ही यथार्थ मनुष्यत्व है।[135] यह निराला की जातीय चेतना थी, भारतेंदु की 'निज भाषा उन्नति अहै' का विकसित रूप था।

निराला व्यापक परिप्रेक्ष्य में अपने जातीय साहित्य को विदेशी भावों के अन्धानुसरण करने से मना करते हैं और व्यक्तिगत स्तर पर एक साहित्यकार को दूसरे के अंधानुकरण से भी बचने की सलाह देते हैं। निराला लिखते हैं:—*"भारत दुनिया से बाहर नहीं, बल्कि विशेषता खोकर योरोप के और भी अधीन है। अतएव अयोग्य के पीछे उतने ही जोर से डंका बजनेवाला क्रम भी जारी हुआ। हिन्दी साहित्य भी इस परिणाम से न बच सका। यहाँ अधिकांश, अस्सी फीसदी साहित्यिक, केवल साहित्यिकता का प्रमाण पेश करने या किये रहने के लिए अपने से किसी बड़े साहित्यिक का डंका बाँधते हैं।*[136] निराला इसे भी एकप्रकार की साहित्यिक दलबंदी मानते हैं। निराला जब 'तोड़ने' की बात करते हैं तो इस दलबंदी को भी तोड़ने की माँग करते हैं। वे स्पष्ट कर देते हैं:—*"एक सच्चा साहित्यिक या कवि अपनी प्रकृति के अनुसार ही दलबंदी से पृथक् रहता है। आदमियों में मिलकर या एक दल अपने साथ लेकर कभी कोई सूक्ष्म चिंतन नहीं कर सकता। अध्ययन में भी दलबंदी बाधक होती है। पुनः दलबंदी का भाव किसी स्वार्थ का ही द्योतक है। स्वार्थ सीमा से बाहर नहीं जा सकता, इसलिए इसके रहते उच्च साहित्य का निर्माण असंभव है।*[137] निराला देख रहे कि इस 'स्वार्थ सीमा' से जुड़ी चीज है:—'साहित्य में प्रोपेगैण्डा'। ऐसे 'प्रोपेगैण्डिस्ट' में निराला 'विशाल भारत' के संपादक पं0 बनानसीदास चतुर्वेदी को सबसे आगे मान रहे थे। उनके 'प्रोपगैण्डा' को निराला 'पान से ज्यादा चूने—सा' समझते हैं। निराला उसमें 'किसी विषय का सुधार गौण' और 'विशाल भारत' का प्रचार मुख्य रूप से देखते हैं। यही स्वार्थ—साधना थी जो उस समय के हिन्दी के अनेक आलोचक कर रहे थे। 'हिन्दी में आलोचना 'निबंध में निराला लिखते हैं:—*"हमारी हिन्दी में सबसे बड़ा अभाव यही है कि उत्तम कोटि के आलोचक कम हैं जो काव्य तथा साहित्य के ऊपर विषयों की विशद व्याख्याएँ कर—कर नवीन साहित्यिकों को उत्कर्ष—पथ मार्जित तक सुगम कर दें।*[138] इस दृष्टि से उन्होंने आचार्य महावीर प्र0 द्विवेदी की प्रशंसा करते हुए

लिखाः—*"बात यह कि द्विवेदी जी उच्चकोटि के साहित्यिक हैं, साहित्यिक पत्रिका का मतलब तथा विरोध—लेखन की कला जानते हैं, उन्होंने यथादर्श इस कार्य का उत्तरदायित्व पूरा किया। चतुर्वेदी जी साहित्य के कितने बड़े ज्ञाता हैं, इसके संबंध में जनता की दृष्टि पर भले ही पर्दा पड़ा हो, साहित्यिक जन अच्छी तरह जानते हैं। चतुर्वेदी जी के इस ज्ञान की प्रतिक्रिया पुनः—पुनः उनके उठाए हुए प्रोपागैंडा में मिलती है।"*[139]

निराला को सत्साहित्य की रक्षा और लोगों को आलोचना का मर्म समझाने के लिए आलोचना के क्षेत्र में आना पड़ा। हालाँकि निराला जी ने आलोचना की कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं लिखीं, न ही काव्य—सिद्धांतों के प्रतिपादन में पड़े। व्यावहारिक आलोचना के क्रम में उन्होंने कई नवीन सिद्धांत दिए और पूर्ववर्ती और तद्युगीन कई साहित्यकारों की रचनाओं की समीक्षा की। अपने निबंध 'हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' में निराला जी ने भक्तिकालीन कवियों में कबीर, तुलसी, सूर तो रीतिकाल में भूषण, देव, मतिराम, बिहारी, पद्माकर, आदि पर संक्षिप्त टिप्पणी करते हुए तद्युगीन कवियों हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सनेही जी, पं0 रामचरित उपाध्याय, पं. रामनरेश त्रिपाठी आदि पर कई महत्वपूर्ण सम्मतियाँ दी हैं। यथा, हरिऔध जी की चौपदों की सजीवता व भाषा के ऐश्वर्य की तारीफ करना तथा फिर 'खड़ी बोली का साँचा दुरूस्त' करने मे मैथिलीशरण गुप्त की भूमिका स्वीकार करना। इस संदर्भ में डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैंः—*"निराला कवियों मे केवल दोष ही नहीं गुण भी ढूँढ लेते थे। कहा जाता है कि लोगों को गुप्त जी की विपुल रचना—राशि में अच्छी पंक्तियों को ढूँढने में अक्सर असफलता मिलती है। लेकिन निराला ने उनकी जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, वे सचमुच अच्छी है।"*[140] अपने समकालीन छायावादी कवियों में से निराला ने सबसे अधिक सुमित्रानंदन पंत पर लिखा। यह गौरतलब है कि निराला खुद को हिन्दी में 'रवीन्द्रनाथ के समकक्ष' घोषित कर रहे थे और पंत 'वीणा' की भूमिका में अपने कुछ गीत को रवीन्द्रनाथ के गीत से मिलता—जुलता व श्रेष्ठ बता रहे थे। यही कारण है कि छायावाद के दो महान कवि और गहन मित्र परस्पर प्रतिद्वंदी भी खूब रहे। डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दों में कहें तो—*"पंत और निराला दोनों ही अपने को युग का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे, यह भी मानते थे कि*

सर्वश्रेष्ठता की होड़ में उन्हें जयशंकर प्रसाद का मोर्चा सर नहीं करना। मोर्चा सर करना है खुद एक–दूसरे का। इसलिए व्यक्तित्व की समानताएँ उन्हें नजदीक न लाकर एक–दूसरे से दूर ठेल रही थीं।[141] इतना होने के बावजूद भी निराला और पंत दोनों एक–दूसरे के अच्छे साहित्यिक गुणों की प्रशंसा करने से नहीं चुकते। निराला जी ने 'पंत और पल्लव' निबंध में पंत जी के 'पल्लव' की खरी–खोटी आलोचना तो की है, पर पंत जी की 'परिवर्तन', 'उच्छ्वास', 'आँसू', 'प्रथम रश्मि' और 'बादल' जैसी रचनाओं के सकारात्मक पक्षों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है:– *"मैंने सुना है, लोगों की दृष्टि से पंत जी गिर गए हैं। मैं जानता हूँ, यह उठने–गिरने का इंद्रजाल क्षणिक है। जो लोग केवल गिराने में दूसरों की सहायता के लिए उत्सुक रहते हैं, वे इस युग के मनुष्य नहीं। दुःख है हिन्दी साहित्य में ऐसे रत्न के भी जौहरी नहीं।*[142] स्पष्ट है, निराला टाँग खींचकर 'गिराने में दूसरों की सहायता करनेवाले' आलोचक नहीं थे। उन्हें एक अच्छे साहित्य–मर्मज्ञ रूपी जौहरी की तरह सच्चे साहित्य साधक रूपी हीरे की पहचान थी।

निराला दूसरों के ही नहीं, स्वयं के भी तटस्थ आलोचक थे। 'मेरे गीत और कला' निबंध में निराला ने अपने ऊपर लगे सभी आरोपों का मुखर उत्तर दिया और अपनी कविता 'जूही की कली' की स्वयं व्यावहारिक समीक्षा भी की है। 'उपदेश को कवि की कमजोरी' मानने के बावजूद निराला 'जूही की कली' के संबंध में लिखते हैं:– *"'जूही की कली' का उदाहरण देकर मैं यह दिखलाने की चेष्टा करूंगा कि ठीक–ठीक चित्रण होने का उपदेश किसी तरह उनके भीतर छिपे रहते हैं और कला का विकसित रूप स्वयं किसी तरह उपदेश बन जाता है। पुनः ऐसी रचनाओं का खंडोद्धरण आलोचक का अधूरा सौंदर्यदर्शन और कवि पर की गई कृपारूपिणी अकृपा है।*[143] निराला काव्य की आत्मा पूर्णता को मानते हैं इसलिए आलोचकों से भी अधूरा नहीं पूर्ण सौंदर्यदर्शन की माँग करते हैं। निराला स्वयं अपनी कविताओं की संभावनाएँ व सीमा पहचानते हैं। उन्होंने कुँवर सुरेश सिंह या पुनः जानकी वल्लभ शास्त्री को पत्र के साथ कुछ गीत लिख भेजे तो उसकी भाषा के बारे में भी बताया। यथा:– *"मैंने इधर कुछ गीत लिखे हैं। सीधे साधारण है।*[144] 'अणिमा' के गीतों के बारे में

निराला ने लिखाः—*"उनकी भाषा गद्य के अनुसार है।.....कुछ छोटी—बड़ी रचनाएँ प्रसिद्ध जनों पर हैं जो काव्य की दृष्टि से, आलोचकों के अनुसार अच्छी आई हैं।"*[145] 'बेला' की गजलों को निराला ने साधारण मानते हुए महज उसे 'हाथ आजमाने के लिए' ही माना। 'बेला' की भूमिका में निराला लिखते हैंः—*"भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं।"*[146] 'नये पत्ते' की भूमिका में लिखाः—*"हास्य की प्रचुरता, भाषा अधिकांश में बोलचाल वाली.....अधिक मनोरंजन और बोधन की निगाह रखी गई है कि पाठकों का श्रम सार्थक हो और ज्ञान बढ़े।"*[147] निराला जिसे सरल कहते थे, दरअसल वह इतनी सीधी भी न थी। 12 अगस्त, 1937 को जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखे एक पत्र में अपनी कविता 'तोड़ती पत्थर' का हवाला देते हुए लिखाः—*"सीधी चीजें अच्छी हैं। मैंने नहीं लिखी—आप कह सकते हैं?—यह 'तोड़ती पत्थर' कैसी है! लेकिन इसकी कुल कला समझकर आप इसे सरल कहेंगे, मुझे विश्वास नहीं। जो गहन भाव सीधी भाषा—सीधे छंद में चाहता है, वह धोखेबाज है। उसे भाषा का ज्ञान नहीं, वह भाव क्या समझेगा"?*[148] स्पष्ट है, निराला 'गहन भावों' के कवि थे, इसलिए उनकी सीधी भाषा भी श्रेष्ठ काव्य—मर्मज्ञों की माँग करती है।

निराला ने जो बात 'तोड़ती पत्थर' के लिए कही थी, वह उनकी रचना 'कुकुरमुत्ता' पर भी लागू होता है। 'कुकुरमुत्ता' के प्रकाशन के पूर्व ही निराला ने 26 जून, 1941 को जानकी वल्लभ शास्त्री को पत्र लिखते हुए 'कुकुरमुत्ता' के बारे में लिखाः—*"एक चीज इधर मन की लिखी है—कुकुरमुत्ता—450 पंक्तियों की हास्य रस की कविता। पूरी हो चुकी है। जबान हिन्दुस्तानी है। मैं 'तुलसीदास' की कोटि की मानता हूँ।"*[149] यह है युगद्रष्टा कवि का आत्मविश्वास। 'कुकुरमुत्ता' को 'तुलसीदास' कविता से तुलना, थोड़ी अटपटी तो लगती है, पर यह सत्य है कि यह निराला की महत्वपूर्ण कृतियों में से एक है। जब 'कुकुरमुत्ता' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ तो निराला ने बड़े गर्व के साथ इसकी खूबियाँ बतलाते हुए लिखाः—*"इसके व्यंग्य और इसकी भाषा आधुनिक है। जब यह पहले पहल हँस में छपा था, डॉ0 हेमचंद्र जोशी ने इसकी तारीफ की थी, दूसरे के बहकावे से लोगों को बचाने की कोशिश की थी। मैं डॉ0 जोशी को*

धन्यवाद देता हूँ। अर्थ–समस्या में निरर्थकता को समूल नष्ट करना साहित्य और राजनीति का कार्य है। बाहरी लदाब हटना ही चाहिए, क्योंकि हम जिस माध्यम से बाहर की बातें समझते हैं, वह भ्रामक है, ऐसी हालत में 'इतो नष्टस्ततो भ्रष्ट' होना पड़ता है।[150] निराला को पता था कि वह एक 'आधुनिक भाषा' की अमूल्य कृति लिख रहे हैं। यह 'आधुनिक भाषा' 'बाहरी लदाब' को हटाने की माँग करती थी। माँग करती थी बस उसे सही–सही समझने की। अकारण नहीं कि दूधनाथ सिंह ने 'कुकुरमुत्ता' पर पूरी किताब लिख दी जिसे हंसी–मजाक या मनोविनोद मात्र की पुस्तक समझा जाता था। परन्तु, निराला के 'कुकुरमुत्ता' के प्रति उपर्युक्त दृष्टिकोण को पढ़ते हुए डॉ0 नामवर सिंह की यह बात सटीक लगती है:– *"कवि का वक्तव्य या कवि की राय स्वयं अपनी कविता के बारे में प्रामाणिक नहीं मानी जाती है, किन्तु निराला वैसा कवि नहीं था, बल्कि बहुत सतर्क काव्य–बोध का मर्मी भी था। वे 'कुकुरमुत्ता' को अहमियत देते थे तो किसी वजह से देते थे, वह कौन–सी चीज थी, इस पर भी विचार किया जाना चाहिए।*[151]

निराला ने 'गीतिका' की भूमिका में अपने गीत–गायन के परिमित स्वर के संदर्भ में लिखा है:– *"चूंकि मैं बाजार का नहीं बन सका, शायद इसलिए सरस्वती ने मेरे स्वरों को बाजारू नहीं बनने दिया।*[152] निराला सरस्वती के साधक थे, लक्ष्मी के नहीं। बाजारवाद के फेर में फँसकर उन्होंने कभी भी समझौता कर अपने शब्दों को भी बाजारू नहीं बनने दिया। उन्हें पता था कि हिन्दी समाज और बाजार भी एक दिन उनकी प्रतिभा का मूल्य समझेगा। जब 'कुकुरमुत्ता' का द्वितीय संस्करण बाजार मे आया तो निराला ने हिन्दी जगत के प्रति कृतज्ञता–ज्ञापन करते हुए लिखा:– *"हम हिन्दी संसार के कृतज्ञ हैं जिसने अपनी आँख पायी है। इस पथ में अप्रचलित शब्द नहीं। बाजार आज भी गवाही देता है। किताब चाव से खरीदी गई, आवृत्ति हजार कान सुनी गयी और तारीफ लाख मुँह होती रही।*[153] यही तो साहित्य के सच्चे साधक को जनता द्वारा दिया गया प्रतिफल था। यह भी गौरतलब है कि निराला ने यश–लिप्सा रखने के बावजूद स्वयं तारीफ पाने के लिए कोई बाह्य कोशिश भी नहीं की थी। अपनी किताबों के बारे में उन्होंने 'मेरे गीत और कला' में लिखा है:– *"मैं*

तारीफ वाली बाहरी बातों में पहले से पीछे रहा, किताबों का गेट–अप साधारण, तस्वीर नदारद, छपाई मामूली। मेरी तस्वीर तो मेरे साथ वालों के बहुत बाद निकली है। वह भी वैसी भड़कीली नहीं, निकली भी पत्रिकाओं में, मेरी पुस्तकों में नहीं। इस वक्त भी कितने संपादक तस्वीर माँगकर निराश होते हैं।[154]

निराला ने 'मेरे गीत और कला' निबंध में उनकी तस्वीर को लेकर जिस निराशा की बात कही थी, उस निराशा को उससे दूर किया–'मेरे गीत और कला' के साथ 'माधुरी' में अपना फोटो भेजकर। वह फोटो नंगे बदन वाले निराला की तस्वीर थी। इस संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं:– *"उन्होंने 'मेरे गीत और कला' के साथ 'माधुरी' में प्रकाशनार्थ एक फोटो खिंचाया, नंगे बदन, जिससे उनका चौड़ा सीना, मजबूत बाँहें पाठकों को साफ दिख जाएँ। वह मानो अपना विजयी विराट रूप प्रदर्शित कर रहे थे।*[155] यह नंगे बदन निराला का अपना ठाठ या अपनी फकीरी थी। अज्ञेय की भाषा में कहें तो– *"अच्छी अपनी ठाठ फकीरी, मँगनी के सुख साज से।*[156] निराला की यह तस्वीर मानो प्रतीकात्मक है जैसे मनुष्य नंगे बदन आया है, महज कफन की जरूरत हो। पर यह भी विडंबना है 'जीते जी जिसको कफन नहीं मिला, मरने के बाद उसे कफन चाहिए'–प्रेमचंद की 'कफन' कहानी की तरह। निराला के इस नंगेपन को डॉ0 नामवर सिंह, माँ के सम्मुख बच्चे को और 'सरस्वती के सम्मुख' कवि को नंगा होता हुआ देखते हैं। उन्होंने जीवन को, प्रकृति को नंगे बदन स्पर्श करने का सुख बतलाया है। डॉ0 नामवर सिंह इस 'नेकेडनेस' की प्रतीकात्मकता को खोलते हुए लिखते हैं:– *"यह जरूरी नहीं कि कवि युद्ध के मैदान में भी निष्कवच होकर सीने पर वार झेलने के लिए जाए। निराला के नंगेपन के बारे में सोचता हूँ तो गालिब का यह शेर याद आता है:–"ढापा कफ़न ने दाग़–ए–उयूब–ए–बरहनगी मरनद, मैं वर्ना हर लिबास में नंग–ए–वजूद था। निराला को सिर्फ कफन ढक सका। उसके पहले निराला का दिमाग उनकी आत्मा, उस नग्न रूप में उनके साहित्य में थी। यह निराला का निरालापन नहीं है तो क्या है? ऐसा आदमी पूरे समाज को नंगा कर सकता है। निराला खुद नंगे हुए तो जितने मुखौटे थे, सब उतार फेंके।*[157]

निराला ने अपने समय, समाज, राजनीति व साहित्य सभी का मुखौटा उतार फेंका। निराला की 'वनबेला', कविता में यह उतरा हुआ मुखौटा राजनीति व साहित्य का नंगा रूप है। राजनीति व साहित्य का समाज से अलगाव, पूंजीवादी संस्कृति, थोथी अंतर्राष्ट्रीयता, विलायती शिक्षा पर दर्प, हिन्दी भाषियों के प्रति उपेक्षा का भाव, मंचीय भाषण की नाटकीयता, साहित्यकारों का नेता–वंदन, यहाँ सबकुछ मिलेगा, खुले रूप में। मंच पर से जनता को भ्रांत करने पर व्यंग्य करते हुए निराला लिखते हैं:–

"होता फिर खड़ा इधर को मुखकर कभी उधर
बीसियों भाव की दृष्टि सतत् नीचे ऊपर
फिर देता दृढ़ संदेश देश को मर्मान्तिक
भाषा के बिना न रहती अन्य गंध प्रान्तिक
जितने रूप के भाव, मैं कह जाता अस्थिर
समझते विचक्षण ही जब वे छपते फिर–फिर पिता संग
जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग।"[158]

स्पष्ट है, निराला यहाँ नेहरू को लक्ष्य कर रहे हैं। नेहरू की नीतियों को नंगा करती निराला की ये दो पंक्तियाँ और द्रष्टव्य है:–

"महँगाई की बाढ़ बढ़ आई , गाँव की छूटी गाढ़ी कमाई
भूखे–नंगे खड़े शरमाएँ, न आए वीर जवाहरलाल।"[159]

यहाँ 'भूखे–नंगे' निराला जैसे आम लोग हैं। 'भूखे–नंगे खड़े शरमाएँ' कहकर निराला नेहरू जैसे नेताओं को शर्मिन्दा कर रहे हैं। इसी को कहते हैं खुद नंगा रहकर हर फरेबी को समाज में नंगा करना।

मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' एक 'विचित्र प्रोसेशन' है जिसमें कर्नल बिग्रेडियर, सेनापति, सेनाध्यक्ष व शहर का हत्यारा डोमा जी उस्ताद के साथ–साथ कई प्रकांड आलोचक, विचारक, जगमगाते कविगण, उद्योगपति व विद्वान सभी नजर आते हैं। मुक्तिबोध सबकी असलियत देखते हैं और लिखते हैं:–

"हाय, हाय! मैंने उन्हें देख लिया नंगा
इसकी मुझे और सजा मिलेगी।"[160]

निराला की कविता 'राजा ने अपनी रखवाली की' में राजा की रखवाली में यही पूरा का पूरा समाज है– फौजें, चापलूस, सामंत, ब्राह्मणों के साथ लेखक, कवि व नाटककार सभी हैं। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैः–

"कवियों ने उनकी बहादुरी के गीत गाये
लेखकों ने लेख लिखे
इतिहासकारों ने इतिहासों के पन्ने भरे
नाट्यकलाकारों ने कितने नाटक रचे
रंगमंच पर खेले।"[161]

निराला राजा–सामंतों के वंदन करने वाले कवि नहीं थे। उनके साहित्य का वर्ण्य विषय था– वंचित, शोषित, दलित, वर्ग। निराला की कविता 'बहुजन समाज के अनुपल प्रगति' के निमित्त थी।

निराला की पक्षधरता देखिएः–

"आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला।"[162]

निराला को इस पक्षधरता की, कविता व समाज के अभिजात्य से मुक्ति की सजा मिली। निराला ने महसूस किया– *"बाहर मैं कर दिया गया हूँ।"*[163] परन्तु निराला जानते थे कि हिम्मत हारने से मुक्ति का संग्राम नहीं लड़ा जा सकताः–

"बिना अमर हुए यहाँ काम न होगा।
बिना पसीना आये नाम न होगा।
मुक्ति के गुलाब न चटकेंगे,
बढ़–बढ़कर छन–छन अटकेंगे,
लोग सचाई को भटकेंगे।"[164]

निराला ने इसी 'मुक्ति के गुलाब' को चटकाने के लिए 'पसीना बहाया। निराला ने नंगेपन में भी एक मुक्ति व निर्माण की कामना ही थी।

धूमिल की 'कविता' की दो पंक्तियाँः–

"उसे मालूम है कि शब्दों के पीछे
कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं।"[165]

निराला को मालूम था कब, कहाँ कितना नंगा होना है और किसे कितना नंगा करना है। निराला व्यवहार में भी अपने प्रतिद्वंदियों के सामने नंगे हो जाया करते थे। एक समय था, जब कविवर सुमित्रानंदन पंत उनके बारे में कहा करते थे–'आई वाज माइटी अैफ्रेड ऑफ हिम।' इस संदर्भ से जुड़ी घटना का जिक्र करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1) में लिखा है–"निराला कालाकॉकर आए। पंत ने कहाः–*"वह बाथरूम से निकले, तौलिया लपेटे थे; वह नंगे हो गए।..... वह कहते थे, मेरे गुरू ने मुझे दो लड्डू खिलाए हैं, एक नाश का, दूसरा निर्माण का। दूसरे को खाकर ही आदमी बड़ा होता है।"*[166] निराला का नंगापन उसी 'नाश' का रौद्र रूप है। निराला जानते थे कि बिना 'नाश' के निर्माण की प्रक्रिया बेमानी होगी। हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति निबंध में निराला लिखते हैंः–*"जड़ परमाणुओं के आघात–प्रतिघातों से, कविता में जड़त्व के प्रचार से, न भाषा की मुक्ति होगी, न उससे सम्बद्ध इस जाति की मुक्ति हो सकती है। यदि देश का अर्थ मिट्टी है, यदि विश्व के माने मिट्टी का एक बृहत् पिंड है, यदि देश के उद्धार से मिट्टी के उद्धार का अर्थ सिद्ध होता है, यदि विश्व–मैत्री का सिद्धांत जड़ शरीर के प्रेम करने की शिक्षा है और यदि आपके कवि इन्हीं भावनाओं की पुष्टि करेंगे, तो निस्संदेह इससे भाषा के साथ भाषा के बोलने वाले की मुक्ति अंसभव होगी। इस जाति के प्राण जड़ से नहीं, चेतन से मिले हुए हैं।"*[167] निराला जिस 'नाश के लड्डू' की बात कर रहे थे उसका संबंध जड़त्व से ही था और 'निराला के लड्डू' का अर्थ चेतनता का प्रचार जिसका अर्थ मुक्ति भी था। निराला पहले 'जड़ता' तोड़ते हैं फिर 'चेतन' का निर्माण करते हैं। ठीक वही क्रम जो रघुवीर सहाय की 'तोड़ो' कविता में था जिसकी चर्चा हम प्रारंभ में कर चुके हैं। उक्त कविता की शुरूआत 'तोड़ो–तोड़ो–तोड़ो'

से होती है तो अंत 'गोड़ो–गोड़ो–गोड़ो' से। निराला द्वारा 'तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा' कहने का यही समाजशास्त्र है जो 'गोड़ो' के रूप में नवीन विचार व काव्य मुक्ति के साथ 'गंगा–जल धारा' बन जाती है। इस 'तोड़ो' और 'गोड़ो' का संबंध निराला बहुत पहले ही 'मिट्टी की माया छोड़ चुके' कविता में स्पष्ट कर चुके थेः–

"मिट्टी की माया छोड़ चुके
जो वे अपना घर फोड़ चुके।
..... आकर्षण के अभियानी के
गतिक्रम के जब वे तोड़ चुके।
.....उनकी मानवता से दानव
अपना जीवन–क्रम जोड़ चुके।
हँसते–हँसते वे चले गए
उसके विरोध के छले गए,
संसृति की रक्षा के न रहे
वे अपनी रेखा गोड़ चुके।"[168]

महाकवि निराला 'हँसते–हँसते चले गए'–काव्य 'गतिक्रम' को तोड़ कर' और काव्य–'संसृति' की रक्षा में अपनी 'सृजन–रेखा' गोड़ कर। यही निराला का जीवन–समर था, काव्य–सिद्धांत की डगर थी और काव्य–शिल्प व स्थापत्य का सफर था जिसके अंतर्संबंधों को समझना जरूरी है और उस पर सार्थक बहस करना भी आवश्यक है जिसे आगे के अध्यायों में समझने का प्रयत्न किया जाएगा। यहाँ फिलहाल इतना ही कहना युक्तिसंगत होगा कि जिसने निराला के इस 'तोड़ने' के समाजशास्त्र को न समझा, उन्हें बस यह 'कलम तोड़ना' ही दिखा; जैसा कि मौरवां के साहित्य समारोह मे कानपुर के किसी कवि ने व्यंग्य किया थाः–

"चले कवि जी कविता करने कलम तोड़ दी।
कहीं इंच भर, कही डेढ़ फुट सतर जोड़ दी।
गराण्डीस शब्दों को लेकर पद में ठूँसा
मानो पशु की मृतक खाल में भर दे भूसा।

छंद खड़े स्वच्छंद हैं और काफिया तंग है
कविता का यह देखिए चला निराला ढंग है।"[169]

परन्तु, जो सच्चा काव्य–मर्मज्ञ व मुक्ति का आकांक्षी का होगा, वह इस 'तोड़ने' के समाजशास्त्र में रूढ़ियों से मुक्ति का स्वच्छंद आकाश अवश्य देखेगा और ऐसा हुआ भी था। निराला के मित्र और उनके प्रखर प्रतिद्वंदी सुमित्रानंदन पंत ने आखिर उनकी मुक्ति–कामना की महत्ता समझते हुए कविता लिखी 'अनामिका के कविः श्री सूर्यकांत त्रिपाठी के प्रति'। उक्त कविता की कतिपय पंक्तियाँ ही निराला के 'तोड़ो तोड़ो तोड़ो कारा' के मर्म को उद्‌घाटित करने हेतु काफी हैः–

"छंद बंध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर सी निःसृत–
गलित, ललित आलोक राशि, चिर अकलुष अविजित
शिलाभूत सौंदर्य, ज्ञान, आनंद अनश्वर
शब्द–शब्द में तेरे उज्ज्वल जड़ित हिम–शिखर।"[170]

(2) ''मैंने 'मैं' शैली अपनायी'': निराला की काव्य–शैली एवं जीवन यथार्थ की खोज

"मेरी छवि उर–उर में ला दो!
मेरे नयनों से ये सपने समझा दो!"[171]

निराला की उपर्युक्त काव्य–पंक्तियों में विश्व–भावना में 'मैं' के एकाकार होने का संकल्प झलक रहा है। यह संकल्प 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' को दृष्टिगत करने का संकल्प है। इसी संकल्प में निराला की 'मैं' शैली का रचनात्मक पक्ष निहित है। इसे महज व्यक्तिवादिता समझने की भूल न करें जैसा कि आलोचकों ने पूरे छायावादी काव्य के संदर्भ में ही यह धारणा बना रखी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी छायावाद में 'नाना अर्थभूमियों में प्रसार रुकने' और व्यक्तिवाद के बढ़ने की बात कही थी। स्वयं जयशंकर प्रसाद ने भी वेदना के आधार पर स्वानुभूति की अभिव्यक्ति को छायावाद से जोड़ रखा था। परंतु, इस 'वेदना' व 'स्वानुभूति' के कारणों व स्वरूप को समझे बिना न तो छायावादी काव्य–शैली को समझा जा सकता है और न निराला की काव्य–शैली को, क्योंकि आचार्य शुक्ल ने 'नाना अर्थभूमि का रमणीय प्रसार' और 'बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा' सिर्फ निराला में ही देखी थी। इस दृष्टि से देंखे तो निराला की उपर्युक्त काव्य–पंक्तियाँ स्वानुभूति का जनानुभूति में रूपांतरण ठहरती हैं। दरअसल निराला की 'मैं– शैली आचार्य शुक्ल द्वारा वर्णित 'लोकसामान्य की भावभूमि' का प्रतिरूप है और निराला की वेदना महज आत्म–पीड़ा नहीं, रचनात्मक करूणा है जो जन–वेदना में एकाकार हो जाती है। निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' के माध्यम से हम इसे समझ सकते हैं।

'तोड़ती पत्थर' कविता की अंतर्वस्तु सामाजिक है, पर भावानुभूति और अंतर्दृष्टि का धरातल बिल्कुल व्यक्तिनिष्ठ है। ठीक कबीर की 'आँखिन देखी' की तरह पत्थर तोड़ने वाली उस मजदूरनी को स्वयं देखने की निराला घोषणा करते हैं:–

"वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर–
वह तोड़ती पत्थर।"[172]

कविता का विकास इस देखने की प्रक्रिया में दूर से नजदीक जाने में होता है।

"नत नयन प्रिय कर्म–रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार–बार प्रहार।"[173]

ध्यातव्य है, निराला ने पहले आँखों को देखा, फिर अंतर्मन में झाँका। डॉ0 नंद किशोर नवल इस संदर्भ में लिखते हैः–*"इस वर्णन का इस कविता में विशेष महत्व है क्योंकि इससे यह सूचना मिलती है कि जो मजदूरिनी है, वह विशिष्ट है। उसे कवि ने अपनी आँखों से देखा है। वह कोई बनी–बनाई धारणा के अनुरूप सामान्य मजदूरिनी नहीं है, जिसे कविता में लाने के लिए स्वयं देखना जरूरी न हो।"*[174] यह केवल 'देखना' नहीं, देखने की प्रक्रिया में 'परकाया प्रवेश' है जैसा आधुनिक गद्य में विनोद कुमार शुक्ल की रचनाओं में मिलता है। इस परकाया–प्रवेश की परिणति कविता के अंत में 'वह' के 'मैं' होने में होती हैः–

"एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा–
'मैं तोड़ती पत्थर।"[175]

कविता की शुरूआत 'वह तोड़ती पत्थर' से है, पर अंत 'मैं तोड़ती पत्थर' से होती है। कविता के अंत के संदर्भ में निराला ने 12 अगस्त, 1937 को जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे एक पत्र में कहा था–*"मैं तोड़ती पत्थर अंत का स्वभावतः शायद समझ में आ जाएगाः मैं तोड़ती पत्थर हृदय।"*[176] कहने का ध्वन्यार्थ यह है कि एक ही हथौड़ा पहले सड़क पर पड़ता है जो मजदूरनी का जीविकोपार्जन कर्म है। दूसरी बार हथौड़ा पड़ता है अट्टालिका पर, यह मजदूरनी के माध्यम से श्रमिक व शोषक

वर्ग का वार है पूंजीपतियों पर। तीसरी बार हथौड़ा स्वयं मजदूरनी के हृदय पर पड़ता है। डॉ0 नामवर सिंह भी ऐसा ही सोचते थे। इस आधार पर वे 'कविता के नए प्रतिमान' में काव्य–संरचना–प्रतीकात्मक और नाटकीय' वाले लेख में लिखते हैंः– ***"कविता की संरचना में ही एक वाक्य की आवृत्ति इतने अर्थ पैदा कर सकती है। संरचना पर ध्यान न हो तो कविता सपाट हैं, किन्तु यह अनवधानता स्पष्टतः गूढ़ अर्थ को खो देती है।***[177] इस आधार पर नामवर सिंह निराला को 'आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य–सरंचना का पथ प्रशस्त' करनेवाला बतलाते हैं जो आधुनिक आलोचनात्मक मूल्यांकन का आवश्यक औजार' है। यदि काव्य–संरचना की दृष्टि से भी देखें तो भी कविता में और भी अर्थ खुले हैं। 'मैं तोड़ती पत्थर' वाक्य सुनने से भले ही मजदूरनी का मानसिक वार्तालाप लगता है, पर यहाँ 'मैं' में स्वयं निराला का परकाया प्रवेश है। 'मेरा अंतर वज्रकठोर' की उद्घोषणा करनेवाले निराला यहाँ आनंद भवन के सामने मजदूरनी की एक श्रमिक स्त्री की दशा को देखकर द्रवित हो रहे हैं और मजदूरनी का हथौड़ा उनके वज्र समान कठोर हृदय को तोड़ रहा है। ठीक लिखा है, डॉ0 नंदकिशोर नवल ने ***"मेरा ख्याल है कि पत्थर–हृदय स्वयं मजदूरनी का नहीं, बल्कि देखने वाले का है। निराला महसूस करते हैं कि वह अपनी स्थिति से उनके वज्रहृदय पर प्रहार कर रही है।***[178] यहाँ निराला स्वयं मजदूरनी बन जाते हैं–कलम के मजदूर, जिन्होंने अपनी कलम से अट्टालिकाओं पर वार किया और कविता में मजदूरनी का अंतःकरण झाँक कर आ गए।

निराला ने 'कविवर बिहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र' नामक निबंध में लिखा हैः– ***"बिहारी को सदा अपने कवि होने का ज्ञान रहता है–बिहारी खुद नायिका नहीं बन पाते, परंतु रवीन्द्रनाथ स्वयं नायिका बन पाते हैं, इसलिए कविता और खिल पड़ती है।***[179] वर्ण्य–विषय में स्वयं को आरोपित करने की कला, वह परकाया–प्रवेश, 'वह' का 'मैं' में रूपांतरण निराला ने बहुत कुछ रवीन्द्र की काव्य–कला से सीखा है। पर यह 'मैं' में रूपांतरण दरअसल 'मैं' के अंहकार के विघटन से संभव है। जैसे कबीर ने कहा था 'हरि था तो मैं नाहिं। इसलिए निराला बिहारी की तरह स्वयं 'कवि होने के अहंकार' से बँधते नहीं, केवल चित्रण की कुशलता' में नहीं पड़ते, रवीन्द्र

की तरह विषय में मिल जाते हैं। यह एक प्रकार का आत्म–प्रसार है। पर–वेदना का रचनात्मक रूपांतरण और उससे अनुभूत जन–पीड़ा की स्व–वेदना में परिणति है। निराला जब लिखते हैंः– *"गीत गाने दो मुझे तो, वेदना को रोकने को।"*[180]

यह वेदना व्यक्तिगत वेदना नहीं सामाजिक कष्टों व परिस्थितियों से उपजा जन–जन का दुख है। निराला उस दुख को अपना दुःख समझने का संकल्प लेकर ही काव्य–क्षेत्र में 'मैं' शैली अपनाने की स्वीकारोक्ति लेकर उतरे थे। 23 अप्रैल, 1923 की 'माधुरी' में प्रकाशित 'अधिवास' कविता जो उनकी आरंभिक कविताओं में से एक है; उन्होंने लिखा हैः–

"मैंने 'मैं'–शैली अपनायी
देखा दुखी एक निज भाई।
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आयी।"[181]

इस 'मैं शैली' के लिए पीड़ितों के निकट जाकर 'लगाया उसे गले से' की सुख–प्राप्ति हेतु निराला उस 'अधिवास' को छोड़ने को तैयार हो जाते हैं जो उन्हें 'रामकृष्ण मिशन' के 'समन्वय' पत्रिका के संपादन काल में संन्यासी जीवन का गर्व करा रहा था। निराला जान जाते हैं कि उनका 'अधिवास' दुखी निज भाई के आँखों पर करूणाचल के स्पर्श में है। कहने का तात्पर्य निराला की 'मैं शैली' में सभी दुखी निज भाई समाहित हैं। यह महंगू है, झिंगुर है, बदलू है, समाज के वो वंचित–शोषित हैं, दलित हैं जिनसे निराला 'जल्द–जल्द पैर बढ़ाओं' का आह्वान करते हैं।

डॉ0 नामवर सिंह ने 'छायावाद' में लिखा हैः– *"कवि ने यह जो 'मैं शैली' अपनाई, वह केवल शैली भर नहीं है। इस निजता और आत्मीयता के पीछे आधुनिक युवक का पूरा व्यक्तित्व है, जो अपने को सीधे–सीधे अभिव्यक्त करने की सामाजिक स्वाधीनता चाहता है।"*[182] निराला जी ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बहुत महत्व दिया था। उन्होंने साफ कहा हैः *"व्यक्तिगत स्वाधीनता ही समष्टिगत स्वाधीनता की जननी है और इस दृष्टि से आज भी भारत में अन्य देशों की अपेक्षा स्वाधीन मनुष्यों की*

संख्या अधिक होगी।[183] यह एक प्रकार से व्यक्ति की मुक्ति थी और निराला इसी व्यक्ति की मुक्ति के माध्यम से कविता की मुक्ति की राह प्रशस्त करते हैं। ऐसा नहीं है कि निराला के यहाँ आत्म निवेदन नहीं है, पर यहाँ धार्मिकता का आवरण नहीं है। निजी संबंध, सामाजिकता के ताने–बाने में बढ़ते मानव का संबंध निराला के यहाँ ज्यादा मुखरित है। वस्तुतः छायावाद की एक बड़ी देन यह है ब्रज भाषा के दैविक–प्रेम अर्थात् राधा–कृष्ण के प्रेम की जगह साधारण मनुष्य को प्रतिष्ठित करना। महादेवी के यहाँ भी 'मैं' नीर भरी दुःख की बदली में व्यक्तिगत पीड़ा है, परन्तु साथ में सामंती रूढ़ियों में घुटती भारतीय नारी की स्वतंत्रता की छटपटाहट भी है। किन्तु, महादेवी में काव्य के क्षेत्र में वह परकाया–प्रवेश नहीं है, जो निराला के यहाँ है। पंत ने तो आत्मकथात्मक बहुत कम लिखा और जो भी लिखा प्राकृतिक आवलंबन को ही आधार बनाकर। सामाजिकता का दायरा उनकी छायावादी कविताओं में विस्तृत नहीं है। प्रसाद जी ने 'हंस' के आत्मकथात्मक अंक के लिए एक 'आत्मकथा' नामक कविता ही लिख डाली। किन्तु, प्रसाद और महादेवी में वैयक्तिक अनुभूतियों के लिए रहस्यवाद का आश्रय अधिक है जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'मधुचर्या के मानस–प्रसार के लिए रहस्यवाद का परदा' कहा था। निराला में 'रहस्यवाद का परदा' झीना है, यथार्थवाद का आग्रह अधिक प्रबल है। निराला इसलिए 'निराला' हैं क्योंकि उनमें कुछ–न–कुछ निरालापन है, भीड़ से अलग। वहाँ 'मैं' का विराट रूप है। निराला ने 'एक बात' नामक निबंध में आत्म–प्रसार एवं विश्वजनीन भावों को समझने के लिए कृष्ण का रूपक देते हुए लिखा हैः– *"जैसे अर्जुन के मारने के पहले कृष्ण के 'मैं' ने सबको मार डाला था, क्योंकि कृष्ण का विशुद्ध–बोधमय' मैं था और कौरवों का अज्ञानमय। अज्ञान के तिमिर को बोधमय सूर्य ने नष्ट कर दिया था, रहा था भीतर केवल कृष्ण का 'मैं' जो विराट के साथ अब भी सम्बद्ध है, और अज्ञान–जीर्णता को नाश में परिणत करता रहता है।*[184] निराला के 'मैं' ने भी उन सबको मारा जो अज्ञानमय था, शोषक था, सामंती विचारधारा का पोषक था और सामाजिक रूढ़ियों का कारक था। कभी–कभी यह 'मैं' अहंभाव में प्रकट होता है, परंतु यह अहं भाव हिन्दी के प्रति अपनी अगाध सेवाओं के स्वाभिमान से जनित हैः–

"दिए हैं मैंने जगत को फूल–फल
किया है अपनी प्रभा से चकित–चल;
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल–
ठाट जीवन का वही
जो ढह गया है।"[185]

डॉ0 नामवर सिंह ने लिखा है:– *"निराला ने 'मैं शैली' को अपनाने का दावा बहुत पहले किया था, आरंभिक समय में लेकिन 'मैं' शैली निराला छोड़ देते हैं–उन प्रसंगों में, जहाँ कथात्मक होते हैं।"*[186] पर यदि हम ध्यान दें, तो 'सरोज–स्मृति' में 'मैं' का सामाजिक संघर्ष है। यह कविता व्यक्तिगत शोक–गीत है जिसमें सामाजिक भाव भी मुखर है। अब बात करते हैं– तुलसीदास और राम की शक्ति पूजा' की। दोनों कविताओं में निराला काव्य–नायक में स्वयं मौजूद हैं। तुलसीदास का साँस्कृतिक संघर्ष स्वयं निराला का भी सामाजिक –साँस्कृतिक समर है। दूधनाथ सिंह ने लिखा है:– *"'राम की शक्ति–पूजा' में राष्ट्रीय मुक्ति के प्रतीक–राम ही हैं, 'रामोरामेव नापरः लेकिन दूसरे रूप में राम में निराला प्रतिष्ठित हो जाते हैं। लेकिन 'तुलसीदास' में तुलसीदास राम भी हैं और यह तुलसी और उनमें प्रतिरोपित राम–निराला ही हैं। यानी कि राम–कथा के रचयिता तुलसीदास, राम और निराला यहाँ एक हो जाते हैं। तुलसीदास के माध्यम से यह जन साधारण की दुर्दशा और साँस्कृतिक अंधकार की चिंता निराला के कवि की आधुनिकता है।"*[187]

'तुलसीदास' कविता में निराला ने तुलसीदास के लिए अधिकतर 'कवि' शब्द का प्रयोग किया है। यथा 'यह जागा कवि अशेष–छविधर।' यहाँ काव्य–नायक तुलसीदास का 'मैं' दो जगह प्रकट हुआ है। एक स्थान पर प्रियतमा से बंध के रूप में :–

"मैं बँधा एक शुचि आलिंगन
आकृति में निराकार, चुंबन।"[188]

कविता के अंत में सीमित 'मैं' के मुक्त प्रकाश का प्रसार जन–जन में करने का संकल्प है–

"देखूँगा नहीं कभी फिरकर
लेता मैं, जो वर जीवन–भर बहने का।"[189]

'तुलसीदास' पढ़ने पर कवि की रचना–प्रक्रिया भी स्पष्ट होती है। आत्ममोह व भटकाव की इस स्थिति से कवि नए रूप में अपने कवित्व को प्राप्त करता है। 'राम की शक्ति–पूजा' में राम के रूप में कवि निराला के रचनात्मक जीवन के संघर्षों का साक्षात्कार और अपनी प्रतिभा का पुनर्दर्शन हैं। राम का संघर्ष निराला की लेखनी और रचना–कर्म का संघर्ष है। राम सोचते हैं:–

"रावण अर्धमरत भी, अपना मैं हुआ अपर–
यह रहा शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर!
करता मैं योजित बार–बार शर–निकर निशित
हो सकती जिनसे यह संसृति संपूर्ण विजित।"[190]

राम की शर–साधना वैसे ही विफल हो रही थी, जैसे निराला की साहित्य–साधना। 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति' में 'अन्याय' निराला के साहित्य के साथ भी अन्याय है और 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर' में 'आराधन' में अन्य साहित्यिकारों की चाटुकारिता है और 'दृढ़ आराधन' में अनवरत साहित्य–साधना का संकल्प भी। 'राम की शक्ति–पूजा' में जो राम की आरंभिक निराशा है, वह 'वनबेला' कविता में भी है। डॉ. नंदकिशोर नवल के अनुसार– ***"शक्ति पूजा के बाद की रचना 'वनबेला' में निराला ने इसी निराशा को अपने माध्यम से दुहराया है–'हो गया व्यर्थ जीवन/मैं रण में गया हार'–कवि की यह उक्त उसके चरित्र राम की उक्ति से बिलावजह नहीं मिल जाती है। इसे मिलने की वजह यह है कि निराला और राम दोनों के भीतर वस्तुतः एक ही भावधारा प्रवाहित है।"***[191] कहने का तात्पर्य 'राम' हो या 'तुलसीदास' कवि निराला ने अपने 'मैं' को हर जगह आरोपित किया है। जो जीवन में देखा है, उसे ही कथा में परिणत किया है। 'मैं' शैली उन्होंने कहीं नहीं छोड़ी है, बस उसका रूप जरूर बदला है। पर ध्यान रखने की बात है कवि का यह 'मैं' हमेशा शोषितों, वंचितों, अत्याचार–पीड़ितों, सामाजिक–सांस्कृतिक दंश

झेलने वालों के साथ खड़ा है। इसलिए यह 'मैं' जितना निजी है, उतना ही सामाजिक भी।

'छायावाद' नामक कृति में डॉ0 नामवर सिंह ने रूसो की उस पंक्ति को उद्धृत किया है, जिसमें रूसो ने कहा है– मैं अपने मित्रों के सामने एक मनुष्य का सच्चा रूप रखना चाहता हूँ और वह मनुष्य स्वयं मैं हूँ।" निराला भी अपनी कविता के विषय स्वयं थे। वह आदमी जो सामान्य होकर भी हताशा में पुनः उठने की कामना लेकर बार–बार विशिष्ट हो जाता है और अपने प्रतिद्वंदियों को बराबर 'चैलेंज' देता रहता है। डॉ0 नामवर सिंह के शब्दों में कहें तो– ***"चुनौती का ऐसा अकुंठित स्वर हिन्दी छायावाद में नहीं सुना गया; यदि हिन्दी में ऐसी चुनौती कोई दे सकता था–और एक हद तक दिया भी–तो एक निराला।"***[192] पर, उस चुनौती में आत्माभिमान है, अहंकार नहीं। जहाँ निराला ने दीन–दुःखी देखा, उनके 'मैं' का 'मैं' पन विसर्जित हो गया। अंततः कवि यही मांग करता हैः–

"धूलि में तुम मुझे भर दो
धूलि–धुसर जो हो हुए पर
उन्हीं के वर वरण कर दो।
दूर हो अभिमान–संशय
वर्ण–आश्रम–गत महामय
जाति–जीवन हो निरामय
वह सदाशयता प्रखर दो।"[193]

(3) ''सुंदर, हे सुंदर'': निराला का काव्य–स्थापत्य एवं भाषा सौष्ठव

"सुंदर, हे सुंदर!
दर्शन से जीवन पर
बरसे अनिश्वर स्वर।"[194]

निराला कविता व कला को सार्वदेशिक व सार्वकालिक बनाने के लिए सुंदरता के उपासक थे। वैसी सुंदरता जिसमें सत्य भी हो और शिव भी। इसलिए निराला की कविता का सौंदर्य दार्शनिक सत्य और जन–कल्याण से खाली नहीं है। 'सौंदर्य दर्शन और कवि–कौशल' निबंध में निराला लिखते हैंः– *"जब कला परिभाषा की जंजीर से जकड़ दी जाती है, तब वह हमेशा किसी खास विचार या किसी खास मजहब की हो जाती है। इस संकीर्णता से अलग करने के लिए ही उसे सत्य, शिव और सुंदर के आवरण से ढँकने की कोशिश की गयी है।"*[195] कहने का तात्पर्य कविता को सार्वदेशिक व सार्वकालिक बनाने के लिए कविता में 'सत्य, शिव' व सौंदर्य' का संतुलन आवश्यक होता है। परंतु, यह निर्भर करता है कवि के काव्य–कौशल पर। उक्त निबंध में ही निराला आगे लिखते हैंः– *"कविता का सौंदर्य दर्शन भी कला और कौशल से खाली नहीं होता। साधारण लोगों की दृष्टि और कवि की अंतर्दृष्टि में विशेष अंतर होता है क्योंकि वह विश्व की प्रत्येक वस्तु को कल्पना की सौंदर्यमयी दृष्टि से देखता है और नीरस–से–नीरस वस्तु को अपने अद्‌भुत कौशल द्वारा सरस और सुंदर रूप देकर संसार के सामने रख देता है। उपर्युक्त कवियों की भावनाएँ विश्व की संपत्ति हैं। उनका वाह्य–सौंदर्य एकदेशीय होने पर भी अंतःसौंदर्य सार्वदेशीय है।"*[196]

निराला सघन काव्य–शिल्पी की तरह अपनी कविता का पहले नक्शा बनाते हैं, फिर नींव बनाते हैं और उस पर इमारत खड़ी करते हैं। 'नक्शा' बनाते समय निराला कविता के बाहरी और भीतरी दोनों रूपों का चित्र पहले ही खींच लेते हैं। हालांकि, वो मानते हैंः– *"वर्णन के मुख्य दो रूप हैं, बाहरी और भीतरी। आज तक संसार के साहित्यिक भीतरी रूप*

को ही विशद, सुंदर और कल्याणकारी मानते आए हैं क्योंकि वह आत्मा के और निकट है।[197] इसलिए निराला पहले कविता के भीतरी रूप अर्थात् विषय–वस्तु की कल्पना करते हैं। विषय–वस्तु निर्धारित करने के बाद वो घटना या भाव व्यापार का क्रम निर्धारित करते हैं। 'मेरे गीत और कला' में वो अपनी कविता 'जूही की कली' की व्याख्या करते हुए उस काव्य–नक्शे में समाहित क्रम को समझाते हैं–*"कली की सुप्ति–आत्म विस्मृति–मन के अंधकार के बाद है जागरण–आत्म–परिचय–प्रिय–साक्षात्कार–मन का प्रकाश–खिलना।" .....मैं। इसे ही परिणति कहता हूँ और उत्कृष्ट कला का एक उदाहरण 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की काव्य में उतारी हुई यह तस्वीर है या नहीं, परीक्षा करें।*[198] स्पष्ट है कि यह एक निश्चित विकास क्रम है। कहाँ से शुरू करना और कहाँ खत्म करना है निराला को पता है। यह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की यात्रा उनकी अधिकांश कविताओं में मिलेगी। चाहे–'राम की शक्तिपूजा' हो या 'तुलसीदास', वहाँ भी अंधकार के बाद कविता प्रभात पर समाप्त हो रही है। निराला अंधकार से प्रकाश की तरफ बढ़नेवाले कवि हैं। 'अमानिशा', 'अंधकारा' से वो ज्योति की तरफ बढ़ते हैं। चाहे जयशंकर प्रसाद हो या आचार्य रामचंद्र शुक्ल दोनों को निराला अंधकार से ही प्रकाश की तरह उदित होनेवाला बतलाते हैं। प्रसाद के लिए निराला कहते हैं:–*"ज्योतिर्मय तारा–से उतरे तुम पृथ्वी पर।*[199] और आचार्य शुक्ल को 'श्रद्धांजलि' देते हुए लिखा–*"अमा निशा थी समालोचना के अंबर पर/उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर।*[200] दरअसल निराला के लिए अंधकार 'अज्ञान' का प्रतीक था और प्रकाश व सवेरा ज्ञान का। निराला की 'अणिमा' कविता का एक शीर्षक ही है–'नाम था प्रभात ज्ञान का साथी।' उक्त कविता का अंत होता है–

"कहा ज्ञान ने, 'फिर तू कैसा प्रभात,
अगर हटायी न हरी वैसी रात।"[201]

निराला हमेशा इस 'अंधकार' से लड़ने का संकल्प लेकर काव्य–क्षेत्र में उतरे थे:–

"गया अंधेरा
देख, हृदय हुआ है सवेरा।

चलना है बहुत दूर रे
नहीं वहाँ परी, नहीं हूर।"[202]

यह जरूरी नहीं है कि निराला अपनी प्रत्येक कविता में इस 'रोडमैप' इसी नक्शे को लेकर चलें। निराला की कविता 'जागो फिर एक बार' (1) का नायक अंत तक सोता ही रहता है और 'जागृति में सुप्ति थी' का नायक जागने के बाद फिर सो जाता है। 'निशा के उर की खुली कली' में निशा के बहाने अभिसारिका का चित्रण है। जहाँ वेदना घनी है, वहाँ निराला कभी–कभी इसी क्रम को बदल देते हैं। निराला की कविता 'गीतिका' में एक कविता है–'पावन करो नयन।', उसमें शुरूआत होती है 'रश्मि, नभ–नील पर' फिर दुःख भरी रात से अंत होता है– ***"दुख–निशि करो शयन।"***[203] हालांकि निराला उस अंधकार में जागते रहने–नींद में भी स्वप्न देखने की आकाँक्षा नहीं छोड़ते। यह जरूरी नहीं है कि निराला ने हमेशा बने–बनाए नक्शे का अंत तक निर्वाह किया। लिखने के क्रम में भी सोची गई बात अंत में बदल जाती है। 'सरोज–स्मृति' कविता में कवि निराला को यह विश्वास है कि उनकी स्वर्गवासी पुत्री दुस्तर अंधकार में उनका हाथ पकड़कर उन्हें पार ले जाएगी।' निराला को यह विश्वास है– ***"तारूंगी कर यह दुस्तर तम?"***[204] इसलिए कन्या के बारे में 'श्रावण नभ का स्तब्धान्धकार' से 'शुक्ला प्रथमा' को पार करने की बात कही गई। शायद! अंधकार से प्रकाश की ओर जाने की आशा निराला के मन में रही होगी। पर कविता का अंत महाभरण के अंधकार में कन्या के तर्पण पर समाप्त होता है, दुःख भरे जीवन पर समाप्त होता है। इसलिए निराला की उक्त कविता के संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा हैः– ***"इस कविता का अंत–उसकी परिणति–जितना प्रभावशाली है, उतना अन्य किसी लंबी कविता का नहीं। न 'तुलसीदास', न 'वनबेला' न 'राम की शक्तिपूजा' कोई भी, कविता के प्रभावशाली अंत की दृष्टि से 'सरोज–स्मृति' का मुकाबला नहीं कर सकती। यहाँ कविता के पूर्व–निश्चित तर्कसंगत ढाँचे का टूटना ही उसकी सबसे बड़ी सफलता है।"***[205]

दरअसल निराला कहीं भी एक–सा ढाँचा लेकर भी नहीं चलते। वह एक बनाते हैं तो दूसरा तोड़ते हैं। 'नये पत्ते' की रचनाएँ बिल्कुल नए

नक्शे की हैं। 'सान्ध्य काकली' में निराला की भाव–धारा अलग दिशा में बह रही है। अगर निराला एक ही दिशा में बढ़े तो फिर निराला का निरालापन कहाँ? उनमें जितनी शुरूआत हैं, उतने ही अंत है। निराला अपने प्रतिमान स्वयं तोड़ते हैं। वे स्वयं से मुखोमुखम करते हैं और दूसरे को भी तोड़ने को प्रेरित करते हैं। शोध के प्रथम अध्याय में ही निराला की इस तोड़ने की कला से उत्पन्न नए रचना–शिल्प की ओर इशारा किया था। डॉ0 नामवर सिंह ने उनकी भाषा की संरचना के संदर्भ में भी इसी तोड़ने की प्रक्रिया को इंगित करते हुए लिखा है– *"निराला के काव्य–जीवन से मालूम होता है कि पहले वे भाषा को गद्य में बनाते हैं या तोड़ते हैं, फिर छंदों को तोड़ते हैं और फिर उस आधार पर वे छंदोबद्ध रचनाएँ लिखते हैं। छायावाद के काल में भी यही किया था। 'परिमल' के मुक्त छंदों में छंद को तोड़कर नई भाषा गढ़कर फिर 'गीतिका' के गीत लिखे, 'अनामिका' की कविताएँ लिखीं यानि वे 'राम की शक्ति–पूजा' व 'सरोज–स्मृति' लिखने से पहले और 'गीतिका' के अनेक गीतों से पहले छंदों को तोड़–तोड़कर नई भाषा खड़ी बोली में गढ़ रहे थे।*[206] कहने का तात्पर्य, निराला कविता का नक्शा बनाने के बाद काव्य–इमारत बनाने में भी एक समान काव्य–प्रणाली का उपयोग नहीं करते।

कुँवर नारायण ने 'आधुनिकता–समय–रचनात्मकता' नामक निबंध में लिखा है:– *"कलाकार के लिए पूरा यथार्थ कच्चा माल है–उसका माध्यम जिससे वह नया कुछ रचता है। यह 'नया कुछ' परिभाषित किया जा सकता है–सुंदर के संदर्भ में भी और उपयोगिता के संदर्भ में भी, यह दोनों के संदर्भों में बिल्कुल बाहर भी परिभाषित किया जा सकता है इस तरह कि न तो सुंदर हो न उपयोगी, केवल 'नया कुछ' हो।*[207] निराला की काव्य–इमारत का कच्चा माल खुद का जीवन–संघर्ष, व्यक्तिगत द्वंद, घात–प्रतिघात, आक्रोश व विद्रोह रहा है। जब निराला इस कच्चे माल के साथ कुछ 'नया' रचने की चाहत में कविता की इमारत खड़ा करने का संकल्प लेकर काव्य–कर्म में प्रवृत्त होते हैं तो भावों में नहीं बहते। वे जानते थे कि हल्के भावों से कविता की सुदृढ़ इमारत नहीं बनाई जा सकती। 'अणिमा' में संकलित कविता 'भाव में छलके पदो' में निराला ने लिखा है:–

"भाव जो छलके पदों पर
न हों हलके, न हों नश्वर
चित्त चिर–निर्मल करे वह,
देह–मन शीतल करे वह
ताप सब मेरे हरे वह
नहा आयी जो सरोवर।"[208]

यहाँ गंभीर भावों से ही सार्वकालिक या कालजयी रचना की कामना है। वैसे भाव हों जो पाठकों का भी देह–मन शीतल करे और कवि के ताप अर्थात् आक्रोश, विद्रोह, छटपटाहट आदि का भी शमन करे। कहने का तात्पर्य निराला कविता की इमारत खड़ा करने के पहले काव्य–सामग्री की पड़ताल करते हैं। उसके बाद उनका ध्यान जाता है–काव्य–रूपों व सौष्ठव पर जिससे एक नियत लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई व गहराई वाली इमारत खड़ी की जा सके और उन सब में एक संतुलन हो। अन्यथा 'भानुमति का कुनबा हो जाएगा, कहीं की ईंट तो कहीं का रोड़ा। दूसरी बात, संतुलन का अर्थ भव्यता–प्रदर्शन नहीं, काव्य–कौशल की ऊपरी चमक–दमक नहीं, वरन् नक्शा व कच्चा माल के अनुरूप बनी एक पूर्ण आकृति है। इस दृष्टि से किसी को एक ताजमहल भी सुंदर लग सकता है तो पहाड़ों की तराईयों में बसी छोटी झोपड़ियाँ भी। कहने का मतलब, निराला के लिए संतुलन का मतलब पूर्णता से है, जिसे वो कच्चे माल से बनाना चाहते हैं। चाहें वह पंच सितारा होटल बने या गाँव की झोपड़ियाँ, बस उसकी बनावट में पूर्णता होनी चाहिए।

निराला काव्य की पूर्णता के लिए काव्य–वृक्ष का उदाहरण बार–बार दिया करते थे। 'रचना–सौष्ठव' निबंध में निराला काव्य–वृक्ष के दृष्टांत को पूर्णता से जोड़ते हुए लिखते हैः– ***"हर चरित्र इस प्रकार बढ़ता हुआ पूर्णता प्राप्त करता है, अपने गम्य स्थान को जाता है। एक बीज जैसे पेड़ होता है, एक तना–यही प्रधान पात्र है, या मुख्य–विषय; दो –तीन शाखाएँ पात्र या विषय को अवलंब देती है। अनेक प्रशाखाएँ उपलब्ध स्वरूप, उनका टेढ़ापन कलापूर्ण प्रगति, पत्र आदि वर्णनाच्छद, पुष्प–सौंदर्य का विकास, सुगंध परिसमाप्ति, अथवा फलप्राप्ति। एक परिपूर्ण रचना के लिए भी***

बिल्कुल ऐसा ही है; गंगा जैसी बड़ी नदी को भी हम उदाहरण के लिए ले सकते हैं।[209] निराला इस काव्य–वृक्ष की प्रक्रिया में खेती का दृष्टांत देते हैं। 'साहित्य का चरित्र' नामक टिप्पणी में निराला लिखते हैं कि जिस प्रकार जमीन का अच्छा होना, खूब जोता जाना, खाद पड़ना अच्छी खेती होने के कारण हैं, उसी तरह साहित्य के लिए भी कहा जाएगा। निराला रूपवादी नहीं थे जो केवल काव्य–वृक्ष के फूल पर ही मोहित हो जाए या केवल फल से ही संतोष कर ले; वे किसी भी रचना के मूल तक पहुँचने की बात करते हैं। 'साहित्य का चरित्र' निबंध में उन्होंने लिखा है– *"सच्चे साहित्यिक कला में मूल तक पहुँचते हैं, केवल फूलों में नहीं झूलते। तभी मूल से फूल और फल तक, साहित्यिक चरित्र की साधना के कारण, कला की कल्पना पूरी–पूरी उतार देते हैं। केवल फूल को देखने वाले फूल इसीलिए नहीं खिला सकते कि वे फूल को अच्छा और पत्ते को खराब मानते हैं। माली या कृषक ऐसा नहीं समझता। उसकी दृष्टि में मिट्टी, खाद, बीज, पौधा, पत्ता, सभी का बराबर महत्व है। इन्हीं के उत्कर्ष का परिणाम फूल और फल हैं, वह जानता है। ऐसा ही एक सच्चरित्र साहित्यिक की दृष्टि में है। सभी के चरित्र में बराबर कौशल प्राप्त करना पड़ता है, इसलिए सभी उसके पास कीमती है। अच्छी तरह देखिए, तो पत्ता फूल से कम खूबसूरत नहीं, न डाल, न तना, न जड़, यह उसे मालूम है। यही दृष्टि पठित साहित्यिक को, वाद को प्राप्त होती है, वह साहित्योपवन का मौलिक माली होता है।*[210] निराला मानते थे कि सम्पूर्ण पद्य में कला का जो विकास है, वह उच्च कोटि का कवि ही समझ सकता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल छायावादी गीतों में एकान्विति (यूनिटी) और संबंध (कोहरेंस) का अभाव पाते हैं। इसका कारण आचार्य शुक्ल ने अभिव्यंजनावादी मानसिकता से पैदा हुआ वैचित्र्य लोभ बता दिया है। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उन्होंने लिखा है– *"छायावाद की रचनाएँ गीतों के रूप में ही अधिकतर होती हैं। इससे उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है। जहाँ यह अन्विति होती है, वहीं समूची रचना अन्योक्ति–पद्धति पर की जाती है। इस प्रकार साम्य–भावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं।*[211] दरअसल, मुक्तक काव्य में एकान्विति सहज भी नहीं होती। परंतु,

आचार्य शुक्ल ने 'अन्विति के अभाव' का आरोप जो छायावादी काव्यों पर लगया था, कम से कम वो निराला के लिए पूर्णतः सही नहीं कहा जा सकता। 'छायावाद' में अकेले निराला ही थे जो अन्विति व पूर्णता के पूर्णतः समर्थक थे और सदैव अन्विति की खोज व पूर्णता प्राप्ति की ललक से आवेशित रहते थे। इस बात को निराला ने अपने निबंध 'मेरे गीत और कला' में फिर से उठाया है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया– *"कला केवल वर्ण शब्द, छंद, अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुंदरता नहीं, किन्तु इन सभी से सम्बद्ध सौंदर्य की पूर्ण सीमा है, पूरे अंगों की सत्रह साल की सुंदरी की आँखों की पहचान की तरह..... जैसे केवल बीज से पुष्प की पूरी कला विकसित नहीं होती, न अंकुर से, न डाल से, न पौधे से; जड. से लेकर तना, डाल, पल्लव और फूल के रंग–रूप–गंध तक फूल की पूरी कला के लिए जरूरी है, वैसी ही काव्य की कला के लिए काव्य के सभी लक्षण। ..... तने, डाल, पत्ते और फूल के रंगों के भेद और उनके चढ़ाव–उतार की तरह काव्य की भी प्रकाश धारा है, इसकी त्रुटि कला के एक अंश की त्रुटि होगी।"*[212] कहने का तात्पर्य निराला कविता को समग्रता में देखने की बात कहते हैं। कविता के एक अंश को देखकर खीझ जाने और एक अंश को खराब मानकर पूरी कविता को खराब कहने की प्रवृत्ति के निराला विरोधी थे। इस आधार पर निराला पंत जी की कविताओं में विषय की विशदता नहीं, अलंकारों की चमक–दमक अधिक देखते हैं। निराला के अनुसार, उनकी अधिकांश रचनाएँ एक–एक उपमा, रूपक या उत्प्रेक्षा को काव्य–कला में परिणत कराने के लिए है जिसे आलोचकों ने अपूर्व कला समझ लिया है। निराला के अनुसार रस, अलंकार या ध्वनि कला नहीं। अगर है तो कला के खंडार्थ में है, पूर्णार्थ में नहीं। कहने का तात्पर्य निराला ने कविता की 'आलोचना में खंड–दृष्टि' का विरोध किया। डॉ0 नामवर सिंह ने 'कविता के नए प्रतिमान' में इसे कविता के आवयविक सिद्धांत' का स्पष्ट व्याख्यान बतलाया है। उन्होंने लिखा हैः– *"रीतिवाद में कविता की संरचना को प्रायः किसी मानव–निर्मित कृति के आधार पर निरूपित किया गया है। किन्तु, रोमांटिक कवि कविता को प्राकृतिक वस्तुओं के समान सजीव–सचेतन मानते थे, इसलिए वे उसकी संघटना को अपने–आप अंदर से विकसित एक अखंड सत्ता के रूप में देखते हैं।*

कविता के संदर्भ में निराला की फूल–वाली उपमा का यही महत्व है। आज उस सिद्धांत का वनस्पतिशास्त्र के आधार पर मतभेद हो सकता है, किन्तु कविता की अन्विति और अंतर्ग्रंथन के महत्व को अस्वीकार करना असंभव होगा।[213]

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना जरूरी है कि निराला ने काव्य की अखंडता व पूर्णता का संबंधित प्रश्न छोटी कविताओं के संदर्भ में उठाया और इस आधार पर उन्होंने मांग की उनकी कविता की खंड–दृष्टि से आलोचना न की जाए, बल्कि संपूर्ण अर्थ–सौंदर्य को देखा जाए। 'तोड़ती पत्थर' कविता का यदि अंत न देखा जाए तो कविता का समग्र सौंदर्य स्पष्ट नहीं होता। दरअसल, समग्र कविता के एक अंश को निकालकर सूक्ति के रूप में उसे प्रकट करना निराला को पसंद नहीं था। निराला ने अपनी कविता 'जूही की कली' का हवाला देकर लिखा था– *"यह ऐसी रचना नहीं कि सूक्तिरूप में इसका एक अंश उदधृत किया जा सके। मेरी छोटी रचनाएँ (Lyrics) और गीत (Songs) प्रायः ऐसे ही हैं। इनकी कला इनके संपूर्ण रूप में हैं, खंड में नहीं; सूक्तियाँ–उपदेश मैंने बहुत कम लिखें हैं, प्रायः नहीं; केवल चित्रण किया है। उपदेश को मैं कवि की कमजोरी मानता हूँ।*[214] स्पष्ट है, निराला का आग्रह यही है कि उनकी कविताओं को खंड–खंड कर सूक्ति के रूप में न देखा जाए। काव्य–वृक्ष का केवल फल–फूल न देखो, पत्तियाँ, जड़, तना सब देखो। परंतु, निराला जितने अपनी कविता की पूर्णता व उदात्तता के लिए जाने जाते हैं, उतना ही उनकी कई पंक्तियाँ स्वयं में सूक्तियाँ बनकर जबान पर छा जाती है। डॉ0 नामवर सिंह का मानना है कि निराला ने हिन्दी कविता की गद्यात्मकता को तोड़ कुछ ऐसा किया जिससे उनके गीत लोककंठ में बस गए। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में– *"निराला की कविताओं की अनेक पंक्तियाँ आज के कवियों को याद है। शायद सबसे ज्यादा उद्धृत करनेवाली पंक्तियाँ निराला में ही मिलेगी। क्या आज के कवियों ने ऐसी पंक्तियाँ लिखी हैं कि पूरी कविताएँ न सही तो कम–से–कम एक–दो कविता ऐसे क्षणों में याद आ जाएँ? जैसे निराला ने कहा है कि –'बाहर मैं कर दिया गया हूँ। भीतर पर भर दिया गया हूँ। या कहें; 'सुख का दिन डूबे डूब जाए/तुमसे न सहज मन ऊब जाए। ऐसी अनेक पंक्तियाँ है,*

'भर गया है जहर से संसार जैसे जहर खाकर/देखते हैं लोग लोगों को सही परिचय न पाकर।' इस तरह की कविता जो जुबान पर चढ़ जाए। तुलसीदास इसलिए बड़े हैं कि जीवन के अनेक क्षणों में उनकी कोई न कोई पंक्ति याद आ ही जाती है। जैसे हमारी अनुभूतियों को महाकवि वाणी देते हैं। इस तरह का दूसरा कवि हमको निराला ही मिलता है। उनके बाद चालीस–पचास वर्षों में जो कविताएँ लिखी गई हैं, उनमें कितनी पंक्तियाँ ऐसी हैं जो हमारे जीवन के अलग–अलग क्षणों में हमारी भावना की वाणी बन सके![215] कहने का तात्पर्य यह है कि निराला की कविता 'राम की शक्ति–पूजा' समग्रता में महान व उदात्त रचना है तो इसका एक कारण उसके खंड–खंड में नक्काशी है, जीवन–अनुभव का निचोड़ है। यह अकारण नहीं कि हिन्दी काव्य–प्रेमी 'राम की शक्ति–पूजा' के 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति' या 'अराधन का दृढ़ अराधन से दो उत्तर' या फिर 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो मुक्तक' जैसे सूत्र–वाक्यों को कभी नहीं भूलता। उसी ढ़ंग से 'सरोज स्मृति' कविता में भी खंडात्मक सूक्तियाँ उतनी ही सौंदर्यवान है और जबान पर छा जाती हैं। जैसे–"यह हिन्दी का स्नेहोपहार/यह नहीं हार, मेरी भास्वर या 'देखता रहा मैं खड़ा अपल/वह शर क्षेप, वह रण–कौशल' या फिर 'दुख ही जीवन की कथा रही/ क्या कहूँ आज, जो नहीं कही' आदि। कुछ पंक्तियाँ तो सूत्र–वाक्य के लिए निराला का आत्म–परिचय ही बन गई। जैसे–मैं वसंत का अग्रदूत/ब्राह्मण–समाज में ज्यों 'अछूत।' तात्पर्य यह है कि कविता को पूर्णता व समग्रता में मूल्यांकन करने का आग्रह रखनेवाले कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिन्दी में तुलसीदास के बाद एक ऐसे इकलौते कवि हैं जो अपनी काव्य–रचना के समग्र–सौंदर्य या प्रबंधात्मक कविता की उदात्तता के साथ–साथ अपने सूक्तिपरक वाक्यों के सौंदर्य के कारण भी याद किए जाते हैं। निराला लंबी कथात्मक कविताओं और गीतों की पूर्णता में निराले तो हैं, यदि उनका खंड या सूक्ति भी ली जाए तो वह कम मर्मस्पर्शी व सौंदर्यवान नहीं हैं क्योंकि निराला जब काव्य–इमारत बनाते हैं तो नक्शा, नींव, साँचा, कच्चा–माल, कमरे, द्वार, खिडकियाँ, फर्श, छत, दीवार सबको इमारत की लंबाई–चौड़ाई के हिसाब से नाप–तोल कर बनाते हैं और जरूरत पड़ने पर नक्काशी करना नहीं भूलते। ध्यातव्य है,

निराला ने कविशेखर विद्यापति से चंडीदास को कमतर इसलिए आंका था क्योंकि *"चंडीदास में कविता की कारीगरी उतनी नहीं, जितनी उनकी भावुकता प्रबल है। भावुकता या आवेश में ही कला के अनमोल रत्न उनकी लेखनी से निकले हैं, उन्होंने ज्ञात–भाव से कविता की उच्च कोटि की कारीगरी नहीं की।*[216]

निराला की कुछ कविताएँ वैसी हैं जो कागज पर अधिक पृष्ठ घेरती हैं, पर उसमें वह गहराई या संतुलन हैं जो 'राम की शक्ति–पूजा' या 'तुलसीदास' में है। 'स्वामी प्रेमानंद जी महाराज' या 'सेवा आरंभ' कविताएँ हैं तो लंबी; पर वहाँ, निराला ने काव्य–अनुशासन पर नियंत्रण नहीं दिखाया है। ऐसा नहीं है कि वहाँ काव्य–भाषा का कुशल प्रवाह नहीं है, बस नियंत्रित नहीं है। इसलिए उक्त कविताएँ सीधी–रेखा सी बढ़ती हैं, आस–पास स्थान नहीं घेरती। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति–पूजा' में निराला काव्य–सौष्ठव के प्रति काफी सजग दिखते हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं:–"*'तुलसीदास' में निराला एक शानदार इमारत बनाना चाहते हैं, ऐसी कि उसे देखकर मन उसकी गरिमा से प्रभावित हो। इसलिए वह छंद–प्रवाह, मूर्तिविधान, शब्द–ध्वनि, सांकेतिक अथवा स्पष्ट व्यंजना इन सबको नियंत्रित रखते हैं। निराला की कला की विशेषता यह है कि सामन्यतः इन तत्वों में एक नियंत्रित हैं, तो सब नियंत्रित द्वार वह अपने माध्यम में घनत्व पैदा करते हैं, कविता को सीधी रेखा में बढ़ने से रोकर दाएँ–बाएँ जगह घेरते चलते हैं।*[217] जहाँ निराला ने दाएँ–बाएँ स्थान अधिक घेरा है, वहाँ उदात्तता की अधिक सृष्टि हुई है। 'जूही की कली' और 'शेफालिका' कविता का भाव लगभग मिलता–जुलता है, पर 'जूही की कली' निराला की लोकप्रिय रचना बनी। यहाँ भाषा का प्रवाह अनवरूद्ध है। एक ही कवि की रचना और विषय–वस्तु एक समान, परन्तु अंतर भाषा के सहज व नियंत्रित प्रयोग का है। 'जूही की कली' में निराला के मांसल प्रेम का लोकोत्तर उदात्त रूप प्रकट हुआ है। कविता के अंत में यदि देखे तो नायक निर्दयतापूर्वक नायिका के गोरे कपोलों को मसल देता है, तब कहीं जा कर वह चौंकती हुई जागती है। नायिका के जग जाने के बाद की स्थिति पर कवि का नियंत्रण है। आगे की स्थिति पर कवि संकेत कर मांसल प्रेमी में विकृति आने नहीं देता। उसी प्रकार –'शेफालिका' के

इस मांसल सौंदर्य का उदात्तीकारण तब होता है, जब नायक उसके वक्ष का संतरण करता हुआ आकाश 'शोक–दुख जर्जर इस नश्वर संसार की क्षुद्र सीमा' को पार कर जाना चाहता हैं। 'शेफालिका' कविता के अंत में कवि निराला शेफालिका को मादक मांसलता से निकालकर एक उच्च भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित कर देते हैं–

"आशा की प्यास एक रात में भर जाती है,
सुबह की आली, शेफाली झर जाती है।"[218]

डॉ. नंदकिशोर नवल ने लिख है– ***"निराला का ध्यान भी कविता के स्थापत्य से कभी नहीं हटता, जिससे उनकी कविता की भीतरी सजावट एक दूसरे स्तर पर भी पाठकों को सजग रखकर उन्हें काव्यानंद तो प्रदान करती हैं, लेकिन उन्हें रास्ते से ही रोक नहीं लेती।"***[219] परंतु, निराला का अलंकरण रीतिकालीन अलंकरण नहीं है। संयोग श्रृंगार या यौवन के मुक्त चित्रण में निराला घटनाओं क्रिया–व्यापारों का खुलकर वर्णन नहीं करते, उनका ध्यान परिस्थिति की संगोपांग, सघनता पर अधिक रहता है। ध्यातत्य है, निराला के पास 'रीतिकालीन कुंज' और 'प्राइवेट घाट' नहीं है, जो कुछ भी है जन–साधारण का सामान्य प्रसंग है। होली में नायक–नायिका का प्रेम–मिलन रीतिकाल का प्रिय प्रसंग रहा है। निराला की कविता' नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे' में कितना पावन, सांकेतिक पर उन्मुक्त वर्णन हैः–

"प्रिय–कर कठिन–उरोज–परस, कस कसक मसक गई चोली,
एक वसन रह गयी मंद हंस, अधर–दशन, अनबोली–
कली–सी कांटे की तोली।"[220]

उपर्युक्त पंक्तियों में विवरणात्मकता नहीं है। संकेतों से ही सारा क्रिया–व्यापार उभर आता है। ध्यातव्य है, रवीन्द्रनाथ की कविताओं में संयोग– श्रृंगार का पूरा विवरण मिलता है। परंतु, निराला कविता में क्रियाओं से नहीं शब्दों से ही बिंब बनाकर कथ्य का क्रमागत करते हैं। 'प्रिय–कर–कठिन–उरोज–परस' से सारा क्रिया–व्यापार आँखों के सामने आ जाता है। हालांकि, नायिका के स्तनों का दर्शन वो आँखें फाड़कर करते हैं। आँखों से पूरा अंदाजा लेते हैं, ठहरकर देखते हैं। परन्तु, भाव व

भाषा को स्खलित नहीं होने देते। जो भी देखते हैं, दिव्यता का आच्छादन किए हुए देखते हैं। निराला की एक कविता है, 'स्फटिक–शिला' यहाँ कविता के अंत में ग्रामवासिनी सद्य, स्नाता के उरोजों को बिल्कुल जयंत की दृष्टि से निराला देखते हैं और उसमें दिव्यता के दर्शन करते हुए सीता के सौंदर्य से तारतम्य बैठा लेते हैंः–'

"उठे पुष्ठ स्तन, दुष्ट मन को मरोड़कर
आयत दृगों को मुख खुला हुआ छोड़कर।
बदन कहीं से नहीं काँपता
कुछ भी संकोच नहीं ढाँपता।
वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयंत की, नहीं जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और,
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर।
मेरा तन काँप उठा, याद आयी जानकी
कहा, तुम राम को
कैसे दिए हैं दर्शन।"[221]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'कुछ भी संकोच नहीं' और 'अड़ी थी निगाह' में सहज स्वीकारोक्ति है–उद्दाम सौंदर्य के दर्शन हेतु। 'तोड़ती पत्थर' कविता में कवि मजदूरनी में भी सहज सौंदर्य के दर्शन करता है, पर उसी दिव्यता व पवित्रता के साथ–***"श्याम तन, भर बँधा यौवन"***[222] कितना पवित्र वर्णन है, परंतु कतिपय लोगों ने इसमें दलित स्त्री के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण देख लिया। परंतु, निराला ने उक्त पंक्ति के संदर्भ में 12 अगस्त 1937 ई. को जानकीवल्लभी शास्त्री को पत्र में लिखा थाः–***"बँधा यौवन, छलकता नहीं; कैसी पवित्रता है।"***[223] निराला को पता था, कहाँ कितनी स्वतंत्रता देनी है और कहाँ कितना नियंत्रण रखना है। निराला 'देह–भोग' के कवि नहीं थे। दूधनाथ सिंह के शब्दों में–***"स्थूल देह–भोग उनका लक्ष्य नहीं है वह तो प्रक्रिया है जिसके भीतर से गुजर कर निराला प्रेम के अमर अंकुर को अपने भीतर उगा हुआ पाते हैं।"***[224]

निराला सदैव नयी भाषा, नयी काव्य–तकनीक एवं नए काव्य–सौष्ठव की खोज में लगे रहे। इसलिए वो कविता की इमारत में सजग शिल्पी की तरह उचित काँट–छाँट भी करते, नए शब्दों की खोज भी करते। मुक्तिबोध ने 'कला के तीसरे क्षण' में शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह माना था। मुक्तिबोध के अनुसार, जब शब्द–साधना शुरू होती है, कलाकार अपने हृदय के तत्व के रंग, रूप और आकार के अनुसार अभिव्यक्ति का रंग, रूप और आकार तैयार करना चाहता है। वह भाव–ध्वनियों को उपलब्ध शब्द–ध्वनियों में फँसाना चाहता है। यहीं भाव और भाषा का द्वंद शुरू होता है। जो कवि भाषा की चमक व सफाई को ही महत्वपूर्ण मानते हैं, वे अपने भाव–तत्वों का भी बलिदान कर देते हैं। पर सच्चा कवि नई भाषा की तलाश करता है, अपनी फैंटेसी हेतु समुन्नत भाषा की खोज करता है। मुक्तिबोध के शब्दों में:– *"कवि की यह फैंटेसी भाषा को समृद्ध बना देती है, उसमें नए अर्थ–अनुषंग भर देती है, शब्द को नए चित्र प्रदान करती है। इस प्रकार कवि भाषा का निर्माण करता है। जो कवि भाषा का निर्माण करता है, विकास करता है, वह निस्संदेह महान कवि है।"*[225] निराला इसी अर्थ में महान कवि हैं कि वे भाव से शब्दबद्व होने की काव्य–प्रक्रिया अर्थात् 'कला के तीसरे क्षण' में भी सायास रूप से नयी भाषा, नए शिल्प, नए काव्य–टेकनीक की खोज में रहते हैं। डॉ0 नंदकिशोर नवल ने स्पष्ट किया है:– *"निराला का ध्यान पूरी तरह से कविता के स्थापत्य पर रहा है, पर शोक की अवस्था में भी जहाँ आवश्यक हुआ है, वे कविता में भीतरी सजावट करना न भूले हैं। इसे काव्य–रचना का क्षण स्पष्टतः जीवन के व्यावहारिक क्षणों से भिन्न मालूम पड़ता है। इस क्षण में कवि अपनी अनुभूति को पूरी सन्नद्धता से कलात्मक रूप प्रदान करता है।"*[226] यहाँ डॉ0 नवल निराला की कविता 'सरोज–स्मृति' की ओर संकेत कर रहे हैं जिसमें सरोज के शृंगार का उदात्त व पवित्र वर्णन तथा शोक प्रसंग में भी पद, फटे बिवाई के' और 'ऐसे शिव से गिरिजा–विवाह' वाले व्यंग्यात्मक स्वर हैं। दरअसल 'सरोज–स्मृति' में 'विरूद्धों के सामंजस्य' से नए काव्य–सौष्ठव की सृष्टि हुई है। उसी प्रकार यदि काव्य–टेकनीक का रूप देखना है तो वह राम की शक्ति पूजा में देखें जो फिल्मी पटकथा की

तरह लगता है और ऐसा लगता है कि निराला के हाथों में लेखनी नहीं, कैमरा हो। एक समय निराला को मृत घोषित करने वाले अज्ञेय 'राम की शक्ति–पूजा' में फोटोग्राफी या फिल्म की 'जूमिंग इन' क्लोजअप' पद्धति के कायल थे कि कैसे 'लाग शॉट' से कैमरा नजदीक जाता है। आकाशवाणी पर एक बार साक्षात्कार देते हुए अज्ञेय ने इस ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा है कि *"निराला की 'शक्तिपूजा' में भी कैसे यह किया गया है कि आप धीरे–धीरे जिसे मैंने जूमिंग इन 'कहा वह कर के और एक जगह लाकर दृश्य को 'फ्रीज' करते हैं, सिनेमा की भाषा में यह भी उन्होंने किया और इसका असर होता है कविता में, किस तरह उसकी शक्ति बढ़ती है।"*[227] कहना न होगा कि निराला पूरी सजगता के साथ 'थ्री डायमेंशनल काव्य–इमारत' खड़ा करने में माहिर थे जिसे हर एंगल से सजीव अर्थात् मूर्त्त रूप में देखा जा सकता था।

मुक्तिबोध ने 'कला के तीसरे क्षण' के समय में एक और बात महत्वपूर्ण बात कही थी कि *"सृजन–प्रक्रिया के दौरान काव्य के मनोमय तत्व और रूप स्थिर नहीं होते। वे मनोमय तत्व–रूप तब तक अपने को विकसित और संबोधित करते जाते हैं; जब तक कि अभिव्यक्ति में संपूर्णता आकर कला का तीसरा क्षण समाप्त न हो जाए।"*[228] यहीं शब्दों की काँट–छाँट शुरू होती है और तब तक चलती है जब तक काव्य को पूर्णता न मिल जाए। पर कभी–कभी तत्क्षण उपयुक्त लगता शब्द आगे चलकर निरर्थक प्रतीत हो सकता है। जैस–इमारत बनने के बाद निरीक्षण करने पर कुछ कमियाँ दिखाई पड़ ही जाती है जिनमें समयानुरूप संशोधन करना पड़ता है। निराला भी काव्य–वृक्ष की पूर्णता के लिए आवश्यक काँट–छाँट करना नहीं भूलते। डॉ. नंदकिशोर नवल ने 'निराला रचनावली' का संपादन करते हुए (खंड–1) भूमिका में लिखा हैः–*"निराला अपनी कविताओं में अंत–अंत तक संशोधन और संपादन करते रहते थे। इसके परिणामस्वरूप उनकी अनेक कविताओं के पाठ में अंतर मिलता है। पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं का पाठ एक तरह का है और पुस्तकों में संकलित कविताओं का पाठ दूसरी तरह का।"*[229] 'मतवाला' में प्रकाशित और पुनः द्वितीय 'अनामिका' में संकलित उनकी 'दिल्ली 'प्रगलभ प्रेम' और 'उद्‌बोधन' कविता के पाठ में अंतर है जो स्पष्ट करता है कि

निराला कैसे अपनी कविताओं को बेहतर बनाना चाहते थे। शब्दों की काँट–छाँट तक तो ठीक है, पर संशोधन व संपादन के कर्म में कभी–कभी कविता बिल्कुल बदल गई। उदाहरण स्वरूप उनकी 'कविता' शीर्षक एक कविता है जो पहले 'मतवाला' के 10 नवंबर, 1923 के अंक में 'उस पार' शीर्षक से निकली थी। परन्तु, निराला को उस कविता के स्थापत्य या यूँ कहिए की पूरी काव्य–इमारत में ही काफी कमियाँ दिखीं और वे उसमें काँट–छाँट संशोधन करते रहें और इससे कविता के मूल रूप में इतना परिवर्त्तन आ गया कि वह एक नई कविता की शक्ल लेकर 'शृंगारमयी' शीर्षक से 'माधुरी' के 13 जनवरी, 1924 के अंक में फिर प्रकाशित हुई। मतलब, 3 महीने में निराला ने काव्य–सौष्ठव की पूर्णता के लिए अनवरत जो काँट–छाँट की, उसे उक्त कविता के दोनों रूपों के इन उदाहरणों से समझा जा सकता है।

उक्त दोनों कविताओं से निराला की काव्य–सृजन प्रक्रिया में संशोधन कर्म इस प्रकार देख सकते हैं। पहले 'कविता' कविता में नायिका का यह शृंगारिक वर्णन देखिएः–

"विकसित असित सुवासित उड़ते उसके
कुञ्चित कच गोर कपोल छू–छूकर–
लिपट उरोजों से भी वे जाते थे,
थपकी एक मारकर बड़े प्रेम से इठलाते थे;
शिशिर–बिन्दु–रस–सिन्धु बहाता सुंदर
अंगना–अंग पर गगनांगन से गिरकर।"[230]

'शृंगारमयी' कविता में यह प्रसंग कुछ इस प्रकार आता हैः–

"विकसित कुसुम–सुशोभित आसित सुवासित
कुंचित कच बादल–से काले–काले
उड़ते, लिपट उरोजों से जाते थे
मार–मार थपकियाँ प्यार से इठलाते थे,
झूम–झूमकर कभी चूम लेते थे स्वर्ण कपोल,
जल तंरग–सा रंग जमाते हुए सुनते बोल

शिशिर–बिन्दु रस–सिंधु बहाता सुंदर
अंगना–अंग पर गगनांगण से गिरकर।"[231]

ध्यातव्य है, 'कविता' कविता में उक्त प्रसंग के विवरण हेतु 6 पंक्तियों का 'स्पेस' घेरा गया, जबकि 'शृंगारमयी' कविता में 8 पंक्तियों में वो बात कही गई है। निराला ने 'शृंगारमयी' कविता में उक्त प्रसंग को उपमाओं द्वारा और सजाया है। पहली पंक्ति में कुसुम–सुशोभित' शब्द और दूसरी पंक्ति में केशों को 'बादल से काले–काले कहना या फिर छठी पंक्ति में 'जल–तरंग–सा' बोल सुनाना कहना, यह उपमाओं द्वारा कविता की सजग नक्काशी है। उसी प्रकार 'कविता' कविता में 'गोर कपोल' शब्द चलता–फिरता प्रयोग लगता है, इसलिए 'शृंगारमयी' कविता में उसे 'स्वर्ण कपोल' का नाम दिया गया है। निराला ने 'शृंगारमयी' कविता में क्रिया–व्यापार को भी विस्तार दिया है। यथा, 'कविता' कविता में बालों को गोरे कपोलों को बस छूना बतलाया है, जबकि 'शृंगारमयी' कविता में क्रिया–व्यापार को भावनात्मक विस्तार देते हुए 'झूम–झूमकर कभी चूम लेते थे' लिखा गया। 'छू–छूकर' से ज्यादा भावोत्तेजक 'झूम–झूमकर चूमना' है। यह क्रिया–व्यापार की निरंतरता को बतलाता है। इसे एक जगह और देखे। 'कविता' कविता में 'कच' अर्थात् केश उरोजों पर बस एकबार थपकी देते हैं। 'शृंगारमयी' कविता में 'थपकी' एक मारकर' को बदलकर 'मार–मार थपकियाँ' कर दिया गया है। 'एक बार थपकी' अनजाने में भी लग सकती है और 'एक बार थपकी' में प्रेमी को संतोष कहाँ? ऐसा लगता है निराला उरोजों पर पड़ी थपकियों को और बढ़ाना चाहते थे जो प्रेम के क्रिया–व्यापार की अनवरता और प्रेमी के अधिकार और उसके सजग और जान–बूझकर किए गए कार्य को दर्शाता है। 'मार–मार थपकियाँ' से यही ध्वनित होता है, साथ ही यह प्राकृतिक परिवेश को भी और बिंबात्मक बनाता है। केश बार–बार उरोजों पर थपकियाँ मार रहे हैं, यह सिंधु के पास तेज हवा के निरंतर बहाव को भी दर्शाता हैं। कहने का तात्पर्य, 'कविता' कविता में जो काव्य–इमारत निराला ने बनाई थी, 'शृंगारमयी' कविता में उसमें और भी नक्काशी करते हैं और 'स्पेस' घेरते हैं। जैसे, भवन–निर्माता इमारत बनाने के बाद उसका मुआयना करते हुए दरवाजे–खिड़कियों पर नक्काशी कर सकता है या अच्छा न लगने पर

दीवारों का रंग बदलता है। निराला भी उसी प्रकार से कविता का 'मोडरेशन' करते हैं। ध्यान रखिए, नई भाषा 'मोडरेशन' की ही खोज होती है। अज्ञेय–कहा करते थे–*"बड़ा कवि 'वाक्सिद्ध' होता था और भी बड़ा कवि 'रससिद्ध' होता था।*[232] निराला इसलिए बड़े कवि थे क्योंकि वो रससिद्धि के लिए 'वाक्सिद्धि' को नजरअंदाज नहीं करते, बल्कि काव्य–शिल्प की उस तूलिका की खोज करते हैं जिससे काव्य–चित्र में और ज्यादा रस भरा जा सके। राजशेखर ने कवियों को यह सलाह दी थी कि वे 'शब्द और अर्थ के वाच्य–वाचक संबंध की प्रौढ़ता का सर्वत्र ध्यान रखें– *"शब्दार्थ योश्राभिधानाभिधेयव्यापारप्रभगुणता भवबुध्येत्।*[233] निराला ने इस प्रौढ़ता का सदा ध्यान रखा और उस नयी भाषा की खोज की जिससे काव्य–वस्तु को पूर्णता और सरसता प्रदान की जा सके। जैसा कि कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा थाः–

"मैं घोर चिंतन में धँसकर
पहुँचा भाषा के उस तट पर
था जहाँ काव्य यह धरा हुआ
सब लिखा–लिखाया पड़ा हुआ।"[234]

निराला एक ऐसे कवि थे जिन्होंने रचना–स्तरों के अनेक रूपों को साथ–साथ वहन कर लगातार बहुमुखी अर्थों वाली कविताएँ लिखीं। इसका कारण यह था कि निराला ने जीवन में सदैव संघर्ष किया, भाव और भाषा सभी स्तर पर नए फ्रंट खोले और 'वादों' की लक्ष्मण –रेखा का अतिक्रमण किया। यहाँ तक 'छायावाद' के युग में छायावाद की सीमा का अतिक्रमण करते हैं। सरोज–स्मृति', 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति–पूजा', तोड़ती पत्थर' आदि कविताएँ छायावादी सीमा के बाहर की कविताएँ हैं। हिन्दी साहित्य में जब प्रगतिवादी दौर चल रहा था, निराला प्रगतिवादी रचना लिखते हुए भी अभिनव भाषा–प्रयोग और नए शिल्प–विधान के कारण उस दायरे को तोड़ते हैं। 'नये पत्ते' की रचनाओं में महगू; 'झिंगुर' आदि का नया व्यक्तित्व बोलता है। इसलिए बोलता है कि वह निराला का प्रत्यक्ष अनुभव–संसार है, 'आँखिन देखी'। वही 'आँखिन देखी' जो 'तोड़ती पत्थर' में है। 'नये पत्ते' की रचनाएँ कृषक–समस्या और राजनीति की छद्म चाल

की आंखिन देखी है। 'कुकुरमुत्ता' अपने अभिनव–प्रयोग के कारण प्रगतिवादी विषय–वस्तु के बावजूद शिल्प की दृष्टि से प्रयोगवादी ठहरती है, जबकि, निराला को कभी भी प्रयोगवादी नहीं माना जाता। वह विशेषण 'तार–सप्तक' के कवियों के लिए निर्धारित कर दिया गया है। मजे की बात यह है कि जब 'तारसप्तक' के कवि अंग्रेजी की आधुनिक कविताएँ पढ़कर नई भाषा की खोज कर रहे थे और इलिइट का दृष्टांत भी दिया करते थे, वैसे में निराला कुकुरमुत्ता में टी.एस. इलिइट का मजाक उड़ा रहे थे। 'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, दे मारा जैसे टी.एस. इलिइट ने' में इलियट के बहाने उनके भक्तों और प्रयोगवादियों की काव्य–इमारत की मौलिकता और स्थापत्य पर भी निराला ने प्रश्न–चिह्न लगा दिया है। उक्त कविताओं में अंग्रेजियत में रमे मार्क्सवादियों पर भी कम व्यंग्य नहीं है। फिर भी, निराला को अधिकांश प्रगतिशील, प्रयोगशील और नई कविता वाले कवियों ने अपना जनक माना, उनका ऋण स्वीकारा और उन्हें नयी भाषा का अनुसंधानकर्त्ता माना। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर आदि सब ने निराला पर कविता भी लिखी। रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह ने भी निराला के ऋण को स्वीकार किया। अपने तमाम आलोचनात्मक मतभेदों के बावजूद अज्ञेय ने यह माना– *"अब यह परिस्थिति नहीं हैं। द्विवेदी काल के श्री मैथिलीशरण गुप्त या छायावादी युग के श्री 'निराला' जैसा कोई शलाका–पुरूष नयी कविता ने नहीं दिया है।*[235] एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि 'कविता के नए प्रतिमान' में डॉ0 नामवर सिंह जिन नए प्रतिमानों की बात करते हैं, उसका उत्स वो निराला की काव्य–सरिता में ही देखते हैं। अकारण नहीं कि डॉ0 नामवर सिंह निराला को 'आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य–संरचना' का पथ प्रशस्त करनेवाला बताते हैं। अन्यत्र डॉ0 नामवर सिंह ने आधुनिक हिन्दी कविता में निराला का महत्व बतलाते हुए लिखाः– *"प्रयोगवादी न रहते हुए भी स्वयं प्रयोगशील कवियों द्वारा भी स्वीकार किया गया है कि सबसे ज्यादा नए प्रयोग तो पहले निराला ने किए थे। ऐसा कवि छायावाद में रहते हुए भी छायावाद का अतिक्रमण करता है, प्रगतिशील धारा में रहते हुए भी प्रगतिवाद का अतिक्रमण करता है, नए प्रयोग करते हुए भी प्रयोगवाद का अतिक्रमण करता है। यह कवि जो आनंद और सौंदर्य के गीत गाने को*

पैदा हुआ था, जीवन की विषमताओं से लड़ने के लिए एक –दूसरे ढंग के कवि के रूप में विकसित हुआ।[236] 'एक–दूसरे ढंग के कवि' में ही निराला का निरालापन है। पर यह ढंग क्या है? उसको भी समझना जरूरी है।

दरअसल निराला जब भी काव्य–इमारत बनाते तो इस बात का ध्यान रखते कि उसमें प्रयुक्त सामग्री समय–सापेक्ष है या नहीं और उसका स्थापत्य कालजयी है या नहीं। 'कुकुरमुत्ता' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में निराला ने लिखाः–*"इसके व्यंग्य और इसकी भाषा आधुनिक है।*[237] उसी प्रकार से निराला ने 'नये पत्ते' की भूमिका में लिखाः–*"नये पत्ते इधर के पद्यों का संग्रह है। सभी तरह के आधुनिक पद्य है, छंद कई, मात्रिक, सम और असम। हास्य की भी प्रचुरता, भाषा अधिकांश में बोलचाल वाली। पढ़ने पर काव्य की कुञ्जों के अलावा ऊँचे–नीचे फारस के जैसे–टीले भी।*[238] ध्यान दीजिए कि दोनों रचनाओं की भूमिका में निराला 'आधुनिक' शब्द का इस्तेमाल कर रहे हैं। यहाँ एक बात बतलाना आवश्यक है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्य में घटित होनवाले परिवर्तनों का संबंध सीधे बदली हुई परिस्थतियों से जोड़ा था और 'आधुनिकता' को उन्होंने मूल्यपरक शब्द माना था। केदारनाथ सिंह की माने तो *"हिन्दी आलोचना में 'आधुनिकता' शब्द का प्रथम प्रयोग आचार्य शुक्ल ने ही किया था।*[239] आचार्य शुक्ल अपने समय में 'आधुनिकता' का जो मापदंड विकसित कर रहे थे, वह 60 के दशक में चर्चा की जानेवाली 'आधुनिकता' से भिन्न था। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काल की नवीन काव्यधारा के प्रथम उत्थान का विवेचन करते हुए आचार्य शुक्ल ने जिस नवीनता या आधुनिकता की ओर संकेत किया था, उसका मतलब था–'देशकाल की नूतन परिस्थति के अनुसार हमारे मनोविकारों का सामंजस्य घटित करना।' अपनी इस मान्यता के आधार पर आचार्य शुक्ल भारतेंदु की कविताओं की समीक्षा करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचेः–*"उनकी कविताओं के विस्तृत संग्रह के भीतर आधुनिकता कम ही मिलेगी।*[240] अगर इस दृष्टि से देंखे तो निराला सबसे ज्यादा आधुनिक ठहरते हैं जिन्होंने देशकाल की नूतन परिस्थितियों का कविता के साथ सामंजस्य बैठाया। जिस युग में पंत जी प्रगतिवादी बनकर कृषकों को 'युग–युग का वह भारवाह, आकटी नतमस्तक' जैसे क्लिष्ट भाषा में चित्रित कर रहे थे, उस समय निराला ने

कृषकों व मजदूरों की भाषा में उनसे बतियाने का आग्रह किया। निराला की 'सहज' कविता का यह अंश देखिएः–

"सहज–सहज पग धर जाओ उतर
देखें वे सभी तुम्हें पथ पर।
वह जो सिर बोझ लिये आ रहा
वह जो बछड़े को नहला रहा,
वह जो इस–उससे बतला रहा
देखूँ, वे तुम्हें देख जाते भी हैं ठहर?"[241]

ध्यातव्य है, यह वह कवि कह रहा है जो 'राम की शक्ति–पूजा' जैसी क्लिष्ट भाषा लिखने की क्षमता रखता था। परन्तु, उस कवि ने आधुनिक जन–मानस का मिजाज समझा। बोल–चाल की भाषा को, गद्य की भाषा को निराला कविता में लेकर आए। यह सहजता का दावा और मांग केवल भाषा के स्तर पर नहीं, भावबोध के स्तर पर भी थी। 'बेला' में भी निराला इस सहजता को दोहराते हैंः–

"सहज चाल चलो उधर
छिण हुआ जाए उधर।
चाँदी की हँसी हँसे जो, अपने आप फँसे;
बंद–बंद खुले, कँसे बंधन के छंद सुधर।"[242]

निराला इसी 'सहज चाल' के साथ 'सहज–सहज पत्र' धरते हुए अपनी कविता का स्थापत्य निर्मित करते हैं, जिसमें कोई जोर–जबरदस्ती नहीं, केशवदास–सा आचार्यत्व वाला अहंकार व काव्य–कौशल प्रदर्शन की लालसा नहीं। फिर भी, हिन्दी कविता में उन्होंने ऐसी काव्य–इमारतें बनाई, जहाँ की झोपड़ी में भी अथाह–सौंदर्य है, संतुलन है, नियंत्रण है।

निराला ने आनंद का गीत गाया, सौंदर्य का राग अलापा, 'जीवन विष विषम पिया' और निराशा में 'मरा हूँ हजार मरण' भी कह डाला, फिर भी साहित्य व काल के इतिहास पर जो न मिटने का संकल्प लेकर आया–'अभी न होगा मेरा अंत'। यही संकल्प निराला को साहित्य में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहा। सबसे बड़े आश्चर्य की बात है, निराला अपनी कविता के अंतिम चरणों में भक्ति गीत लिखने लगे, वैसे आधुनिक समय में जहाँ भक्ति कविता पूर्ण तरह विस्मरित कर दिया गया था। 'अर्चना',

'आराधना', 'गीतगुंज', 'सांध्यकाकली' निराला की 'विनयपत्रिका' है जो आधुनिक मानस को अध्यात्म से जोड़ने की एक कड़ी है। यह स्व–साधना के साथ–साथ एक मूल्य परक साधना भी थी जहाँ विश्व के अजनबीपन में मानवता की 'लौ' जलाने की चाहत भी थी। 'अर्चना' में कवि कहता है–

"भर गया है जहर से
संसार जैसे हार खाकर
देखते हैं लोग लोगों को
सही परिचय न पाकर
बुझ गयी लौ पृथा की
जल उठो फिर सींचने को।"[243]

दरअसल, निराला ने अपने साहित्य से आधुनिक जनमानस को जीवन–जीने का नया मुहावरा दिया, विद्रोह का नया स्वर दिया, नई यथार्थवादी दृष्टि दी। निराला कविता सच्चे अर्थों में 'आँखिन देखी' कविता है जहाँ छायावादी रंगीन नक्काशी नहीं, वायवियता नहीं, यथार्थ का रेखाचित्र है। डॉ0 नामवर सिंह के शब्दों में कहें तो ***"छायावादी कविता यदि धूमिल रंगों वाला वॉटर कलर हो या कहीं ऑयल कलर हो तो अब यह पेंसिल के रेखाचित्र बनाते हुए दिखते हैं। वह उनकी भाषा में भी है।"***[244] 'पेंसिल के रेखाचित्र' में भी गजब की कलात्मकता होती है और वह उतनी सहज भी नहीं क्योंकि यहाँ रंगों से रचना की त्रुटि नहीं झाँपी जाती। यही बात निराला में भी थी। बोलचाल की भाषा की ओर अपने काव्य के दूसरे चरण में मुख करते हुए निराला ने हिन्दी भाषा व साहित्य को अंग्रेजियत से बचाया। यथार्थ के नाम पर कविता में बेवजह अंग्रेजी के शब्द निराला के यहाँ नहीं मिलेंगे। 'नये पत्ते' की भाषा में उन्होंने फारसी का नाम लिया, अंग्रेजी का नहीं। नये पत्ते की 'महगू महंगा रहा', 'झिंगुर डटकर बोला' या 'डिप्टी साहब आए' कविता 'बैलेड' की तरह है जहाँ कविता में कहानी, वर्णन है और जीवन का एक छोटा–सा चित्र है। पर, भाषा में 'अंग्रेजियत' नहीं, वह भाषा है जो जन–जन की भाषा थी, मुहावरा थी। वह मुहावरा जो कहता है– ***"अट नहीं रही है। आभा फगुन की तन। सट नहीं रही है।"***[245] निराला का काव्य–स्थापत्य भी किसी एक साँचे में 'अट' नहीं सकता। पर, निराला जो भी काव्य–इमारत बनाते थे, उसमें उन्होंने जन–साधारण की भावना की उपेक्षा नहीं की। 'राम की शक्तिपूजा' के राम दिव्य ईश्वर नहीं, आज के इंसान हैं जो 'सजल नयन' है, 'व्याकुल–व्याकुल' हैं और अपनी पत्नी के लिए कह पाता है– ***जानकी!***

हाय उद्धार प्रिया का न हो सका।[246] दूसरी ओर 'स्फटिक–शिला, श्रीराम के चित्रकूट की यात्रा है, जितनी साधारण, उतनी कठिन, पर उतनी ही दिव्य और जहाँ निराला को सद्यःस्नाता के स्तन भी 'दिव्य' लगने लगते हैं। ध्यान रखिए, यही निराला की कविता की यू.एस.पी. है, 'प्लस–पांइट' है जो साधारण के पक्ष में खड़ी है, पूरी असाधारणत्व के साथ। निराला जो 'काव्य–सौंदर्य' रच रहे थे, उसका उपासक शिक्षित से ज्यादा जन–साधारण है। तभी तो वह 'सुंदरता' को सर्वव्यापक और सर्वजन से जोड़ते हुए 'जिजीविषा' का सौंदर्य बना देते हैंः–

"देश का, समाज का/कर्णधार हो किसी जहाज का
पार करे कैसा भी सागर/फिर भी रहता है चलना उसे
फिर भी रहता है पीछे डर/चाहता वहाँ जाना वह भी
नहीं चलाना जहाँ जहाज, नहीं सागर/नहीं डूबने का जहाँ डर
तुम्हें चाहता वह, सुंदर
जो द्वार–द्वार फिरकर
भीख माँगता कर फैलाकर।"[247]

संदर्भः–

1. हेमंत कुकरेती ; 'हंस', नवंबर, 1990; पृ0 सं0–07
2. कालिदास; 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्; 2/9
3. राजशेखर; 'काव्य–मीमांसा' (अनु0)–पं0 केदारनाथ शर्मा सारस्वत, दशम अध्याय,; पृ. सं0–123
4. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); पृ. सं0–153
5. रघुवीर सहाय ; 'सीढ़ियों पर धूप में';('तोड़ो' कविता); पृ. सं0–19
6. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1);('मुक्ति' कविता); पृ. सं0–340
7. रघुवीर सहाय; 'स्वतंत्रता के दिनों का संकट और मैं' निबंध;(संकलित)–'समकालीन हिन्दी आलोचना' (संपा)–परमानंद श्रीवास्तव; पृ. सं0–190
8. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6);('अर्थ' निबंध); पृ. सं0–292
9. वही; ('समाज और मनुष्य' निबंध); पृ. सं0–292
10. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('स्वाधीनता पर कविता'); पृ. सं0–120
11. वही; ('स्वाधीनता पर' कविता); पृ. सं0–121
12. वही; ('टूटे सकल बंध' कविता); पृ. सं0–253
13. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('हिन्दू या हिन्दवी निबंध'); पृ. सं0–327
14. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य का आदर्श निबंध'); पृ. सं0–486
15. वही; ('हिन्दी में तर्कवाद' निबंध);
16. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1);('बादल–राग' कविता); पृ. सं0–123
17. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना'(भाग–2); पृ. सं0–170
18. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1);('लजा दे जीर्ण–शीर्ण–प्राचीन' गीत); पृ. सं0–244
19. वही; ('वर दे वीणावादिनी वर दे' कविता); पृ. सं0–211
20. वही; ('तुम्हीं गाती हो' कविता); पृ. सं0–247
21. वही; ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–286
22. डॉ0 रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–175
23. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1);('देवि! कौन वह? कविता); पृ. सं0–262
24. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; '(पाखंड–प्रतिषेध' कविता); 'मधुस्रति' पृ. सं0–86
25. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5);('साहित्य की नवीन प्रगति पर' निबंध); पृ. सं0–224
26. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1);('कॉलेज का वचुआ' कविता); पृ. सं0–356–357
27. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5);('खड़ी बोली के कवि और कविता' निबंध); पृ. सं0–307
28. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('भाव और भाषा' निबंध); पृ. सं0–472

29. वही ; ('साहित्य का भाषा' निबंध); पृ. सं0–364
30. वही ; ('भाव और भाषा निबंध' कविता); पृ. सं0–473
31. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'रसमीमांसा; ('प्रत्यक्ष रूप विधान' निबंध); पृ. सं0–201
32. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ;'चिंतामणि' (भाग–2); ('काव्य में रहस्यवाद' निबंध); पृ. सं0–89
33. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('भाव और भाषा' निबंध); पृ. सं0–472
34. वही ; ('प्रतिभा; निबंध); पृ. सं0–521
35. भामह ; 'काव्यालंकार'– 1/5
36. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('प्रतिभा' निबंध); पृ. सं0–578
37. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('विश्व की ही वाणी' प्राचीन कविता); पृ. सं0–256
38. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–171
39. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('संत कवि रविदास जी के प्रति' कविता); पृ. सं0–78
40. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–288
41. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('देवी सस्वती' कविता); पृ. सं0–190
42. वही ; पृ. सं0–191
43. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('प्रतिभा' निबंध); पृ. सं0–579
44. डॉ0 नंदकिशोर नवल ; निराला और मुक्तिबोध; चार लंबी कविताएँ; पृ. सं0–60
45. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('गांधी जी से बातचीत' इंटरव्यू द्वारा प्राप्त); पृ. सं0–215
46. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'बुद्धचरित' (भूमिका); पृ. सं0–20
47. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य की वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–454
48. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–8); ('जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखित पत्र, 30/08/38); पृ. सं0–273
49. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('हिन्दी सुमनों के प्रति' कविता); पृ. सं0–331
50. वही ; ('बुझे तृष्णाशा–विषानल झरे' कविता); पृ. सं0–231
51. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–2); पृ. सं0–173
52. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–3); ('साहित्य की वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–454
53. ठाकुर गोपाल सिंह नेपाली ; 'ठाकुर गोपाल सिंह नेपाली'; प्रतिनिधि कविताएँ ('नजर है नई तो नजर पुराने); पृ. सं0–137

54. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('दो महाकवि शो–तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ); पृ. सं0–278
55. वही ; ('रचना–रूप' निबंध); पृ. सं0–504
56. दूधनाथ सिंह ; 'निरालाः आत्महन्ता आस्था'; पृ. सं0–91
57. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–275
58. महावीर प्र0 द्विवेदी ; 'महावीर प्रसाद द्विवेदीः प्रतिनिधि संकलन' ;(संपा0) रामबक्ष, ('साहित्य' निबंध); पृ. सं0–66
59. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण ; पृ. सं0–357
60. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('मार्जन और स्वतंत्रता' निबंध); पृ. सं0–302
61. वही ; ('राष्ट्र और नारी' निबंध); पृ. सं0–275
62. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('नवीन काव्य' निबंध); पृ. सं0–480
63. डॉ. रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–2); पृ. सं0–49
64. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('दिव्यता और वेदान्त' निबंध); पृ. सं0–352
65. वही ; ('धार्मिक एकदेशिकता' निबंध); पृ. सं0–361
66. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य की समतल भूमि' निबंध); पृ. सं0–159
67. वही ; पृ. सं0–157
68. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'चिंतामणि' (भाग–4); (संपा.)– ओम प्रकाश सिंह ('विश्व–प्रपंच' की भूमिका); पृ. सं0–182
69. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('जगत का एक देखा तार' कविता); पृ. सं0–212
70. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('हमारा वर्त्तमान काव्य' निबंध); पृ. सं0–493
71. वही ; ('साहित्य का विकास' निबंध); पृ. सं0–491
72. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (द्वितीय संस्करण); पृ. सं0–73
73. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य और भाषा' निबंध); पृ. सं0–365
74. वही ; ('भाषा' निबंध); पृ. सं0–484
75. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('सरोज–स्मृति' कविता); पृ. सं0–299
76. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('हमारा वर्त्तमान काव्य' निबंध); पृ. सं0–495
77. वही ; ('साहित्य और भाषा' निबंध); पृ. सं0–362
78. निराला ; 'गीतिका' की भूमिका; 'निराला रचनावली' (भाग–1); पृ. सं0–409

79. वही ; पृ. सं0–408
80. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ('संशोधित संस्करण'); पृ. सं0–74
81. डॉ0 नामवर सिंह ; 'कविता का नए प्रतिमान'; पृ. सं0–33
82. मुक्तिबोध ; 'मुक्तिबोध रचनावली' (भाग–5); 'मध्ययुगीन भक्ति–आंदोलन का एक पहलू'; पृ. सं0–288–289
83. वही ; पृ. सं0–294–295
84. विजयदेव नारायण साही ; 'उद्धृत–कविता के नए प्रतिमान'; पृ. सं0–111
85. केदारनाथ सिंह ; 'हिन्दी आधुनिकता का अर्थ' निबंध; 'उद्धृत–समकालीन हिन्दी आलोचना'; पृ. सं0–254
86. केदारनाथ सिंह ; 'कालबद्ध और पदार्थमय' निबंध; 'उद्धृत–समकालीन हिन्दी आलोचना'; पृ. सं0–251
87. डॉ0 नामवर सिंह ; 'कविता के नए प्रतिमान'; पृ. सं0–111
88. डॉ0 नंदकिशोर नवल ; 'निराला और मुक्तिबोध : चार लंबी कविताएँ (प्राक्कथन); पृ. सं0–6
89. डॉ0 नामवर सिंह ; 'कविता के नए प्रतिमान'; पृ. सं0–34–35
90. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); 'मेरे गीत और कला' निबंध; पृ. सं0–401
91. वही ; ('कविता में चित्र और भाव' निबंध); पृ. सं0–461–462
92. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('जागरण' कविता); पृ. सं0–173
93. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('विद्यापति और चंडीदास' निबंध); पृ. सं0–237
94. निराला ; वही ('सुकवि पद्माकर की कविताएँ); पृ. सं0–344
95. वही ; ('हमारे साहित्य का ध्येय' निबंध); पृ. सं0–266
96. वही ; ('साहित्य और भाषा' निबंध); पृ. सं0–364
97. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('सरोज–स्मृति' कविता); पृ. सं0–297
98. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('भाव और भाषा' निबंध); पृ. सं0–472
99. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'चिंतामणि' (भाग–2); ('काव्य में रहस्यवाद' निबंध); पृ. सं0–76
100. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('चित्रण–कला' निबंध); पृ. सं0–444
101. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ; 'रसज्ञ रंजन'; पृ. सं0–22
102. मैथिलीशरण गुप्त ; उद्धृत– 'द्विवेदी युगीन हिन्दी काव्यभाषा':'एक दृष्टि'; (डॉ0 कृष्णशंकर पांडेय); पृ. सं0–68
103. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('भाषा' निबंध); पृ. सं0–484
104. वही ; पृ. सं0–415
105. वही ; ('साहित्य और भाषा' निबंध); पृ. सं0–314
106. वही ; ('भाषा' निबंध); पृ. सं0–483

107. वही ; ('साहित्य और भाषा' निबंध); पृ. सं0– 484
108. वही ; ('भाषा–विज्ञान' निबंध); पृ. सं0–508
109. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('राम की शक्तिपूजा' कविता); पृ. सं0–76
110. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('कुकुरमुत्ता' कविता); पृ. सं0–45
111. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('स्फटिक शिला' कविता); पृ. सं0–69
112. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('वन–बेला' कविता); पृ. सं0–329
113. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); (परिशिष्ट); पृ. सं0–489
114. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2);पृ. सं0–41
115. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('मेरे गीत और कला' निबंध); पृ. सं0–394
116. वही ; पृ. सं0–397–398
117. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–2);पृ. सं0–358
118. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–8); 'जानकी वल्लभ शास्त्री को पत्र (12 / 08 / 37); पृ. सं0–258
119. डॉ. रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना'(भाग–1); पृ. सं0–484
120. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('वनबेला' कविता); पृ. सं0–328)
121. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('प्रांतीय साहित्य सम्मेलन' फैजाबाद); पृ. सं0–199
122. वही ; पृ. सं0–204
123. वही ; ('नेहरू से दो बातें'); पृ. सं0–219
124. निराला ; 'निराला रचनावली'(भाग–2); ('जवाहर' कविता); पृ. सं0–105
125. निराला ; 'निराला रचनावली'(भाग–5); ('कविता के चित्र और भाव' निबंध); पृ. सं0–463
126. वही ; ('साहित्य का आदर्श' निबंध); पृ. सं0–487
127. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('बापू के प्रति' कविता); पृ. सं0–35
128. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–1); पृ. सं0–482
129. निराला ; 'निराला रचनावली'(भाग–5); ('साहित्य का आदर्श' निबंध); पृ. सं0–489
130. प्रेमचंद ;('साहित्य का उद्देश्य' निबंध)
131. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य और जनता' निबंध); पृ. सं0–495–496
132. वही ; पृ. सं0–497
133. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('एक बात' निबंध); पृ. सं0–147
134. वही ; पृ. सं0–149–150
135. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('साहित्य का प्रचार' निबंध); पृ. सं0–465–466
136. वही ; ('साहित्य में दलबंदी' टिप्पणी); पृ. सं0–418

137. वही ; पृ. सं0–417
138. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('हिन्दी में आलोचना' निबंध); पृ. सं0–498
139. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('साहित्य में प्रोपागैंडा' निबंध); पृ. सं0–406
140. डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ; 'हिन्दी आलोचना'; पृ. सं0–94
141. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–496
142. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('पंत जी और पल्लव' निबंध); पृ. सं0–206
143. वही ; ('मेरे गीत और कला' निबंध); पृ. सं0–404
144. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–8); ('जानकी वल्लभ शास्त्री को पत्र, 5/3/1938); पृ. सं0–275
145. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('अणिमा' की भूमिका); पृ. सं0–325
146. वही ; ('बेला' की भूमिका); पृ. सं0–326
147. वही ; ('नए पत्ते' की भूमिका)
148. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–8); ('जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखा पत्र, 13/8/1937); पृ. सं0–258
149. वही ; ('जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखा पत्र, 26/6/1941); पृ. सं0–289
150. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('कुकुरमुत्ता' द्वितीय संस्करण की भूमिका); पृ. सं0–324
151. डॉ0 नामवर सिंह ; छायावादः प्रसाद, निराला महादेवी और पंत (सं0) ज्ञानेन्द्र संतोष; पृ. सं0–80
152. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('गीतिका' की भूमिका); पृ. सं0–415
153. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('कुकुरमुत्ता'के द्वितीय संस्करण की भूमिका); पृ. सं0–324
154. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('मेरे गीत और कला' निबंध); पृ. सं0–393
155. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–267
156. अज्ञेय ; 'सदानीरा' कविता
157. डॉ0 नामवर सिंह ; छायावादः प्रसाद, निराला महादेवी और पंत; पृ. सं0–68
158. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('वनबेला' कविता); पृ. सं0–328
159. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('काले–काले बादल छाए' कविता); पृ. सं0–132
160. मुक्तिबोध ; 'मुक्तिबोधः प्रतिनिधि कविताएँ; ('अँधेरे में' कविता); पृ. सं0–139
161. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('राजे ने अपनी रखवाली की' कविता); पृ. सं0–178
162. वही ; ('जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ' कविता); पृ. सं0–162

163. वही ; ('बाहर मैं कर दिया गया हूँ' कविता); पृ. सं0–153
164. वही ; ('बिना अमर हुए यहाँ काम न होगा' कविता); पृ. सं0–170
165. धूमिल ; 'संसद से सड़क तक' ('कविता' कविता)
166. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–501
167. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('हिन्दी काव्य साहित्य की प्रगति' निबंध); पृ. सं0–214
168. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('मिट्टी की माया छोड़ चुके' कविता); पृ. सं0–132–133
169. उद्धृत ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–164
170. उद्धृत ; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–327–328
171. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('मेरी छवि ला दो' कविता); पृ. सं0–347
172. वही ; ('तोड़ती पत्थर' कविता); पृ. सं0–323
173. वही ; पृ. सं0–323
174. डॉ0 नंदकिशोर 'नवल' ; 'निराला–काव्य की छवियां'; पृ. सं0–98
175. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('वह तोड़ती पत्थर' कविता); पृ. सं0–103
176. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–8); (संपा0)– नंदकिशोर नवल; पृ. सं0–259
177. नामवर सिंह ; 'कविता के नए प्रतिमान'; पृ. सं0–134
178. डॉ0 नंदकिशोर 'नवल' ; 'निराला–काव्य की छवियां'; पृ. सं0–103
179. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('बिहारी और कवीन्द्र–रविन्द्र' निबंध); पृ. सं0–143
180. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('गीत गाने दो मुझे तो' गीत); पृ. सं0–367
181. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('अधिवास' कविता); पृ. सं0–35
182. नामवर सिंह ; 'छायावाद'; पृ.सं.–18
183. निराला; निराला रचनावली (भाग–6);('शक्ति परिचय' निबंध); पृ0सं0–58
184. वही ; ('एक बात' निबंध); पृ.सं.–147
185. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('स्नेह निर्झर वह गया' कविता); पृ0सं0–84
186. डॉ0 नामवर सिंह ; (छायावाद–:प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत) (संपा0);ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष; पृ0सं0–67
187. दूधनाथ सिंह ; 'निराला : आत्महंता आस्था'; पृ.सं.–124
188. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ0सं0–279
189. वही ; पृ.सं.–289
190. वही ; ('राम की शक्ति–पूजा'); पृ.सं.–315
191. डॉ0 नंदकिशोर नवल ; 'निराला–काव्य की छवियाँ; पृ0सं0–94
192. नामवर सिंह ; 'छायावाद'; पृ.सं.–22

193. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); 'धूलि में तुम मुझे भर दो' कविता; पृ0सं0–37
194. वही ; ('सुंदर हे, सुंदर!' कविता); पृ.सं.–130
195. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('सौंदर्य–दर्शन और कवि' निबंध); पृ0सं0–215
196. वही ; पृ.सं.–222–223
197. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('रचना–सौष्ठव' निबंध); पृ0सं0–306
198. वही ; ('मेरे गीत और कला' निबंध); पृ.सं.–407
199. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('आदरणीय प्रसाद जी के प्रति' कविता); पृ0सं0–39
200. वही ; ('श्रद्धांजलि' कविता); पृ.सं.–43
201. वही ; ('नाम था प्रभात ज्ञान का साथी'); पृ.सं.–106
202. वही ; ('गया अंधेरा' कविता); पृ.सं.–105
203. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('पावन करो नयन' कविता); पृ0सं0–223
204. वही ; ('सरोज –स्मृति' कविता); पृ.सं.–296
205. डॉ0 रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–2); पृ.सं.–296
206. डॉ0 नामवर सिंहः' छायावाद–प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत, पृ.सं.–79
207. कुंवर नारायण ; 'आधुनिकता–समय–रचनात्मकता' लेख; उद्धृत– 'समकालीन हिन्दी आलोचना' ;पृ.सं.–172
208. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('भाव जो छलके पदों पर' कविता); पृ0सं0–34
209. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('रचना–सौष्ठव' निबंध'); पृ0सं0–506
210. वही ; ('साहित्य का चरित्र' निबंध); पृ.सं.–523
211. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशो. सं0); पृ0सं0–364
212. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('मेरे गीत और कला' निबंध); पृ0सं0–396
213. डॉ0 नामवर सिंहः 'कविता के नए प्रतिमान'; पृ.सं.–133
214. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('मेरे गीत और कला' निबंध); पृ0सं0–403
215. डॉ0 नामवर सिंहः' छायावाद प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत, पृ.सं.–96
216. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('विद्यापति और चण्डिदास' निबंध); पृ0सं0–237
217. डॉ0 रामविलास शर्मा ; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–2); पृ0सं0–301
218. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('शेफालिका' कविता); पृ0सं0–133
219. डॉ0 नंदकिशोर नवल ; 'निराला और मुक्तिबोध'; चार लंबी कविताएँ, पृ.सं.–51
220. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे' कविता); पृ0सं0–212
221. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('स्फटिक शिला' कविता); पृ0सं0–75

222. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तोड़ती पत्थर' कविता); पृ0सं0–323
223. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–8); ('जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखित पत्र, 12 / 8 / 1937); पृ0सं0–259
224. दूधनाथ सिंह; 'निराला : आत्महन्ता आस्था'; पृ0सं0–43
225. मुक्तिबोध; 'मुक्तिबोध रचनावली' (भाग–4); ('तीसरा क्षण' निबंध); पृ.सं.–93
226. डॉ0 नंदकिशोर नवल; 'निराला और मुक्तिबोध'; चार लंबी कविताएँ; पृ.सं.–50
227. अज्ञेय; 'अज्ञेय :अपने बारे में 'एक साक्षात्कार' (रेडियो–जीवनी)' आकाशवाणी प्रकाशन, दिल्ली; पृ.सं.–64
228. मुक्तिबोध; 'मुक्त्बिोध रचनावली (भाग–4); (संपा–नेमिचंद पैठ 'तीरूणा क्षण'); पृ.सं. –79
229. डॉ0 नंदकिशोर नवल; 'निराला रचनावली'(भाग–1); भूमिका; पृ0सं0–18–19
230. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('कविता' कविता); पृ0सं0–63
231. वही ; ('श्रृंगारमयी' कविता); पृ.सं.–76
232. अज्ञेय ;('कविता का संप्रेषण' निबंध); उद्धृत–"समकालीन हिन्दी आलोचना"; संपा–परमानंद श्रीवास्तव; पृ0सं0–47
233. राजशेखर ; 'काव्य–मीमांसा; (अनु.)– केदारनाथ शर्मा सारस्वत; नवम् अध्याय; पृ. सं.–122
234. रामधारी सिंह 'दिनकर' ; मृत्तिलिलक ; उद्धृत–काव्य भाषा– सियाराम तिवारी; पृ. सं.–144
235. अज्ञेय ; 'कविता का संप्रेषण' निबंध' ; ('संकलित)–'समकालीन हिन्दी आलोचना';(संपा0)–परमानंद श्रीवास्तव; पृ0सं0–47
236. डॉ0 नामवर सिंह ; 'छायावादाः प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत' (संपा0); ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष; पृ0सं0–76
237. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('कुकुरमुत्ता' द्वितीय संस्करण की भूमिका); पृ0सं0–324
238. वही ; ('नए पत्ते' की भूमिका); पृ.सं.–327
239. केदारनाथ सिंह ; 'मेरे समय के शब्द' ; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण; 1997 ई0; पृ0सं0–20
240. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', (संशोधित संस्करण); पृ0सं0–320
241. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('सहज' कविता); पृ0सं0–346
242. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('सहज चाल चलो उधर' कविता); पृ0सं0–168
243. वही ; ('गीत गाने दो मुझे तो' गीत); पृ.सं.–367
244. डॉ0 नामवर सिंह ; 'छायावादः प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत'; पृ0सं0–89
245. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('अट नहीं रही है' गीत); पृ0सं0–370

246. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('राम की शक्तिपूजा' कविता); पृ0सं0–318
247. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('तुम्हें चाहता वह भी सुंदर' कविता); पृ0सं0–31

अध्याय–5

अभिव्यंजना के नवीन प्रयोग एवं निराला

(1) काव्य–रूपों के प्रति आग्रह : जीवन–जगत के विविध रंग
(2) ''सहज प्रकाशन वह मन का'' : मुक्त छंद की अवधारणा एवं नयी लय का संधान
(3) सामाजिक यथार्थ का उद्‌घाटन : बिम्ब, प्रतीक अप्रस्तुत–विधान एवं मिथकों की नवीन–सृष्टि

अध्याय–5

अभिव्यंजना के नवीन प्रयोग एवं निराला

''घर पर भी पग–पग पर चौराहे मिलते हैं
बँहें फैलाये रोज़ मिलती हैं सौ राहें
शाखा–प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं
नव–नवीन रूप दृश्यवाले सौ–सौ विषय
रोज़–रोज़ मिलते हैं।''[1]

कवि इस अपार काव्य–संसार में उस 'प्रजापति' के समान होता है जो अपनी काव्यानुभूति के आधार पर विविध विषयों की रचना में समर्थ होता है। काव्य–कृतियों में मूलतः कवि की विविध भावानुभूतियों का नानारूप से प्रकाशन होता है। कवि सहृदय तक अपनी भावानुभूतियों के काव्यमय संप्रेषण के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग करता है। काव्य–रूपों के निर्धारण में कवि की कलानुभूति, प्रतिभा, काव्य–दृष्टि, विचारधारा आदि कई तत्व कार्य करते हैं। काव्य–रूप, काव्य–अनुभूति की संप्रेष्य अभिव्यक्ति का सुपरिणाम हुआ करते है। काव्य–रूप को हम न शैली मात्र से जोड़ सकते हैं, न ही छंद–मात्र से। उसका शाश्वत दिग्दर्शन तो काव्य की समग्रता में होता है। जो काव्यानुभूति से जुड़ा होता है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें, तो ***'जब हम पूरे कवि–कर्म पर विचार करते हैं कल पर नहीं – तब उसके मूल में काव्यानुभूति की सत्ता माननी पड़ती है।***[2]

भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य काव्य–शास्त्र में काव्य–रूपों के भेद संबंधी विभिन्न मत हैं। संस्कृत काव्य–शास्त्र इंद्रियग्राह्यता के आधार पर काव्य को 'दृश्य' एवं 'श्रव्य' दो भेदों में बाँटता है। श्रव्य काव्य को अधिकांश संस्कृत आचार्यों ने गद्य और पद्य दो भागों में विभाजित किया है। आचार्य भामह ने स्वरूप को आधार बनाकर पद्य काव्य के पाँच प्रकार बताए हैं– सर्गबंध अथवा महाकाव्य, अभिनेय अथवा नाट्य काव्य, आख्यायिका, कथा और अनिबद्ध या मुक्तक–

"सगबवंघोऽभिनेयार्थ तथैवाख्यायिकाकथे
अनिबद्ध च काव्यादि तत्पुनः पंचधोच्यते।"[3]

साहित्यदर्पणकार विश्वाथ ने धंदोबद्ध रचना को पद्य कहा तथा छंदमुक्त रचना को मुक्तक माना तथा काव्य के प्रबंध भेद में महाकाव्य, खंडकाव्य, एकार्थकाव्य तथा चंपूकाव्य का उल्लेख किया है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय चिन्तकों ने व्यक्ति और संसार के पार्थक्य के आधार पर काव्य दो भागों में बाँटा है– विषय–प्रधान और विषयी–प्रधान। प्रथम में, कवि बहिर्जगत् में अपने को लीन करके अपने बाहर रहने वाली वस्तु (विषय) से सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है और दूसरे में, वह अपनी सुख–दुखात्मक अनुभूतियों को प्रकट करता है। विषयीगत काव्य को प्रगीत या भाव प्रधान काव्य भी कहा जाता है। इसमें गेयतत्त्व की प्रधानता रहती है।

आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य के प्रमुख काव्य–मर्मज्ञों ने काव्य–रूपों के विवेचन में संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्धारित परंपरागत काव्य–रूप तथा पश्चिमी काव्य–चिन्तन दोनों का ध्यान रखा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रचना–शैली के आधार पर तीन प्रकार के काव्यों की चर्चा की है– प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य और गीतिकाव्य। 'साहित्यलोचन' के लेखक बाबू श्यामसुंदर दास तया 'साहित्य–सहचर' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने काव्य के रूप भेदों का विभाजन विषय–प्रधान और विषयी–प्रधान के आधार पर किया है। द्विवेदी जी के अनुसार, ***'इस युग में विषयी–प्रधान कविता का प्रचार ही अधिक हो रहा है। वर्तमान हिन्दी–साहित्य में इस श्रेणी की कविता का बहुत प्रचार है। तीन बातें इन दिनों प्रधान रूप से दृष्टिगोचर हो रही है– कल्पना, अनुभूति और चिन्तन।'***[4] संस्कृत काल में जहाँ मुक्तक को विशेष महत्व नहीं मिला, आधुनिक मनीषियों ने मुक्तक की सभी विधाओं का स्वतंत्र विवेचन करते हुए प्रगीत एवं गीतिकाव्य की विशिष्टताओं का उल्लेख किया है। मुक्तक काव्य के संदर्भ में आचार्य शुक्ल की यह सूक्ति अत्यंत प्रसिद्ध है– ***"यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता।"***[5]

प्रत्येक रचना के काव्य–रूप का चयन कवि की अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल होता है तथापि महान् कवि प्रायः सभी काव्य–रूपों को अपनाकर कालजयी कृतियों द्वारा साहित्य को समृद्धि प्रदान करते हैं। निराला भी बहुमुखी प्रतिभा के धनी ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों में विभिन्न रूपविधाओं की रचना कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। अपनी नूतनोन्मुखी प्रतिभा तथा प्रयोगधर्मी अन्वेषण वृत्ति से उन्होंने काव्य के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास, अनुवाद, निबंध, आलोचना आदि रूपों में भी अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण दिया है। परंतु, यहाँ तद्युगीन परिप्रेश्य में निराला द्वारा प्रयुक्त काव्य रूपों का अनुशीलन करना ही हमारा अभीष्ट है।

(1) काव्य–रूपों के प्रति आग्रह : जीवन–जगत के विविध रंग

महाकवि निराला का युग सामाजिक व साहित्यिक दोनों स्तर पर विद्रोह, क्रांति और नवीनता के जागरण के साथ पुरातन के नवोत्थान का युग था। छायावादी कविता में व्यक्तिगत भावाभिव्यक्ति की प्रधानता थी तो पुरातन रूढ़ियों को तोड़ने का संकल्प भी था। इस युग के कवि बौद्धिकता या पांडित्य के प्रदर्शन के लिए नहीं लिख रहे थे, उन्हें 'स्वानुभूति की मुक्त और सुदृढ़ व्यंजना' ही अधिक इष्ट थी। परिणामस्वरूप छायावादी काव्य स्वतः गीत एवं प्रगीत शैली में मुखर हुआ। छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के अनुसार, *''हन्दी–काव्य का वर्त्तमान नवीन युग गीतप्रधान ही कहा जाएगा। हमारा व्यस्त और व्यक्ति प्रधान जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है।''*[6] प्रगीत शैली को अपनाने के पीछे पश्चिमी स्वच्छंदतावादी काव्य का प्रभाव भी था और आंतरिक मनोवेगों की अभिव्यक्ति को प्रकट करना भी। निराला मूलतः गीतिकाव्य के कवि हैं और इसका प्रमुख कारण तद्युगीन काव्य–चेतना भी थी। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने निराला के युग के संदर्भ में उनके काव्य–रूपों की नूतनता को रेखांकित करते हुए लिखा है – *''कुछ युग ही ऐसे होते है जिनमें महान कवियों की प्रतिभा गीतमुखी हो जाती है। विशेषकर नवीन संस्कृति की किशोरावस्था में महाकाव्य की रचना नहीं हो पाती। उसके बदले प्रगीतों में उस युग की समग्र चेतना प्रतिबिंबित होती है। निराला का युग भी भारतीय संस्कृति के नव–निर्माण की किशोरावस्था का युग था, जिसमें बहिर्मुखता और समन्वित आदर्शों और जीवन लक्ष्यों के स्थान पर नए स्वप्नों और नई आकांक्षाओं को स्वरूप दिया गया है। इस नवोन्मेष के अनुरूप ही निराला के काव्य रूप निर्मित हुए हैं।''*[7]

महाकवि निराला नवीनता के सबसे बड़े उद्घोषक थे। नवीनता का अर्थ उनके लिए प्रयोगधर्मिता की लालसा नहीं; वरन् पुरातन काव्य रूढ़ियों से कविता को मुक्त कराकर उसका नवीन संस्कार व परिष्कार करना था। कविवर सुमित्रानंदन पंत ने निराला का चित्र कुछ इस प्रकार खींचा है– *''निराला का आविर्भाव नयी काव्य–चेतना के आकाश में एक तेजोमय*

धूमकेतु के समान हुआ, एक प्रखर धूमकेतु, जिसका सिर अद्वैत दृष्टि की मणि के आलोक से दैदीप्यमान रहा और जिसके पीछे अपनी ही व्याप्ति में खोयी ज्योति–वाष्पों की एक लंबी धूमिल पूंछ भी लिपटी रही, जिसमें उनके उपचेतन व्यक्तित्व की वे सभी महत्वाकांक्षाएँ, विकृतियाँ, विषमताएँ – अर्हमन्यता, स्पर्धा, प्रचण्डता तथा निर्मम जीवन परिस्थितियों के कष्टपूर्ण संघर्षों की परछाइयाँ एक अस्पष्ट अचिन्त्य, समझ में न आनेवाले रहस्यमय इन्द्रजाल में – सी बंटी प्रतिच्छवित रहीं।'[8] निराला ने काव्य के सभी रूपों में सफल प्रयोग किये तथा पारंपरिक काव्य–प्रकारों का अभिनव समावेश किया। उनकी काव्य–कुशलता को देखकर उनके प्रमुख आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी उन्हें **'बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा'** का धनी और उनकी वाणी को 'बहुमुखी' बतलाया हैं।[9] उनके विविध काव्य–संसार में जहां एक ओर 'मुक्त छंद' की उद्घोषणा है तो दूसरी ओर तुलसीदास' जैसी कठिन छंदोबद्ध रचना भी है। लंबी कविता, गीत, गीतनाट्य, सॉनेट, गजल आदि काव्य रूप निराला की अमूल्य धरोहर हैं। उनमें छंदों, भावों तथा काव्य–शिल्प के नये प्रसाधनों का इस्तेमाल करके निराला ने अपनी काव्य–प्रतिभा तथा प्रयोगशीलता का अद्भुत परिचय दिया है। इनके गीतों में विविध मनोभावों एवं ऐन्द्रिक बोधों की अभिव्यक्ति होती है। इनके यहाँ प्रेमगीत, ऋतुगीत, प्रार्थना–गीत, मृत्युगीत और लोकगीत के नये–नये रूप मिलते हैं।

भाषा और संवेदना दोनो स्तर पर निराला की कविताओं में विविध रंग देखने को मिलते हैं। 'जुही की कली' (1916) से लेकर मृत्यु विषयक उनकी अंतिम कविताओं (1961) तक निराला के काव्य में विषय–भाव और शिल्प के स्तर पर विविधता मिलती है। जिस छंद–मुक्ति का उन्होंने सूत्रपात किया, वह सर्वप्रथम 'अनामिका' के प्रथम संस्करण (1923 ई.) में संगृहीत थी। इसके प्रथम संस्करण में निराला की प्रकाशित अधिकांश कविताएँ 'परिमल' में समाहित कर की गई। 'परिमल' (1930 ई.) में काव्य को तीन खंडों में रखा गया है। प्रथम खंड की सभी कविताएँ सममात्रिक–सांत्युनुप्रास है तो द्वितीय खंड में स्वच्छंद छंद की रचनाएँ हैं। विषयगत दृष्टि से भी यहाँ विविधता है। यहाँ दार्शनिक आध्यात्मिक जागरण, दलित–पीड़ितों की करुण पुकार, प्रेम और नारी–सौंदर्य के साथ

प्रकृति चित्रण संबंधी कविताएँ मिलती है। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'परिमल' के संदर्भ में लिखा है – *" 'परिमल' की रचनाओं में छायावाद की बहुँमुखी प्रवृत्तियाँ अपनी रूपरेखा में स्पष्ट होकर पाठक के सामने लगती हैं। ..... छंद और भाषा में नए प्रयोग करके उन्होंने रीतिकालीन आचार्यों को बता दिया कि हिन्दी कविता में एक नए युग का आरंभ हो गया है।"*[10] 'गीतिका' (1936 ई.) निराला का गीत संबंधी नया प्रयोग है। प्रेम और सौन्दर्य गीतों के शाश्वत विषय हैं। गीतिका में इनका सर्वाधिक वर्णन हुआ है। निराला के समय रविन्द्र संगीत के स्वर–विन्यास में पूर्व–पश्चिमी दोनों ही स्वर–लिपियों का मेल था और वह उस समय प्रचलन में थी। इसका भी प्रभाव 'गीतिका' के गीतों में देखा जा सकता है। 'गीतिका' के गीत में संगीत और काव्य लगभग एकाकार हो चुके हैं। इन गीतों में ऋतु–गीत हैं, प्रार्थना–गीत हैं, श्रृंगार–गीत हैं, राष्ट्रीय–गीत हैं, पत्र–प्रगीत हैं और शोक–गीत भी है। उनके सभी गीतों में लोकगीतों की तीव्रता और संवेदना विद्यमान हैं। डॉ. नंदकिशोर नवल ने 'गीतिका' के संदर्भ में लिखा है – *"यह बात स्मरणीय है वे जितने बड़े कवि थे, उतने ही बड़े गीतकार भी, जिसका प्रमाण इस काल में रचित 'गीतिका' के गीत हैं। उन गीतों को छोड़कर छायावादी निराला को पूरा नहीं समझा जा सकता है न उनकी व्यापक और गहरी संवेदना को, न उनके काव्य–शिल्प का और न गीतकार के रूप में विद्यापति, सूर तथा तुलसी के साथ उनकी सफलता को।"*[11]

'अनामिका' के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन सन् 1937–38 में हुआ जिसमें 'सरोज–स्मृति' और 'राम की शक्ति–पूजा जैसी प्रौढ़ रचनाएँ संग्रहित है। सन् 1985 से 1938 तक का काल स्वयं निराला के जीवन में गहन आत्म–संघर्ष का काल था। एक और पुत्री की मृत्यु तो दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में व्यंग्य–वाणों को निराला झेल रहे थे। 'सरोज–स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' निराला की दो महानतम रचनाएँ हैं जिनमें महाकाव्यात्मक औदात्य है। 'सरोज–स्मृति' रचनाकार की विविध मनोस्थितियों, ध्वन्यात्मक एवं बिंबपरक वैविध्य से जुड़ी है तो 'राम की शक्तिपूजा' स्वयं निराला का अपना युद्ध है। इसी की अगली कड़ी है – 'तुलसीदास' (1888 ई.) इसमें भारतीय संस्कृति के ह्रास का चित्र उपस्थित

किया गया है। चरितनायक के संदर्भ में रचना का तात्कालिक परिवेश मुगल काल, अंग्रेजों की दासता से सम्बद्ध है और तुलसी की भूमिका में निराला जैसे स्वयं को ही परिकल्पित कर रहे होते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'तुलसीदास' की प्रशंसा करते हुए लिखा है – *" 'तुलसीदास' निराला जी की एक बड़ी रचना है जो अधिकांश अंतर्मुख प्रबंध के रूप में है। इस ग्रंथ में कवि ने जिस परिस्थिति में गोस्वामी जी उत्पन्न हुए उसका बहुत चटकीला और रंगीन वर्णन करके चित्रकूट की प्राकृतिक छटा के बीच किस प्रकार आनंदमयी सत्ता का बोध हुआ और नवजीवन प्रदान करनेवाली गान की दिव्य प्रेरणा हुई उसका अंतवृत्ति के आंदोलन रूप में वर्णन किया है।"*[12] इनके गीत 'अर्चना' और 'आराधना' की परंपरा में है जिसमें कवि के हृदय की साधना गहराई के साथ अंकित है। वर्ण्य–विषय की दृष्टि से गीत–गुंज में भक्ति, शृंगार, प्रकृति और व्यंग्य विषयक गीत है। 'गीत–गुंज' में निराला का बादल–संबंधी अनुराग–चित्रित हुआ है जिसके माध्यम से कवि ने जीवन–दर्शन को भी प्रस्तुत किया है। 'सांध्य–काकली' निराला द्वारा जीवन के अंतिम दिनों में लिखी गई कविताओं का संग्रह है जिसका प्रकाशन उनके मरणोपरान्त सन् 1969 ई. में हुआ था। अपनी रुग्नावस्था में जो कविताएँ निराला ने लिखीं, वे इस संग्रह में संकलित है जिसमें निराला का भोगा हुआ जीवन प्रतिफलित होता है। इन गीतों में अनुभूति की गहराई अधिक है और माधुर्य रस यहाँ अपनी चरम–सीमा पर है। किंतु, यहाँ भी एक आशावादिता है, निराशा नहीं।

सन् 1942 से 1950 तक निराला की पाँच प्रमुख काव्य–कृतियाँ प्रकाशित होती हैं – 'कुकुरमुत्ता' (1942 ई.), 'अणिमा' (1943 ई.), 'बेला' (1946 ई.), 'नये पत्ते' (1946 ई.) तथा 'अर्चना' (1950 ई.)। यह काल निराला के लिए मुख्यतः प्रयोगधर्मिता का काल रहा। एक और उन्होंने हिंदी और उर्दू की बोलचाल की भाषा में 'कुकुरमुत्ता' जैसी विस्तृत व्यंग्य–रचना लिखी तो दूसरी ओर 'मास्को डाएलाग्स' आदि छोटी कविताएँ भी। नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार, शैली की दृष्टि से *" 'कुकरमुत्ता' में टी.एस. इलियट के 'वेस्टलैंड' की भांति संदर्भ–प्राचुर्य है। कही मंदिरों का उल्लेख है, कहीं सुदर्शन–चक्र के फलक का, कहीं राम के धनुष का और कहीं बलराम के हल का। ये अनेकानेक संदर्भ कविता को एक विशिष्ट*

भौतिक भास्वरता प्रदान करते हैं।"[13] 'अणिमा' में कुछ पुरानी कविताएँ भी है, व्यंग्यात्मक भी और कुछ प्रशस्ति–परक भी। 'बेला' में निराला ने उर्दू शैली की गजलों का प्रयोग किया है। यह और बात है कि निराला में उर्दू के जिन छंदों का प्रयोग किया है, उनके प्रयोग में वे सफल नहीं दिखते। फिर भी बेला के प्रकृति एवं प्रेम–विषयक गीतों में 'कुकुरमुत्ता' की अपेक्षा मृदुलता अधिक है। आगे 'नये पत्ते काव्य–संग्रह को एक प्रकार से प्रगतिवादी काव्यधारा के अधिक निकट माना जा सकता है। इसमें यथार्थवाद अपनी पूर्णता में चित्रित है। यहाँ कवि की सामाजिक चेतना व्यंग्यात्मक हो चुकी थी। कविताएँ तुकांत भी है और अतुकांत भी। 'खजोहरा' जैसी कविता उन्नीस मात्राओं की पियूस–वर्षा छंद पर आधारित है जो छंदोशास्त्रीय मान्यताओं का नकार ही है। 'अर्चना' मुख्यतः निराला के भक्तिपरक गीतों का संकलन है जहाँ भक्ति की तन्मयता से अधिक सच्चे कवि हृदय का आक्रोश अधिक उमड़ता है। 'अर्चना' में 'फूटे है आमों में बौरा' जैसे होली से संबंधित गीत भी मिलते हैं जिनमें लोक–गीतों की लयात्मकता अधिक है। यहाँ 'नये पत्ते' से अधिक समृद्ध और भावानुकूल भाषा मिलती है। 'अर्चना' कई मामलों में संतुलन का काव्य है। यहाँ निराला ने अपनी क्रांतिकारी भावनाओं पर अंकुश रखा है। यहाँ पर उनके काव्य में संस्कृत शब्दों का यदि बाहुल्य है तो उर्दू–फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं और आंचलिक शब्द भी भरपूर मात्रा में मिलते हैं।

सन् 1950 से 1961 तक का निराला काव्य मुख्यतः विषाद से आक्रांत है। किन्तु इस विषाद में भी व्यंग्यात्मकता व राजनीतिक भावबोध है और भक्तिगीत में 'आराधना' (1951 ई.) को 'अर्चना' की ही अगली कड़ी कहा जा सकता है। इन गीतों में मानव–उन्मुख भक्ति और शुद्ध मानवतावादी विचारधाराएँ अधिक अभिचित्रित हुई हैं। इन गीतों में नादात्मक सौन्दर्य एवं लयात्मक माधुर्य अपनी चरम–सीमा पर है। 'गीत–गुंज' का प्रकाशन सन् 1954 ई. में हुआ।

इस प्रकार निराला के काव्य–विकास पर दृष्टिपात करने पर हमें उनके काव्य के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं। फिर भी उनकी रचना को, उनके काव्य–विकास को कालक्रम के आधार पर विश्लेषित नहीं किया जा

सकता। वास्तव में उनकी कई रचनाएँ किसी काव्य–सिद्धांत के घेरे में नहीं आती। 'तुलसीदास' और 'कुकुरमुत्ता' को छोड़कर उनके सभी रचनाओं में विविध रंगों की काव्य–धाराएँ समान रूप से मिलती हैं, चाहे वह ऋतु–गीत हों, प्रार्थनाएँ हो, प्रकृति या प्रेम संबंधी गीत हो या फिर राष्ट्रीय उद्‌बोधन संबंधी कविताएँ ही क्यों न हों। दूधनाथ सिंह ने लिखा है– *"निराला का काव्य–व्यक्तित्व इतना विराट, गहन, गंभीर और कुछ ऐसा सीमाहीन लगता है जिसके अंदर बाहरी विचार और सिद्धांत और अध्ययन रेखाएँ तिरोहित हो जाती हैं और फिर जो कुछ भी रच बाहर आता है, वह सिर्फ 'निराला' होते हैं! ..... संसार की किसी भी भाषा में ऐसे कवि बहुत कम होंगे जो रचना स्तरों के अनेक रूपों को साथ–साथ वहन कर सकें और लगातार अनेक–मुखी अर्थों वाली कविताएँ रचने में समर्थ हों।"*[14] निराला का यह निरालापन उन्हें नई भाषा, छंद और कथन–भंगिमा की खोज में तत्पर करता है।

(2) ''सहज प्रकाशन वह मन का'' : मुक्त छंद की अवधारणा एवं नयी लय का संधान

''मुक्त छंद
सहज प्रकाशन वह मन का
निज भावनाओं का प्रकट अकृत्रिम चित्र।''[15]

छायावादी कला को निराला की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन उनका मुक्त छंद है जिसके लिए प्रारंभ में वे आलोचना के शिकार बनें तो बाद में उनके कदम की प्रशंसा भी खूब हुई।

मुक्त छंद को लेकर निराला का मत है – ***''मुक्त छंद तो वह है जो छंद की भूमि में रहकर भी मुक्त है।''***[16] कहने का अर्थ यह है कि मुक्त छंद नियमबद्ध नहीं होता है। वहाँ छंदशास्त्रों में उल्लिखित छंदों के नियम का पालन नहीं होता। छंदों की वर्ण–गणना और मात्रा–गणना भी आवश्यक नहीं होती। 'जुही की कली' का उदाहण देते हुए निराला ने समझाया है – ***'' 'यहाँ सोती थी सुझग भरी' आठ अक्षरों का एक छंद आप–ही–आप बन गया है। तमाम लड़ियों की गति कवित्त छंद की तरह है।''***[17] निराला की इस स्थापना को डॉ. नामवर सिंह ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है – ***''वस्तुतः मुक्त छंद की कविता पढ़ने से किसी न किसी लय का बोध तो होता ही है। इससे यह पता चलता है कि मुक्त छंद में लय तो है परंतु उसमें तुक नहीं है और उसके सभी चरण सम नहीं है। इसका अर्थ यह है कि मुक्त–छंद में छंद के बाह्य आडंबर तो नहीं है, परंतु उसकी आत्मा 'लय' अवश्य है। ..... अस्तु, 'मुक्त छंद' का अर्थ है छंद–रूढ़ि से मुक्ति, छंद–मात्र से मुक्ति नहीं। इस तरह 'मुक्त–छंद' शब्द में विरोधाभास है. वास्तविक अंतर्विरोध नहीं।''***[18] इस दृष्टि से मुक्त–छंद और स्वच्छंद छंद में अंतर हो जाता है। स्वच्छंद छंद की आत्मा स्वतंत्र होती है और वहाँ कवि की अनुभूतियाँ स्वच्छंदतापूर्वक अभिव्यक्ति पाती हैं। सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में लिखा है – ''स्वच्छंद छंद ह्रास्व–दीर्घ मात्रिक संगीत पर चल सकता है, यह एक बहुत बड़ा भ्रम है। स्वच्छंद छंद में आर्ट म्युजिक नहीं मिल सकता, वहाँ है आर्ट ऑफ रीडिंग है। वह स्वर–प्रधान नहीं, व्यंजन प्रधान है।''[19] मुक्त छंद में 'आर्ट ऑफ

म्युजिक' विद्यमान रहता है। यहाँ व्यंजन की प्रधानता होती है किन्तु छंद की आत्मा 'लय' बनी रहती है।

'मुक्त छंद' में सर्वाधिक प्रधान तत्व है– भाव–स्वच्छंदता। द्विवेदी युग में तुकों से छंद की मुक्ति आरंभ हो चुकी थी। निराला ने मनुष्यों की तरह कविता की भी मुक्ति की घोषणा की। छापे की मशीन ने उस समय कविता को श्रव्य की जगह पाठ्य अधिक बना दिया था। इससे भी कवियों में कविता के चरणों को इधर–उधर हटाने, विराम–चिह्नों के प्रयोग और कोष्ठकों आदि की सहायता से अपने भाव–संप्रेषित करने की रूचि अधिक दिखाई दी। 'छायावाद' में भावावेग की अधिक प्रधानता थी जो उस युग की छंद–रचना में दिखाई देती है। भावों के आधार पर छंद–योजना ढलने लगी। दूसरी ओर निराला मुक्त छंद के द्वारा यह प्रयास कर रहे थे कि हिन्दी कविता की लय को बोलचाल की भाषा तथा वाद्य की लय के अधिकाधिक निकट लाया जा सके। इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है– *''मुक्त–छंद की महत्ता इस बात में नहीं है कि वह बंधनहीन है, पूर्ण ज्ञान या मुक्त भावों का वाहन है, वरन् इसमें है कि उसने मात्रिक छंदों की एकरस लय को भंग किया, वह हिन्दी कविता में बोलचाल की लय की विविधता लाया। उसने भाषा की छिपी हुई शक्ति उद्‌घाटित की। हिन्दी के कवित्त छंद में यह विविधता है।''*[20]

'जूही की कली' कविता के माध्यम से निराला ने मुक्त छंद की कविता की शुरूआत की। निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है –

''विजन–वन–वल्लरी पर
सोती थी–सुहाग–भरी स्नेह–स्वप्न–मग्न
कमल–कोमल तनु–तरुणी–जुही की कली,
दृग बंद किए, शिथिल–पत्रांक में,
वासंती निशा थी,
विरह–विधुर–प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयामिल।''[21]

इस उदाहरण में 'विजन', 'वन–वल्लरी', 'स्नेह–स्वप्न–मग्न', 'कोमल', 'तनुतरुणी', 'विरह विधुर' आदि में वृत्यानुप्रास और छेकानुप्रास की योजना से शब्दावली में श्रवण–सुख मिलने लगता है। यहाँ छंद की लय तो घनाक्षरी है, किन्तु इसके चरण विषम है और अतुकांत है। इसे चार तुकांत धनाक्षरियों में इसलिए नहीं लिखा गया क्योंकि इससे भाव–प्रवाह की अन्विति समाप्त हो जाती। यहाँ गीत का प्रवाह और उसकी लयात्मकता सुरक्षित है।

'जुही की कली' को लेकर दूधनाथ सिंह ने 'कविता की मुक्ति' का प्रश्न उठाते हुए लिखा है – *''सिर्फ छन्द मुक्ति से कविता की मुक्ति संभव नहीं है। बल्कि अभिजात संस्कारों से उनकी मुक्ति तभी संभव है, जब वह संवेदना के स्तर पर पहले मुक्त हो। उसके बाद वह अपने को छन्दानुशासन से अवश्य मुक्त कर लेगी। ..... 'जुही की कली' या उस तरह की बहुत सारी कविताएँ अपनी छंद मुक्ति के बावजूद काव्य–मुक्ति के उदाहरणस्वरूप नहीं रखी जा सकतीं। वे अपने संपूर्ण संस्कार में रीत्यात्मक, पारंपरिक कविताएँ ही हैं और हजारों वर्ष से भारतीय कविता की अभिजात्यता का ही एक उदाहरण है।'*[22] किन्तु, यहाँ हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि जुही की कली पर नायिकात्व का आरोप है, नायिका पर जूही की कली का नहीं। 'जूही की कली' को प्रस्तुत और नायिका को 'अप्रस्तुत' रखने से यह कविता मानवीय श्रृंगारपरक कविता न होकर एक प्रकृतिपरक कविता बन जाती है। डॉ. नंद–किशोर नवल ने इस कविता के संदर्भ में लिखा है – *''रीतिकाव्य में नायक–नायिका के प्रस्तुत होने से जहाँ श्रृंगारिक क्रिया–कलाप का वर्णन बहुत ही स्थूल हो जाता है, वहाँ इस कविता में प्राकृतिक अवयवों के प्रस्तुत होने से उसमें एक विलक्षण सौंदर्य संभव हुआ है। ..... इस तरह यह कविता प्रकृति और मनुष्य, कल्पना और यथार्थ तथा सूक्ष्मता और स्थूलता के द्वंद्व और उससे उत्पन्न होने वाले काव्य–सौन्दर्य का एक अच्छा उदाहरण है। जो विद्वान इस कविता में सिर्फ श्रृंगार–वर्णन की स्थूलता ही स्थूलता देखते हैं, वे उसे इकहरे रूप में देखते हैं, उसमें निहित द्वंद्व को नहीं दिखते। उनकी दृष्टि मनुष्यतावादी है। वे मनुष्य में तो मनुष्य को देखते ही है, प्रकृति में भी मनुष्य को देखते हैं।'*[23]

इस प्रकार निराला के मुक्त छंदों में एक रचना व्यवस्था दिखती है। उन्होंने छंद की प्राचीन मान्यताओं को तो झटका, किन्तु उसकी लयात्मकता को ग्रहण अवश्य किया। दूसरी और उनकी अधिकांश कविताओं में मात्रा या वर्ण की बंधन से परंपरागत छंद–विधान भी मिलता है। यथा, निराला ने 26 वर्षों वाली कवित्त की आधी पंक्ति की बार बार आवृत्ति की हैं –

''आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात
आई याद कान्ता की कंपित कमनीय गात।''[24]

तो फिर प्राचीन छंदो की नियमावली के विरोध का क्या प्रयोजन? इसका उत्तर देते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है – ***''पुरानी कोठियों और महलों से जो दूर वातावरण में बने थे, बाहर निकल आना भी कभी क्रांति कहला सकती है और नए आवास बनाकर रहना भी नये वातावरण का निर्माण करना कहा जा सकता है।''***[25] 'परिमल' की तीन खंडों की रचनाएँ पढने से पता चलता है कि प्रथम खंड की कविताएँ सममात्रिक सांव्यानुप्रासी है, दूसरे खंड की विषममात्रिक सांत्यानुप्रासिक और स्वच्छंद छंद में लिखित कविताएँ तीसरे खंड में मिलेगी।

'परिमल' की प्रथम खंड की कविताओं में मात्राओं और तुकों की एकरूपता को ध्यान में रखा गया है। यथा –

''ग्रीष्म का ले मृदु रवि–कर–तार,
गूंथ वर्षा–जल–मुक्ता हार,
शरत् की शशि–माधुरी–अपार
उसी में भर देती घर ध्यान,
सिक्त हिम–कण से छन–छन वात
शीत में कर रक्खा अज्ञात,
वसंती सुमन सुरभि भर प्राप्त,
बढ़ाया था किसका सम्मान?

तुम्हें कवि पहनाई माला,
देखती तुमको वह बाला।''[26]

उपर्युक्त काव्यांश के प्रत्येक चरण में 16–16 मात्राएँ है और यह मात्रिक समछंद का उदाहरण है।

विषम मांत्रिक सांत्यानुप्रासिक छंदों के प्रत्येक चरणों में मात्राएँ विषम होती है, किन्तु तुकें मिलती है। 'परिमल' की 'भिक्षुक, धारा, विधवा, अधिवास, स्वागत आदि प्रकार की रचनाएँ हैं। यथा – 'भिक्षुक' कविता का यह उदाहरण द्रष्टव्य है –

''वह आता –
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता
पेट–पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को ... भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता...
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।''[27]

उपर्युक्त काव्यांश में पंक्तियों में क्रमशः छह, बाईस, आठ, अठारह, तेरह, इक्कीस, बाईस और तीस मात्राएँ हैं। जहाँ मात्रागत वैषम्य का निर्वाह है। 'आता' व 'पछताता', 'पथ पर आता', 'एक' और 'टेक', 'दाने को' और 'मिटाने को' तथा 'फैलाता' व 'पथ पर आता' में भव्यानुप्रास का निर्वाह हुआ है।

निराला का मानना है – ***''स्वच्छंद छंद नाटक पात्रों की भाषा के लिए ही हैं, यों उसमें चाहे जो कुछ लिखा जाए।''***[28] 'पंचवटी प्रसंग' पाँच भागों में विभक्त नाट्यरूपक 'स्वच्छंद छंद में ही है जो कथोपकथनों में सक्षम होने से रंगमंच के उपयुक्त है। यथा–सीता का यह कथन –

''वहाँ की वह लता–कुंज मंजु थी,
यहाँ उस बिटप विशाल पर

फैली हुई मालती का शीतल–तल सुंदर हैं।
मैं तो सोचती हूँ, वहाँ वन्दिनी थी
और यहाँ खेलती हूँ मुक्त खेल।''[29]

'परिमल' के तृतीय खंड में निराला ने 'स्वच्छंद छंद' को कविता का भी अंग बना दिया है। इसके लिए उन्होंने कवित्त छंद को आधार बनाया और उसे हिन्दी का जातीय छंद कहा। निराला के अनुसार, ***''हिंदी में मुक्त काव्य कवित्त छंद की बुनियाद पर सफल हो सकता है। कारण, यह छंद चिरकाल से इस जाति के कंठ का हार हो रहा है। दूसरे इस छंद में विशेष गुण यह भी है कि इसे लोग चौताल आदि बड़े तालों में तथा ठुमरी के तीनों तालों में भी सफलतापूर्वक गा सकते हैं।''***[30] कवित्त छंद की लय पर आधारित मुक्त छंद में कोमल रचनाएँ 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'स्मृति–चुंबन' आदि तो पौरुषतापूर्ण रचनाओं में 'जागो फिर एक बार', 'महल शिवाजी' आदि रचनाएँ आती है। 'अनामिका' की 'प्रेयसी', 'वेनबेला', 'सरोज–स्मृति' आदि स्वच्छंद छंद में लिखित कविताँ है।

'कुकुरमुत्ता' में कवि ने विषममात्रिक और मुक्त छंदों का निर्वाह किया है तो 'अणिमा' में सम, विषम और मुक्त तीनों प्रकार के छंद प्रयुक्त हुए हैं। 'अणिमा' की 'स्वामी प्रेमानंद जी महाराज', 'स्नेह निर्झर बह गया' कविताएँ मुक्त छंद के ज्वलंत उदाहरण हैं। अत्यानुप्रास रहित काव्य–स्पंदन से परिपूर्ण मुक्त छंद निराला के छायावादोत्तर काल के काव्य में और अधिक निखरा है।

निराला अपने 'मुक्त छंद' के लिए सबसे अधिक आलोचना के शिकार हुए। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनुकांत पद्य का तो समर्थन किया किन्तु मुक्त छंद के नहीं। मई, 1927 की सरस्वती में सुकविकिंकर' के नाम से लिखित 'आजकल के हिंदी कवि और कविता' शीर्षक निबंध में उन्होंने छायावादी मुक्त छंद की रचना को एक 'अजीब गोरखधंधा' बतलाया था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी इसके प्रति अच्छी धारणा नहीं रखते थे। उन्होंने इसे 'वाल्ट ह्विटमैन की नकल' कहा और मिल के हवाले से इसमें 'छंदोव्यवस्था का ही नहीं, बुद्धित्व का भी अभाव' माना। 'निराला' की काव्य–विवेचना करते हुए इन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा

है– *"सबसे अधिक विशेषता आप के पद्यों में चरणों की स्वच्छंद विषमता है। कोई चरण बहुत लंबा, कोई बहुत छोटा, कोई मझोला देखकर ही बहुत से लोग 'रबर छंद', 'केंचुआ छंद' आदि कहने लगे थे। बेमेल चरणों की विलक्षण आजमाइश इन्होंने सबसे अधिक की है।"*[31] यह सत्य है कि निराला कुछ हद तक मुक्त छंद की रचनाओं के लिए बंगला रंगमंच और गिरिशचंद्र बोस द्वारा प्रयुक्त स्वच्छंद छंद से प्रभावित रहे है, किन्तु निराला का मुक्त छंद बिल्कुल देशी है, पश्चिम की अनुकृति नहीं। दूसरी ओर उन्होंने कवित्त की लय, गति, विराम और बलाघात का आधार लेकर जैसी सृष्टि की, उसमें मौलिकता झलकती है।

निराला मुक्त छंद को 'कविता की मुक्ति' से जोड़ते थे जिसे 'मनुष्यों में मुक्ति' की तरह ही अनिवार्य मानते थे। मेरे गीत और कला 'निबंध में उन्होंने भाव, भाषा और छंद तीनों की मुक्ति का समर्थन किया है – *"भावों की मुक्ति छंद की भी मुक्ति चाहती है, यहाँ भाषा, भाव और छंद तीनों स्वतंत्र है।"*[32] तो पुनः डॉ. रामविलास शर्मा का यह प्रश्न सार्थक हो जाता है – *"मुक्त छंद इतना महत्वपूर्ण है तो स्वयं निराला ने अधिकांश कविताएँ मुक्त छंद के बदले बंधन–युक्त छंद में क्यों रची? दूसरा प्रश्न यदि यह मान लें कि वेदों का छंद मुक्त है तो क्या व्यास–वाल्मीकि के काव्य मानव–जाति के पतन का इतिहास है? निराला के मुक्त–छंद का जितना ही विरोध उतना हुआ उतना वेदांत–ज्ञान और भाव–स्वाधीनता से उसका संबंध जोड़ते हुए उन्होंने उसका समर्थन किया। साथ ही वह बंधनयुक्त छंदों में बराबर कविताएँ लिखते रहे, ऐसी कविताओं में भाव, भाषा, छंद सब परतंत्र होंगे। इस विचार से उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई।"*[35] इसका तात्पर्य है कि छंद में बँधकर भी संवेदनागत, विषयगत और भाषिक–संरचना संबंधी पूर्ण मुक्ति हो सकती है। 'अणिमा' की 'यह है बाजार', 'सड़क के किनारे' जैसी रचनाएँ, 'कुकुरमुत्ता' नामक लंबी कविता, 'बेला' संग्रह की बहुत सारी गजलें, 'जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ', 'गली–गली हाथ पसारे', 'नये पत्ते' की 'खजोहरा', 'प्रेम–संगीत', 'गर्म–पकौड़ी', 'आराधना की 'खेत जोत कर', 'महकी साड़ी', 'धान कूटता है', 'अर्चना' की 'आशा–आशा मरे' जैसी ऐसी कई रचनाएँ है जहाँ छंदानुशासन तो है, किन्तु भाव, विषय व संवेदना के स्तर पर मुक्ति दिखाई पड़ती है। इस

संदर्भ में दूधनाथ सिंह ने लिखा है – *''इसका अर्थ यह हुआ कि बाद में अचेतन रूप से ही सही, निराला ने संवेदनागत और भाषिक–संरचना की मुक्तता को काव्य की मुक्ति के संदर्भ में अधिक महत्व दिया और छंद–मुक्ति से फिर वे छंदानुशासन पर लौट आए। अथवा कविता की मुक्ति के संदर्भ में उसे उन्होंने तीसरे स्थान पर रखा।''*[34] किन्तु, यह भी सत्य है कि उनकी जो कविताएँ – विषय वस्तु, भाषिक संरचना, संवेदना और छंद – सभी प्रकार की रूढ़ियों से मुक्त है, वे 'काव्य–मुक्ति' के प्रयास में लिखी निराला की सफल रचनाएँ कहीं जा सकती हैं।

निराला कविता की छंद से मुक्ति बिल्कुल नहीं चाहते थे, वरन कविता को मुक्त छंद के नवीन कलेवर में अपने समय के जीवन को बद्ध करते हैं। नवीन छंद योजना की दृष्टि से 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' और 'वनबेला' अत्यन्त विशिष्ट हैं। 'कुकुरमुत्ता' जैसी रचना में भी लय नहीं टूटी और छंद अपना नया रूप पाता है। महाकवि निराला ने मुक्त छंद की साधना की और हिंदी कविता को युगांतकारी दिशा में मोड़ दिया। वे छंद विशेषतः मुक्त छंद के प्रबल पक्षधर थे और उन्होंने इस के माध्यम से भारतीय काव्य शास्त्रीय परंपरा में नए प्रतिमान जोड़े हैं। निराला का प्रभाव परवर्ती काव्य चिंतन और काव्यशिल्प दोनों पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

छायावादी कवियों की तरह निराला के यहाँ भी तुक के संगीत का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता है और उसके स्थान पर लय–संगीत की निदर्शना होती है। उन्हें संगीत का अच्छा ज्ञान था। उनकी यह विशेषता कविता में अनेक स्थानों पर दिखाई देती है–

''ताक कमसिन वारि
ताक कम सिनवारि
ताक कम सिन वारि
सिनवारी, सिनवारी''[35]

निराला की शिल्प–योजना भावों के उतार–चढ़ाव के अनुरूप विकसनशील है। निराला की रचनाओं में जैसे वस्तु बदलती है, वैसे ही

उनका रूप परिवर्तित हो जाता है। वाक्यों, शब्दों, अक्षरों, ध्वनियों, अर्थसंकेतों और ध्वनिसंकेतों, लय और संगीत आदि सभी सोपानों पर वस्तु के अनुरूप परिवर्तन होता है। उनके यहॉ जब दो विरोधी भावों का सामंजस्य होता है तब शिल्प के स्तर पर भी वे उसका निर्वाह करते हैं। जहाँ विरुद्धों में टकराव होता है, वहाँ शिल्प में भी टकराव परिलक्षित होता है।

उदाहरणार्थ 'राम की शक्तिपूजा में जहाँ राम और सीता के मिलन का चित्रण है, वहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे वाक्यों और शब्दों के युग्म, अक्षरों तथा ध्वनियों के युग्म परस्पर स्नेहलाप कर रहे हैंः–

''पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान–पतन,
काँपते हुए किसलय, झरते पराग–समुदाय,
गाते खग नव–जीवन–परिचय–तरु मलय–वलय,
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।''[36]

जब निराला राम–रावण के युद्ध का वर्णन करते हैं, तो मानो एक वाक्यखंड दूसरे वाक्यखंड से, एक ध्वनि दूसरी ध्वनि से टकराकर विकराल गर्जना कर रही है और एक–एक अक्षर परस्पर युद्ध की मुद्रा में हो–

''उद्धत लंकापति–मर्दित– कपि–दल–बल–विस्तर
अनिमेष– राम– विश्वजद्दिव्य–शर–भंग – भाव
बिद्धांग – बद्ध– कोदण्ड– मुष्टि– खर– रुधिर– स्राव,
रावण – प्रहार– दुर्वार– विकल–वानर–दल–बल।''[37]

'वह तोड़ती पत्थर' कविता में भी पत्थर तोड़ने वाली युवती के पत्थर तोड़ने की क्रिया में जो पुनरावृत्ति है, लगभग वही पुनरावृत्ति उसकी भाषा–शैली और छन्द–प्रवाह में भी अनुस्यूत हैः–

''गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार–बार प्रहार
सामने तरुदृमालिका, अट्टालिका, प्राकार।''[38]

निराला की भाषा में एकरसता नहीं है। उन्होंने सरल, सुबोध, सौष्ठव प्रधान और अलंकृत भाषा का प्रयोग किया है। जिससे एक अलग प्रकार के नाद सौंदर्य का सृजन होता है। निराला की कविताओं में कोमलता भी मिलती है। उन्होंने शब्दों के प्रयोग से कोमलता को उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है।

निराला ने अन्य छायावादी कवियों की भांति भाषा को भावानुसारिणी बनाने के लिए शब्दों की मधुर योजना की है। यथा–

''प्रिय–कर–कठिन–उरोज परस, कस कसक मसक गयी चोली,
एक–बसन रह गयी मन्द हँस, अधर–दशन, अनबोली–
कली–सी काँटे की तोली।''[39]

उनकी रचनाओं में ओज है, पौरुष है और है सड़ी–गली मान्यताओं के प्रति विद्रोह। यह विद्रोह उनकी भाषा शैली में भी दृष्टिगत होता है।

'निराला' की दो भाषा शैलियाँ अधिकांशतः प्रचलित हैं– एक, उत्कृष्ट छायावादी गीतों में प्रयुक्त, लम्बी तत्सम संस्कृतयुक्त, गहन विचारों से ओत–प्रोत शैली और दूसरी सरल, प्रवाहपूर्ण एवं प्रचलित उर्दू के शब्दों से समृद्ध व्यंग्यपूर्ण और चुटीली शैली। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भाषा पर निराला का पूर्ण अधिकार था और उन्होंने भाव के अनुसार छंद और शैली का विधान किया जिसमें लय एवं संगीत कविता के पर्याय बन गये।

(3) सामाजिक यथार्थ का उद्‌घाटन : बिम्ब, प्रतीक अप्रस्तुत–विधान एवं मिथकों की नवीन–सृष्टि

निराला ने युगांतकारी विद्रोह वं नवस्वर से हिंदी साहित्य में नवीन परंपराओं का निर्माण किया है। उन्होंने अपने विद्रोह को केवल विरोध तक सीमित नहीं रखा बल्कि उसमें अभिव्यंजना–शिल्प के निर्माण एवं सर्जन की अभिनव भूमियाँ तैयार की। उन्होंने नवीन कल्पना द्वारा नूतन बिम्ब, प्रतीक, उपमा एवं मिथकों का नया संसार रचा। निराला ने अपनी काव्य–रचना के आरंभ से ही शिल्प के धरातल पर अनेक प्रयोग किये। मुक्त छंद में रची गई 'जूही की कली' से लेकर सांध्यकाकली तक निराला का काव्य नवीन शिल्प प्रयोगों का जीता जागता उदाहरण है। शिल्प–साधना के प्रति जितनी जागरूकता निराला में मिलती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। अपनी शिल्प दक्षता से निराला कड़वे से कड़वे यथार्थ को भी सौंदर्यानुभूति में परिवर्तित कर देते हैं। सरोज–स्मृति इसका ज्वलंत प्रमाण है। वे अपने संघर्षों और व्यक्तिगत अनुभवों को सामाजिक बनाकर एक नई जीवन दृष्टि का निर्माण करते हैं जिससे उनका अभिव्यंजना–शिल्प अत्यंत व्यापकता, विविधता एवं नवीनता के साथ प्रस्तुत होता है। निराला की शिल्प–योजना, काव्य वस्तु एवं भावों के अनुसार गतिशील होती है। उनके शब्द, छन्द, बिम्ब एवं प्रतीक भावों के अनुरूप अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं। राजकुमार सैनी ने कहा है – **"निराला की रचनाओं में जैसे वस्तु बदलती है, वैसे ही उसका रूप विन्यास भी तदाकार हो जाता है। वाक्यों, शब्दों, अक्षरों, ध्वनियों, अर्थ संकेतों तथा ध्वनि संकेतों, लय और संगीत आदि सभी रूप स्तरों पर वस्तु के अनुरूप परिवर्तन होता है। जहाँ दो विरोधी भावों का सामंजस्य होता है वहाँ शिल्प के स्तर पर भी वे उसका निर्वाह करते हैं। इसी प्रकार जहाँ विरुद्धों में टकराव होता है, वहाँ वह टकराव शिल्प में भी लक्षित किया जा सकता है।"**[40]

काव्य में बिम्ब का महत्वपूर्ण स्थान होता है। किसी सजीव या जड़ वस्तु की छाया या अनुकृति को बिम्ब कहते हैं। इस प्रकार कविता में शब्द–निर्मित चित्र ही बिम्ब होता है। बिम्ब मानव–मन की कल्पना–शक्ति

द्वारा निर्मित नवीन रूप योजना है जिसमें ऐन्द्रियता, अनुभूति एवं आवेग की प्रधानता होती है। बिम्ब का सृजन एक प्रकार से मानसिक क्रिया है। कवि प्रत्यक्ष जगत से अपने बिम्बों को ग्रहण करता है। कवि जितना अधिक अनुभूतिप्रवण और व्यापक जीवन दृष्टि वाला होगा उसकी बिम्ब निर्माण क्षमता उतनी ही व्यापक होगी।

निराला प्रयोगधर्मी रचनाकार थे। उनके काव्य में शिल्प के नये–नये प्रयोग दिखाई पड़ते है। उन्होंने लोकजीवन के काव्य–रूपों को नया संस्कार दिया। इसलिए निराला ने अद्‌भुत काव्य–बिम्बों का निर्माण किया। निराला की कविताओं में बिम्ब नियोजन एवं प्रतीक विधान अद्वितीय है। निराला के यहॉ दोनों प्रकार के बिम्ब मिलते हैं– एक ऐन्द्रिय और दूसरे मानस। बिम्बों के द्वारा निराला अपनी कविताओं को मूर्त रूप देते हैं। निराला की बिम्ब योजना का सर्वाधिक भावपूर्ण रूप उनकी कविता ''तुलसीदास'' में देखा जा सकता है। निराला द्वारा रचित रत्नावली का विराट् योगिनी रूप चित्रित हैः–

''बिखरी छूटीं शफरी–अलकें
निष्पात नयन–नीरज पलकें,
भावातुर पृथु उरकी छलकें उपशमिता,
निः संबल केवल ध्यान मग्न
जागी योगिनी अरूप लग्न,
वह खड़ी शीर्ण प्रिय–भाव–मग्न निरूपमिता''[41]

पति के आने पर भाव में उद्‌दीप्त रत्नावली के इस तेजोमयी बिम्ब के अतिरिक्त नारी की शान्त स्थिति का बिम्ब भी दर्शनीय है। निराला की कविता में विधवा नारी के मनोभाव का भावपूर्ण चित्रण निम्न पंक्तियों में साकार हुआ हैः–

''वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा–सी
वह दीपशिखा सी शान्त, भाव में लीन''[42]

निराला ने जीवन के विभिन्न रूपों का अपनी कविताओं में बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। ऐसे में निराला की रचनाओं में अर्थ को मूर्त्त

करने की अपार शक्ति है। कवि ने जीवन को ''रेत'' के बिम्ब द्वारा इस प्रकार से चित्रित किया हैः–

''स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।''[43]

इसी प्रकार से अन्य कविताओं में भी अनेक स्थान पर निराला के बिम्बों का प्रभावी रूप देखा जा सकता है। चाहे उनकी कविता बादल राग का ''बादल'' हो अथवा कुकुरमुत्ता कविता के ''कुकुरमुत्ता'' और ''गुलाब''। निराला के काव्य कौशल ने जिस भी दिशा में कदम बढ़ाया है उसी दिशा में नवीन दृष्टि के माध्यम से नये–नये बिम्बों का प्रयोग कर नवीन चित्रों का सृजन किया। जिसकी तसदीक निराला की कविताएं करती हैं। उन्होंने अपनी उदात्त एवं नवीन भावनाओं से अप्रस्तुत विधान द्वारा बिंब के अत्यन्त कुशल चित्र उकेरे हैं। बिम्ब–विधान की दृष्टि से निराला का काव्य अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा अत्यधिक प्रभावसम्पन्न है। वे अपनी प्रतिभा एवं अद्‌भुत कल्पनाशक्ति के बल पर विविधरूपी बिम्बों को अपने काव्य में उतारने में सफल रहे हैं।

प्रतीक से आशय है – प्रतिरूप अथवा चिन्ह। जब कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति सीधे ढंग से नहीं कर पाता है तो वह प्रतीकों का सहारा लेता है। प्रतीक द्वारा अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है। प्रतीक साम्यता के आधार पर भाव को संकेतित करता है। यह कवि की अनुभूति के संप्रेषण में सहायता करता है। निराला की कविताओं में अनुस्यूत सौन्दर्य, उनकी भावानुभूति पर जितना निर्भर करता है उतना ही उनकी प्रतीक योजना पर भी निर्भर है। निराला के प्रतीकों में भावों को चित्रित करने की अद्‌भुत शक्ति है। निराला की काव्य चेतना ने जीवन जगत के विविध पक्षों की मार्मिक अभिव्यंजना की है और उसे अत्यंत प्रभावी बनाया है उनकी कविताओं में प्रयुक्त प्रतीक योजना ने।

निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में जीवन जगत से अधिक प्रकृति और अध्यात्म का मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है। ''जूही की कली'' कविता से ही निराला ने अपनी अनुभूति को प्रतीकात्मक रूप से सजीवता प्रदान

की है। माया पाश में संलग्न व्याकुल आत्मा (कली) परमात्मा (मलय) की परम कृपा सहानुभूति से बन्धन मुक्त होने के उपरान्त आनन्दानुभव करती है, उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दर्शनीय हैः–

''हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुख हँसी खिली,
खेल रंग, प्यारे संग।''[44]

''राम की शक्ति पूजा'' और ''तुलसीदास'' कविताओं में निराला की विराट प्रतीक योजना का गम्भीर स्वरूप देखने को मिलता है। विराट प्रतीकों आकाश, पर्वत, सागर इत्यादि के द्वारा मन की विभिन्न तामसिक शक्तियों की अभिव्यक्ति मिलती है। 'राम की शक्ति–पूजा' का यह विराट प्रतीकात्मक चित्रण देखा जा सकता है–

''देखो, बन्धुवर, सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित शत–हरित–गुल्म–तृण से श्यामल सुन्दर
पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द–बिन्दु
गरजता चरण–प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु''[45]

कहना न होगा ''राम की शक्ति पूजा'' और ''तुलसीदास'' निराला की सर्वश्रेष्ठ प्रतीक योजना की अद्वितीय व अनुपम कविताएं हैं। ''कुकुरमुत्ता'', ''नये पत्ते'' और ''बेला'' इत्यादि में प्रतीक योजना का अत्यन्त सामान्य धरातल पर प्रयोग भी काफी सशक्त एवं व्यंग्यपूर्ण रहा है।

सृष्टि के विराट् साम्राज्य को निराला ने सन्ध्या, प्रभात किरणों एवं बादल के द्वारा प्रस्तुत किया है। उनकी कविता बादल–राग में प्रतीक योजना की उत्कृष्ट छाया का सुन्दर चित्र हैः–

''तैरती है समीर सागर पर,
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया–
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया।–''[46]

निराला ने बंगाल की वर्षा ऋतु का खूब आनन्द उठाया था। बंगाल की रिमझिम एवं घनघोर वृष्टि कवि के स्मृति धरातल– आकाश में बार–बार घनघोर रूप से गर्जन करती है और 'बादल' को प्रतीक रूप में कविताओं में स्थान देने के लिए बाध्य करती है। स्पष्ट है कि निराला ने अपने काव्य में बादल को विभिन्न प्रतीकात्मक अर्थों एवं नवीन संदर्भों में प्रयुक्त कर अपनी मौलिक रचनात्मकता का परिचय दिया है। 'बादल–राग' कविता में जहाँ कवि बादल को गर्जनकारी रूप में चित्रित करता है, वहीं 'गीतगुँज' कविता में बादल के कोमल रूप को भी प्रस्तुत करता है। वे एक स्थान पर 'बादल' को जीवन–शक्ति का स्पष्ट प्रतीक मानते हैं, तो दूसरे स्थान पर अवसरवादी वकीलों के प्रतीक के रूप में चित्रित करते हैं।

''दौड़ते हैं बादल ये काले–काले,
हाईकोर्ट के वकले मतवाले।
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे,
धान सूखे देखकर नहीं तरसे।
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पड़े
कहकहे लगाते हुए टूट पड़े।'' [47]

निराला बादल को अपने सपनों का प्रतीक बताकर बिल्कुल ही नये रूप में प्रस्तुत करते हैं–

''बादल छाये
ये मेरे अपने सपने
आँखों से निकले, मंडलाये।''[48]

निराला ने अपनी कविताओं में भावों के अनुकूल प्रतीक प्रयुक्त किये हैं, क्योंकि वे अपनी भावनाओं को अत्यन्त महत्व देते हैं। जहाँ वे एक ओर प्रकृति के प्रतीक जैसे फूल, नदी, गंगा, निर्झर बादल आदि का रूढ़ अर्थ में प्रयोग करते हैं, वहीं दूसरी ओर उन प्रतीकों को स्वच्छन्द रूप से नवीन संदर्भों में भी प्रयुक्त करते हैं। जैसे फूल को सभी देशों एवं सभी युगों में उत्साह का प्रतीक माना गया है। गुलाब सौंदर्य के प्रतीक के रूप में जाना जाता है, किन्तु निराला इसे भी एकदम नवीन रूप में चित्रित करते हैं, जो

कि उनके मौलिक प्रतीक–विधान का सबसे सुन्दर प्रमाण है। निराला ने परम्परागत प्रतीकों की अपेक्षा स्वच्छन्द प्रतीकों को ही महत्व दिया है। 'कुकुरमुत्ता शोषित वर्ग का प्रतीक बनकर शोषक–वर्ग के ऐशो–आराम एवं नाजों से पले गुलाब को ललकारता हैः–

''अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रँगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट,
बहुतों को तूने बनाया है गुलाम।''[49]

एक अन्य कविता में उनके स्वच्छन्द प्रतीक प्रयोग का सशक्त उदाहरण हैः–

''तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान।
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप
मैं शुचिता सरल समृद्धि।''[50]

अतः निराला ने जहाँ प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक चेतना का स्वर मुखरित किया है, वहीं उन्होंने असीम जगत से अनेक प्रतीक ग्रहण कर आध्यात्मिक अनुभूतियों को भी रचा है। रचना के सभी स्तरों पर वे यथार्थ से जुड़े दिखाई देते हैं। उक्त संदर्भ में आलोचक रामविलास शर्मा लिखते हैंः–*''निराला की प्रतीक– योजना चाहे सचेत रूप से संयोजित की गई हो चाहे अचेत रूप से, वह यथार्थ के विरोधी नहीं है। एक यथार्थ मन के बाहर दूसरा मन के भीतर। जब वे बादल को क्रान्तिकारी रूप में चित्रित करते हैं, तब सारी यथार्थ क्रिया गरजने से बरसने तक उनकी आँखों के सामने होती है। ..... जब निविड़ विपिन की यात्रा करते हैं, तब उस विपिन का अपना अस्तित्त्व समाप्त नहीं होता, उसमें फैले हुए भ्रम वितान और जटिल जाल को वे सावधानी से देखते हैं।''*[51]

प्रतीकों के साथ–साथ निराला ने मिथक प्रयोग में भी कुशलता प्राप्त की है। उन्होंने पौराणिक आख्यानों को अपने युगानुकूल साँचे में ढालकर विविध सन्दर्भों में अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रयुक्त किया है। मिथक प्रयोग की दृष्टि से निराला की 'सहस्राब्दि' कविता दर्शनीय है। उन्होंने इस पूरी ही कविता को पुरानी संस्कृति एवं देवनागरी से सम्बन्धित 'मिथ' की पृष्ठभूमि में लिखा है। इन पौराणिक कथाओं की विश्वसनीयता को सृजनकार ने काव्यात्मकता के रंग में रंगकर प्रस्तुत किया है। जिसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है:–

''बौद्धों के ही प्रचार का फल मिस्र में फलित
मूसा की प्रतिभा में बदला वह धर्म कलित,
फिर ईसा में आया कुछ परिवर्तन लेकर,
फिर हुआ मुहम्मद में अवतरित ताल देकर
एक ही भिन्न राज का प्रबल फैला कलकल
ज्यों जलोच्छ्वास प्लावन का दसों दिशाएँ भर
भ्रातृभाव का उल्लास प्रखर।''[52]

उक्त कविता में 'मिथ' निराला के भावों के अनुसार प्रयुक्त किये गये हैं। निराला ने उनका उपयोग अपनी कलात्मक कल्पना एवं तीव्र अनुभूति के आधार पर किया है। चूँकि 'मिथक' वह पौराणिक एवं काल्पनिक कथा – प्रस्तुतिकरण है, जिनका उपयोग भावों को तीक्ष्णता प्रदान करने के लिए किया जाता है। निराला 'राम' और 'तुलसीदास' जैसे मिथकों से तत्कालीन भारत की दशा का चित्रण करते हैं और 'दृढ़ आराधन' का आह्वान करते हैं।

बिम्ब एवं प्रतीक की अपेक्षा 'मिथक' निराला को बहुत आकर्षित नहीं कर सके हैं। साथ ही बिम्ब एवं प्रतीक आपस में घुले–मिले होने के कारण बिम्ब ही निराला के सम्पूर्ण काव्य पर अधिक छाये रहे हैं। फिर भी, उन्होंने अपनी कविताओं में मिथक के अनेक सफल प्रयोग किये हैं।

कोई भी कवि अपने काव्य कर्म को भाव और सौन्दर्य से सुसज्जित करता है। कवि अपनी भाव चेतना को शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति के रूप में

ढालता है। उसके लिए वह अपने शिल्प विधान का सृजन करता है। शिल्प विधान अथवा स्थापत्य में जो स्थान भाषा, प्रतीक, रूपक एवं बिम्ब योजना का है, वही स्थान अप्रस्तुत योजना अथवा अलंकार विधान का है। किसी भी कविता में अप्रस्तुत योजना का विधान कवि की कुशल कल्पना एवं उसकी प्रतिभा पर निर्भर करता है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला अपनी कविताओं में विभिन्न अलंकारों यथाः–अनुप्रास, रूपक, पुनरुक्ति, उपमा, यमक इत्यादि के अलावा संगीतात्मकता का सामंजस्य करते हैं। छायावादी कविताओं में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाला मानवीकरण अलंकार भी निराला की कविताओं में अपनी छठा बिखेरता है। निराला की कविताओं में अलंकार योजना के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैंः

एक वर्ण की आवृत्ति के रूप में अनुप्रास का प्रयोग ''नील नयन'', ''सरस साधना'',''सुख–स्मृति' ''कमल–कामिनी'' ''सौन्दर्य सरोवर'',, इत्यादि में तथा, "पग पग'', ''नव–नव" ''जन–जन'', ''झर–झर'', ''सुमन–सुमन'', ''पवन–पवन'' आदि में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार की अभिव्यक्ति होती है।

उपमा अलंकार के उदाहरणः–

''वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा–सी''

इसी मानवीकरण अलंकार के उदाहरणः–

''सन्ध्या सुन्दरी परी सी''

उपरोक्त अलंकारों के अतिरिक्त अन्य प्रमुख अलंकार भी निराला की कविताओं में अप्रस्तुत विधान को समृद्ध करते हैं।

निराला के शिल्पगत प्रयोगों का विश्लेषण करने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि निराला अंतःप्रेरित रचनाकार हैं, जो अपने भावों के अनुकूल शब्दों का चयन कर मिथकीय चरित्रों, कालखण्ड को अपनी रचना में स्थान प्रदान करते हुए उसे समकालीन परिदृश्य के अनुरूप प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा, जैसी कालजयी कृतियों में निराला मिथकों का युगानुरूप समसामयिक एवं नवीनता के अनुसार रूपान्तरण करते हैं। निराला ने भावानुकूल छन्द, शब्द एवं लय को अपनी

रचना प्रक्रिया का भाग बनाकर कल्पनानुमोदित सृजन कर एवं भावानुगामिनी भाषा तथा प्रभावकारिणी शैलियों को रच कर अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा से परिचित कराया है।

संदर्भः

1. मुक्तिबोध : 'चांद का मुँह टेढ़ा है'; ('मुझे कदम–कदम पर' कविता); पृ.सं. 92
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'चिंतामणि' (भाग–2); ('काव्य में रहस्यवाद' निबंध) पृ.सं. 77
3. भामठः 'काण्यालंकार'; पृ.सं. 4–4
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'साहित्य–सहचर'; पृ.सं. 52
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशो. 12); पृ.सं. 136
6. महादेवी वर्मा : 'महादेवी साहित्य–3'; (संपादक – निर्मला जैन); ('गीतिकाव्य आलेख), पृ.सं. 514
7. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : 'कवि निराला'; पृ.सं. 72–73
8. सुमित्रानंदन पंत : 'पंत ग्रंथावली'; ('छायावाद' : पुनर्मूल्यांकन आलोक); पृ.सं. 85
9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'; (संशो. संग);, पृ.सं. 387
10. रामविलास शर्मा : 'निराला' : पृ.सं. 47
11. नंदकिशोर नवल : 'निराला'; कृति से साक्षात्कार;पृ.सं. 14
12. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'हिंदी साहित्य का इतिहास'; (संशो. सं.3); पृ.सं. 388
13. नंददुलारे वाजपेयी : उद्धृतः 'निराला कवि–छति'; पृ.सं. 35
14. दूधनाथ सिंह : 'निराला : आत्महत्ता आस्था'; पृ.सं. 16
15. निराला : 'परिमल'; 24
16. वही, 'भूमिका', पृ.सं. 9
17. वही, 'भूमिका', पृ.सं. 14
18. नामवर सिंह : 'छायावाद'; पृ.सं. 130–131
19. सुमित्रानंदन पंत : 'पल्लव'; (भूमिका), पृ.सं. 13
20. रामविलास शर्मा : 'निराला की साहित्य साधना', (भाग–2); पृ.सं. 426
21. निराला : 'परिमल', ('जूही की कली' कविता); पृ.सं. 71
22. दूधनाथ सिंह : 'निराला : आत्महंता आस्था'; पृ.सं. 71
23. डॉ. नंदकिशोर नवल : 'निराला कृति से साक्षात्कार'; पृ.सं. 166
24. निराला : 'परिमल'; पृ.सं. 137
25. आचार्य नंददुलारे वाजपेयीः 'आधुनिक साहित्य की भूमिका;पृ.सं. 39
26. 'निराला' : 'परिमल'; (उपहार' कविता); पृ.सं. 32
27. वही; ('भिक्षुक' कविता); पृ.सं. 125
28. वही; (भूमिका), पृ.सं. 21
29. निराला : 'पंचवटी प्रसंग'; पृ.सं. 14
30. 'परिमल' की भूमिका; निराला रचनावली–1; पृ.सं. 405
31. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास; सं. संस्करण;पृ.सं. 389
32. 'मेरे गीत और कला निबंध'; निराला रचनावली–5;पृ.सं. 401

33. डॉ. रामविलास शर्मा; निराला;पृ.सं. 67
34. दूधनाथ सिंहः निराला आत्महंता आस्था;पृ.सं. 168
35. निराला; सांध्य काकली, पृ.सं. 49
36. निराला; अनामिका, पृ.सं. 155
37. निराला; अनामिका, पृ.सं. 152
38. निराला; अनामिका, पृ.सं. 81
39. निराला रचनावली भाग–1 (नयनों के डोरे लाल गुलाल और), कविता, पृ.सं. 212
40. राजकुमार सैनी, साहित्य सृष्टा निराला, पृ.सं. 126
41. निराला, रचनावली, भाग–1, पृ.सं. 285
42. निराला, रचनावली, भाग–1 (विधवा); पृ.सं. 60
43. निराला, रचनावली, भाग–1 (स्नेह–निर्झर बह गया है), पृ.सं. 84
44. निराला, रचनावली, भाग–1 (जूही की कली), पृ.सं. 31–32
45. निराला, रचनावली, भाग–1 (राम की शक्ति पूजा), पृ.सं. 317
46. निराला, रचनावली, भाग–1 (बादल राग), पृ.सं. 123
47. निराला, नये पत्ते (खजोहरा), पृ.सं. 11
48. निराला, अणिमा, पृ.सं. 2
49. निराला, रचनावली, भाग–2 (कुकुरमुत्ता), पृ.सं. 45
50. निराला, परिमल, पृ.सं. 84
51. रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना (द्वितीय खण्ड), पृ.सं. 329
52. निराला, अपरा, पृ.सं. 182–183

अध्याय–6

निराला की काव्यकला : प्रभाव और मौलिकता

(1) 'रुचि की रचनाओं में हुए समाहित'; निराला पर बंगला का प्रभाव
(2) 'छंदों को विनिस्तार दिए जा रहा है'; उर्दू गजलों से दो–दो हाथ
(3) 'कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर'; पाश्चात्य काव्यधारा का अवलोकन एवं प्रभाव
(4) 'हिन्दी के हित का अभिमान वह'; हिन्दी कवियों का प्रभाव एवं प्रेरणा

अध्याय–6

निराला की काव्यकलाः प्रभाव और मौलिकता

"अच्छी कविता शब्दों में नहीं
अनुभव में भी होती है
शब्द परिंदों की तरह उस
शीशे पर फड़फड़ाते हैं।"[1]

काव्य–वस्तु का संबंध काव्यानुभूति से होता है। कवि का अनुभूत विषय एवं काव्यभाषा ही काव्यानुभूति को आकार देती है। यह और बात है कि कुछ अनुभवों का पूर्णतः संप्रेषण या भाषायी अभिव्यक्ति संभव नहीं हो पाती। 'गूंगे केरी सरकरा' वाली स्थिति अनेक अनुभवों पर लागू होती है। फिर भी, कविता को तो भाषा में व्यक्त होना ही पड़ता है। नरेश मेहता का मानना थाः– ***"कविता में शब्द होता है और उस शब्द का अर्थ भी होता है, लेकिन कविता यह शब्द या अर्थ नहीं होती बल्कि वह अनुभव होती है जिसे शब्द का उल्लंघन करके प्राप्त किया जाता है।"[2]*** इसलिए कविता को मात्र शब्द और अर्थ तक सीमित करना एक अतिवादी दृष्टिकोण है। कविता पर विचार करते समय कवि का अनुभव–जगत, उसके भोगे हुए सत्य की पड़ताल भी जरूरी होती है। इस आवश्यकता पर ध्यान दिलाते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा हैः– ***"बात यह है कि पाठक या श्रोता के पास कवि की अंतवृत्ति तक पहुँचने का कोई अचूक साधन नहीं होता जिससे वह यह देख सके कि अनुभूति के अनुसार व्यंजना हुई है या नहीं। इससे वह व्यंजना या उक्ति से ही प्रयोजन रखता है। पर जब हम पूरे कवि–कर्म पर विचार करते हैं केवल उसके फल पर नहीं–तब उसके मूल में काव्यानुभूति की सत्ता माननी पड़ती है।"[3]*** कहने का मतलब, काव्यभाषा की सार्थकता की पहचान के लिए काव्यानुभूति की सत्यता की पड़ताल भी जरूरी है।

काव्यानुभूति का संबंध काव्य–लेखन की तात्कालिक प्रक्रिया, विचारों व अनुभवों से नहीं, उसका संबंध कवि के समस्त जागतिक और

साहित्यिक ज्ञान से होता है। इसे आप काव्यशास्त्रीय भाषा में 'व्युत्पत्ति' कह सकते हैं, जिसमें 'काव्य–समय' का ज्ञान भी शामिल है। दूसरे शब्दों में कहें तो जिस रचनाकार का सौंदर्य–बोध, संस्कार, शिक्षण, अभ्यास, जीवन–जगत व 'काव्य–समय' का बोध जितना अधिक उदात्त, संस्कृत और परिष्कृत होगा, उसकी काव्यनुभूति उतनी व्यापक होगी। कवि जो शब्दों की कारीगरी करता है, उसके पीछे उसका जीवनानुभव, संस्कार, परिवेश और पूरी वैचारिक–यात्रा होती है। कवि सुमित्रानंदन पंत कृत 'पल्लव' की आलोचना करते हुए निराला जी ने 'पंत और पल्लव' निबंध में यह प्रश्न उठाया हैः– ***"अपनी कविता की कारीगरी की व्याख्या तो उन्होंने येन–केन प्रकारेण अच्छी ही की है, परंतु इस कारीगरी का साँचा उन्हें कहाँ मिला, किसी तरह वह अपने लिए इतने अच्छे कवि हो गए, कविता पर वह राजनीति–क्षेत्र के वर्तमान नेताओं की तरह कोई जन्मसिद्ध अधिकार रखते हैं या नहीं। इस तरह के आवश्यक विषयों को उन्होंने प्रच्छन्न ही छोड़ रखा है।"*** जाहिर है कि निराला जी कवि पंत की काव्यभाषा की तह में छिपी उस काव्यानुभूति तक पहुँचना चाहते थे, जिससे वो शब्दों की कारीगरी करते थे। काव्यानुभूति का संबंध कवि की समस्त वैचारिक यात्रा और प्रभावों से भी है। निराला जी पर जब रवीन्द्रनाथ के भाव चुराने का आरोप लगा तो उन्होंने भी पंत जी की 'पल्लव' की समीक्षा करते हुए उन्हें भी रवीन्द्रनाथ के भावों को चुराने वाला बतलाया। छायावाद पर ऐसे भी बंगला के प्रभाव के आरोप लगते रहे थे। इसलिए निराला की भी काव्यभाषा व शिल्प की चर्चा करते हुए उनकी काव्यानुभूति, वैचारिक यात्रा और प्रभावों की चर्चा कर लेना उचित होगा। तभी उनके काव्य–शिल्प की बनावट को अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

(1) 'रुचि की रचनाओं में हुए समाहित': निराला पर बंगला का प्रभाव

"अनायास है, स्नेह–पाश से
विद्ध हुए तुम,
अरचित, रुचि की रचनाओं में
हुए समाहित।
अभिनंदन के नूतन
बंदनवार बने तुम,
तरुणों के उच्छवास करों से
उत्थित होकर
जैसे बादलों में विद्युत
व्यंजना बने तुम।"[5]

निराला ने उपर्युक्त कविता श्री रामकृष्ण परमहंस जी के प्रति लिखी थी। यहाँ निराला जिसे 'रुचि की रचनाओं में समाहित' कर रहे हैं यह खुद उनका भी सत्य था। निराला की रचनाओं पर न केवल रामकृष्ण परमहंस वरन् विवेकानंद, चंडीदास, रवीन्द्रनाथ टैगोर या यूँ कहें कि बंगाल के अध्यात्म व साहित्य का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है तो यह गलत न होगा।

निराला की काव्य–साधना का आरंभ सन् 1919 ई0 के आस–पास होता है और उनकी पहली रचना 'जन्मभूमि' सन् 1920 ई0 में प्रकाशित होती है। हालांकि 'निराला' अपनी पहली मुक्त छंद की रचना 'जूही की कली' को सन् 1916 ई0 में लिखित बतलाते हैं। उनके काव्य का आरंभिक विकास ही बंगाल की भूमि पर होता है। बंगाल में ही उनका जन्म हुआ और बंगाल के रचनाकारों, विचारों व जनजातीय चेतना से वे बहुत प्रभावित हुए। इसमें कोई शक नहीं कि बंगाल नवजागरण का प्रमुख क्षेत्र रहा है। इस नवजागरण के केन्द्र में तीन बातें महत्वपूर्ण थीं:–स्वदेशी आंदोलन, रामकृष्ण मिशन की धार्मिक चेतना और रवीन्द्रनाथ की साहित्यिक क्रांति। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है:– ***"बैसवाड़े की आल्हा–नौटंकी संस्कृति के अलावा युवावस्था में उनका संपर्क बंगाल की***

दो महान् सांस्कृतिक धाराओं में हुआ। एक ओर तो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने नेतृत्व में बंगाल का नवीन सांस्कृतिक जागरण और दूसरा स्वामी विवेकानंद द्वारा स्थापित श्री रामकृष्ण मिशन। इन दोनों का उन पर स्थायी प्रभाव पड़ा है। और इसमें सन्देह नहीं कि अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ–काल में उन्हें पहले इन्हीं से प्रेरणा मिली।[6] इस प्रेरणा के पीछे जो एक बड़ी शक्ति उद्दीपन का कार्य कर रही थी, वह थे, स्वामी माधवानंद और उनके द्वारा संकलित पत्रिका 'समन्वय' जिससे निराला सन् 1921–22 के जाड़े से जुड़े।

स्वामी माधवानंद के आग्रह पर निराला ने एक लेख लिखाः–'भारत में श्रीरामकृष्णावतार' जो 'समन्वय' के मई–जून, 1922 ई0 के अंक में प्रकाशित हुआ। यहाँ यह बतलाना आवश्यक होगा कि यह निराला के दार्शनिक विषय का पहला लेख था जिसमें उन्होंने अपनी पूरी मौलिक प्रतिभा और दार्शनिक चिंतन का सार उड़ेल कर रख दिया। इसके पहले सन् 1920 ई0 में अक्टूबर के 'चयन' पत्रिका के अंक में निराला ने एक भाषा, शास्त्र को केन्द्र में रखकर अपना पहला निबंध लिखा था, उसके केन्द्र में भी बंगाल था। शीर्षक थाः–"बंगभाषा का उच्चारण"। 'उक्त निबंध में उन्होंने बंगभाषा को 'जगत की उन्नतिशील भाषाओं' में माना है और इसका श्रेय बंकिम–रवीन्द्र–गिरीश–द्विजेन्द्र जैसे नर–रत्नों को माना है। किन्तु, इस निबंध में बंगभाषा के उच्चारण दोषों पर उन्होंने प्रकाश डाला है। भारत में 'श्री रामकृष्णावतार' निबंध में निराला रामकृष्ण परमहंस और बंगाल के प्रति अत्यंत कृतज्ञता भाव रखते हैं। उक्त निबंध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि निराला ने इसमें व्याकरण के सूत्रों से दर्शन को सिद्ध किया है, जैसे 'भारत' शब्द की व्याख्या बतलाई है–'प्रकाश में रत।' निराला की मुख्य स्थापना उक्त निबंध में हैंः–*"धर्म को मानते हुए हमें अधर्म को भी मान लेना चाहिए, क्योंकि सृष्टि में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसका विरोधी गुण न हो। पुण्य का ग्रहण करते ही पाप भी अपने अस्तित्व की गवाही देने के लिए तैयार दिखायी देता है।"*[7] जाहिर है कि निराला ने स्थापना हेतु तुलसीदास की पंक्ति–"जड़ चेतना गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार' को आधार बनाया था। इस आधार पर निराला ने यह साबित किया कि प्रगति अच्छे और बुरे के संघर्ष से ही होती है।

धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य, भला–बुरा, सत्य–असत्य, प्रेम–घृणा–ऐसे कई विरोधी तत्वों से निराला ने दर्शन के क्षेत्र में द्वंद्व सिद्धांत को स्थापित किया।

डॉ. रामविलास शर्मा उनके इस द्वंद्ववाद के तर्क के संदर्भ में लिखते हैं:– *"सूर्यकांत ने यह तर्क स्वयं अपने अंतःकरण के सामने अपनी जीवन–चर्या को उचित ठहराने के लिए दिया था। महिषादल में रामकृष्ण परमहंस के उपासक थे तो चीफ मैनेजर की तरह अनेक जन ऐसे थे जो संसार में आकर सब सुख भोगने में विश्वास रखते थे।"*[8] दरअसल यहाँ निराला सुखयोग में संलग्न होने वाले सुरापान को सही साबित कर रहे थे। भोग और भोग से विरक्ति दोनों का द्वंद्व निराला में अंत तक जमा रहा। यह द्वंद आगे चलकर 'तुलसीदास' में भी दिखता है। तुलसीदास से उन्होंने कहलवाया है:–

"बंध के बिना कहाँ प्रगति?
गति–हीन जीव को कहाँ सुरति?
गति रहित कहाँ सुख?
केवल क्षति–केवल क्षति।"[9]

निजी जीवन में निराला भोग चाहते थे, पर भोग की असारता भी महसूस करते थे क्योंकि वे जानते थे कि एक व्यक्ति के भोग से कई आदमी भूखे मर सकते हैं। उक्त निबंध में भी निराला इन बातों को रखते हैं और अंत में यह स्पष्ट करते हैं कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस का अवतार लोगों को इसी व्यामोह से मुक्ति दिलाने के लिए हुआ है। अंत में वह लिखते हैं:– *"इस बार अत्याचार पीड़ित और भोगान्ध मनुष्यों को शांति का पता बताने के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण देव अवतीर्ण हुए हैं। .... आज विश्व समाज में भ्रातृत्व बंधन की जो ध्वनि गूँज रही है, वह सबसे पहले भगवान श्रीरामकृष्ण जी के मुख से निकली थी। विश्वविजयी वेदांत केशरी स्वामी विवेकानंद की वीर वाणी को मंत्रमुग्ध संसार सुन रहा है पर उनकी दिव्य शिक्षा भगवान श्रीरामकृष्ण देव के पादप्रांत पर समाप्त हुई थी।"*[10]

निराला मानते थे कि 'श्रीरामकृष्ण की साधना केवल लोक शिक्षण के लिए हुई थी।' निराला उन्हें जाति–धर्म के भेदक के रूप में देखते हैं। स्वामी जी ने हरेक मार्ग का अंतिम सूत्र ढूँढा और जाति के विशिष्ट समूह–शक्ति को अपने आदर्श के तांगे में बाँधा। एक अन्य निबंध 'परमहंस श्रीरामकृष्ण देव' में निराला लिखते हैं– *"श्रीरामकृष्ण ने बतलाया धर्म के पथ अनेक हैं, किन्तु लक्ष्य एक हैं। अतएव किसी को वह अधिकार नहीं कि वह अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे धर्म को निकृष्ट कहे।"*[11] इस प्रकार निराला स्वामी को धार्मिक सद्भाव व राष्ट्रीय एकता के उन्नायक के रूप में देखते हैं। स्वामी जी को निराला एक और बात के लिए याद करते हैं। वह हैः– *"स्त्री–शक्ति का जागरण।"*[12] निराला मानते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने बाह्य प्रकृति के संयोग की सार्थकता के लिए सिद्ध होने के पश्चात् विवाह किया था। उनका विवाह सांसारिक काम–सार्थक विवाह नहीं था। तीसरी बात जो निराला ने श्री रामकृष्ण परमहंस जी के लिए कही है, वह है कि उनकी अध्यात्मशक्ति ने भारत को प्रबुद्ध करने के लिए दूसरी स्वाधीन जाति से भी उनका संबंध जोड़ा और संसार भर के ज्ञान–पिपासुओं को शांति दी। कारण था–सर्व धर्म समन्वय का प्रयास। निराला ने 'जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण' निबंध में लिखा हैः– *"श्री शंकराचार्य का महान मस्तिष्क और भगवान बुद्ध का विशाल हृदय–दोनों श्रीरामकृष्ण रूपी भूमाभाव में विद्यमान दिखते हैं। पूर्वकालिक आचार्यों ने पाण्डित्य की प्रखर ज्योति से एक धर्म का नाश और दूसरे का अभ्युदय–साधन किया था, परंतु आधुनिक आचार्य श्रीरामकृष्ण ने श्रद्धामय सरल मुख की बालक–सुलभ वचनावली द्वारा उच्च तत्वों का विकास और सर्व धर्मों का समन्वय किया है।"*[13] निराला ने हमेशा इस धार्मिक उदारता को अपने साहित्य में महत्व दिया 'स्वामी प्रेमानंदजी महाराज' कविता में प्रेमानंद जी कहते हैंः–

"संन्यासी होने पर/देश–काल पात्रता से
दूर हम हुए हैं/ रामकृष्णमय जीवन
सर्व जनों के लिए।"[14]

निराला ने आरंभ में जिस भली और बुरी शक्तियों के साथ होने की बात की थी, वह 'विरूद्धों का सामंजस्य' निराला रामकृष्ण परमहंस के प्रसंग में भी देखते हैं, अपने एक निबंध 'शक्ति–परिचय' में उन्होंने लिखा है:– *"जगद्धात्री महामाया के स्वरूप तत्व के दर्शनाभिलाषी भगवान श्रीरामकृष्ण को महामाया ने दिखलाया–एक परम रूपवती स्त्री को सर्वांग सुंदर पुत्र का प्रसव और उसका पालन–पोषण करते हुए बड़ा ही आनंद मिल रहा है, फिर कुछ समय में हँसते हुए उसने पुत्र का संहार कर डाला। शक्ति–तत्व की समालोचना करने पर, उसके लिए एक ही आधार में प्रसव और प्रलयकारी विरोधी गुणों का समावेश हो जाता है।"*[15] 'तुम्ही हो शक्ति समुदय' कविता में निराला 'शक्ति' तत्व के इन्हीं विरोधी गुणों को दिखाते हैं:–

"कथा के स्रोत का उत्थान
तुमसे है पतन तुमसे
विषय स्पष्टीकरण तुमसे
प्रलम्बित आहरण तुमसे
तंरगों का विताड़ित भाव
अर्थ–न्यास–धन तुमसे
मिलन तुमसे विरह तुमसे
व्यथा उत्थान की लय की।"[16]

निराला स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद के अभ्युदय को बंग–साहित्य में एक बड़े परिवर्तन के रूप में देखते हैं। 'जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण' निबंध में उन्होंने लिखा है:– *"श्रीरामकृष्ण के भावों का संसार के साहित्य–क्षेत्र में भी एक विशेष स्थान मिल गया है। स्वामी विवेकानंद और उसके गुरू भाइयों तथा अनेक पश्चिमी भक्तों के अंग्रेजी ग्रंथों और लेखों का प्रभाव, अंग्रेजी भाषा के प्रसार के कारण संसार के कोने–कोने में फैल गया। बंगाल में तो हम विचारों का युगांतर कह सकते हैं। .... बंगीय साहित्य में श्रीरामकृष्ण को निर्विरोध भाव भरने का अधिकांश श्रेय दिया जा सकता है–बंगाल के शेक्सपीयर नाट्यसम्राट स्वर्गीय बाबू गिरीश चंद्र घोष को जिनकी लेखनी प्रस्तुत काव्यमय नाटक रंगमंच पर*

अपूर्व चमत्कार की सृष्टि करते हैं:– जिनका 'चैतन्य लीला' नाटक सुनकर श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए थे और पूछने पर कहा था, 'नकल को असल देखा'–जिनका स्थान बंग नाट्य–साहित्य में सर्वोच्च गिना जाता है।[17] परंतु, निराला स्वामी रामकृष्ण परमंहस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद में विषय–वस्तु की प्रस्तुति के आधार पर कुछ विभेद देखते हैं। 'श्रीदेव रामकृष्ण परमहंस' निबंध में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है:– *"श्री रामकृष्ण से स्वामी विवेकानंद के दर्शन में बड़ी कविता है।*[18] शायद, निराला बतलाना चाहते हों कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस के गूढ़–दर्शन की सरल और भावात्मक व्याख्या स्वामी विवेकानंद ने की है।

निराला शिकागो की धर्मसभा में स्वामी विवेकानंद के भाषण देना 'हिन्दू संन्यासी की प्रतिष्ठा' तो मानते ही हैं, साथ ही इसे श्रीरामकृष्ण की अध्यात्म शक्ति से दूसरी स्वाधीन जाति से संबंध जोड़ने के रूप में देखते हैं। विवेकानंद से प्रभावित होकर ही निराला व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात हमेशा करते हैं। शक्ति–परिचय' निबंध में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है:– *"व्यक्तिगत स्वाधीनता ही समष्टिगत स्वाधीनता की जननी है और इस दृष्टि से आज भी भारत के अन्य देशों की अपेक्षा स्वाधीन मनुष्यों की संख्या अधिक होगी। स्वामी विवेकानंद ने भारत की इस समष्टिगत स्वाधीनता के लिए कितने स्थानों पर भाषण देते हुए कहा है: 'हमें अग्निमंत्र से दीक्षित केवल आठ युवकों की आवश्यकता है।'*[19] निराला ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बीज–मंत्र यहीं से लिया। पर, यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता कैसे मिलेगी? निराला इसका उत्तर आत्म–ज्ञान और मुक्त स्वरूप में देखते हैं। 'शक्ति–परिचय' निबंध में निराला ने अंत में लिखा है– *"दूसरों के उद्धार के विषय में स्वामी विवेकानंद जी ने कहा है कि सभी शुद्ध–बुद्ध मुक्त स्वभाव है। अपनी ही इच्छा से वे बँधे हुए हैं। अन्यथा वे ब्रहम हैं। साधु महात्मा उन्हें ब्रहम ही देखते हैं। दूसरों को उनके भूले स्वरूप का पता बताना ही मुक्त महात्माओं का काम है।*[20] जाहिर है कि 'भूले स्वरूप का पता' आत्मज्ञान के जागरण से होगा और यह वही जगा सकता है, जो स्वयं आत्मज्ञानी हो। निराला ने इसे और स्पष्ट किया है, एक और निबंध 'वेदांत–केसरी स्वामी विवेकानंद और भारत' में। निराला जी ने लिखा है:– *"भारत के उत्थान में जितना हाथ स्वामी विवेकानंद का*

है, उतना और किसी भी दूसरे का नहीं। जब तक ज्ञान के भीतर मनुष्य का सीमा–रूप खो नहीं जाता, तब तक वह मुक्ति का यथार्थ मतलब नहीं समझ सकता। स्वामी जी केवल शुद्ध ज्ञान थे। उन्होंने सूक्ष्म–रूप से देश की मुक्ति के लिए सबकुछ कहा और सबसे अच्छी तरह कहा है। जातीय भेद, धर्म, मनुष्यता आदि साधारण विषयों तक उनकी गहन दृष्टि पहुँची थी। सेवाधर्म सबसे पहले उन्हीं ने देश के सामने रखा।[21] 'सेवाधर्म' ही मानवतावाद है और 'सीमा–रूप का हटना' 'भ्रातृत्व–बंधन' या यूँ कहें कि 'विश्व–बंधुत्व' है। स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहंस हो या स्वामी विवेकानंद दोनों ने धार्मिक संकीर्णता का विरोध किया तथा सभी धर्मों की एकता तथा वेदांत की सार्वभौमिकता का प्रचार किया। इस भूमि पर आकर सभी एक सूत्र में बंध जाते हैं। निराला की कविता 'जग का एक देखा तार' में इसी भावना को बल मिला हैः–

"जग का एक देखा तार
कण्ठ अगणित, देह सप्रक
मधुर स्वर–झंकार
बहु सुमन, बहुरंग, निर्मित एक सुंदर हार
एक ही कर से गूँथा, उस एक शोभा भार।"[22]

'जग का एक देख तार' का विस्तार है– 'एक ही आशा में' कविता जहाँ सभी प्रकार के समन्वय और बंधुत्व का रास्ता बतलाया गया हैः–

"सकल मार्गों से चलकर एक
लक्ष्य पर पहुंचे लोग अनेक
सकल शुभ–फलप्रद एक विधान
बाँध माँ, तंत्री के –से गान।"[23]

व्यक्तिगत और समष्टिगत स्वतंत्रता को निराला बाहर और भीतर के समीकरणों में व्यक्त करते हैं। डॉ0 नंदकिशोर नवल ने इस ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा हैः–*"आरंभ में निराला पर विवेकानंद के भाववाद का गहरा असर था। इसी कारण 'बाहर और भीतर' शीर्षक अपने निबंध में वे सामाजिक स्वतंत्रता को बाहरी स्वतंत्रता और भौतिक उन्नति का लक्ष्य*

ध्वंस बतलाते हैं। स्पष्टतः यहाँ वे बाहर और भीतर के द्वंद्वात्मक संबंध को देख नहीं पाते हैं और एक दार्शनिक सरलीकरण के शिकार हो जाते हैं।[24] निराला के अनुसार बार्हिजगत की उन्नति का अंत ध्वंस में होता है। वे इसे 'जड़वाद' कहते हैं। उनका मानना हैः– *"जड़–विज्ञान की शक्ति उसके उपयोग से ही नष्ट होती है। गोला–बारूद की शक्ति उसके उपयोग से ही नष्ट होती है। गोला–बारूद के पक्षपाती समर–शूर ही गोलों का निशान बनाते हैं–गोला–बारूद के नष्ट होने के साथ उसके शक्तिघर भी नष्ट हो जाते हैं। प्रकृति का यही नियम है।*[25] यह सत्य है कि वैज्ञानिक प्रगति ने सुख–सुविधा के साथ विध्वंस भी पैदा किया है, पर यह दोष वैज्ञानिक प्रगति का नहीं, उनके उपयोगकर्त्ता पर निर्भर करता है। गोला–बारूद से शक्तिघर ही नष्ट नहीं होता उसके गलत उपयोग से जनता का एक बहुत बड़ा भाग नष्ट हो सकता है। हाँ, निराला ने 'भाववाद' हो आधार बनाकर जिस भीतरी स्वतंत्रता की बात की है, वह निश्चित रूप से सत्य है। निराला लिखते हैं– *"भीतर मुड़नेवाले कहते हैं कि तुम अपने मन को अंतर्मुख करो। जहाँ से अभिव्यक्तियाँ उठती हैं, उसी को अपना लक्ष्य समझो, तो तुम्हें ब्रह्म और सृष्टि का कुल रहस्य मालूम हो जाएगा। बाहर किताब पढ़कर ज्ञान–संचय करने की आवश्यकता न रहेगी, तुम्हारा मन अनंत ज्ञानयुक्त है।*[26] इसमें दो बातें हैं– बाहर से भीतर मुड़ने का संकल्प और ज्ञान–साधना।

'बाहर और भीतर' का द्वंद्व उनकी कविताओं में भी देखने को मिलेगा। निराला की कविता 'बाहर मैं कर दिया गया हूँ' में भी अंत में यह द्वंद्व मिलता हैः–

"भीतर, बाहर, बाहर भीतर, देखा जब से,
हुए अनश्वर,
माया का साधना यह सस्वर;
ऐसे ही धर दिया गया हूँ।
बाहर मैं कर दिया गया हूँ।"[27]

रही बात, आत्मज्ञान की, निराला की काव्य–संवेदना स्वयं में 'कविता के ज्ञानकांड' को परिश्रय देनेवाली रही है, जैसा पहले बतलाया जा चुका

है। निराला की चाहे 'जागा दिशा ज्ञान' कविता हो या 'ज्ञान की तेरी तुरी है' कविता; अधिकांश कविताओं में निराला ने उषा को ज्ञान के प्रकाश के रूप में चित्रित किया हैः–

"ज्ञान की तेरी तुरी है,
आसुरी माया दुरी है।"[28]

निराला के धार्मिक, साधानात्मक और ज्ञानात्मक विचार पर ही नहीं वरन् सामाजिक विचार पर भी विवेकानंद का प्रभाव था। विवेकानंद जाति–नियम को अस्वीकार नहीं करते थे। 'जाति, संस्कृति और समाजवाद' नाम से संकलित उनकी एक पुस्तक में उन्होंने लिखा हैः– *"भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था का आधार क्या है? वह है जाति–नियम। मैं जाति के लिए जन्म लेता हूँ और जाति के लिए ही जीता हूँ।"*[29] निराला ने भी 'अधिकार समस्या' निबंध में लिखा हैः– *"वर्णाश्रम धर्म एक ऐसी सामाजिक स्थिति है जो चिरंतन है। स्वाधीन समाज की इससे अच्छी वर्णना हो नहीं सकती। कोई समाज इस धर्म को मानता भले ही न हो, पर वह संगठित इसी रूप में होगा।"*[30] लेकिन विवेकानंद यह भी मानते थे कि भारतवर्ष में प्रत्येक जाति को उन्नत होने का अधिकार है। विवेकानंद ने अस्पृश्यता का विरोध किया। विवेकानंद ने स्पष्ट कहाः– *"धर्म में कोई जाति नहीं होती..... जाति तो केवल एक सामाजिक रूढ़ि है।..... कोई भी व्यक्ति चाहे वह शूद्र हो या चाण्डाल, ब्राह्मण को भी तत्वज्ञान की शिक्षा दे सकता है। सत्य की शिक्षा, अत्यंत नीच व्यक्ति से भी ली जा सकती है– वह व्यक्ति किसी भी जाति या पंथ का क्यों न हो।"*[31] स्वामी जी ने आधुनिक काल में शूद्र–शक्ति के उत्थान की बात कही थी। निराला तो गुलामी की अवस्था में समस्त भारतीयों के भाग्य में ही 'शूद्रत्व' को देखते थे। 'वर्णाश्रम–धर्म की वर्तमान स्थिति' निबंध में निराला लिखते हैंः– *"भारतवर्ष की तमाम सामाजिक शक्तियों का यह एकीकरण काल शूद्रों और अंत्यजों के उठने का प्रभातकाल है। प्रकृति की यह कैसी विचित्र क्रिया है, जिसने युगों तक शूद्रों से ऊपर तीन वर्णों की सेवा करायी और इस तरह उनमें एक अदम्य शक्ति का प्रवाह भरा और अब अनेकानेक विवर्त्तनों के भीतर से गुजरती हुई, उठने के लिए एक विचित्र ढंग से*

मौका दिया है, भारतवर्ष का यह युग शूद्र–शक्ति के उत्थान का युग है।[32] निराला ने अपनी कविताओं में हमेशा सामाजिक समानता और शूद्रत्व के उत्थान की बात कही है:–

"जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेगे, टाट बिछाओ।"[33]

निराला रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों के संसर्ग में रहकर 'अद्वैतवाद' को और पुष्ट कर रहे थे और तुलसी की विचारधारा से मेल दिखा रहे थे। 'रामकृष्णवचनामृत' का अनुवाद करते समय निराला तो जैसे रामकृष्णमय हो गए। स्थिति ऐसी आने लगी कि वह खुद को सिद्ध–पुरूष–सा महसूस करने लगे। स्वप्न में भी देवता व संन्यासियों के दर्शन करने की बात करने लगे। यहाँ तक नंगे भी रहने लगे क्योंकि उन्हें पता लगा कि स्वामी रामकृष्ण जी नंगे रहते थे 'स्वामी प्रेमानंदजी महाराज' में उन्होंने कहलवाया भी है:–

"स्वामी जी ने कहा–
परमहंसदेव भी नंगे हो जाते थे।"[34]

जब निराला ने पढ़ा कि स्वामी जी संध्या–पूजन आदि भी नहीं करते थे, पूजा–उपासना भी बंद कर थी और अंतः–साधना में लग गए। किन्तु, धीरे–धीरे बाहर का राजनीतिक व सामाजिक घटनाक्रम निराला की अंतः साधना पर चोट करने लगा। संन्यासी होने मात्र से उन्हें संतोष न हुआ। प्रश्न उठा, क्या संन्यासी होने से राष्ट्र स्वाधीन हो जाएगा? तब अद्वैतवाद पर आस्था का संकट भी गहराया। अद्वैतवादियों के लिए सब कुछ माया है–सुख व दुख सभी। तब तो दरिद्र भी माया है, दीन–दुखियों की हालत भी माया है तो गरीबों का उद्धार कैसे होगा? शंकाएँ उठीं तो 'अधिवास' कविता बनी। 'अधिवास कहाँ' का प्रश्न इस उत्तर में सुलझा–

"उसकी अश्रुभरी आँखों पर मेरे करूणाञ्चल का स्पर्श
करता मेरी प्रगति अनन्त, किन्तु तो भी मैं नहीं विमर्ष,
छूटता है यद्यपि अधिवास,
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।"[35]

निराला को लगने लगा था कि उनका सच्चा 'अधिवास' दुःखी व निर्धन लोगों को सहारा देने में है। परमपद–लाभ के निराला का मोह और संन्यासियों के साथ के प्रति अलगाव के संकेत निराला में मिलने लगे। निराला ने अद्वैतवाद को अपनाया पर संन्यासियों का व्यामोह छोड़ा। उन्होंने अद्वैतवाद को विश्व–बंधुत्व और मानवतावाद का चोला पहनाया। इसमें साथ मिला रवीन्द्रनाथ के विचारों व साहित्य का। कलकत्ते में नाटक कंपनियों की धूम से सम्मोहित निराला पर श्रृंगार का रंग चढ़ा और रवीन्द्रनाथ की कविताएँ उन्हें फिर नए सिरे से बुलाने लगी। सुंदरी उर्वशी–विजयनी, सद्यःस्नाता, लावण्यपाश में बँधा यौवन सभी उन्हें आकर्षित करने लगा था। निराला 'जूही की कली' में वैसी श्रृंगारिकता की अनुभूति करा चुके थे। श्रृंगार का रंग चढ़ा और रवीन्द्रनाथ की कविताएँ उन्हें फिर नए सिरे से बुला, उल्लास और उपमानों की लड़ी को उन्होंने अद्वैत का रूपक बांधा 'तुम और मैं' कविता मेंः–

"तुम तुंग–हिमालय–श्रृंग
और मैं चंचल–गति–सुर–सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त–कामिनी–कविता।
तुम प्रेम और मैं शांति
तुम सुरा–पान–धन–अंधकार
मैं हूँ मतवाली भ्रांति।"[36]

ब्रह्म को 'सुरा–पान–धन–अंधकार' की उपमा देना बिल्कुल नई बात थी और निराला के नये पथ की सूचक भी। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैः–*"इस नए साहित्यिक विकास की दिशा में सूर्यकांत जितना आगे बढ़े, उतना ही संन्यासियों से दूर होने लगे। उनके व्यवहार में उच्छृंखलता आने लगी।"*[37] पहले निराला रामकृष्ण परमहंस के आगे रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व

को छोटा समझते थे। रवीन्द्रनाथ ब्रह्मसमाजी थे। ब्रह्मसमाज में धनी वर्ग के लोग ज्यादा थे जो जमींदारी की रक्षा करते हुए निराकार उपासना में विश्वास करते थे, पर रामकृष्ण और उनके अनुयायी भक्ति, दरिद्रनारायण की सेवा में अधिक ध्यान देते थे। तुलसीदास भी ज्ञान के आगे भक्ति और निराकार के आगे साकार को अधिक महत्व देनेवाले थे। यही कारण है कि दर्शन के क्षेत्र में रामकृष्ण परमहंस तुलसी के समान निराला के नजदीक थे। परन्तु, निराला संन्यासी तो थे नहीं, कवि थे। कविता की पृष्ठभूमि तो चाहिए थी; वह मिली रवीन्द्रनाथ के साहित्य में। हालाँकि तुलसी से आगे की शर्त्तों पर नहीं। 'दो महाकवि, गो0 तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ' नामक निबंध में उन्होंने लिखा है:– *"रवीन्द्रनाथ संसार के प्राचीन साहित्य से लेकर अब तक के कवियों में एक अद्‌भुत प्रतिभावान कवि हैं, दर्शन मिश्रित साहित्य के उतने अच्छे नहीं। .... दर्शन लिखते समय उन्होंने साहित्य को प्रधान भी नहीं किया, हमारे विचार से गोस्वामी तुलसीदास साहित्य और सत्य–दर्शन के पारंगत महाकवि हैं। रवीन्द्रनाथ साहित्य के महामान्य महाकवि हैं, पर उनकी दार्शनिक कविता जहाँ उनकी मौलिकता लिए हुए हैं या रचना–चातुर्य से चलती है, उतनी सहृदय नहीं।"*[38] स्पष्ट है कि विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से रवीन्द्रनाथ उत्तम है, हाँ दर्शन–मिश्रित साहित्य में कमजोर। निराला को कविता में दोनों ताम–झाम लेकर चलने थे। तुलसी महान कवि थे, पर तद्‌युगीन साहित्यिक प्रचलन की दृष्टि से पुराने थे। निराला को प्राचीन छोड़ना नहीं था, पर नवीनता उनकी कविता का मौलिक प्रस्थान–बिन्दु थी। इसलिए उन्होंने उक्त निबंध के आरंभ में नवीन चिह्न के आगे प्राचीन साहित्य सौंदर्य को दबाने का विरोध किया, वही लिखा– *"नए काल की कल्पना–साहित्य के हृदय पर जो नवीन चिह्न अपने समय के मार्जन और इतिहास के रूप से छोड़ जाती है, उस समय की वे प्रांजल रेखाएँ और जन–समूह की रुचि–अनुकूलता प्राचीन साहित्य के सौंदर्य को दबा देने के लिए ही जैसे तुली हुई हो–और रुचि तथा स्पर्द्धा से ही जबकि नवीन प्राचीन से भिन्न हुआ है।"*[39] यही कारण है कि निराला रवीन्द्र के सम–सामयिक साहित्य को जिसका उस समय भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में डंका बज रहा था, नज़रअंदाज नहीं कर पाए।

उनकी कई कविताओं का निराला ने अनुवाद किया, कई भाव भी लिए, परन्तु रवीन्द्र से स्पर्धा का भाव भी रखा।

निराला स्वयं को हिन्दी का रवीन्द्रनाथ समझते थे। फिर, खुद को उससे ज्यादा भी समझने लगे। महात्मा गाँधी को उन्होंने कहा थाः—*"आप रवीन्द्रनाथ के जैसा साहित्यिक हिन्दी में नहीं देखना चाहते, प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर का नाती या नोबल–पुरस्कार प्राप्त मनुष्य देखना चाहते हैं।"*[40] स्पष्ट है निराला खुद को रवीन्द्रनाथ के समतुल्य तो समझते थे पर रवीन्द्रनाथ की संपन्नता को, उनके ब्रह्म–समाज वाली दृष्टि को नहीं अपनाया। 'एक बात' निबंध में निराला लिखते हैंः—*"रवीन्द्रनाथ हिन्दुस्तानियों के करीब डफली–राग का कवियाने ढंग से मजाक उड़ाते खचखचांकर लिखकर अपनी श्री संपन्नता का परिचय दे सकते हैं, पर वह खचखचांकर का संबंध जातीय स्वर मीरा, कबीर, सूर और तुलसी की पावन लड़ियों में कितनी निर्मल ज्ञानधारा बहाता है, यह अगर वह समझते होते तो अपने अर्थ के साथ काफी बुद्ध होकर 'कोंकरकों' वाले वाउल के स्वर अंत में गला और कलम न फेरते रहते। शायद बंगला के कवि इस अपने गरीब–राम को बंगला की संपत्ति समझकर विश्व की संपत्ति समझते हैं और पहली को हिन्दोस्तानियों की समझकर कर्ण–कटु विश्व विरहित।"*[41] निराला अपनी रचना 'चरखा' में महात्मा गाँधी की आलोचना करने के लिए रवीन्द्रनाथ को आड़े हाथ लेते हैं। इसी बहाने उनके ब्रह्म समाज संबंधी विचारों को भी धो डालते हैं। निराला लिखते हैंः—*"आप स्वयं ब्रह्म समाज के एक नामी सुधारक हैं। जान पड़ता है, आप ब्रह्म समाज का चश्मा लगाकर उसी लांग साइट और शार्ट–साइट से देखते हुए, भारत की जातीय प्रथाओं की जाँच–पड़ताल कर रहे हैं, जो बात ब्रह्म समाज में नहीं, वह संसार के लिए घोर अकल्याणकर और जो है, वह संसार के लिए मंगलप्रद है, यही है आपके इस विरोध या युक्ति के अंदर छिपी हुई सच्ची राय।"*[42] स्पष्ट है कि निराला उनकी कविताओं को छोड़कर उनके सामाजिक दर्शन से बहुत जुड़ाव नहीं महसूस करते थे।

अब प्रश्न यह है कि निराला ने रवीन्द्र साहित्य से किन दार्शनिक विचारों को ग्रहण किया? यह वही प्रभाव थे जिससे छायावादी साहित्य

प्रभावित था –'सीमा के बीच ही असीम' से मिलने की कामना।' रवीन्द्रनाथ ने 'सीमा के बीच ही असीम' के साथ मिलन की आराधना' के संदर्भ में लिखा था–*"क्षुद्र को लेकर ही वृहत् सीमा को लेकर ही असीम तथा प्रेम को लेकर ही मुक्ति है। प्रेम का आलोक मिलते ही आँखों को पसार कर देखता हूँ कि सीमा के बीच सीमा और नहीं है। .....मेरी समस्त काव्य–रचना का एक ही अध्याय है और उस अध्याय का नाम दिया जा सकता है–सीमा के बीच ही असीम के साथ मिलन की आराधना।"*[43] निराला के दार्शनिक विचारों पर रवीन्द्र के 'रूप और अरूप की मान्यताओं का प्रभाव निराला के काव्य पर भी पड़ा। निराला ने भी निबंध लिखा–'काव्य में रूप और अरूप'। उक्त निबंध में निराला ने रवीन्द्रनाथ की कविताओं के उदाहरण देते हुए रवीन्द्रनाथ द्वारा बंगभाषा को जीवन मिलने की बात कही है। छायावाद की चर्चा करते हुए निराला लिखते हैं:–*"रूप की सार्थक लघु–विराट कल्पनाएँ संसार के सुंदरतम रंगों में जिस तरह अंकित हों, उसी तरह रूप तथा भावनाओं का अरूप में सार्थक अवसान भी आवश्यक है। कला की यही परिणति है और काव्य का सबसे अच्छा निष्कर्ष है।"*[44] इस परिवर्तन की आकाँक्षा और अनंत के प्रति अभिसार की भावना 'अनंत के प्रति जिज्ञासा' के रूप में प्रकट होती है। निराला की कविता 'तरंगों की प्रति' का यह अंश देखिए:–

"उस असीम में ले जाओ
मुझे न कुछ तुम दे जाओ![45]

इस असीम और अनंत में असीम ब्रह्म भी समाहित है। रवीन्द्रनाथ की काव्य–साधना में भी यह तत्व मिलेगा, पर शंकर के दार्शनिक मत के अनुयायी कवि ईश्वर को निर्गुण सत्ता के रूप में नहीं देखता, वरन् विश्व के नाना–वैचित्र्य के बीच कवि ईश्वर की उपलब्धि करता है। प्रकृति के अपरूप सौंदर्य को कवि 'जीवन–देवता' की लीला में प्रत्यक्ष देखता है। शंकराचार्य के अद्वैत ब्रह्म की तरह निराला भी असीम ईश्वर को निर्गुण सत्ता के रूप में नहीं देखते। जीव–ब्रह्म अथवा सीमा–असीम की मिलन लीला को प्रकट करने के लिए निराला कभी प्रकृति का सहारा लेते हैं तो कभी मानुषी–प्रेम का। 'धारा' कविता में निराला लिखते हैं:–

"यह जीवन की प्रबल उमंग
जा रही मैं मिलने के लिए
पार कर सीमा
प्रियतम असीम के संग।"[46]

रवीन्द्र ने भी इसे 'औरि देख सेई स्रोत हमेछे अखर/तरणी कांपिछे थरथर' कहकर व्यक्त किया है।

रवीन्द्रनाथ ने प्रकृति को सजीव सत्ता में स्वीकार कर उसका मानवीयता से संबंध जोड़ा है और प्रकृति में आध्यात्मिक रूप का संप्रेषण किया है। रवीन्द्र की कविता का एक उदाहरण देखिएः—

"ऐ ये संध्या खुलिया फेलिल तार
सोनार अलंकार
ऐ ये आकाशे लुटाय आकुल चुल
अंजनि भरि धारिल तारर फूल।"[47]

निराला ने भी 'देकर अंतिम कर' कविता में लिखा हैः—

"अंबर—पथ से मंथर
संध्या श्यामा
उतर रही पृथ्वी पर
कोमल पद—भार
मंद—मंद वही पवन
खुल गई जूही
अंजलि—कल विगत नवल
पदतल उपहार।"[48]

रवीन्द्रनाथ ने जिस प्रकार प्रकृति में आध्यात्मिक पथ का आरोप कर अपनी जीवन—संगिनी का आह्वान किया हैः—'खुले द्वार दाओं' कविता में, उसी प्रकार निराला ने लिखाः—

"कल्पना के कानन की रानी
आओ, आओ मृदु–पद मेरे
मानस की कुसुमित वाणी।"[49]

कहीं–कहीं निराला 'कौन तुम शुभ्र वसना' कह रवीन्द्र की तरह ही प्रकृति में जीवन–संगिनी के रहस्यात्मक रूप का अवलोकन करते हैं। 'रूप और नारी' निबंध में निराला ने लिखा है:– *"साहित्य के इस अरूप की स्वतंत्र सत्ता को नारियों का स्थिर रूप दिया गया है। कलाविदों ने वहीं पुरूष और प्रकृति का सौहार्द दोनों का अपार प्रेम, निरन्तर योग देखा। आकर्षण दोनों के संभोग–विलास में ही है, वह और अच्छा जब तक एक ही आधार में हो। यही बीज–मंत्र है जिसका जप कर उन्होंने नारियों के अगणित अपार रूपों की सिद्धि प्राप्त की है।"*[50] निराला के प्रेम–निवेदन में भी वही भाव निहित है। वही सुंदरी निराला के काव्य में देवी के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने जीवन–देवता अथवा जीवन–देवी के साथ लीला खेलने के संबंध में विशिष्ट वर्णन किया है:–

"करवन थेके पथ चेये आर, काल गुणे,
बलेइ आछि तोमार, लागि, हाय प्रिय।"[51]

निराला भी उसी प्रकार लिखते हैं:–

"कब से मैं पथ देख रही प्रिय
उर न तुम्हारे देख रही प्रिय!
तोड़ दिए जब सब अवगुंठन
रहा एक केवल सुख लुंठन।"[52]

निराला ने कई स्थानों पर रवीन्द्रनाथ की शृंगारिक कविताओं के भाव लिए हैं। यथा रवीन्द्रनाथ ने 'आमि कि गो वीणा–यंत्र तोमार' अपनी कविता अंतर्यामी में लिखा था, उसी प्रकार निराला खुद को यंत्र तो 'जीवन–देवी' को 'यंत्री' मानकर लिखते है:–

"तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान।"[53]

निराला में 'नारी और कवि' टिप्पणी में रवीन्द्रनाथ के नारी–सौंदर्य व पावनता की ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा हैः– *"रवीन्द्रनाथ की जीवन–देवता' तथा 'अंतर्यामी' आदि कविताओं में नारियों के अनेक उच्चतम सुंदर विकसित चित्र मिलते हैं, बल्कि कवि को नारी–मूर्ति ही कविता में गतिशील करती है।.....रवीन्द्रनाथ की खींची हुई यह नारी–मूर्ति नारीत्व के चरम विकास पर पहुँची हुई है। अंगों के गठन में केवल ज्योति ही घनीभूत हो गयी है और कोई जड़ता नहीं, अंगराम, गति, चंचलता, पलकों का गिरना, सौंदर्य, विलास, सबकुछ है।"*[54] निराला भी इसी प्रकार नारी–चित्र खींचने में माहिर थे। उनकी एक कविता 'सकल गुणों की खान, प्राण तुम' का यह अंश द्रष्टव्य हैः–

"सकल गुणों की खान, प्राण तुम।
सुख की सृति, दुख की आकुल कृति,
जग तुम की धृति, ज्ञान, ध्यान तुम।
बङक गौंह, शंकित दृग नत मुख
मिला रही निज उर अप–जग दुख
पी ली ज्वाल, बदल नीली रूख
विभा, प्रखा की खान, आन तुम।"[55]

निराला के गीत अधिकतर अतीन्द्रिय नारी–सौंदर्य प्रधान गीत हैं। ज्यादातर स्थानों पर वे रवीन्द्र के 'जीवन–देवता' के प्रति लिखे गए गीतों के अनुरूप जीव–ब्रहमपरक रहस्यवाद के स्तर के हैं। जिस प्रकार रवीन्द्र के अंदर अतीन्द्रिय प्रेम–भावना अनायास जगती है और वे 'प्रेम पाणे गाने गंधे आलोके पुलके' की बात करने लगते हैं, उसी प्रकार साधक निराला के मन में सहसा अज्ञात की वीणा बजने लगती है और हृदय में प्रेम के संस्कार जग जाते हैंः–

"वह रूप जगा उर में
बजी मधुर वीणा जिस सुर में?
कहता है कोई, तू उठ अब
खुले हृदय–शतदल के दल सत।"[56]

'गीतिका' के अधिकांश गीत निराला ने जननी या माँ को संबोधित कर लिखे हैं। नारी का सबसे श्रेष्ठ व पावन रूप माता का होता है। वह शक्ति की स्रोत भी है। 'सार्थक करे प्राण' जैसे गीतों में निराला का माँ के प्रति जो प्रपत्ति भाव' मिलता है, उस पर रामकृष्ण तथा विवेकानंद की मातृ–शक्ति उपासना का प्रभाव है। परन्तु, कामना प्रधान गीतों में रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' का प्रभाव दिखेगा जहाँ आत्म निवेदन की व्यंजना है। यथा 'अणिमा' के एक गीत में निराला लिखिते हैंः–

"धूलि में तुम मुझे भर दो
धूलि–धूसर जो हुए पर
उन्हीं के वर–वरण कर दो।
दूर हो अभिमान, संशय
वर्ण–आश्रम–गत–महामय।"[57]

रवीन्द्रनाथ जी की 'गीतांजलि' के प्रथम गीत में यही भाव व्यंजित हुआ हैः–

"आमार माथा नत करे दाओ हे तोमार
चरणधुलार तले।
सकल अहंकार हे आमार
डुबाओ चोर्खर जले।"[58]

उसी प्रकार रवीन्द्र के एक गीत 'एहे लोभिनु संग तब/सुंदर, हे सुंदर' को पूर्णतः आधार बनाकर निराला ने भी 'सुंदर है, सुंदर/दर्शन से जीवन भर/' लिख डाला। उसी प्रकार इष्ट देव की मातृ रूप कल्पना पर स्वामी विवेकानंद और रवीन्द्रनाथ जी का सम्मिलित प्रभाव है जो 'देवि तुम्हें मैं क्या दूँ, 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' आदि रचनाओं में देखने को मिलता है।

रवीन्द्रनाथ के लिए संपूर्ण जगत ब्रह्म का ही लीलातंत्र था। इसलिए जगत में सूक्ष्म से लेकर बड़ी वस्तु सब उनके लिए महत्व की चीज थी। यह कवि का मानवता–प्रेम था। निराला मानते थे कि रवीन्द्रनाथ में ऐसी प्रतिभा है जिससे वे पूर्व और पश्चिम महिमा की रागिणी एक साथ बजाने

की क्षमता रखते थे। 'शेली और रवीन्द्रनाथ' निबंध में निराला लिखते हैं– *"वे ब्रह्म समाजी हैं। अतएव उनकी कृतियों में ब्रह्म से संबंध रखनेवाले महान भाव तमाम संकीर्णता के वातावरण को पार कर इस तरह महाकाश में परिव्याप्त हो जाते हैं कि उन्हें अपना कहते हुए किसी को संकोच नहीं होता।"*[59] यही है देश, काल व सीमा का अतिक्रमण जो विश्व–बंधुत्व को बढ़ावा देता है। रवीन्द्र के 'कूड़िर झितर कांदिछे गंध अन्ध हये' की तरह निराला भी संपूर्ण बाधाओं को तोड़ फूल के विकास की माँग करते हैंः–

"टूटे सकल बंध
कलि के, दिशा–ज्ञान–गत हो बहे गन्ध।"[60]

निराला और रवीन्द्रनाथ दोनों ही मानव–जीवन का सत्य गति में ढूँढ़ते है। आधुनिक युग में फ्रांस के प्रकांड दार्शनिक बेगर्स ने 'गतिवाद' दर्शन को स्थापित किया था। पर निराला और रवीन्द्र दोनों उद्देश्यहीन गति में विश्वास नहीं करते, वरन् अनंत या असीम के साथ मिलने में ही जीवन–सत्य मानते हैं। रवीन्द्र हमेशा 'चलने' की बात करते थे, चाहे अकेले क्यों न चलना पड़े। 'तुलसीदास' कविता में सूर्य–तारक–मंडल के लिए पंक्ति आती हैः–'बंध गति–प्रकाश को बुद्ध सकल पूर्वापर' और आगे तुलसीदास कह जाते हैः– *"गति–हीन जीवन को कहाँ सुरति?"*[61] निराला की कविता में 'तरंग', 'प्रपात' जैसे कई गत्यात्मक चित्र मिलेंगे। पर प्रश्न उठता है कि इस गत्यात्मकता का उद्देश्य क्या है? उद्देश्य है–मानव प्रेम। संसार में रहकर ही मानवता के आनंद की अनुभूति। रवीन्द्रनाथ 'जय हक मानुषेर' का उद्घोष करते थे तो निराला ने 'अनामिका' की दान' कविता में लिखा हैः–

"चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं..... 'धन्य श्रेष्ठ मानव'।"[62]

रवीन्द्र और निराला दोनों प्रत्येक मानव के लिए सुख की कामना करते हैं और इसे ही मोक्ष का पर्याय मानते हैं। रवीन्द्र की 'एकटि स्वप्न मुग्ध सजल नयने' की तरह निराला भी लिखते हैंः–

"एक स्वप्न दम–जग–नयनों में
खिला रही सुख–द्रुम अयनों में।"[63]

विश्व भावना और असीम से अभिसार की भावना की एक अभिव्यक्ति विराट चित्रों के अंकन में होती है। 'काव्य में रूप और अरूप' कविता में निराला स्पष्ट करते हैं:– *"काव्य में साहित्य के हृदय की दिगंत व्याप्त करने के लिए विराट रूपों की प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। अवश्य छोटे रूपों के प्रति यहाँ कोई द्वेष नहीं दिखलाया जा रहा। रूप की सार्थक लघु–विराट कल्पनाएँ संसार के सुंदरतम रंगों में जिस तरह अंकित हों, उसी तरह रूप तथा भावनाओं का अरूप में सार्थक अवसान भी आवश्यक है।"*[64] निराला के 'राम की शक्ति–पूजा' में विराट के कई चित्र हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'निर्झर के स्वप्नभंग की झलक पर निराला ने 'तंरगों के प्रति' कविता में लिखा है–

"किस अनंत का नीला अंचल हिला–हिलाकर
आती हो तुम सजी मण्डालाकार?"[65]

यहाँ निराला नदी की तरंग के माध्यम से अपने विशाल हृदय को ही प्रकट कर रहे हैं।

निराला पर रवीन्द्रनाथ का इतना प्रभाव था कि उन्होंने निराला पर 'रवीन्द्र कविता कानन' नामक आलोचनात्मक कृति लिखी। यह हिन्दी में रवीन्द्रनाथ पर लिखी पहली आलोचनात्मक कृति है। इस कृति के संदर्भ में डॉ. नंदकिशोर नवल लिखते हैं– *"इसमें निराला की आलोचना का रूप आस्वादपरक है, तथापि इसमें रवीन्द्र काव्य के संबंध में महत्वपूर्ण बातें कही गई हैं। निराला ने इसमें रवीन्द्रनाथ को बंगला का जातीय कवि कहा है और उनकी कविता के सामाजिक संदर्भों को यथा–साध्य स्पष्ट किया है। रवीन्द्रनाथ के विद्रोह की चेतना फूटी इसका एक कारण यह भी था कि उनका वंश बंगाल के ब्राह्मणों में बहिष्कृत था।"*[66] यही बात तो निराला के साथ भी थी, तभी उन्होंने खुद को 'ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत' कहा था। उक्त पुस्तक में निराला ने रवीन्द्र के जीवन, प्रतिभा, स्वदेश प्रेम, महाकवि का संकल्प, शिशु संबंधी रचना, श्रृंगार और 'संगीत

काव्य' के प्रकरण के अंतर्गत विचार किया है। कहना न होगा कि इन विभागों के अंतर्गत स्वयं निराला पर भी विचार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, निराला के स्वदेश–प्रेम को ले तो, भारत–प्रशस्ति विद्रोह–गान तथा स्वदेश में विश्व के मिलन आदि का भाव निराला को द्विजेन्द्रनाथ लाल तथा रवीन्द्रनाथ से प्राप्त हुए। निराला की कविताओं में रवीन्द्र के स्वदेश–प्रेम की कविताओं की तरह विश्व–प्रेम की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती है। रवीन्द्र के 'चिर कल्याणमयी तुम धन्य/देश विदेशे वितरिद्दे अन्न' की तरह निराला ने लिखाः–

"जागो जीवन धनिके
विश्व पराय प्रिय वणिके।"[67]

यही नहीं, रवीन्द्रनाथ ने सामाजिक समता सिद्धांतः–***"नाहिक दरिद्र बनो अधिपति प्रजा/ कहे कारो कुटीरते करिले गमन/मर्यादार अपमान करिके ना मने/सकलेइ सकलेर करितेछे सेवा/के कारू प्रभु नय, कहे कारो दास।"***[68] अर्थात् कोई मालिक कोई दास न हो का भाव लेकर निराला ने 'जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ' कविता में समाज में निम्न समझी जानेवाली जातियों के अभ्युदय की बात कही थी और अंत में लिखा थाः–

"सारी संपत्ति देश की हो
सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय वेश की हो,
वाद से विवाद यह ठने,
काँटा काँटे से कढ़ाओ।"[69]

निराला की कविताओं का एक बहुत बड़ा भाग निराला की मृत्यु संबंधी कविताएँ हैं। जिस मृत्यु से संसार भयभीत रहता है, उस मृत्यु को रवीन्द्र ने अभय–वृत्ति के रूप में देखा है और मृत्यु को भी सुंदर रूप में प्रदर्शित किया है। रवीन्द्र जिस प्रकार मरण को वरण करने हेतु 'वरण के प्राण वरण करे बांचे' कहकर सदैव तत्पर रहते थे, वैसे ही निराला ने मरण द्वारा जीवन के अस्तित्व का अनुभव किया हैः–

"मरण को जिसने वरा है
उसी ने जीवन भरा है।"[70]

निराला की आरंभिक कविताओं पर रवीन्द्रनाथ की स्पष्ट छाप दिखती थी। 'मतवाला' के पाठकों, विशेषकर इलाहाबाद के पाठकों को लगा कि बंगाल की कविताओं विशेषकर रवीन्द्रनाथ की कविताओं का भावापहरण करनेवालों की पोल खोली जाए। अतएव प्रयाग की पत्रिका 'मनोरमा' के संपादक ने हिन्दी कविता को बंगला व अंग्रेजी की नकल बताते हुए एक टिप्पणी लिखी– 'हिन्दी कविता की गति'। एक और कविता 'भंगी की मौज' में निराला को 'कविता की टांग तोड़नेवाला' बतलाया। इसके प्रत्युत्तर में 'मतवाला' के मुंशी नवजादिक लाल ने 'अंध–परंपरा' शीर्षक से मतवाला में एक लेख लिखकर निराला जी की कविताओं को हिन्दी की संपत्ति बतलाया। 'प्रभा' के संपादक बालकृष्ण शर्मा नवीन द्वारा मुंशी नवजादिक लाल को निराला के विरोध में लिखे जानेवाले लेखों की सूचना देने पर सन् 1924 में निराला द्वारा 'मतवाला' के संपादक को पत्र लिखकर यह साबित करने का प्रयत्न किया गया कि मतवाला में प्रकाशनार्थ भेजी जानेवाली उनकी अधिकांश कविताएँ मौलिक होती हैं, कहीं–कहीं टैगोर से भाव–सदृश्य मिलता है। निराला के इस पत्र के छपने के बाद सितंबर 1924 में प्रभा में एक लेख छपा–"भावों की भिड़ंत' जिसके लेखक थे, 'श्रीयुंत भावुक' जो शायद एक छद्म नाम था। इस लेख में भावुक जी ने निराला को रवीन्द्रनाथ की कई कविताओं की हू–बहू नकल करने वाला साबित किया और निराला की चौर्य–कला की चर्चा चलने लगी। इस विवाद से निराला पूर्णतः टूट गए। उन्हें मानसिक आघात लगा। उन्होंने 'मतवाला' से अपना संबंध विच्छेद कर लिया। हालांकि 'भावों की भिड़ंत' का उत्तर मुंशी नवजादिक लाल ने 13 सितंबर, 1924 के 'मतवाला' के अंक में 'निराला बनाम रवीन्द्र' लेख छाप कर दिया। मुंशी जी के इस लेख का मजाक 'चोरी की सफाई' नाम से प्रभा में छपा। निराला से गलती यह हो गई थी कि निराला ने 'समन्वय' में विवेकानंद के कुछ गीतों के अनुवाद जनवरी से मार्च, 1924 के अंक में छपवाये थे। इसके अलावा उन्होंने टैगोर की कविताओं के अनुवाद भी 'समन्वय' में छपाया था और रजनीसेन की एक बंगला कविता का भी। परन्तु, उन्होंने

अनुवाद का जिक्र नहीं किया था। यह उनकी गलती थी क्योंकि निराला के पूर्व मैथिलीशरण गुप्त ने सन् 1915 में 'माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाथ वध' का अनुवाद तथा सन् 1924 में टैगोर की गीतांजलि' का अनुवाद गिरिधर शर्मा नवरत्न खड़ी बोली में कर चुके थे, पर उन्होंने अनुवाद को सहजता से स्वीकारा था। निराला की यह भूल भारी पड़ी। हालांकि, उनके अनुवाद खड़ी बोली पद्य साहित्य की विचारनिधि को बढ़ाने वाले हैं। यह अच्छा हुआ है कि डॉ. नंदकिशोर नवल ने 'निराला रचनावली' (भाग–1) के परिशिष्ट में टैगोर की कविताओं का निराला द्वारा किया गया अनुवाद अलग से संकलित किया है। इन कविताओं में 'तुम' गाता हूँ, गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को, 'नाचे उस पर श्यामा', कहाँ देश है, 'सखा की प्रति', आदि कविताएँ प्रमुख हैं। हालांकि निराला का मानना था कि भावों को हरण कर अपनी भाषा में नए रूप से लिखना भी मौलिकता ही है। दिक्कत तब होती है जब किसी कवि की पंक्ति–पंक्ति, अलंकार, रूपक सब चुरा लिए जाए। ध्यातव्य है, कविवर सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में निराला को रवीन्द्रनाथ का अनुकर्त्ता साबित करने की कोशिश की थी। इसका जवाब निराला ने 'पंत जी और पल्लव' निबंध में दिया था। निराला ने उक्त निबंध में पंत जी की कई कविताओं के उदाहरण देकर उन पर 'चौर्य कला में निपुण' होने का आरोप लगाया था। उक्त निबंध में निराला ने लिखा है:– ***"दूसरों के भाव लेकर प्रायः सब कवियों ने कविताएँ लिखी है। परन्तु वहाँ हर एक कवि ने दूसरे के भाव पर विजय प्राप्त करने की, उससे बढ़कर अपना कोई विशेष चमत्कार दिखलाने की चेष्टा की है। पंत जी में यह बात बहुत कम है।"***[71] कहने का मतलब है कि निराला दूसरे कवियों के भावापहरण को बुरा नहीं मानते। हाँ! उसमें निज प्रतिभा द्वारा चमत्कार पैदा करने का बल दिया है। पर यह भी सत्य है कि स्वयं निराला ने भी कई स्थानों पर रवीन्द्रनाथ के भावों के अलावा उपमा, रूपकों आदि को भी एक–सा रखा है।

यदि निराला की काव्य–कला या शिल्प की चर्चा करें तो निराला के काव्य में रूपक, प्रतीक मिथ, बिंब आदि पर भी बंगला का, विशेषकर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव परिलक्षित होगा। यथा, वर्षा–रूपक रवीन्द्र काव्य में जीवन–सत्ता की चिरंतन निगूढ़ अतृप्ति का प्रतिफलन करता है। चाहे

वह–'झर–झर झरे, विजुलि होने' या –'ए भरा बादल दिने।' निराला ने भी वर्षा और बादल का रूपक सूत्र बाँधा है। निराला भी 'गीतगुंज' में लिखते हैं:–

"बादल रे, जी तड़पे
.....छिप जाती है छवि बिजली में
सरसर से दबती है ही में
बूँदों की छन–छन से उन्मन
प्राण न मेरे हरसे।"[72]

उसी प्रकार, सूर्यास्त, अंधकार, प्रभाव आदि के रूपकों में भी रवीन्द्र से साम्यता देखने को मिलेगी। एक उदाहरण यहाँ देखने लायक है। सूर्यास्त द्वारा रवीन्द्र ने भारतीय संस्कृति के विनाश का रूपक प्रस्तुत किया है–

"शताब्दीर सूर्य आजि रक्तमेघ माझे
अस्त गेलो–हिसार उत्सवे आजि बाजे
अस्त्र अस्त्र मरणेर उन्माद–रागिनी भयंकरी।"[73]

उसी प्रकार निराला ने 'तुलसीदास' के आरंभ में लिखा है:–

"भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे–तमस्त सूर्य दिड़्मण्डल।"[74]

उसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की 'अन्धकारेर जयेर मालाय एकटाना सुर' की तरह निराला ने अंधकार को ध्यान–मग्न व्यक्ति के रूपक में प्रकट किया है। 'राम की शक्ति–पूजा' का अंश देखिए–

"है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन–चार।"[75]

'राम की शक्तिपूजा' निराला ने बंगाला के 'कृतिवास रामायण को आधार बनाकर लिखा है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते है:–'राम की

शक्तिपूजा' में जहाँ राम पराजय के क्षण में सीता के प्रथम मिलन का मोहक स्वप्न देखते हैं, वहाँ निराला उसी भावबोध की जमीन पर चलते हैं उन्हें रवीन्द्रनाथ नहीं, विवेकानंद याद आते हैंः–

"मेघ मन्द्रकुलिश निस्वन, महारन, भूलोक–धूलोक व्यापी
अंधकार उगरे आँधार, हुंकार श्वसिछे प्रलयवायु।"[76]

निराला ने 'नाचे उस पर श्यामा' कविता इसका अनुवाद इस प्रकार किया हैः–

अंधकार उद्‌गीरण करता
अंधकार घन–घोर अपार
महाप्रलय की वायु सुनाती
श्वासों में अगणित हुंकार।"[77]

डॉ. रामविलास शर्मा ने संभवतः 'नाचे उस पर श्यामा' कविता को 'राम की शक्तिपूजा' से जोड़ दिया है। डॉ. शर्मा लिखते हैंः– ***"निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' में अपनी प्रतीक–योजना का ध्यान रखते हुए वायु को स्तब्ध कर दिया है। स्वामी विवेकानंद के 'उगरे आधार' से प्रेरणा लेकर 'उगलता गगन घन अंधकार' लिखा। यहाँ स्वामी विवेकानंद का शब्दचित्र निराला को नए और समर्थ प्रयोग की प्रेरणा देता है।"***[78] दरअसल 'नाचे उस पर श्यामा' कविता विवेकानंद की रचना 'नाचुक बाहाते श्यामा' का अनुवाद ही है। इस कविता में अंधकार और फेनिल लहरों की गरज ठीक वैसी ही है, जैसी 'राम की शक्तिपूजा' में। दूसरी बात 'वायु को स्तब्ध' करनेवाली प्रतीक योजना 'नाचे उस पर श्यामा' में है, जिसका मिलता–जुलता प्रयोग उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' में किया है। इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा भ्रम के शिकार हो गए हैं।

रवीन्द्रनाथ और निराला के प्रतीकों में भी बहुत समानता मिलती है। पथः स्रोत, पथःघर, पथः रथ, हाटःवाट आदि युग्म प्रतीकों के द्वारा रवीन्द्र ने अद्वैत की ही प्रतिष्ठा की है। रवीन्द्र की कविता में 'पथ' और 'रथ' बहुत आता है। पथ व्यक्ति के जंगम जीवन, प्रयास, जीवन–लीला के प्रतीक है तो रथ–जीवन, देवता का आविर्भाव है। जिस प्रकार रवीन्द्र कहते हैं– ***"घरेइ***

तोमार आना गोना पथे कि आर तोमाय सुंजि[79] की तरह निराला ने लिखा है:–

"कब से मैं पथ देख रही प्रिय
उर न तुम्हारे देख रही प्रिय।"[80]

उसी प्रकार 'वीणा' के लिए रवीन्द्र ने 'तोमार वीणा आमार मनोमाझे' कहा और 'वीणा' को जीवन व भुवन की आनंद–तन्मयता के रूप में प्रदर्शित किया तो निराला के लिए भी वीणा की झंकार आनंद दायक है:–

"नाथ, तुमने गहा हाथ, वीणा बजी
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।"[81]

रवीन्द्र के गाने में अन्तर्भावित प्रतीकों में कविसत्व की नायिका कल्पना विशिष्टतम है। इस कल्पना पर वैष्णव कवियों की राधा के प्रभाव के साथ–साथ कालिदास का भी प्रभाव पाया जाता है। निराला पर भी यह प्रभाव देखा जा सकता है, पर निराला ने परंपरागत रूपकों व प्रतीकों में भी नए रंग भरे हैं। 'आमार का जेर माझे माझे' कहकर रवीन्द्र क्षणिक मिलन के उपरांत वेदना की व्याकुलता इंगित करते हैं तो निराला में भी कुछ वैसी ही भावना प्राप्त होती है:– ***"तुम छोड़ गए द्वार/तब से यह सूना संसार।"***[82] रवीन्द्र के प्रबंध–काव्य तथा नाटकों के कथानक के रूप में 'मिथ' का प्रयोग कल्पनागत रूप–विन्यास के लिए किया गया है। वहाँ शिव सुंदर के प्रतीक हैं तो रूद्र तांडव–उन्मत्तता के प्रतीक। यही बात निराला के लिए भी सत्य है। 'आराधना' में निराला लिखते हैं:– ***"नाचो हे रूद्रताल; आँचो जग–ऋजु–अराल।"***[83]

निराला के कुछ प्रतीकों पर विवेकानंद का प्रभाव देखा जा सकता है, जैसे अद्वैत ब्रह्म को 'माँ' के रूप में संबोधित करना।

बिंबों की दृष्टि से भी विचार करे तो लक्षित प्रकृति के चित्रण में निराला रवीन्द्र से प्रभावित दिखते हैं, जहाँ प्रकृति–चित्रण के माध्यम से वातावरण के निर्माण का कार्य निराला ने बहुत ही सुंदर ढंग से किया है।

एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जहाँ रवीन्द्र लक्षित चित्र–कल्पना द्वारा सांध्य का विषादमय चित्र अंकित करते हैः–

"रवि अस्त याय
अख्येते अंधकार, आकाशाते आलो।"[84]

निराला ने भी सूर्यास्त का चित्र अंकित करते हुए वातावरण के शांत तथा विषाद्मय भाव को यूँ चित्रित किया हैः–

"डूबा रवि अस्ताचल
संध्या के दृग छल–छल।"[85]

निराला की इन उपलक्षित चित्र–योजनाओं में गतिशीलता, उच्चतर भावना एवं मनन और अनुकूल भावोत्पादक क्षमता अधिक है। जिस प्रकार रवीन्द्र प्रेयसी की कोमलता को वर्णित करने के लिए उषा का मधुर वर्णन प्रतीकों में प्रकट करते हैं, उसी प्रकार निराला ने लिखा है–

"याद है, उषाकाल–
प्रथम किरण–कम्प–प्राची के दृगों में
प्रथम पुलक फुल्ल चुम्बित वसंत की
मंजरित लता पर।"[86]

इसी प्रकार वर्षा के चित्रण में ध्वनि–बिबों का प्रयोग रवीन्द्र और निराला दोनों ने किया है। यथा रवीन्द्र लिखते हैं–

"गुरू गुरू मेघ घुघार धुधरि गरजे
गगने गगने, गरजे गगने।"[87]

ठीक वैसे ही निराला ने लिखा है–

"झूम–झूम मृदु गरज–गरज घनघोर
राग–अमर! अम्बर में भर निज रोर।"[88]

अलंकारों के प्रयोग में, ध्वन्यार्थ व्यंजना के उद्घोष में पद–विन्यास की सजावट और कुछ हद तक शैली में रवीन्द्र और निराला एक–सा ठहरते हैं। दोनों कवियों ने विराट औपम्य–योजना के द्वारा मनुष्य–मनुष्य

और मनुष्य व प्रकृति के बीच संबंध स्थापित किया है। यथा–रवीन्द की 'आकाश वीनार तारे तारे' की तरह निराला लिखते हैं:– *"गगन वीणा बजी/किरण के तार पर।"*[89] ध्वन्यात्मक व्यंजना में भी समानता द्रष्टव्य है। यथा–रवीन्द्रनाथ के 'कंकण झंकार नुपुर बाजे' के आधार पर निराला लिखते हैं–

"कण–कण कर कंकण प्रिय,
किण–किण रव किंकणी।"[90]

जिस प्रकार माइकेल मधुसूदन दत्त और रवीन्द्रनाथ ने बंगला भाषा को संस्कृत के तत्सम शब्दों की सहायता से एकदम नया रूप दिया, उसी प्रकार निराला ने बंगाल के पद–विन्यास को अभिनव संस्कार दिया। निराला की मुक्त छंद की पहली कविता 'जूही की कली' में 'विजन वन वल्लरी', 'अमल–कोमल–तन' आदि पर रवीन्द्र के पदों की गूँज अवश्य सुनाई पड़ती है। रवीन्द्र की 'शाहजहाँ' कविता में 'हे सम्राट कवि' की गूँज निराला की कविता 'सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति' में मिलेगी। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार– *"'सरोज–स्मृति' में जहाँ भोगवती के ऊपर उमड़ते हुए जल का वर्णन किया है, वहाँ उसे देह के बाँध से सीमित मर्यादित होते हुए भी दिखाया है:*

पर बँधा देह के दिव्य बाँध
छलकता दृगों के साथ–साथ।

यह भाव उन्होंने रवीन्द्रनाथ की 'विजयनी' से लिया है:–

अंगे अंगे यौवनेर तरंग उच्छल
लावण्येर मायामंत्रे स्थिर अचंचल।"[91]

जहाँ तक शैली का प्रश्न है निराला की दीर्घ–समास प्रधान शैली पर बंगला की समास–गुंफित पद–वल्लरी का प्रभाव दिख पड़ेगा जहाँ क्रियापद का लोप हो जाता है जैसे– *"निशा–प्रिय–उर शयन–सुरत धन।"*[92] इस ओर 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी इशारा किया था।"

निराला की प्रसिद्धि काव्य में मुक्त छंदों के निर्भय प्रयोग के लिए रही है। डॉ. बच्चन सिंह निराला के मुक्त छंद पर कहीं न कहीं बंगाली रंगमंच की भूमिका मानते हैं। उनका कहना हैः– *"हिन्दी रंगमंच के अल्फ्रेड और कोरोन्थियस के नाटक उन्हें पसंद न आते थे। पात्रों के भद्दे अस्वाभाविक कथोपकथन को ठीक करने की कल्पना से ही मुक्त छंद की सृष्टि हुई।*[03] निराला जी ने स्वयं 'पतंजी और पल्लव' निबंध में इस सत्य की ओर इशारा करते हुए लिखा हैः– *"कल्पना की सुदूर भूमि से हिन्दी के अभिनय की सफलता पर विचार करते हुए, बोलते हुए, पाठ खेलते हुए जिस छंद की सृष्टि हुई, वह यही है और पीछे से विचार करके भी देखा तो इसे स्वभाववश निश्छल हृदय की सत्य ज्योति की तरह निकला हुआ पाया।*[04] निराला ने जहाँ गद्यमय कविता की रचना की है, वहाँ बहुत हद तक रवीन्द्रनाथ का प्रभाव है। गद्य–कविता का आभास युक्त अत्यानुप्रास विरहित काव्यमय स्पंदनयुक्त छंद जैसा रवीन्द्र ने लिखा था– धनेश्वरी। नीद तीरे। पसीदेर ग्राम' उसी प्रकार निराला लिखते हैं– *"दूर तक/हरियाली ज्वार की/अरहर की/*[05]

निराला की संपूर्ण कविताओं पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि निराला की रहस्यवादी कविताओं पर रवीन्द्रनाथ और रामकृष्ण परमहंस का सम्मिलित प्रभाव है, पर वह उतना नहीं है, जितना उनकी रूमानी कविताओं पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव। 'भावों की भिड़ंत' के बाद निराला ने रवीन्द्रनाथ से मुक्ति का काफी प्रयत्न किया और कुछ कविताएँ उस प्रभाव की विरोधी दिशा में है। हाँ! निराला की पहले चरण की रचनाओं में रवीन्द्रनाथ का प्रभाव अधिक है जो क्रमशः कम हो जाता है और 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत–गुंज' और 'सांध्य काकली' में यह प्रायः नगण्य रह जाता है। निराला ने जहाँ रवीन्द्रनाथ का सीधा अनुकरण किया है, वहाँ उनकी विशेषताएँ दबी रह गई है। हाँ! जहाँ उन्होंने रवीन्द्रनाथ से अप्रत्यक्ष प्रेरणा ली है, और उनसे अच्छा लिखने के संकल्प के साथ अपनी मौलिकता का समावेश किया है, वह कृति अच्छी बन पड़ी है। यथा–'तुलसीदास' में जो शिल्प उकेरा गया है वो रवीन्द्रनाथ की कृति 'कथा ओ काहिनी' से भिन्न है और इसमें निराला का जीवन–संघर्ष भी शामिल है। कहीं–कहीं उन्होंने रवीन्द्रनाथ और कालिदास के शृंगारिका भावों को मिला दिया है। फिर भी,

निराला अपने विद्रोही स्वभाव, शक्ति–आराधना, विकट जीवन–संघर्ष और उदात्त चित्रण में रवीन्द्रनाथ से भिन्न ठहरते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा है:– *"निराला और रवीन्द्रनाथ की भाषा में बहुत बड़ा अंतर समास–रचना को लेकर है। कालिदासीय समास–रचना–पद्धति निराला में हैं, रवीन्द्रनाथ में नहीं। इसके सिवा रवीन्द्रनाथ की भाषा अर्थ में सुबोध, निराला की उतनी ही दुरूह है। निराला और रवीन्द्रनाथ के काव्य–कौशल में मौलिक अंतर है। अर्थ–वक्रता, भाव–घनत्व, उदात्त ध्वनि–प्रवाह, चमत्कारी नाटकीय वैषम्य निराला काव्य की विशेषताएँ हैं। अर्थ की सरलता, भाव की तरलता, ध्वनि की कोमलता और माधुरी, लिरिक कविता की गेयता स्वतः स्फूर्त भावराशि रवीन्द्रनाथ के काव्य की विशेषताएँ हैं। निराला उदात्त* शृंगार, *शक्तिपूजा, विकट जीवन–संघर्ष, अंधकार और मृत्यु के कवि है।"*[96] यही विशेषताएँ उन्हें कृतिवास से भी अलग करती है।

'कृतिवास रामायण' के लंकाकांड में वह गहन अंधकार नहीं है जो 'राम की शक्तिपूजा' का केन्द्र बिन्दु है और जहाँ राम का सारा अंतर्द्वंद्व निखर कर सामने आता है। कृतिवास के राम में रूदन बहुत अधिक है और अन्य पात्रों में भी। निराला के राम में दुःख तो है, पर 'थका हुआ मन' नहीं है। दूसरी बात 'कृतिवास रामायण' में ब्रह्मा राम को देवी–पूजा की सलाह देते है, निराला के यहाँ जाम्बवान। तीसरी बात 'कृतिवास रामायण' में राम द्वारा किए जाने वाले 'चंडीपाठ' पर बंगाल के देवी–पूजा का प्रभाव है। उसमें पूजा के दौरान लोगों ने प्रेमानंद में मग्न होकर गाना और नाचना शुरू कर दिया, यह चैतन्य महाप्रभु के प्रदेश की संस्कृति का अंग है। निराला ज्ञान–साधना के कवि थे इसलिए वे राम के मन को योग द्वारा सहस्रार तक चढ़ने का जिक्र करते हैं। 'कृतिवास रामायण' में राम को बार–बार देवी के समक्ष रोते गिड़गिड़ाते चित्रित किया गया है जो राम के धीरोदात्त गुण को गायब कर देता है। 'राम की शक्तिपूजा' के अंत में निराला राम के बदन में 'देवी को लीन करते हैं, जबकि 'कृतिवास रामायण' में दुर्गा अंतर्धान रहती हैं। निराला जिस शक्ति–संचय या शक्ति को आत्मस्थ करने की बात करते हैं वो 'राम की शक्ति–पूजा' में है। यह निराला का स्वयं का संघर्ष और आत्म–साक्षात्कार है जो 'कृतिवास

रामायण' पर आधारित 'राम की शक्तिपूजा' को मौलिक व भिन्न बनाता है। दूधनाथ सिंह के शब्दों में कहें तो :–*"राष्ट्रीय मुक्ति के ऐतिहासिक समसामयिक अर्थ की प्रतिष्ठा से भी अधिक सघन और महत्वपूर्ण अर्थ राम के चरित्र के माध्यम से कवि की अपनी ही अखंड रचनात्मक विजय की पहचान है। यही आत्म–साक्षात्कार का संघटित अर्थ इस कविता को सर्वथा एक नए और अनछुए धरातल पर ला खड़ा करता है।*[87]

'रवीन्द्र–कविता कानन' के अंतर्गत निराला ने संगीत काव्य की बड़ी विशद व्यंजना की है। इसमें उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि कविता की तरह संगीत की भी एक अलग शाखा है। अच्छा कविता पाठ करने वाला अपनी रागिनी से मुशायरा लूट सकता है, पर जरूरी नहीं, कि वह अच्छा कवि भी हो। इसलिए निराला लिखते हैं:–*"शब्द शिल्पी संगीत–शिल्पियों की नकल न करें तो बहुत अच्छा है।*[88] हालाँकि, वो काव्य–शिल्पी और संगीत विशारद दोनों होना एक बड़ा गुण मानते हैं। रवीन्द्रनाथ के लिए उन्होंने लिखा है:–*"रवीन्द्रनाथ जितने ही बड़े शब्द–शिल्पी हैं, उतने ही बड़े संगीत–विशारद भी हैं, बल्कि उनके लिए यह कहना चाहिए कि संसार के श्रेष्ठ स्थान उन्हें जिस पुस्तक द्वारा प्राप्त हुआ है, वह संगीत की ही हैं 'गीतांजली' में भाव–भाषा और स्वर के समावेश से जिस स्वर्गीय छटा का उद्‌बोध होता है, महाकवि रवीन्द्रनाथ ने बड़ी निपुणता से उसे संसार के सामने ला रखा है।*[89] गीतों व संगीत के प्रति लगाव निराला का भी रहा। सूरदास व मीरा की संगीतात्मक पदावलियाँ उनका आदर्श रहीं। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के कीर्त्तन चंडीदास तथा गोविन्द दास की संगीतात्मक पदावलियों की धूम रही। चंडीदास पर निराला ने दो स्वतंत्र निबंध भी लिखे–'कविवर चंडीदास' और 'विद्यापति और चंडीदास'। इसके अलावे उन्होंने एक और निबंध 'बंगाल के वैष्णव कवियों की श्रृंगार वर्णना' में साहित्य–संगीत व शृंगार का संबंध स्थापित किया है।

'बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार वर्णना' निबंध तो जैसे निराला ने डूब कर लिखा है। उक्त निबंध में निराला ने स्पष्ट कर दिया–*"जिस तरह दिन को सिद्ध करने के लिए रात्रि की आवश्यकता है और रात्रि को सिद्ध करने के लिए दिन की, उसी तरह वीर के लिए शृंगार और शृंगार*

के लिए वीर की आवश्यकता है। यदि इनमें से एक न रहा तो दूसरा रह ही नहीं सकता। यही रहस्य और यही सत्य है। वीर्य की आवश्यकता क्यों है? भोग के लिए चाहे राज्यभोग हो या अन्य भोग। इसी तरह भोग या गुंजन के बिना वीर्य भी नहीं बढ़ सकता।[100] निराला के अनुसार रामायण के लंकाकांड के मूल में है श्रृंगारमयी सीतादेवी तो महाभारत के मूल में द्रौपदी। अकारण नहीं है कि 'राम की शक्तिपूजा' में निराला के राम को जानकी से प्रथम मिलन का स्मरण हो पाता है। निराला का मानना है कि बंगाल के वैष्णव कवियों ने श्रृंगार की धारा बहा दी हालांकि उन पर हिन्दी की ब्रज–भाषा शैली का बहुत प्रभाव है। जहाँ तक रवीन्द्रनाथ का प्रश्न है, उन्होंने रवीन्द्र की आलोचना करते हुए लिखा :–*"इन वैष्णव कवियों से कविवर रवीन्द्रनाथ ने इतना ऋण लिया है जिसका ठिकाना नहीं, परन्तु ब्याज में उन्होंने किसी को एक कौड़ी भी नहीं दी। हाँ, एक वैष्णव कविता में अपनी ओर से उनकी तारीफ जरूर कर दी है। क्या इन कवियों ने भी साहित्य के बाजार में कहीं तारीफ का सौदा किया है?*[101] स्पष्ट है कि रवीन्द्रनाथ ने जो कुछ लिखा, वो बहुत कुछ विरासत से ही प्राप्त किया।

'गीतिका' की भूमिका में निराला बंगाल के वैष्णव कवियों पर संस्कृत के जयदेव कृत 'गीत–गोविन्द का प्रभाव बतलाते हैं। जहाँ तक रवीन्द्रनाथ का प्रश्न है, उनके संगीत को उन्होंने बहुत कुछ अंगरेजी ढंग का माना है। वे लिखते हैं:–*"अंगरेजी संगीत के नाम से जो कुछ लिया गया, उसे हम अंगरेजी संगीत का ढंग कह सकते हैं। स्वर–मैत्री हिन्दुस्तानी ही रही। डी. एल. राय और रवीन्द्रनाथ इस ढंग के अपनाने के प्रधान साहित्यिक कहे जायेंगे।.....स्वर मैत्री के विचार से रवीन्द्रनाथ के संगीत का ढंग और साफ अंगरेजीपन लिए हुए हैं। फिर भी ये भिन्न–भिन्न रागिनियों में ही बँधे हुए हैं। सिर्फ अदायगी अंगरेजी है। राग–रागिनियों में भी स्वतंत्रता ली गयी है।*[102] निराला इसे पूर्व–पश्चिम के समन्वय से उत्पन्न एक प्रकार की मौलिकता ही मानते हैं। आगे उन्होंने जो लिखा है, उसे उनपर बंगाल का प्रभाव साफ दृष्टिगोचर होता है। निराला के शब्दों में:–*"यद्यपि मुझे पश्चिम के किसी प्रसिद्ध देश में अधिक काल तक रहने का सुयोग नहीं मिला, फिर भी मैं कलकत्ता और बंगाल में उम्र के बत्तीस साल तक रह चुका हूँ और कलकत्ता में आधुनिक भावना के किसी आकार*

से अपरिचित रहने की किसी के लिए वजह न होगी अगर वह अपने काम से ही काम रखकर परिचय भी करना चाहता है।..... जिस तरह घर के अहाते में घर के, अवधी, बैसवाड़ी या कनौजिया संस्कार तैयार हो रहे थे, उसी तरह बाहर, बाहरी संसार के। अंत में वे मेरे अपने संस्कार बन गए। वे मेरे साहित्य में प्रतिफलित हुए जिससे हिन्दी साहित्य और हिन्दू–संस्कृति को मेरे साहित्य के समझदारों के कथनानुसार गहरा धक्का लगा है।"[103] यहाँ 'हिन्दी साहित्य' के साथ 'हिन्दू–संस्कृति' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। जो लोग निराला की कविता 'महाराज शिवाजी का पत्र' पढ़कर उन्हें हिन्दू–संस्कृति' का पोषक बतलाते हैं, वे इस कथन से जरूर आहत होंगे। खैर, यहाँ, एक बात तो स्पष्ट है कि निराला ने सभी साहित्य से अच्छे गुणों को लिया। जहाँ तक संगीत का प्रश्न है, निराला के गीतों पर ब्रजभाषा के कवियों, सूर, मीरा के अलावा तुलसी, कबीर, बंगाल के वैष्णव कवियों और रवीन्द्रनाथ का भी थोड़ा–बहुत प्रभाव है। परंतु, मौलिकता उनकी अपनी है जो उसे नए संस्कार में ढालती है। निराला ने 'गीतिका' में स्पष्ट कर दियाः– *"भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिए हुए हैं। साथ–साथ उसके व्यक्तीकरण में एक–एक कला है जिसका परिचय विज्ञ जन अपने अन्वेषण से आप प्राप्त कर सकेंगे।"*[104]

अगस्त–सितंबर,1923 में निराला ने एक लेख लिखा था– 'हिन्दी और बंगाल की कविता।' उक्त लेख में उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि 'बंगला में गणात्मक छंद नहीं है। बंगाल के सभी छंद मात्रिक हैं फिर भी हिन्दी के मात्रिक छंदों से विशेषता लिए हुए हैं जहाँ क्रिया–पदों का लोप है। इसे निराला ने जरूर अपनाया। 'राम की शक्ति–पूजा' की आरंभ की अठारह पंक्तियां तो जैसे एक वाक्य हैं– क्रिया रहित। उक्त निबंध में निराला ने यह भी लिखा है कि कविवर रवीन्द्रनाथ की कविता को वही अच्छे से समझ कर भाव–साम्यता कर सकता है जो बंगाली हो, उसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त की कविता का भाव–सौष्ठव खड़ी–बोली प्रेमी ही समझ सकता हैं। यह भाषा का जातीय संस्कार है जो देशकालीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है। परन्तु, अच्छा कवि भाव लेने से विरोध नहीं रखता। निराला लिखते हैंः– *"भाषा पर जिन कवियों का अधिकार है, उन्हीं की कृति को कविता का आसन मिलता है। अन्यथा उच्छ्वास*

बालकों के हृदय में ही अधिक उत्पन्न होता है। जो छंदशास्त्र के ज्ञाता हैं और कवि हैं वे किसी भाव के आते ही अपने हृदय को नियंत्रित कर लेते हैं। तब उनका कंपन छंद के अनुसार ही होता रहता है। फिर तो वाग्धारा स्वभावतः कविता बनती चली जाती है।[105] यही बात निराला के लिए भी सत्य है। निराला ने बंगला से बहुत कुछ लिया, पर अपने 'हृदय को नियंत्रित' कर अपनी भाषा से नया रूप दिया। निराला ने जहाँ कहीं भावापहरण किया है, वह उनके व्यक्तित्व की विद्रोही चेतना एवं भाषा–सौष्ठव से हिन्दी का अलंकरण ही बन गया है। रही बात आलोचकों की तो निराला ने पहले ही कह रखा हैः–

"फल सर्वश्रेष्ठ नायाब चीज
या तुम बाँधकर रंगा धागा,
फल के भी उर का कटु त्यागा,
मेरा आलोचक एक बीज।"[106]

(2) 'छदों को विनिस्तार दिए जा रहा हूँ': उर्दू गजलों से दो–दो हाथ

संकोच को विस्तार दिए जा रहा हूँ मैं,
छंदों को विनिस्तार दिए जा रहा हूँ मैं।
उपवन में शायरी के मेरे शब्द यों आए
जैसे फूलों को भार दिए जा रहा हूँ मैं।"[107]

निराला एक ऐसे कवि थे जिसने अपने बंधे–बंधाये प्रतिमान कई बार तोड़े, कई बार राह बदली, कई तरह के हाथ आजमाए। 'बेला' में संकलित उपर्युक्त गजल निराला के एक नए प्रयोग की ओर इशारा कर रही है। वह कवि जो 'राम की शक्तिपूजा' जैसी क्लिष्ट तत्सम प्रधान भाषा–लिख चुका है, उसे अचानक उर्दू की तरफ मुखातिब होने में कुछ न कुछ संकोच अवश्य होगा। पर जो 'संकोच' को 'कलम की मोच' बना ले तो साहित्यकार कैसा? निराला 'संकोच' को कागजों में 'नई सोच' में बदलते हैं। मुक्त छंद का प्रर्वतक कवि 'छंदों को विनिस्तार' देने के लिए फारसी के छंदों की ओर मुड़ता है। 'बेला' के आवेदन में निराला लिखते हैं:– ***"भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं। देशभक्ति के गीत भी हैं। बढ़कर नई बात यह है कि अलग–अलग बहरों की गजलें हैं जिसमें फारसी के छंदशास्त्र का निर्वाह किया गया है। काव्य की कसौटी भी है।"[108]*** निराला पर उर्दू का क्या प्रभाव पड़ा या यह प्रभाव ही था, या प्रतिक्रिया जिससे वे उर्दू गजलों की तरफ मुखातिक हुए; इस पर विचार की जरूरत है।

'मतवाला' मंडल में निराला दो लोगों के ज्यादा निकट में आए–महादेव प्रसाद सेठ जो प्रेस के मालिक थे और 'समन्वय' व 'मतवाला' वही से छपता था। दूसरे व्यक्ति थे मुंशी नवजादिक लाल जो 'मतवाला' के प्रबंधक व संपादक थे। दोनों ही उर्दू–प्रेमी थे। महादेव प्रसाद सेठ बात–बात पर उर्दू शेर 'उद्धृत करते। जब मिशन स्कूल में पढ़ते थे खुद 'रजा' नाम से शेर कहते थे। महादेव प्रसाद जी तो जैसे गालिब को रटे हुए थे। महादेव प्रसाद जी ही निराला को गालिब के शेर सुनाते, निराला उन शेरों को याद कर लेते। परन्तु, यह शेर बस याद करने के

लिए नहीं होता। वरन् निराला उसकी अपनी तरह से व्याख्या करते। वेदांत की कसौटी पर परखकर गालिब की रचनाओं को देखते। दूसरी ओर मुंशी नवजादिकलाल खुद को उर्दू का महारथी समझते थे। भाषा शास्त्र पर उनकी पकड़ अच्छी थी। निराला अपने अंग्रेजी ज्ञान को हिन्दी–प्रयोग में उतारकर मुंशी जी से बहस करते। 'मतवाला'–मंडल में रहकर ही निराला उर्दू की गजलों, शेरों की ओर मुखातिब होने लगे थे। पर बस यह कुछ शेरों को याद कर उनका विश्लेषण करना ही था। परन्तु, महादेव प्रसाद जी के मुख से उन पर गालिब का ऐसा रौब जमा कि निराला के दार्शनिक मस्तिष्क में तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ के बाद तीसरा नाम भी जुड़ गया– 'गालिब'। यही बनी निराला के लिए 'साहित्य की समतल भूमि' जहाँ उन्होंने साहित्य और ज्ञान की भूमि पर मुसलमानों को जोड़ दिया।

जुलाई–अगस्त 1926 ई0 के 'समन्वय' में निराला का लेख प्रकाशित हुआ–'साहित्य की समतल भूमि'। इस लेख में पहली बार निराला विश्व–मैत्री की पृष्ठभूमि पर उर्दू साहित्य की मानवतावादी और असीम ज्ञान की सीमा विरोधी दृष्टि की ओर इंगित करते है। पहला उद्धरण निराला ने नजीर का दिया है। उनकी 'कुछ जुल्म नहीं कुछ जोर नहीं' गजल को निराला ने आनंददायिनी अवस्था बतलाया जहाँ ऐकदेशिकता नष्ट हो जाती है। निराला के अनुसार, नजीर यहाँ न मुसलमान है, न मनुष्य है, बस सीमातीत जीव हैं। नजीर की नज्म 'तनहा न उसे अपने दिले तंग में पहचान' की तुलना निराला तुलसीदास के 'अव्यक्तमूलमनादि तरू त्वच' से करते हुए लिखते हैंः–*"विजय और पराजय में, हर जगह यथार्थ अस्तित्व के रूप से नजीर अद्वैत सत्ता को प्रत्यक्ष करते हैं और तुलसीदास कटु मधुर फलों को देने वाली (माया) लता के आश्रय, संसार–विटप को एक ही अव्यक्त सत्ता का स्वरूप कहकर नमस्कार करते हैं। यहाँ नजीर और तुलसीदास साहित्य की समानभूमि पर हैं। दोनों के भाव एक हैं, इसलिए मन भी एक–सा है।"*[409]

निराला गालिब की शायरी को बहुत पसंद करते थे। उनके एक शेर–'न था कुछ तो खुदा था कुछ न होता तो खुदा होता' को वे अक्सर

उद्धृत करते और इसकी वेदांत दर्शन से तुलना कर इसमें अद्वैतवाद छाँटा करते। साहित्य की समतल भूमि' निबंध में भी वे लिखते हैं:– *"सब खो जाता है मैं के न रहने पर। गालिब की यह भूमि सार्वजनिक है। संसार के उन्नत और परिमार्जित विचारवाले मनुष्य उसके साथ सहमत हैं। यहाँ हिन्दू–मुसलमान और ईसाई का घेरा नहीं है। सब साहित्यों के लिए इसे सम्मेलन भूमि कह सकते हैं।"*[410] उसी प्रकार निराला उक्त निबंध में इंशा के शेर 'रखते हैं कहीं पाँव तो पड़ता है कहीं और' में भी ईश्वरीय आनंद ढूंढ लेते हैं, जबकि बात साकी की हो रही है। निराला लिखते हैं:– *"उन्हें वह आनंद कविता द्वारा मिल रहा है। वे मस्त हैं। लेकिन अभी बेहोश नहीं हुए, कुछ ज्ञान अभी भी है, इसलिए पहले ही साकी को अपनी हालत बतलाए देते हैं। साकी भी पास ही है। ईश्वर से नजदीक और कोई नहीं, भारत के कुछ तत्ववेत्ताओं ने यही कहा है। इंशा भी, पिलाने वाले और सबसे नजदीक रहनेवाले साकी को हाथ लेने के लए आगाह कर रहे हैं।"*[411] यह निराला का अपना आनंद और आत्म–दर्शन है–पीने पिलाने वाला। 'साकी' तो निराला को भी प्रिय था। निजी जीवन में उस आनंद को वे खुद कम नहीं समझते थे। उक्त निबंध में ही आगे चलकर निराला 'नामो–निशां को मिटाने वाले मीर के शेर' की तारीफ करते हैं। निराला 'दिखायी दिए यूँ कि बेखुद किया' शेर पर रीझ जाते हैं, उसे भारतीय साधना व अद्वैतवाद से जोड़ते हैं। अंत में निराला इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं:– *"साहित्य के भीतर से देखिए कि साहित्य की भूमि में हिन्दू और मुसलमान बराबर हैं। दूसरे किसी साहित्य का विचार नहीं किया गया, केवल उर्दू के साथ, संक्षेप में, भारतीय भावों की परीक्षा की गई है। साहित्य के भीतर से मैत्री स्थापना प्रशंसनीय है।"*[412] दरअसल साहित्य का गुण ही सर्वहितभाव में निहित है। निराला जिसे 'साहित्य की समतल भूमि' कहते हैं, उसे ही आचार्य शुक्ल 'लोकसामान्य की भावभूमि' कहा करते थे।

निराला केवल 'साहित्य की समतल भूमि' पर ही नहीं हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात करते थे, वरन् वास्तविक जीवन में भी हिन्दू–मुस्लिम एकता को महत्वपूर्ण मानते थे। हमारे 'हिन्दू और मुसलमान' निबंध में निराला लिखते हैं:– *"हम इसलिए हिन्दुओं को अपना वह स्वरूप इख्तियार करने के लिए लिखते हैं, जो वे भूल रहे हैं और जो सबसे उत्तम, संसार*

को अपनी विशालता में मिलाने वाला वेदान्तवेद्य रूप है। हिन्दुओं की संकीर्णता के कारण ही मुसलमान इस देश में संकीर्ण हो रहे हैं।"[113] निराला अपने साहित्य में बार–बार उस मानुष धर्म 'उस मानव' को आगे करते हैं जो कभी भक्तिकाल का लक्ष्य था। 'हिन्दू–मुस्लिम समस्या' नामक टिप्पणी में वे यही प्रश्न उठाते हैं कि हमारे समाज में वर्त्तमान मनुष्य धर्म का व्यापक प्रचार नहीं हुआ है। निराला बड़े पते की बात कहते हैं– *"राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद एक–एक आदर्श व्यक्ति रहेंगे पर व्यक्ति के नियामक नहीं, उनकी तारीफ होगी, पर उनके पीछे जान देना मनुष्यता से दूर समझा जाएगा। कारण, हर मनुष्य की वही कीमत है, जो राम–कृष्ण और ईसा–मुहम्मद की है।"*[114] जाहिर है कि निराला धर्म के नाम पर मरना–मारना व्यक्तिगत उन्नति और सामाजिक व राष्ट्रीय समरसता के लिए बाधक समझते थे।

निराला की गजल–साधना के पीछे मुस्लिमों और उर्दू साहित्य के प्रति संवेदनापूर्ण दृष्टि ही नहीं थी वरन् उसके पीछे भी एक कहानी है जिसका जिक्र डॉ. रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–1) में किया है। कहानी की शुरूआत होती है सज्जाद जहीर साहब से जिन्होंने 'प्रोगेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नाम की संस्था बनाई थी। प्रेमचंद के निधन पर संस्था की तरफ से शोक–सभा में निराला और सज्जाद जहीर की मुलाकात हुई थी। इलाहाबाद युनिवर्सिटी के एक कार्यक्रम में निराला ने हिन्दी साहित्य के संदर्भ में वही भाव रखे जो उन्होंने 'साहित्य की समतल भूमि' में रखे थे अर्थात् हिन्दी साहित्य में संसार के बड़े–बड़े साहित्यिक एक–दूसरे के भावों में मिलते हैं। जब किसी मुस्लिम सज्जन ने टोका तो निराला जी ने 'टूटे सकल बंध' कविता की निम्नलिखित पंक्तियां सुनाईः–

"टूटे सकल बंध
कलि के, दिशा–ज्ञान–गत हो गन्ध।"[115]

जाहिर है कि निराला साहित्य की भूमि पर देश, काल व सीमा के सारे बंधन तोड़कर विश्व–बंधुत्व की नींव रखना चाहते थे। लखनऊ में

बहुत वर्षों तक रहते हुए उर्दू की तरफ निराला की संवेदना रही होगी, पर यह समृद्ध हुई रघुपति सहाय फिराक के उनके जीवन मे प्रवेश से।

बात सन् 1942 की है जब निराला इलाहाबाद के दारागंज मुहल्ले में किराए पर रहते थे। इन्हीं दिनों इलाहाबाद से निकलनेवाली पत्रिका 'तरूण' में उर्दू के प्रसिद्ध कवि रघुपति सहाय फिराक की लेखमाल–'हिन्दी कवियों से बातचीत–प्रकाशित हुई। उक्त लेख में उन्होंने हिन्दी वालों पर मूर्खतापूर्ण ब्राह्णत्व' का आरोप लगाया था। उस जमाने में यह कहना कि 'हिन्दी के आचार्यों, पंडितों और समालोचकों में अब तक गलत किस्म का ब्राह्णत्व और छूतछात है'– बड़ी बात थी। उनका मानना है कि हिन्दी के बहुत से विद्वानों से अच्छा तो विश्वविद्यालय में पढ़नेवाले लड़के लिख लेते हैं। उल्टे हिन्दी के विद्वानों की सीमा सूर और तुलसीदास पर ही मोटी पोथियाँ लिखने भर की है। हद तो तब हो गई जब उन्होंने 'कामायनी' और छायावाद को आड़े हाथ लिया। छायावादी कविताएँ अर्थात् प्रसाद, पंत, निराला आदि की कविताएँ उन्हें 'पागलों की कल्पनाएँ लगीं और उनकी बोली को 'पागलों की बड़बड़ाहट' घोषित किया। 'कामायनी' के कुछ उद्धारण देकर उन्होंने यह समझाने का प्रयत्न किया कि तत्कालीन हिन्दी कविता गुमराह करनेवाली, फूहड़ और गँवार बना देने वाली है। दरअसल फिराक की तमन्ना थी कि 'कामायनी' की आलोचना करके प्रसाद जी को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे।

डॉ. रामविलास शर्मा फिराक की इस मनोस्थिति के बारे में लिखते हैं:– *"फिराक के मन में एक प्रच्छन्न अपराध भावना काम कर रही थी। उनका आदर्श एक ऐसा रघुपति सहाय था जो संस्कृत का विद्वान, उपनिषदों का पंडित, हिन्दू संस्कृति का उपासक था। व्यवहार में वह महज फिराक थे, संस्कृत और हिन्दू संस्कृति के बारे में सुनी–सुनाई बातें कहनेवाले, उर्दू के सेवक, सभ्यता में हिन्दुओं से ज्यादा मुसलमानों के नजदीक । भाषा और साहित्य की समस्याओं पर वह सांप्रदायिक छोड़ कर और किसी दृष्टिकोण से सोच ही न पाते थे।"*[116] दरअसल रघुपति जी को संस्कृत शब्दों को तत्सम रूप में प्रदर्शित करके विद्वता दिखलाने का शौक था। जिस भाषा के रूप में वो कम जानते थे, वह संस्कृत थी। पर, गुमान

था कि वो संस्कृत सीखें और जो कुछ सीखा, उसी का प्रमाण ज्यादा देते थे। किन्तु, उर्दू की सेवा करने का उन्हें मलाल था। इस मलाल का गुस्सा वह हिन्दी लेखकों को गालियाँ देकर निकालते। फिराक तो बस प्रेमचंद की इज्जत करते थे, परन्तु, उन्हें हिन्दी से पहले उर्दू का लेखक मानते थे। इसके पहले प्रगतिशील लेखक संघ के चक्कर काटने वाले भुवनेश्वर ने निराला पर हमला कर रखा था। उन्होंने निराला को महान माना, पर महान कवि नहीं माना था। भुवनेश्वर भी जगह–जगह फिराक के लेखों का उदाहरण देकर हिन्दी वालों की खिल्ली उड़ा रहे थे। इधर प्रगतिशील उर्दू लेखक भी फिराक के लेख पढ़कर खुश हो रहे थे। दूसरी ओर हिन्दी में हाशिए पर आए लेखक भी यह मानने लगे थे कि सच में जबान लिखना तो उर्दू वाले ही जानते हैं, हिन्दी में रखा क्या है? निराला ने भी यह लेख पढ़ा। हालांकि तब तक निराला को ख्याति मिल चुकी थी, पर आर्थिक तंगी दूर नहीं हुई थी। हिन्दी तो हमेशा से ही अंग्रेजी के आगे उपेक्षित रही हैं। 'सुधा' के सितंबर, 1934 के अंक में निराला ने 'साहित्य और हमारे लेखकों का संकट' टिप्पणी में हिन्दी में पठनीयता के संकट पर लिखा है:– *"जो लोग उच्च शिक्षित है, आमदनी भी अच्छी है, वे हिन्दी की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देते। वे सैकड़ों रूपए अंग्रेजी–किताबों में खर्च कर देते हैं, पर साल भर में चार रूपए की भी हिन्दी की पुस्तकें नहीं खरीदते। उल्टे कहते हैं–"जनाब हिन्दी में क्या? क्यों कोई व्यर्थ खर्च करे?"*[117] तो, निराला पर इसका प्रभाव पड़ा। वे थोड़े विक्षुब्ध हुए। पर, खुद इसका जवाब न देकर डॉ. रामविलास शर्मा को देने को कहा। डॉ. शर्मा ने उसके विरोध में 'माधुरी' में लेख भी निकलवाया।

डॉ. रामविलास शर्मा ने फिराक पर जो लेख लिखा था, उसका शीर्षक है–'हिन्दी भाषा, साहित्य और फिराक'। यह लेख उनकी कृति 'परंपरा का मूल्यांकन' से संकलित है। उक्त लेख में डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है:– *"सभी जानते हैं कि हिन्दी के लेखकों ने सोने के कौर नहीं खाये। उनका जीवन त्याग, तपस्या और संघर्ष का जीवन रहा है। अपनी भाषा और साहित्य के लिए उन्होंने जो कष्ट सहे हैं, वे केवल किसी प्रवंचना और भुलावे में आकर या हिन्दी लिखने–बोलनेवालों का उनमें कोई हित भी हुआ है? श्री रघुपति सहाय ने उस साधना का जो मूल्य आंका है,*

वह मेरी समझ में गलत है।.... याद रखिए कि हिन्दी के महान कवि साहित्य–सेवी गंवार नहीं और जो उसको ऐसा कहेगा, उसे मुँह तोड़ उत्तर मिलेगा।[118] निराला ने जब यह लेख पढ़ा तो काफी प्रसन्न हुए।

उस समय बात आई–गई हो गई। निराला की फिराक से मुलाकात हुई प्रगतिशील लेखक संघ की इलाहाबाद शाखा की बैठक में, जो प्रकाश चंद्र गुप्त के आवास पर हुई थी। उसमें सभापति निराला बनाए गए थे जहाँ फिराक भी आए थे। वहाँ भी डॉ. रामविलास शर्मा ने फिराक पर कई आक्षेप किए, यहाँ तक एक–दो टिप्पणी चरित्र पर भी कर दी। निराला ने डॉ. शर्मा को जल्द बात खत्म करने को कहा। फिराक ने वहाँ किसी भी प्रकार की टिप्पणी न की, किसी प्रत्युत्तर का प्रयास नहीं किया। फिर, कुछ दिनों में निराला और फिराक की दोस्ती हो गई। निराला और फिराक के बीच दोस्ती का एक बड़ा कारण था–शराब। निराला फिराक के घर जाते, उनसे बहस करते, धमकाते और जब दोनों शराब पीते तो इस बात पर दोनों में समझौता हो जाता कि निराला के अलावा हिन्दी में कुछ नहीं रखा है। निराला ने देखा कि जिसको फिराक गाली देते हैं, वे भी उनकी इज्जत करते हैं। हृदय में अपमान के पुराने घाव निराला में हरे होने लगे। मान–सम्मान पाने की भावना बलवती हो गई। उन्हें लगने लगा कि मान–प्रतिष्ठा तो बस अंग्रेजी लिखने में मिलती है या उर्दू लिखने में। हिन्दी लेखकों का तो अंग्रेजी तथा उर्दू वाले अपमान करते ही हैं, स्वयं हिन्दी वालों से भी मान पाने की पुरानी इच्छा निराला में अभी भी बरकार थी। सन् 1937 में प्रकाशित 'वनबेला' कविता में निराला अपनी यह कामना व्यक्त कर चुके थे। 'राम की शक्तिपूजा' का हताश राम निराला में जाग्रत हुआ था और निराला ने 'वनबेला' में लिखा थाः–

"हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार।
सोचा न कभी–
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी।"[119]

उक्त कविता में आगे निराला ने राज–पुत्र होने का स्वप्न देखा था। निराला को लगा कि 'भविष्य की रचना' उर्दू लिखने में हो सकती है। डॉ.

रामविलास शर्मा उक्त प्रसंग के संदर्भ में लिखते हैं:– *"फिराक ने निराला के गद्य–पद्य में 'मुस्किराते, 'नव्वाब' आदि शब्दों का मजाब उड़ाया था। निराला ने तै किया कि उर्दू लिखकर फिराक को पछाड़ना है।"*[120] दूसरे शब्दों में कहें तो निराला के अंदर का पहलवान जाग उठा जो हर समय अखाड़े में चित्त करने का हौसला भरता था। निराला जितने विद्रोही थी और कभी मृत्यु गीत लिखनेवाले उतने ही शांत, उतना ही प्रतिस्पर्धा का भाव रखनेवाले। इससे कुछ हद तक निराला को महान व कालजयी लिखने की प्रेरणा मिली तो बहुत कुछ स्वाभाविक व मौलिक रचना–क्रम बर्बाद भी हुआ।

निराला को उर्दू ज्ञान तो पहले से था ही। नारायण प्रसाद बेताब, सनेही, नाथूराम शर्मा की वैसी रचनाएँ उन्होंने खूब पढ़ी थीं जो उर्दू से प्रभावित थी। मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं के समान ही वे सनेही जी की कविताओं में आकर्षण–शक्ति देखते थे। उन्होंने मार्च 1928 के 'सुधा' में प्रकाशित अपने निबंध 'हिन्दी कविता–साहित्य की प्रगति' में लिखा है:– *"गुप्त जी संस्कृत के शुद्ध प्रयोगों के पक्ष में रहते हैं, सनेही जी खिचड़ी शैली के पक्ष में, इतना ही अंतर मिलता है। सनेही जी की कविताएँ खिचड़ी शैली में होने के कारण स्वाभाविकता से विशेष संबंध रख कर चलती हैं।"*[121] मतलब निराला उर्दू शब्दों के बीच–बीच में प्रयोग को अधिक स्वाभाविकतापूर्ण मानते थे। महादेव प्रसाद सेठ ने गालिब के शेर पहले ही रटवा दिए थे। सन् 1929 में प्रकाशित अपने एक लेख 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य' में निराला, गालिब, नजीर, जौक, हाली आदि के शेरों से हिन्दी के प्राचीन कवियों के भावों से मिलान करवा चुके थे। उक्त निबंध में निराला लिख चुके थे– *"हिन्दुओं और मुसलमानों में विरोध के भाव दूर करने के लिए चाहिए कि दोनों के उत्कर्ष का पूर्ण रीति से ज्ञान कराया जाए। परस्पर के सामाजिक व्यवहारों में दोनों शरीक हों, दोनों एक–दूसरे की सभ्यता को पढ़े और सीखें। फिर जिस तरह भाषा में मुसलमानों के चिह्न रह गए हैं, और उन्हें अपना कहते हुए अब किसी भी हिन्दू को संकोच नहीं होता, उसी तरह मुसलमानों को भी आगे चलकर एक ही ज्ञान से प्रसूत समझकर अपने ही शरीर का एक अंग कहते हुए हिन्दुओं को संकोच नहीं होता।"*[122] लखनऊ में निराला ने मुसलमानों की

सभ्यता को नजदीक से देखा था। 'गीतिका' में लखनऊ–प्रवास के दौरान ही वह 'गयी निशा, वह हँसी दिशाएँ' जैसे में महारत हासिल की गयी तो सारा जोर उर्दू की गजलों की ओर लगा दिया।

निराला ने डॉ. रामविलास शर्मा को जो पत्र लिखा, उससे ज्ञात होता है कि उनका झुकाव सन् 1943 के आसपास उर्दू गजलों की ओर हुआ। 2 फरवरी, 1943, 22 फरवरी, 1943, 18 जून, 1943 और 2 दिसंबर, 1943 को निराला ने इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा को जो पत्र लिखा, उसमें अपने इस उर्दू–प्रेम का जिक्र किया है जो क्रम से इस प्रकार हैः–

(क) "उर्दू की हिन्दी में छपी गजलें पढ़ा करता हूँ।

(ख) इधर उर्दू शायरी के रसास्वादन में पड़ा हूँ।

(ग) कुछ गजलें लिखी हैं मैंने ..... "संकोच को विस्तार दिए जा रहा हूँ।"

(घ) जिगर लिखते हैं, मैं भी लिखूँगा।"[123]

'जिगर लिखते हैं तो मैं भी लिखूँगा– यह एक प्रकार का बालहठ था या आगे निकलने की महत्वाकांक्षा या मन में सम्मान पाने की अतृप्त इच्छा, और यही निराला के उर्दू गजलों का कारण बनी।

उर्दू गजलों से निराला जानकीवल्लभ शास्त्री को भी अवगत करा रहे थे। 2 दिसंबर, 1943 को उन्होंने जानकीवल्लभ शास्त्री को भी पत्र लिखा। अंत में वे गालिब के शेर के अनुवाद करके भी दिखाते हैं। निराला लिखते हैं–

"अभी तक हवा खाता रहा।
....."मौत का एक दिन मुअय्यन है
नींद क्यों रात भर नहीं आती।–गालिब
मुँह तके एक दिन मुताइन है
नींद भिनसार भर नहीं आई।–निराला।"[124]

आगे भी जानकीवल्लभ शास्त्री को उन्होंने अपनी गजलों के संदर्भ में लिखा–"इधर मेरा काम ढीला है। थोड़ा ही थोड़ा लिख पाता हूँ। फारसी छंदों पर कुछ गीत लिखे हैं–गजलें/अभी बहुत अच्छा नहीं बन पड़ता।

संस्कृत शब्दों से, जैसे–अशब्द हो गई वीणा, विभास बजता था

अभिय क्षरण, नव जीवन समास बजता था।

हिन्दी के जैसे–

हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन
गले के हार के होते हैं ये बहार के दिन।"[125]

निराला अपनी सीमा जानते थे। वे सजग पाठक और आत्मालोचक भी थे। तभी तो उन्होंने अपने गजलों के संदर्भ में कहा–"अभी बहुत अच्छा नहीं बन पड़ता।" डॉ. नामवर सिंह ने इस संदर्भ में लिखा है:–"निराला साथ–साथ उर्दू–हिन्दी दोनों में प्रयोग करते थे। गजलें लिखीं, गीत भी लिखें, मुक्त छंद भी लिखे। उस एक दशक में निराला का जो कृतित्व है, विशेष है। निराला सावधान थे जब वह गीत लिखते थे। उन्होंने कुँवर सुरेश सिंह को लिखते हुए भेजा कि गीत लिखे हैं, साधारण हैं। 'बेला' के गीतों के बारे में उनकी धारणा बहुत ऊँची न थी:–*"लिखे हैं हाथ आजमाने के लिए। भाषा बनाने के लिए ये साधारण हैं।"*[126]

निराला ने भले ही गजलें 'दो दो हाथ आजमाने' के लिए लिखीं या फिर फिराक या जिगर की तरह उर्दू का महारथी बनने की महत्वाकाँक्षा में, पर वे जानते थे कि उनकी गजलों में वह बात नहीं हैं। फिर भी, उन्होंने हिन्दी काव्य धारा को एक नई भाषा दी जिसकी शुरूआत वो 'कुकुरमुत्ता' में कर चुके थे। वह इस भाषा के द्वारा अपने ही गीतों की बनाई भूमि तोड़ रहे थे। वह कविता के पारंपरिक रूप को ध्वस्त कर नये तरह के काव्य निर्माण में लगे दिखते हैं। जब गजलों की परंपरा उर्दू में भी खत्म हो रही थी और नए कवि नए ढंग से मुक्तक और गीत लिख रहे थे, ऐसे में निराला का यह प्रयोग हिन्दी के लिए अच्छा ही निकला। इसी परंपरा में आगे शमशेर, दुष्यंत कुमार आदि कवि दिखते हैं।

निराला इन गजलों के माध्यम से अपने निजी जीवन से मुक्त होने की कोशिश करने लगे। हास्य–व्यंग्य, जन–साधारण की स्थापना और 'मैं शैली' में अभिव्यक्त करूणा जहाँ–जहाँ इन गजलों में मिली है, वे प्रभावशाली बन पड़े हैं। यथाः–

"चढ़ी हैं आँखें जहाँ की उतार लायेंगी।
बढ़ें हुओं को गिराकर सवाँर लायेंगी।
समाज ने सर उठाया है, राज बदला है
सलास वे पतझर से बहार लायेंगी।"[127]

निराला का गजलों में बहुत मन नहीं रमा। गजल का मुख्य विषय 'इश्क' रहा है। निराला के काव्य में प्रेम की पावनता है, उर्दू वाली मांसलता नहीं। अकारण नहीं है कि दूधनाथ सिंह उन्हें 'बुनियादी तौर पर बैष्णव संस्कारों के कवि' कहते हैं। डॉ. दूधनाथ सिंह के अनुसार जहाँ उन्होंने 'इश्किया गजल' लिखी भी है, वहाँ उर्दू शायरी की परंपरा का पिष्ट–पेषण करते हैं। दूधनाथ सिंह ने इन गजलों को कमजोर बतलाते हुए लिखा हैः– *"हास्य–व्यंग्य और जन–संपर्क की अनुभूतियों को व्यक्त करने के अनुकूल गजल का स्वभाव नहीं है। इसलिए गजल का यह स्वभाव निराला की प्रयोगशीलता से आड़े आता है।..... भाषिक संरचना के स्तर पर निराला ने संस्कृत के तत्सम और उर्दू शब्दों का एक अजीब–सा घाल–मेल किया है जो जगह–जगह हास्योत्पादक हो उठा है। कारण वही–विद्यागत पारंपरिकता में नयी संवेदना को ठूँसने का प्रयास है। इसके अलावा शायद निराला गजल के लिए संस्कृत तत्सम शब्दों तथा उर्दू–फारसी के शब्दों को मिला कर किसी नए भाषा–बंध का ईजाद करना भी चाहते थे। लेकिन इस प्रयत्न में भाषा की एक अजीब–सी बेस्वाद खिचड़ी तैयार होकर रह गयी।"*[128] भाषा की इस खिचड़ी को निराला सनेही जी के संदर्भ में पहले ही 'भाषा की अस्वाभाविकता' कह चुके थे। हालांकि गजलों में अपनी असफलता का मजाक उन्होंने खुद उड़ाया है–

"मैंने कला की पाटी ली है शेर के लिए
दुनिया के गोलन्दाजों को देखा, दहल गया।"[129]

निराला ने चाहे जिस स्पर्धा में 'बेला' की रचना की हो, पर अपने कविता के तीसरे चरण में संन्यासी भाव से वे अपनी सारी स्पर्धा भूल चुके होते हैं। वे फिराक की कविता की दाद देते हैं। पर फिराक ने निराला को कोसना नहीं छोड़ा। फिराक ने 17/09/1954 को देहरादून के एक जिज्ञासु छात्र को निराला के संदर्भ में लिखा–***"Except in about a dozen of peoms Nirala in rest of his work especially in his recent writings has written meaningless Jargons which is neighter chhayawad nor any wad."***[130] कोई निराला के कार्य को अर्थहीन कहें, निराला को इससे क्या? निराला 'इन शरों से बिंध' कर ही निराला बने हैं। गजलों में उन्होंने पहले ही कह रखा है–

"यह जीने का संग्राम करते हुए चले/
पहले के रहे दाम जो भरते हुए चले
दम लेता कौन वार होते ही रहे जहाँ/
जीते हुए भी लोभ से हरते हुए चले।"[131]

(3) 'कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर': पाश्चात्य काव्यधारा का अवलोकन एवं प्रभाव

"कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर
टी. एस. एलीयट ने जैसे दे मारा
पढ़नेवाले ने भी जिगर पर रखकर
हाथ, कहा, 'लिख दिया जहाँ सारा'।
ज्यादा देखने को आँख दबाकर
शाम को किसी ने जैसे देखा तारा।
जैसे प्रोगेसिव का कलम लेते ही
रोके नहीं रुकता जोश का पारा।"[132]

निराला की कविता 'कुकुरमुत्ता' का उपर्युक्त अंश 'सर्वहारा–दर्शन' का उपहास करती है। निराला इसके पहले 'मास्को डायेलाग्स' नामक कविता में भी 'सोशलिस्टों' पर व्यंग्य कर चुके थे। 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अधिवेशन में वे जाया भी करते थे और उनका असली चेहरा वह देख चुके थे। इसलिए यहाँ बात प्रोगेसिव की कही कई है। परंतु, उपर्युक्त पंक्तियों में जो बात 'टी.एस. इलियट' को लेकर कही गई है, वह महत्वपूर्ण है। 'कुकुरमुत्ता' के प्रकाशन के पूर्व 'तारसप्तक' प्रकाशित हो चुका था और हिन्दी में एक नई धारा 'प्रयोगवाद' के नाम से सामने आ रही थी। प्रयोगवादी कवियों के टी.एस. इलियट, एजरा पाउण्ड और फ्रायड जैसे साहित्यकार आदर्श थे। निराला ने इलियट के बहाने उन कवियों पर भी व्यंग्य किया है। इस प्रकार 'कुकुरमुत्ता' के माध्यम से निराला ने आधुनिक काव्य–यात्रा अर्थात् प्रयोगवादियों एवं प्रगतिवादियों दोनों पर व्यंग्य किया है। ये वे लोग हैं जिनकी खबर लेते हुए निराला ने बार–बार अपने लेखों में कहा– *".....भारतवर्ष में सौभाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश पश्चिमी चश्मे का ही रिवाज समाज की हर सूरत को देखने के लिए लोग कायम कर रहे हैं, मानो तमाम संसार अपनी चहल–पहल से दूसरों की आँखों में अपनी सजीवता का नक्शा खींच देने के लिए उतावला हो रहा है, कितने ही 'वाद' पृथ्वी की छाती पर विवाद विप्लव के चित्र अंकित करते जा रहे हैं।"*[133] ध्यातव्य है, यहाँ निराला 'पश्चिमी चश्मे' से समाज को देखनेवालों

को आड़े हाथ ले रहे हैं, ठीक उसी प्रकार जैसा कि आचार्य शुक्ल उसी युग में कहते थे कि 'आध्यात्मिक ढंग के चश्मे' आजकल सस्ते हो गए हैं। 'सबका अपना–अपना 'चश्मा' है पर निराला दूसरों के चश्मों से अपना साहित्य नहीं देखना चाहते थे। 'पश्चिमी चश्मे' वाले इलियट को पढ़कर 'सारे जहाँ का सत्य' देख पा रहे थे, जबकि निराला का मानना था कि वेदांत में सबकुछ निहित है।

निराला का झुकाव वेदांत की ओर था इसका यह मतलब नहीं है कि वे पश्चिमी साहित्य व विचारों के विरोधी थे। रवीन्द्रनाथ ने तो पहले ही विश्व–बंधुत्व की शिक्षा दे रखी थी। निराला भी मानते थे कि साहित्य का विकास तभी होगा, जबकि परिवर्तित परिस्थितियों और समय के अनुसार दूसरे देशों की सांस्कृतिक उपलब्धियों से भी सामंजस्य स्थापित किया जाए। 'सुधा' के नवम्बर, 1929 ई0 के अंक में प्रकाशित निबंध 'नवीन साहित्य और प्राचीन विचार' में निराला लिखते हैं कि 'विजातीय भावों के मिश्रण से ही संस्कार होता है, और उससे ही प्रगतिशीलता आती है और इन्हीं विरोधी गुणों से शक्ति का संचार होता है। आगे निराला लिखते हैंः– *"अतएव किसी साहित्य से किसी प्रकार के भावों का लेना या किसी प्रकार के प्रकाशन–ढंग का ग्रहण करना हमारे साहित्य के लिए अनर्थकर नहीं हो सकता जबकि विस्तृत संसार की एकता की तरह मानवीय कुल संबंधों को लेकर हम भी संसार के मनुष्यों के साथ एक ही हो रहे हैं।..... इस छोटी सी अंगरेज–जाति के अंदर वह कौन–सा पौरूष उसके साहित्य ने भर दिया है, जिसके प्रबल प्रताप की सीमा को सूर्य भी नहीं पार कर पाते, क्या इसके जानने की, इससे कुछ लेने की हमारी साहित्य को बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं?"*[434] जाहिर है कि निराला हिन्दी साहित्य में विजातीय भावों को एक सीमा तक लेने से परहेज नहीं करते।

यदि आधुनिक हिन्दी काव्य पर नजर डालें तो खड़ी बोली की आरंभिक कविताओं पर पाश्चात्य कवियों का प्रभाव देखा जा सकता है। यथा खड़ी बोली के आरंभिक कवियों श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुधर पांडेय आदि पर अंग्रेजी के शेंस्टन, ग्रे–गोल्डस्मिथ आदि कवियों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। द्विवेदी काल में कई अंग्रेजी कवियों की

कविताओं का हिन्दी अनुवाद भी हुआ। बंगाल की कविता पहले से ही अंग्रेजी काव्य से प्रभावित थी। छायावादी कवियों ने अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य की अनेक प्रवृतियों को अपनाया जिसमें शैली, कीट्स, वर्डसवर्थ आदि प्रमुख थे। इसके पीछे टैगोर पर इन कवियों का प्रभाव पड़ना और 'गीतांजलि' की विश्वव्यापी ख्याति थी।

पाश्चात्य रोमैंटिक काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां स्वतंत्रता व व्यक्तिगत व्यथा की अभिव्यक्ति, प्रकृति का स्वच्छन्द अनुरागमय चित्रण, मानवीकरण, मानवतावाद एवं परंपरागत रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा व रहस्य भावना थी और इसमें प्रेम का सूक्ष्म एवं सौन्दर्याधृत प्रकाशन प्रमुख था। रोमैंटिक काव्य कल्पना–समृद्ध काव्य था जिसमें विषय–वस्तु व भाव–विचार की दृष्टि से नए प्रयोग किए गए। परंपरागत हीरोइक कटलेट' का विरोध हुआ तथा नवीन गीति शैली, सम्बोध गीत, चतुर्दशपदी, शोकगीत आदि अनेक रूपों में अपनाया गया। रोमांटिक कवियों ने काव्यभाषा को अत्यधिक सांकेतिक व्यंजक, कोमल–मधुर, संगीतात्मक और चित्रात्मक बनाया। अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की इन सभी प्रवृत्तियों का कमोवेश छायावाद पर प्रभाव पड़ा। यह बतलाना यहाँ आवश्यक है कि दोनों काव्य अपने–अपने देश की विभिन्न परिस्थितियों की देन हैं। डॉ. बच्चन सिंह इसे मुक्ति–आंदोलन से जोड़ते हुए लिखते हैं:– ***"स्वच्छंदतावाद की मूल प्रवृत्तियाँ–वैयक्तिकता, आवेगमयता, मानवीयता, देश–प्रेम, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक रूढ़ियों का विरोध आदि–राष्ट्रवादी आंदोलनों में भी थे। इन सभी विशेषताओं को मुक्ति का आग्रह कहा जा सकता है।"***[135]

निराला भी इसी 'मुक्ति का आग्रह' लेकर साहित्य में आए थे। उन्होंने वर्डस्वर्थ, शैली, कीट्स, टेनिसन आदि अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों को भी पढ़ा था और बंगाला भाषा–साहित्य और संगीत का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था। इसलिए थोड़ा–बहुत रोमैंटिक कवियों का प्रभाव निराला के काव्य में पाया जाता है। निराला ने सम्बोध गीत, शोक गीत आदि नवीन गीतियों की रचना रोमैंटिक काव्य के अनुसरण पर शेली की

'ओड टू द वैस्ट विंड' के समान निराला ने वसंत समीर 'यमुना के प्रति' 'प्रपात के प्रति', 'बादल राग' आदि कई संबोधन गीत लिखे।

फ्रांस की क्रांति से स्वतंत्रता और मानवतावाद की जो लहर समूचे यूरोप में व्याप्त हो गई थी, बीसवीं सदी के इस छायावादी युग में गुलामी से पीड़ित, दलित व शोषित भारतीय जनता को इससे संबल मिला। छायावादी कवि नव–निर्माण की आकाँक्षा और स्वतंत्रता का गान गाने लगे। वायरन ने समुद्र को क्रांति और स्वतंत्रता का प्रतीक बनाया, शैले ने पश्चिमी प्रभंजन को तो निराला के लिए 'बादल' क्रांति, स्वतंत्रता, रूढ़ि के विध्वंस तथा नव–निर्माण का प्रतीक बना। यहाँ एक चीज बतलाना आवश्यक है कि निराला ने अपने निबंधों में यदि किसी पाश्चात्य कवि पर अलग से लिखा है, वह है शेली। हालाँकि उन्होंने शेली और रवीन्द्रनाथ की तुलना के प्रसंग में उसका जिक्र किया है। 'सुधा' के मई 1930 के अंक में निराला जी का एक लेख प्रकाशित हुआ–'शेली और रवीन्द्रनाथ'। उक्त निबंध में निराला रवीन्द्रनाथ के बारे मे लिखते हैं:– ***"हम कह चुके हैं यौवन के आरंभ में ही रवीन्द्रनाथ पश्चिम गए थे। उसका प्रभाव उनकी उस समय की प्राथमिक रचना 'चित्रांगदा' पर भी पड़ा है।"***[136] निराला रवीन्द्रनाथ पर शेली का प्रभाव मानते हैं। एक समय रवीन्द्रनाथ को बंगाल का शेली कहा जाता था। स्वयं बंकिमचंद्र ने उन्हें इस नाम से संबोधित किया था। निराला का मानना है कि बहुत से ऐसे भी रवीन्द्रनाथ के प्रिय कवि हैं जिन्हें दूसरे लोग पसंद नहीं करते। यथा–ब्रौनि और कॉलरिज। निराला शेली के प्रसंग में लिखते हैं:– ***"भाषा के विचार से अंग्रेजी साहित्य में शेली की भाषा को जो स्थान प्राप्त है, वही रवीन्द्रनाथ की बंगला में। हाँ! रवीन्द्रनाथ के काव्य का परिणाम शेली में नहीं। उसे साहित्य की सेवा के लिए बहुत ही थोड़ा समय मिला था। .....शेली भारतीय दर्शन नहीं जानता था। उसने रंग द्वारा अपने जिज्ञासु मन के ही प्राप्त उत्तर द्वारा कविता के प्राणों में चमक पैदा की है, काव्य की आत्मा का तत्व हासिल किया है।"***[137] निराला के अनुसार चित्रों के वर्णन खींचने में शेली को अपने पूर्ववर्त्ती कवियों से थोड़ी बहुत सहायता मिली, पर नैपुण्य व शैली उसकी अपनी थी। यही बात निराला के लिए भी लागू थी। निराला शेली की लंदन को लेकर नरक वाली कल्पना की बड़ी तारीफ करते हैं जिसमें उस

समाज, पालिर्यामेण्ट और बड़े–बड़े आदमियों पर व्यंग्य है और जहाँ लंदन की तरह नरक को एक बड़ा–सा शहर बतलाया गया है। निराला शैली की कविताओं में एक विशेष प्रकार का संगीत देखते हैं। यही संगीत वो कीट्स की कविताओं में पाते हैं। रवीन्द्रनाथ और शेली में निराला को प्रमुख अंतर दोनों के दर्शन में लगता है। अपनी एक अन्य टिप्पणी 'शेली और रवीन्द्रनाथ का दर्शन' में निराला इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि भारत में दर्शन का मतलब आत्म–साक्षात्कार है, जबकि योरप में 'ज्ञान की तलाश।' रवीन्द्रनाथ के संदर्भ में निराला लिखते हैंः– *"उन्होंने अपनी कविता में भारतीय उपनिषद दर्शन और पश्चिमी कवियों के प्यार को मिलाकर काव्यमय अपना एक नया ही दर्शन तैयार किया है जो रूप, रस, शब्द, गंध और स्पर्श से मिला हुआ कभी रूपमय और कभी अरूप, कभी अनेक प्रकार की भंगिमाओं के भीतर से अभीष्ट देव की पूजा करता है।"*[138] यदि ध्यान दें तो निराला में भी यह 'अपना एक नया दर्शन' मिलेगा जिसमें भारतीय उपनिषद् और पश्चिमी कवियों का प्यार दोनों है। निराला की 'तुम और मैं' इसी प्रकार की कविता है।

शैली के संदर्भ में निराला लिखते हैं– *"शेली में प्रेम की प्रधानता है, साथ–साथ एक अज्ञात सत्य की जिज्ञासा, कविता में उसी की झलक। शेली की कविता में स्वप्नमय कल्पना–चित्र ही रंगीन पंखों से पक्षी की तरह अज्ञात की ओर उड़ जाते हैं, संसार को स्वर्ग बनाते हैं।" .....इस प्यार की शक्ति शेली को तमाम प्रकृति चेतन देख पड़ती है। यह शेली के दर्शन की आत्मा है। "Love's Philosophy" (प्रेम–दर्शन) में भी दो आत्माओं का मेल ही उसका कहना है।"*[139] उपर्युक्त पंक्तियों में जिस 'अज्ञात शख्स की जिज्ञासा' की बात कही गई है, वह रविंद्र और निराला दोनों की कविताओं में है। "Love's Philosophy" में 'दो आत्माओं का मेल' निराला के यहाँ भी हैः–

"प्रेम, सदा ही तुम असूत्र हो
उर–उर के हीरों के हार।"[140]

'एक अज्ञात शख्स की जिज्ञासा' निराला की कविताओं में सदैव व्यक्त होता है–

"कौन तम के पार–? (रे कह)"[141]

निराला आगे लिखते हैंः– "शेली का दर्शन बहुत जगह काल्पनिक है, पर काव्य सब जगह दर्शन की चेतना–सत्ता से प्रफुल्ल। प्यार का शेली की कविता में बड़ा महत्व है–

Whose eyes have I gazed fondly on
And loved mankind the more?

यहाँ अपनी प्रेयसी को लक्ष्य करके कवि कहता है– *"किसकी आँखों को अनुरक्ति से मैं देखता रहा, जिससे मनुष्य को मैं और भी प्यार कर सका?.....रवींद्रनाथ भी इस प्यार को ग्रहण करते हैं।"*[142] ध्यातव्य है, अर्चना के एक गीत 'नयन नहाये' में निराला कुछ ऐसा ही वर्णन करते हैं –

"नयन नहाये
जब से उसकी छवि में रूप बहाये।
.....बदल गयी आँख, विश्व–
रूप वह धुला।"[143]

दूधनाथ सिंह निराला की प्रेमगीतों में आत्मतोष अधिक पाते हैं और उसी आधार पर उसे पाश्चात्य रोमांटिक प्रवृत्ति से अलग करते हैं। दूधनाथ सिंह लिखते हैंः– *"यह आत्मतोष रोमांटिक काव्य–धारा की उस अपराध–चेतना (Sense of Guilt) या पश्चाताप अथवा आत्म–स्वीकार से सर्वथा दूसरी दिशा की वस्तु है। निराला की आत्म–स्वीकृति पश्चिम की अपराध–चेतना से उपजी हुई आत्मा–स्वीकृति से पृथक है। इसीलिए उनके गीतों में अभिव्यक्त यह आत्म–तोष उच्छल पवित्रता से मंडित है। उसमें पाश्चात्य की अनुभूति कहीं नहीं। क्योंकि प्रेम उन्हें रिक्त नहीं करता, समृद्ध करता चलता है।"*[144] यहाँ यह तो स्पष्ट कर देना जरूरी है कि निराला का अपना आत्म–दर्शन व प्रेम–दर्शन या जिस पर पश्चिम की छाप से ज्यादा रविंद्रनाथ का प्रभाव था, भले ही रवींद्रनाथ ने कुछ प्रभाव पश्चिम से लिया हो। पर, दूधनाथ सिंह जिस 'प्रेम में समृद्धि' की बात कर रहे हैं, वो शैली के यहाँ जरूर मिलता है।

प्रेम के अलावा एक और बात द्रष्टव्य है कि शेली ने पश्चिमी प्रभंजन को स्वच्छंद, उद्दाम, उच्श्रृंखल, भयंकर आत्मा आदि संबंधनों से संबोधित किया है, उसी प्रकार निराला ने बादल आदि को इसी प्रकार के संबोधनों से पुकारा है। यथा–'बादल राग' का यह अंशः–

"ऐ स्वच्छंद
मंद–चंचल–समीर–रथ पर उच्छृंखल!
ऐ उद्दाम!
अपर कामनाओं के प्राण!
बाधारहित विराट!
ऐ विप्लव के प्लांवन!
सावन–घोर गगन के
ऐ सम्राट!"[145]

निराला ने अपने निबंधों व टिप्पणियों में कई विदेशी कवियों का जिक्र किया है। एक जगह वह मैथ्यू आर्नल्ड की consolation कविता का जिक्र करते हैं जिसमें ग्रीष्म समतल की गर्म हवा में पुलकित दो युवक–युवतियों का जिक्र है। परंतु, इसे निराला तीसरे दर्जे का चित्र मानते हैं। यहाँ निराला की टिप्पणी महत्वपूर्ण है– ***"प्रेमियों को जिस योगसूत्र की काव्य में आवश्यकता थी, वह नहीं रहा। यहाँ दोनों पॉजिटिव है। पर प्रकृति–गत निगेटिव–पॉजिटिव का जोड़ा है, जिसके प्रदर्शन में 'consolation' पर लिखने वाले आर्नल्ड गलती कर गए हैं, खूबी नहीं दिखला सके।"***[146] इससे पता चलता है कि निराला पाश्चात्य कवियों के सजग पाठक ही नहीं, तत्वाभिनिवेशी आलोचक भी थे। निराला आर्नल्ड की पंक्तियों का प्रभाव पंत जी की 'नव कुसमों में छिप–छिपकर /जब तुम मधुपान' में दिखाते हैं, पर इसे ज्यादा श्रृंगार–पोषक बतलाते हैं।

निराला ने वर्ड्सवर्थ की चर्चा भी कई स्थानों पर की है। पंत जी की काव्यात्मक पंक्ति 'गाओ, गाओ, बिहग बालिके' पर वर्ड्सवर्थ के 'Then sing ye birds sing a joyous song' का प्रभाव मानते हैं। 'नारी और कवि' टिप्पणी में निराला लिखते हैंः– "समाज के लिए महाकवि वर्ड्सवर्थ की नारी ही यथार्थतः तमाम कामनाओं की सिद्धि कल्याणी–मूर्ति से आँखों के

सामने आती है– ***"A lovely appariation sent to be a moment's ornament".***[147] आगे निराला ने उसकी आँखों की चमक को नक्षत्रों की चमक के समान बतलाया है। निराला मानते थे कि 'साहित्य में नारियों' के उच्चतम विकास की जितनी ही अधिक सृष्टि होती है, समाज की स्त्रियों में सुधार, आचरण आदि में शुद्धता, मार्जक गुण, सूक्ष्मदर्शिता तथा चारूता आती है। यहाँ एक बार फिर निराला को शेली याद आते हैं। निराला के शब्दों में:– *"शेली की नारी प्रेमोज्ज्वल* शृंगार *की कला के कुल अलंकारों से युक्त है। नारियों के इस उत्कर्ष के चित्रण का इतना बड़ा प्रभाव समाज पर पड़ता है, साहित्य के भीतर से प्रत्येक दिशा के समाज के उत्कर्ष का विचार करने पर यह पता लग जाता है।"*[148] निराला ने स्वयं अपनी कविताओं में नारी को प्रेमोज्ज्वल रूप में तथा श्रृंगार की कला व अलंकारों से युक्त अधिक चित्रित किया है। 13 जनवरी, 1924 की 'माधुरी' में प्रकाशित निराला की एक कविता 'शृंगारमयी' का उदाहरण द्रष्टव्य है–

"शरत चंद्रिका–सी वह सुंदर गोरी
अभी खिली मृदु बांध कली को मंद–मंद मुस्कान,
यौवन–मदिरा पीकर जरा नशीली
अलस हुई कुछ नीची चितवन
छिपी हृदय में वह प्रियतम से .....।"[149]

निराला ने अपने एक अन्य निबंध 'कवि और कविता' में वर्ड्सवर्थ और शेली को कविता की परिभाषा के संदर्भ में याद किया है। कविता की परिभाषा व काव्य–गुण के संदर्भ में निराला एक बार फिर शेली को याद करते हैं। निराला लिखते हैं:–"महाकवि शेली उस कवि की रचना को श्रेष्ठ बतलाते हैं, जिसके कवित्व में दुःख के एक–एक दल प्रस्फुट हो जाएँ। वे कहते हैं:– ***"Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts". कवि शेली सहृदय कवियों की कृति में करुणा की क्षीण ध्वनि सुनना चाहते हैं। कवि के व्यथित उद्‌गारों को अपना मधुर संगीत मान इस महाकवि ने बहुत कुछ भारतीय ढंग की परिभाषा दी है।"***[150] निराला को यह परिभाषा आदिकवि वाल्मीकि की काव्य–दृष्टि के अनुकूल लगी। निराला के अनुसार, 'कविवर शेली की तरह भारतीय कवि भी अपने शब्दों

की हिलोर में विश्व–वेदना के तार झंकृत कर देना चाहते हैं।' निराला को इस संदर्भ में सनेही जी का 'कृषक–क्रंदन, 'शैव्या का विलाप', 'दीनों की आह', 'आँसू' आदि कविताएँ याद आती हैं तथा वे पंत की 'वेदना में ही तपकर प्राण/दमक, दिखलाते स्वर्ण हुलास' पंक्तियाँ भी उद्धृत करते हैं। ध्यातव्य है, 'वेदना' तो छायावाद का प्रस्थान–बिंदु रहा है। परंतु, छायावादी कवि व्यक्तित्व वेदना को रचनात्मक करुणा में तब्दील कर उसे विश्व–वेदना से जोड़ देते हैं। निराला जी लिखते हैंः–

"वेदना बनी/मेरी अवनी
.... पार करो यह सागर/
दीन के लिए दुस्तर।"[151]

निराला अपनी कृति 'अर्चना' के एक अन्य गीत 'गीत गाने दो मुझे' में लिखते हैंः–

"गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने को।
..... भर गया जहर से
संसार जैसे हार खाकर।"[152]

यहाँ 'व्यक्तिगत वेदना' का रचनात्मक करुणा में परिवर्तन और विश्व–वेदना की ध्वनि साफ सुनाई पड़ती है।

छायावाद पर रहस्यवाद का भी आरोप लगता रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल को अभिव्यंजनावाद, कल्पनावाद, प्रतीकवाद आदि का पूरा प्रभाव विलायती रहस्यवाद पर दिखाई पड़ता था। 'काव्य में रहस्यवाद' निबंध में आचार्य शुक्ल ने रेखांकित किया हैः– ***"यूरोप के काव्य–समीक्षा क्षेत्र में प्रचलित अभिव्यंजना (एवं स्प्रेशनिज्म) और 'कला का उद्देश्य कला ही है' का पूरा प्रभाव आधुनिक विलायती रहस्यवाद पर है। प्रभाव है क्या, कहना चाहें तो कह सकते हैं कि उक्त रहस्यवाद तीनों वादों के मेल से –ब्लैक द्वारा अंगीकृत 'कल्पनावाद' के साथ 'अभिव्यंजनावाद' और कला का उद्देश्य कलावाद के मेल–से–संघटित है।"***[153] आचार्य शुक्ल इसी दृष्टि से छायावाद को भी देखते थे और उस दृष्टि से छायावाद भी उन्हें

रहस्यवादी और एक प्रकार की विलायत व बंगाल का नवीन संस्करण लगता था। 'प्रबंध–प्रतिमा' के एक लेख 'साहित्य की नवीन प्रगति पर' में निराला जी ने आचार्य शुक्ल की ब्लैक संबंधी अवधारणाओं को आड़े हाथ लिया है। आचार्य शुक्ल की नजर में विलियम ब्लेक खुद को ईश्वर का दूत समझनेवाला महा पाखंडी था। आचार्य शुक्ल ने उसकी रहस्यवाद की रचनाओं को 'बिल्कुल निकम्मी' ठहराया था। निराला इस प्रकार के आरोपों का प्रत्युत्तर सदा वेदांत–दर्शन के सहारे देते रहे थे। निराला ने सूर, तुलसी व कबीर की कतिपय रहस्यवादी पंक्तियों को सामने रख दिया। निराला ने आचार्य शुक्ल पर व्यक्तिगत आक्षेप करते हुए रोष से लिखाः– *"ब्लेक पाखंडी था, अपनी रचनाओं को छापने में विचित्र–विचित्र ढोंग निकाला करता था। उसका प्रत्येक पृष्ठ एक भिन्न रचना के रूप में होता था, आजकल के छायावादियों की झुंड पंक्तियों की तरह उसकी पंक्तियाँ भी टेढे–मेढ़े ढंग से सजी रहती थी, यह सब तो था, पर आप शायद नहीं जानते, जानते होते तो लिखते, नहीं मैं नहीं बोलता हूँ, यहाँ आपने ब्लेक की उज्ज्वल कवित्व–शक्ति को उसी तरह छिपाने की कोशिश की है जिस तरह आप अपनी महोदय डिगरी को छिपाया करते हैं। ब्लेक अपने समय का युग– प्रवर्तक था, देखिए अंग्रेजी साहित्य का इतिहास, इसलिए जितने भी अंग्रेजी कविताओं के संग्रह निकाले हैं, प्रायः सबों में ब्लेक की कविताएँ आयी है।"*[154] निराला ब्लेक की पंक्ति 'To hold infinity in a wild flower' को तुलसीदास की पंक्ति 'करतलगत आमल के समाना' से जोड़ते हैं और 'Enternity an our' को 'उभयधरी महै सैं सब देखा' के समतुल्य बतलाते हैं। आगे निराला ब्लेक की 'Never seek to tell they love/love that never told can be' को भी वेदांत के प्रेम–दर्शन और स्वामी विवेकानंद के 'प्रेम यह मात्र धन' से जोड़ने लगते हैं। निराला ब्लेक की 'In the sleep/Little sorrow sit and weep' पंक्तियों को 'कोमल व सुकुमार पंक्तियाँ' बतलाते हैं जिसमें पारदर्शी भाषा और सच्ची बिंबात्मकता हैं। निष्कर्ष स्वरूप निराला लिखते हैंः– *"हमें आशा है, ब्लेक के साथ, छायावाद की आख्या प्राप्त करनेवालों की कविताओं के उद्धरण देकर, हमारे शुक्ल जी–'बंग–भंग–पद्य–चकती' से चमकनेवाली तथा 'अंग्रेजी अनुवाद के अनाड़ीपन' से अस्त–व्यस्त उन पंक्तियों को ढोंग और*

'कलाहीन कोरी शब्दों की उड़ान' साहित्य के पृष्ठों पर रखकर 'काहि कर इक' की सार्थकता दिखलाएंगे और जनि कल्पना कर सृजस नासहिं के स्वयं ही अपवाद न होंगे।"[155] यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि निराला ने आचार्य शुक्ल को 'पाखंड–प्रतिषेध' कविता का जवाब देते हुए ब्लेक को 'डिफेंड' किया है और इस बहाने छायावाद रहस्यवादिता को वेदांत–दर्शन के अद्वैत भाव से जोड़ा है। जिस प्रकार ब्लेक प्रेम का साथ नहीं छोड़ते, निराला को इस जग के पार वहीं जाना अभीष्ट है, जहाँ प्रेम की रसधार बहती है:–

"नयन दिखलाते निश्छल प्यार
हमें जाना जग के उस पार।"[156]

निराला ब्लेक की 'सुप्त–सौंदर्य' वाली पंक्ति–'In the sleep/Little sorrows sit and weep' पर जो रीझे, उसी 'सुप्त सौंदर्य' को आधार बनाकर विरोधी भाव का सृजन किया, 'परिमल' की जागृति में सुप्ति' थी कविता में:–

"जाग्रत प्रभा से क्या शांति थी!
जागृति में सुप्ति थी.....
जागरण क्लान्ति थी।"[157]

निराला ने ब्लेक से मिलती–जुलती पंक्तियाँ कहीं लिखी हों, पर उनका रहस्यवाद ब्लेक के रहस्यवाद से ही नहीं, छायावादी कवियों की भी रहस्यवादी भावना से अलग था। निराला ने अपनी कविताओं में सुमित्रानंदन पंत व प्रसाद आदि की अपेक्षा उस परमसत्ता के प्रति प्रश्नमयी जिज्ञासा कम प्रकट की है और महादेवी वर्मा की तरह वहां प्रेम का रहस्यमय प्रकाशन भी बहुत कम मिलता है। निराला की आध्यात्मिक रहस्यवाद से संबंधित कविताओं में आस्था, आत्मनिवेदन, वंदन और प्रार्थना का स्वर अधिक ऊंचा है, जहाँ आत्म–साक्षात्कार का आनंद अधिक है। दूसरी बात निराला की रहस्यवादी रचनाओं में मुक्ति–प्रसार, आत्म–विस्तार और सबसे बड़ी बात विराट–भावना अधिक है। यह विराट रूप सबसे ज्यादा 'राम की शक्ति पूजा' में अधिक प्रकट हुआ है और 'तुलसीदास' में

भी। डॉ0 नामवर सिंह निराला और पंत की रहस्य भावना का अंतर करते हुए लिखा हैं:– *"निराला की इस रौद्र और विराट रहस्य भावना के विपरीत पंत की रहस्य भावना अज्ञात की लालसा के रूप में व्यक्त हुई है। कारण स्पष्ट है निराला के आत्म–विस्तार में व्यक्तित्व की विराटता की आकांक्षा थी, तो पंत में ज्ञान के विस्तार के रूप में।"*[158] इसलिए ब्लेक का यदि थोड़ा बहुत प्रभाव किसी पर कहा जा सकता है तो वह पंत पर।

निराला की रहस्यवादी रचनाओं के अलावा उनके मुक्त–छंद के प्रवर्त्तन पर कई आक्षेप लगे। आचार्य शुक्ल ने छायावादी कविता में छंदबंधन के त्याग और लय के अवलंबन को अमेरिका के कवि वाल्ट ह्विटमैन की नकल माना था और इस अनुकरण को वे सर्वप्रथम बंग–साहित्य में देखते हैं। ह्विटमैन ने बिना किसी छंद की रचना 'लीव्स ऑफ ग्रास' सन् 1885 ई0 में प्रकाशित करवाई थी जो केवल लय पर चलती थी। इस कविता को ह्विटमैन आजीवन परिवर्धित करते रहे और यह कविता अंग्रेजी के प्रचलित छंद विधान के विपरीत मुक्त छंद का आग्रह करती हुई क्रांतिकारी कदम थी। मुक्त छंद की पंक्तियाँ घास की पत्तियों की तरह असमान होते हुए भी सहज सौंदर्य से युक्त होती है, ऐसा मानकर ही ह्विटमैन ने कविता का शीर्षक 'लीव्स ऑफ ग्रास' रखा था। ह्विटमैन के इस आंदोलन का बंगला साहित्य और फिर छायावादी साहित्य विशेषकर निराला पर भी प्रभाव पड़ा जिन्होंने 'मुक्त छंद' का प्रवर्त्तन किया। आचार्य शुक्ल ने ह्विटमैन की रचनाओं के संदर्भ में ए.बी.डी. मिल के आलोचनात्मक वक्तव्य के हवाले से लिखाः– *"सारांश यह कि उसकी ऐसी रचनाओं में छंदोव्यवस्था का ही नहीं, बुद्धित्व का भी प्रायः अभाव है। उसकी वे ही कविताएं अच्छी मानी और पढ़ी गई जिनमें छंद और तुकांत की व्यवस्था थी।"*[159] दरअसल आचार्य शुक्ल मुक्त छंद के वर्गीय आधार को, उसके पीछे छिपी मुक्ति की कामना को समझ नहीं सके। निराला मानते थे कि कविता को मुक्त छंदों के शासन से अलग होना है। उन्होंने इसे ब्रह्म के मुक्त स्वभाव और गायत्री छंद से जोड़ा और मुक्त छंद की भारतीयता सिद्ध की। वेदों के संदर्भ में वे लिखते हैं:– *"आजकल की तरह के रूढ़ियों के गुलाम या अंगरेजी पुस्तकों के नक्काल नहीं।"*[160] निराला मानते थे कि साहित्य से मुक्ति उसके काव्य में देख पड़ती है और इसी

तरह जाति की मुक्ति के प्रयास का पता चलता है। इससे चित्रप्रियता छूटने लगती है और मन एक खुली हुई प्रशस्त भूमि में विहार करना चाहता है। निराला के अनुसार जरूरी नहीं कि 'अतुकांत' कविता मुक्त काव्य या स्वच्छंद हो जाए। निराला के शब्दों में:– *"जहाँ मुक्ति रहती है–वहाँ बंधन नहीं रहते– न मनुष्यों में, न कविता में। मुक्ति का अर्थ ही है बंधनों से छुटकारा पाना। यदि किसी प्रकार का श्रृंखलाबद्ध नियम कविता में मिलता गया, तो वह कविता उस श्रृंखला की जकड़ी हुई ही होती है, अतएव उसे हम मुक्ति के लक्षणों में नहीं ला सकते, न उस काव्य को मुक्त काव्य कह सकते हैं।"*[161] निराला ने 'परिमल' की भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया कि 'हिंदी में मुक्त काव्य कवित्त' छंद की बुनियाद पर सफल हो सकता है। जाहिर है कि निराला पाश्चात्य 'मुक्त छंद' की अवधारणा को भी भारतीय साहित्यशास्त्र का जामा पहनाते हैं। डॉ0 नामवर सिंह निराला के इस योगदान पर लिखते हैं:– *"छायावाद में मुक्त छंद का जो प्रचलन किया, वह भाव–स्वच्छंदता की आवश्यकता से प्रेरित होकर। तुकों से छंद की मुक्ति तो द्विवेदी–युग से ही प्रारंभ हो गई थी, लेकिन पूर्ण मुक्ति का कार्य बहुत–कुछ बाकी था और उसे छायावाद के निराला ने पूरा कर दिया। घनाक्षरी की तरह अन्य पुराने–नए छंदों को निराला ने रूढ़ि मुक्त करके मुक्त–छंद नाम से चालू कर दिया। जो स्वयं मुक्त होता है, वही दूसरों को मुक्त कर सकता है। छंदों की मुक्ति निराला– जैसे ही मुक्त पुरुष के हाथ संभव थी।"*[162] हिंदी में इससे एक बड़ा काम यह हुआ कि काव्य भाषा बोलचाल की भाषा की लय के निकट आ गई। उससे ही कविता–कामिनी के पैरों में पायल की नव झंकार पैदा हुई:–

"नूपुर के सुर मंद रहे
जब न चरण स्वच्छंद रहे।"[163]

निराला और पंत पर अंग्रेजी गीति काव्य का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। आत्माभिव्यक्ति, कोमलकांत पदावली, भावमयता, नवीन भाषा–शैली और नया सौंदर्यबोध आदि गीतिकाव्य की संपूर्ण विशेषताएं निराला काव्य में पाई जाती है। निराला ने अंग्रेजी कवियों को पढ़ रखा था। उनकी बहुत इच्छा थी कि वह स्वयं अंग्रेजी में लिखें। मार्च, 1944 को जानकीवल्लभ

शास्त्री को लिखे एक पत्र में निराला लिखते हैंः—*"पाली सीख रहा हूँ। साथ अंग्रेजी भी।.....मेरा उपन्यास अगला अंग्रेजी उपन्यास निकलेगा।"*[164] परंतु, निराला कोई भी उपन्यास अंग्रेजी में नहीं लिख पाए। दरअसल, दूसरी भाषाओं में हिंदी से ज्यादा मान मिलने के कारण कभी कभी निराला उस ओर मुखातिब होने लगते थे। हाँ! उन्होंने अंग्रेजी साहित्यकारों को पढ़ रखा था। उनका मानना था कि अंग्रेजी के साहित्यकार हमारे देश के साहित्यकार की तरह लकीर के फकीर नहीं बने रहते। निराला के शब्दों मेंः—*"अंग्रेजी की बड़े—बड़े कवि वर्ड्सवर्थ, शेली, टेनिसन आदि विदेशी सभ्यता की जानकार हैं। शेली तो भारत को बहुत ही प्यार करता था। अंग्रेजी राजधर्म के खिलाफ उसने कितनी ही पंक्तियां लिखी है। अपने विचारों के कारण घर और बाहर सर्वत्र लंक्षित रहा। पर आज यह संसार का बेजोड़ कवि हैं। समालोचक उसकी प्रशंसा करते हुए नहीं थकते। अपने विचारों की तरह काव्य की भाषा तथा प्रवाह में उसने किसी का अनुकरण नहीं किया है। आज बड़े—बड़े कवि उसका अनुकरण कर सकता है, सीखते हैं। शेक्सपीयर को आड़े हाथ लेनेवाले बर्नाड्शा शेली के हृदय के प्रशंसक हैं। बात यह है कि साहित्यक विशालता, उदारता, स्वातंत्र्य जाति के भीतर बैठ कर लोगों को तेजस्वी करते है।"*[165] इस प्रकार, निराला सभी विदेशी रचनाकारों में शेली को ही अधिक महत्व देते थे और हिन्दी को ऐसी ही भावना से युक्त साहित्यकारों की आवश्यकता मानते थे जो मनुष्य मात्र में व्याप्त सत्य की रक्षा के लिए अपने प्राणों के बलिदान हेतु तत्पर हो। दूसरी बात निराला ने शेली के लिए अपने विचारों के कारण घर और बाहर दोनों में जो लांछित होने की बात लिखी, वह दंश स्वयं निराला ने सहा था। इसलिए शेली निराला की आत्मा के ज्यादा नजदीक ठहरते हैं।

आचार्य शुक्ल जैसे अन्य आलोचक जो छायावाद को अभारतीय या भारतीय संस्कृति का घातक चेहरा मान रहे थे; उन्हें निराला 'काव्य—साहित्य' शीर्षक निबंध में कड़ी फटकार लगाते हुए लिखते हैंः—*"पर हमारे साहित्य में क्या हो रहा है—यह भारतीय है, यह अभारतीय, असंस्कृत। धन्य है, हे संस्कृति के बच्चों। ....नस नस में शरारत भरी, हजार वर्षों से सलाम ठोकते—ठोकते नाक में दम हो गया। अभी संस्कृति*

लिए फिरते हो।[166] निराला के अनुसार, अपने ही घर को संसार की हद नहीं समझना चाहिए। साहित्यिक प्रतिस्पर्द्धा, भावों का आदान–प्रदान की शिष्टता भी जरूरी है। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि निराला अपने साहित्य का विकास जातीय या राष्ट्रीय विशेषताओं को छोड़कर नहीं करते। सौंदर्य–दर्शन और कवि–कौशल' निबंध के आरंभ में ही निराला लिख देते हैं:– *"कला की कोई ऐसी एकदेशीय परिभाषा नहीं कही जा सकती; परन्तु कोई भी कला ऐसी भी नहीं जो संसार की तमाम आंखों को एक ही–से लगे।... विश्व के लोग उसी कविता को आदर करेंगे जो भावना में विश्व–भर की कही जा सकेगी। उसके बाहरी उपकरण एकदेशीय होंगे ही। देश की जनता में जहाँ अनेक प्रकार की संकीर्णताओं का शासन है, वहाँ एकदेशीय भावना का ही आदर रहता है।*[167] स्पष्ट है कि निराला अपनी जातीय अस्मिता और राष्ट्रीय विशेषताओं को अक्षुण्ण रखते हुए ही विश्ववादी साहित्य के निर्माण की बात कहते हैं। मेरे 'गीत और कला' निबंध में भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया:– *"प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाए–शक्ति–सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुशयता, मृदुलता और छंद ललित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी संबंध है तो निश्चत रूप से कहा जाएगा कि प्राणशक्ति उस भाषा में है।*[168]

निराला पर पाश्चात्य काव्यधारा का प्रभाव कुछ हद तक पड़ा तो है, पर वह प्रभाव सीधे न पड़कर बंग भाषा के माध्यम से आया प्रतीत होता है। निराला ने यदि कहीं से कोई भाव लिए भी, तो उसे अपनी निज–प्रतिभा और प्रयोगधर्मी चेतना के कारण मौलिक जामा पहनाया तथा उसे राष्ट्रीय अस्मिता व हिन्दी के जातीय स्वरूप से जोड़ा। निराला ने 'परिमल' की भूमिका में अपने ऊपर अन्य रचनाकारों के प्रभाव को पूर्णतः नकारा नहीं है, हाँ इतना अवश्य लिखा:– *"मेरी तमाम रचनाओं में दो–चार जगह दूसरों के भाव, मुमकिन है, आ गये हों, पर अधिकांश कल्पना 95 फीसदी–मेरी अपनी है।*[169] स्पष्ट है, निराला ईमानदार आत्मानुभूति और मौलिक चेतना संपन्न कवि थे। अपने समय में पश्चिम का अनुकरण करनेवाले कवियों को वे विकसित होते अंग्रेजी काव्य की तुलना में बहुत पीछे मान रहे थे। रवीन्द्रनाथ के विश्व–साहित्य प्रेम का वे एक सीमा तक

ही समर्थन करते थे। 'एक बात' निबंध में दूसरे देश व प्रदेश के साहित्य को देखकर नकल करनेवालों को चेताते हुए निराला लिखते हैं:– *"जब किसी दूसरे के तड़ाग के प्रति खिले हुए कमल को देखकर मनुष्य धावमान होता रहता है तो भीतर की भुजगशयना आंखें मूँद लेती है। कारण, वह अपने से अधिक सुंदर किसी दूसरे को नहीं मानती, तब मनुष्य मोहान्ध कहलाता है। हिन्दी की पारिपार्श्विक शक्तियों का स्फुट रूप कभी हिन्दी की पूर्णता का परिचित विकास नहीं बन सकता। मैंने अनेक बार लिखा है, कार्लाइल और रस्किन, शेली या रवीन्द्रनाथ हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु नहीं बन सकते। उनकी अनुवादित भावनाएँ दूसरी जगह के खिले हुए फूलों को लाते–लाते मुरझाने की तरह हिन्दी में निष्प्रभ है। विकास अपने ही भीतर का विकास है और वही विश्व–विकास है। किसी–किसी साहित्यिक ने देश के ठक्कुरों को छोड़कर विदेश के कुक्कुरों की पूँछ बुरी तरह पकड़ी है। पर पूँछ जिसकी है, वह उसके साथ रहती है, यह भूल गए। बदले में दंश–क्षत लेकर स्वदेश लौटे।"*[170]

स्पष्ट है कि निराला विदेश के कुक्करों की पूँछ पकड़नेवाले नहीं हो सकते थे, न ही दूसरी भाषाओं से अनूदित भावनाओं को लाने वाले के पोषक। वे अपने भीतर के विकास की बात करते हैं, जातीय चेतना और हिन्दी की जातीय अस्मिता को महत्व देते हैं। दूसरों के भरोसे रहनेवालों के प्रति निराला के 'नए पत्ते' की ये दो पंक्तियाँ काफी हैः–

"आदमी हमारा तभी हारा है
दूसरों के हाथ जब उतारा है।"[171]

(4) 'हिन्दी के हित का अभिमान वह': हिन्दी कवियों का प्रभाव एवं प्रेरणा

यह सच है–
तुमने जो दिया दान वह,
हिन्दी के हित का अभिमान वह,
जनता का जन–ताका ज्ञान वह,
सच्चा कल्याण वह अथच है–
यह सच है!"[172]

निराला ने 'यह सच है' कविता में जिस 'हिन्दी के हित का अभिमान' की बात की है, वह निराला का स्वयं का आत्म–संघर्ष था। यह संघर्ष था–हिंदी की राष्ट्रीय अस्मिता और जातीय चेतना को अक्षुण्ण रखने की और परंपरा को नए सिरे से पुनर्जीवित करने का। 'सुधा' में प्रकाशित फरवरी, 1993 के अंक में निराला ने अंग्रेजी साहित्य से भारतीय साहित्य की तुलना करते हुए लिखा है:– *"भारतीय साहित्य इससे बिलकुल विपरीत है। उसका सर्वोत्तम विकास जैसे संसार को देखना ही नहीं चाहता। ऐतिहासिक युग से ही देखिए बुद्ध शंकर, रामानुज, कबीर, तुलसीदास, चैतन्यदेव, रामदास आदि–आदि भारत के अंतिम श्री–काल से इस पराधीनता के मुसलमान– शासन तक साहित्य, समाज और दर्शन भी वही प्राचीन अंतर्मुखी गति रखते हैं। मुसलमान–सभ्यता के पूर्ण प्रभाव के समय संस्कृत को छोड़कर जनता की भाषा में जातीय महत्व भरकर भीतर से प्राणोत्सर्ग के लिए भी तैयार करने वाले इन महात्यागी तपस्वी साधु साहित्यकारों ने इतना बड़ा विक्रम प्रकट किया। तमाम प्रांतीय भाषाएँ जीवित हो उठी।"*[173] यही हिन्दी का जातीय स्वरूप था। इसीलिए निराला 'अपनी भाषा और अपनी श्रेष्ठता का ज्ञान ही यथार्थ मनुष्यत्व' मानते थे। परंतु, निराला के अंदर जातीयता का विष नहीं था। वह आधुनिक हिंदी साहित्य की तुलना में आधुनिक बंगला साहित्य की श्रेष्ठता मुक्त कंठ से स्वीकार करते थे। वह हिंदी की श्रेष्ठता साबित करते थे, प्राचीन हिन्दी साहित्य के बल पर और इसके पक्ष में बंगाली विद्वानों का हवाला भी देते थे। डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं:– *"शेक्सपियर और कालिदास से चाहे*

कोई रवीन्द्रनाथ को बड़ा कह दे, पर यदि वह उन्हें तुलसीदास से भी बड़ा कहे, तो वह उसे माफ ना कर सकते हैं।[174] दरअसल निराला जमींदार रवीन्द्रनाथ से अधिक गृहत्यागी तुलसीदास को सच्चा ज्ञानी मानते थे। तुलसीदास निराला के प्रिय कवि थे। हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के कवियों को वो सर्वश्रेष्ठ मानते थे। वह जिस 'कविता का ज्ञानकांड' की बात करते थे, उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि में कबीर, सूर व तुलसी जैसे भक्त कवि थे। निराला ने यदि तुलसीदास पर काव्य लिखा तो निर्गुण संत कवि रविदास पर भी कविता लिखी। 'पंत जी और पल्लव' निबंध में निराला भारतीय दर्शन में भक्त कवियों की भूमिका याद करते हुए लिखते हैं:– *"हर एक केंद्र में वह चेतनस्वरूप, वह आत्मा, वह विभु मौजूद है। सूर ने कृष्ण के ही उज्ज्वल केन्द्र को ग्रहण किया। तुलसी ने श्रीरामचंद्र के केन्द्र को और कबीर ने निर्गुण आत्मा को। भारत के सिद्धांत में यथार्थ विश्वकवि यही हैं–कबीर, सूर और तुलसी–जैसे महाशक्ति के आधार स्तंभ।*[175]

कबीर की निराला उनकी ज्ञानात्मक बातों के लिए प्रशंसा करते हैं। उनके 'कविता के ज्ञानकांड' का आधार कबीर ही हैं। रवीन्द्रनाथ पर कबीर की कविताओं व रहस्यवादी भावनाओं का बहुत प्रभाव माना जाता है, कमोवेश वो निराला पर भी देखा जा सकता है। निराला के चिंतन में सर्वाधिक महत्व ज्ञान का था और वह अपने पक्ष में कबीर की 'सूर–परकास तहै रैन कहै पाइए' अर्थात 'जहाँ ध्यान रहता है, वहाँ मोह नहीं रहता' का प्रयोग करते हैं। निराला ने भी इसी प्रकार 'ज्ञान की तेरी तुरी है' और 'जागा दिशा ज्ञान' नामक कविता लिखी:–

"ज्ञान की तेरी तुरी है
आसुरी माया दुरी है।
.....ध्यान में मुनि–मन मने हैं
वेद, विधि, वाणी, नियंत्रण,
सर्व के कर सिमटकर वे
कर रहे हैं समाहित मन।"[176]

निराला कबीर की भाषा के ओज की प्रशंसा करते हैं। हालांकि साहित्य और संगीत के विचार से निराला को कबीर के गीत ज्यादा प्रिय नहीं थे। इससे प्रिय निराला को तुलसी, सूरदास व मीरा के पद लगते हैं क्योंकि उनमें साहित्यिकता के अधिक है। हालांकि सगुण उपासक निराला को आधुनिकों की रुचि के अधिक अनुकूल नहीं लगते।

दरअसल निराला 'ज्ञान' को महत्व तो देते थे, पर उसे श्रृंगारिक वेश–भूषा में प्रकट करना उन्हें ज्यादा प्रिय था। 'परिमल' की कविता 'तुम और मैं' पर बंगाल के वैष्णव कवियों और सूरदास का प्रभाव परिलक्षित है:–

"तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु,
तुम हो राधा के मनमोहन
मैं उन अधरों की वेणु
....तुम मदन–पंच–शर–हस्त
और मैं हूँ मुग्धा अनजान!"[177]

निराला की एक अन्य कविता 'यमुना के प्रति' में ब्रज और कृष्ण की लीला मुखर हो गई। वही नटनागर श्याम, वंशीवट, पनघट, रासलीला– सारा मूर्तविधान जैसे सूरदास के काव्य पर हो:–

"कहाँ छलकते अब वैसे ही
व्रज नागरियों के गागर?
कहाँ भींगते अब वैसे ही
बाहु, उरोज, अधर, अंबर?
...कहाँ सूर के रूप–बाग के
दाड़िम, कुन्द, विकच, अरविंद
कदली, चंपक, श्रीफल, मृगशिशु
खंजन, शुक, पिक, हंस, मिलिन्द!"[178]

दूधनाथ सिंह इस कविता पर पूर्णतः कृष्ण–काव्य का प्रभाव मानते हैं। वे लिखते हैं:–*"वे (निराला) कृष्ण के सारे मोहन प्रसंगों को अपने शब्द–वैभव में बाँधने की चेष्टा में रत हैं। इसमें वे सफल भी हुए हैं।*

लेकिन यह सफलता इस कविता को कोई नया महत्व प्रदान नहीं करती क्योंकि भारतीय जन–मानस के इस सर्वथा अपरिचित प्रसंग में किसी नवीन अनुभूत, निजी या सार्वजनिक अर्थ की प्रतिष्ठा निराला ने नहीं की है।[179] दरअसल निराला यहाँ केवल सूरदास जैसे भक्त–कवियों का काव्य–चित्रण प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं वरन उस पर कहीं–कहीं रीतिवादी कवियों पद्माकर व बिहारी के काव्य–कौशल का पुट आ जाता है।

निराला पर कबीर, सूर आदि का प्रभाव इतना व्यापक नहीं जितना कि तुलसीदास का। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में:– *"निराला ने अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ में तुलसीदास के ज्ञान–पक्ष का समर्थन आरंभ किया था। अपने भाषणों और लेखों में उन्होंने तुलसीदास की मान्यताओं का विवेचन किया। निराला और तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व में जो भेद और वैषम्य है, वह काफी स्पष्ट है। सिद्धकवि तुलसीदास की पवित्र मूर्ति के सामने निराला श्मशानवासी अघोरी जैसे लगते हैं, फिर भी दोनों में कहीं आंतरिक साम्य है, तभी निराला सहजभाव से तुलसीदास के आकर्षण से निरंतर बँधे रहे।*[180] निराला की कविता 'तुलसीदास' भक्त कवि तुलसीदास के प्रति अगाध श्रद्धा व प्रेम को दर्शाती है।

'तुलसीदास' कविता की शुरुआत निराला भारतीय संस्कृति के अस्त होने से शुरु करते हैं। यहाँ मुस्लिम शासन के आधिपत्य और वीरता और शौर्य के प्रतीक हिंदू राजाओं की गुलामी, चाटुकारिता का दर्द सुनाई देगा। तुलसीदास के किसी काव्य में मुस्लिमों या मुगलों के आधिपत्य का दर्द या चित्रण नहीं मिलता। निराला की 'तुलसीदास' कविता में तुलसी का आविर्भाव कविता के ग्यारहवें छंद में होता है और फिर जैसे निराला पर सांस्कृतिक उत्थान की जिम्मेदारी आ जाती है। तुलसी के अंतर्द्वंद्व के रूप में निराला ने अपना द्वंद्व बखूबी उभारा है। 'तुलसीदास' के शिल्प–विधान के संदर्भ में दूधनाथ सिंह की दो बातें महत्वपूर्ण हैं:– *"तुलसी के लोक–आख्यान को सुरक्षित रखने के लिए कवि ने भाषा–बंध की इस पुरातन नवीनता या नवीनीकृत पुरातनता का सहारा लिया है।..... वर्ण व्यवस्था पर यह प्रहार नए तुलसी का है, प्रकारांतर से निराला का है। इस सामाजिक समत्व को तुलसी के लोक–आख्यान में रामानंद की विष्णु*

की आराधना का अधिकार सभी को दिए जाने से, हल्का–सा मिलाया जा सकता है।"[181]

डॉ. रामविलास शर्मा ध्यान दिलाते हैं कि तुलसी को 'तरून–अरून' यह सामासिक शब्द या ध्वनि बहुत पसंद थी। निराला को भी यह 'तरुन–अरुन' (वरूण–अरूण) बहुत प्रिय था। अपनी कई कविताओं में निराला ने इसका प्रयोग नए संदर्भों में किया है। यथा 'परिमल की प्रभावी' कविता का यह अंशः–

"तुम भी निज वरूण–तरंग खोल
नव–अरूण–संग हो लो– ।"[182]

और 'पारस' कविता का यह अंशः–

"कितनी ही तरुण अरूण किरणें।"[183]

'सांध्य–काकली' के 'शीत की गहरी विभावरी' का यह अंश भी द्रष्टव्य हैः–

"काँपे तन तरुणी–तरुणों के
प्रातः खुले अधर अरूणों के।"[184]

तुलसीदास का एक और प्रिय शब्द है 'मग'– "लोचन मग रामहि उर आनी"। प्रायः हिंदी कविता में 'मग' का प्रयोग कम मिलता है। निराला 'मग' का प्रयोग अपनी कविताओं में प्रायः किया करते हैं। यथा–निराला की 'गीतिका' की कविता ही है– 'शत–शत वर्षों का मग':–

"शत–शत वर्षों का मग
हुआ पार देश का न
हुए प्राण सार्थक जग।"[185]

'तुलसीदास' कविता का यह अंश भी द्रष्टव्य हैः–

"इस जग के मग के मुक्त–प्राण।"[186]

व्याकरण के संबंध में तुलसीदास ने जिस प्रकार 'रामचरितमानस' में स्वच्छंदता बरती है, उसी तरह हिन्दी की उच्चारण पद्धति का उल्लंघन निराला ने भी कहीं–कहीं किया है और एक नई भाषा गढ़ी है, विशेषकर 'तुलसीदास और 'राम की शक्ति–पूजा' में। डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं:– *"शब्द ध्वनि–प्रेम तुलसीदास और निराला में सामान्य है; ध्वनि पहले, व्याकरण बाद को।*[187] तुलसीदास और निराला दोनों एक चरण के अंतिम ध्वनिखंड को दूसरे चरण के आरंभ में दोहराते हैं। निराला ने तुलसी से एक और कला सीखी– भावोत्कर्ष के साथ ध्वनि के उतार–चढ़ाव की कला। दूसरी बात लोकसंगीत की अंर्तधारा दोनों कवियों के छंदों में प्रभावित होती है। डॉ0 शर्मा के शब्द में ही– *"निराला जब लिखते हैं–बढ़–बढ़ कर बहती पुरवाई/ धुन मलार कजली की छाई।' (गीतगुंज) तब वह तुलसीदास की चौपाइयों की मिठास खड़ी बोली में ले आते हैं। किंतु, जब वह तुलसीदास की अवधी को खड़ी बोली का रूप देते हैं, तब वह भाषा न निराला की होती है न तुलसीदास की: "महामोह तम पुञ्ज जिनके वच रविकर–निकट।*[188] हाँ! निराला ने तुलसी से मधुर ललित सानुप्रास पदावली और ध्वनि–संरचना की कला तुलसीदास से अवश्य सीखी है जिसका पूर्ण विकास 'राम की शक्ति–पूजा' में दिखता है। परंतु, वहाँ भी निराला निज–प्रतिभा का उत्कर्ष दिखाकर उसे भी मौलिक बना देते हैं।

निराला ने अपने निबंधों में सबसे अधिक किसी कवि पर लिखा है तो वह तुलसीदास ही हैं। 'समन्वय' के मई–जून,1932 ई0 में प्रकाशित अपने निबंध 'तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्व' में इस बात को स्थापित किया है कि तुलसीदास 'रामचरितमानस' में निर्गुण–ब्रह्म अद्वैत भूमि से ही द्वैत भूमि पर उतरते हैं। द्वैतभाव तभी दूर होता है जब अद्वैत भाव का बोध हो। यह अद्वैत भाव स्वयं निराला की आध्यात्मिक व दार्शनिक कविताओं के मूल में रहा है। 'ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास' में निराला लिखते हैं:– *"अधिकांश मनुष्य के विचार ये हैं कि गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तरकांड में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ बतलाया है। परंतु, बात ऐसी नहीं। गुसाईं जी ने तत्कालिक समाज की रूचि के ख्याल से शब्दों की गहरे अर्थ द्वारा भक्ति की प्रधानता भले ही दिखलाई हो, परंतु उनका*

भीतरी भाव ज्ञान और भक्ति का ऐक्य है।[189] निराला ने काव्य–दर्शन में ज्ञान को सर्वाधिक महत्व मिला है। निराला तुलसी की पंक्तिः–"ज्ञान ही प्रभुहिं विशेष प्यारा' के आधार पर यह साबित किया है कि 'ज्ञान ही भक्ति–पथ का प्रथम साधन है।' 'तुलसीकृत रामायण का आदर्श' निबंध में निराला ने यह घोषित किया कि 'हिंदू, हिंदी, हिंदुस्तान' का सबसे अधिक उपकार गोस्वामी जी ने ही किया था। निराला गोस्वामी जी की प्रशंसा उनके काव्य–शिल्प के लिए नहीं, वरन् काव्य–आदर्श के लिए ज्यादा करते हैं। उनका कहना हैः–*"शृंखला के साथ पद–बंध, अनुप्रास, अलंकार आदि श्रेष्ठ काव्यगुण तो गोस्वामी जी ने उसमें दिखाए ही हैं और उसकी यह सरल, स्वभाविक और सुंदर गति उसकी लोकप्रियता का प्रधान कारण भी है। किंतु, काव्य–कला से कहीं बढ़कर उसके वे भाव हैं, जिनका जीवन के साथ निम्नतम आदर्श से आरंभ कर सर्वोच्च सीमा तक घनिष्ठ संबंध है। रामायण में गोस्वामी जी ने कोरी कविता ही नहीं लिखी।*[190] यह एक प्रकार से काव्य में नैतिक तत्वों या आदर्श की स्थापना की मांग है। महात्मा गांधी 'रामायण' को सर्वश्रेष्ठ काव्य कहते थे। निराला ने 'तुलसी–कृत रामायण की व्यापकता' निबंध में लिखा हैः–*"आज वेदों का ज्ञान हिंदी–भाषियों में नहीं रहा, पर रामायण का ज्ञान है। वह वैदिक भूमि से किसी कम दृढ़ भूमि पर नहीं ठहरे। यहाँ भी उन्हें सब शिक्षाएं, मनुष्य को मनुष्य, देवता और ईश्वर कर देनेवाली कुल बातें ललित चित्रण के भीतर मिलती हैं।*[191] निराला ने अपनी कविता 'पंचवटी प्रसंग' में राम चरित्र का को आधार बनाया है। इसके चौथे खंड में निराला ने राम के मुख से सृष्टि के प्रलय और निर्माण पर प्रवचन कराया है। इसके साथ ही, निराला ने राम और लक्ष्मण के आपसी संवादों द्वारा राम के मुख से लक्ष्मण को ब्रह्म–ज्ञान, वेदांत और अद्वैतवाद की शिक्षा दिलवाई है। 'पंचवटी प्रसंग' के चौथे खंड की उद्भावना निराला ने तुलसी के 'रामचरितमानस' के अनुरूप ही की है। तुलसी के लक्ष्मण जैसे 'कहदु ग्यान, विराग अरू माया' का प्रश्न करते हैं, वैसे ही निराला के लक्ष्मण प्रलय, माया व सृष्टि–संचालन की बात पूछते हैं। तुलसी के राम माया को बतलाते हुए कहते हैंः–*"मै अरू मोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।*[192] निराला के राम भी इसे व्यष्टि और समष्टि का भेद बतलाते हैंः–

"व्यष्टि 'औ' समष्टि में नहीं भेद,
भेद उपजाता भ्रम–
माया जिसे कहते हैं।"[193]

तुलसी के राम 'ज्ञान' को बतलाते हुए कहते हैंः–

"ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माही।"[194]

निराला के राम भी अहंकार रहित मन और व्यष्टि–समष्टि में अभिन्नता को ही ज्ञान बतलाते हैः–

"देखता है स्पष्ट तब,
उसके अहंकार में समाया है जीव–जग
होता है निश्चय ज्ञान–
व्यष्टि तो समष्टि से अभिन्न है।"[195]

'मानस' के 'उत्तरकांड' में तुलसी गरूड़ के द्वारा यह कहलाते है कि भक्ति और ज्ञान में कुछ भेद नहीं– ***"भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।"[196]***

उसी प्रकार, निराला के राम 'पंचवटी–प्रसंग' में कहते हैंः–

"भक्ति–कर्म–योग ज्ञान एक ही है
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दिखते हैं।"[197]

निश्चय ही निराला यहाँ कोई नई प्रसंग उद्‌भावना नहीं कर रहे, सीधे–सादे पौराणिक इतिवृत्त को दुहरा रहे हैं या दूसरे शब्दों में कहें तो तुलसी के दर्शन को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

निराला ने 'तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्व' निबंध में लिखा हैः– ***"रामायण के अर्थ–गांभीर्य, भाव–माधुर्य, श्रुति–लालित्य और शब्द–योजना आदि काव्यगुणों का ज्ञान–रामायण की श्रेष्ठता के अनुरूप उसी का होगा जो स्वयं अच्छा कवि हो, अच्छा समालोचक हो, ईश्वरानुरागी हो और भव–बंधनों से अलग हो। जिसका मन संसार के कुरूचि–मार्ग में ही भ्रमण करता है–वह शिष्य जैसे रामायण से शिक्षा भले ही ले किन्तु समालोचना***

का उसे कोई अधिकार नहीं, उसमें वह योग्यता है ही नहीं। गुसाईं जी के जिस मन की मूर्ति रामायण हैं, उसकी आलोचना वही कर सकता है जो मनोरत्न का पक्का जौहरी हो।[198] निराला में ये गुण थे, इसलिए उन्होंने थोड़ा–बहुत 'रामचरितमानस' को समझने का प्रयत्न किया, हालांकि वह खुद को इस योग्य नहीं मानते थे। परंतु, निराला की अंतिम चरण की रचनाओं में निराला का भक्त रूप अधिक प्रस्फुटित हुआ है। निराला कृत 'अराधना' में *"कृष्ण–कृष्ण राम/जपे हैं हजार नाम"*[199] या *"कामरूप हरो काम/जपूं नाम, राम राम"*[200] जैसी पंक्तियाँ बहुत मिल जायेंगी। निराला पर तुलसी के 'रामचरितमानस' का इतना प्रभाव था कि उन्होंने उसका खड़ी बोली में रूपांतर करना शुरू किया, लेकिन वे उसके प्रथम सोपान के केवल आरंभिक अंश का रूपांतरण कर सके। उनका विनयवाला भाग 'रामायण' (विनय–खंड) के नाम से श्री राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी से 1948 के जून–जुलाई में प्रकाशित भी हुआ था। 'रामचरितमानस' का खड़ी बोली में अनुवाद करते हुए निराला ने निवेदन में लिखा हैः–*"इसको इस समय यहाँ का वेद कहते हैं। इसके संबंध की बहुत–सी बातें प्रकाश में नहीं आयीं। काफी अंधेरा है, अधिकार और अधिकारियों का प्रमाद भी। इनके आवेष्ठन के बाहर जो मुख्य विषय रहता है, वह है साहित्य। उसी को लक्ष्य में रखकर यह अनुवाद किया गया है।*[201] निराला ने अनुवाद–कर्म में दोहा, चौपाई, सोरठा, छंद में परिवर्तन नहीं किया है, जहाँ परिवर्तन है–वहाँ 'हिन्दी की शुद्धि की रक्षा के कारण'। इससे छंदशास्त्र की एक वृद्धि हुई है।

निराला ने 6 अगस्त, 1956 के 'चयन' में संकलित 'तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि' निबंध में लिखा हैः–*"कालिदास, बाल्मीकि, व्यास, होमर, गेटे, शेक्सपियर आदि को गोस्वामी जी के समपर्याय रखा है, मगर हिन्दी–प्राण समतोल विद्वानों ने गोस्वामी जी को वहीं संसार साहित्य का श्रेष्ठ रत्न माना है–"कलि कठिन जीव उद्धार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।*[202] इस प्रकार निराला के लिए तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। तभी तो निराला ने उनके लिए लिखा थाः–

"देश–काल के शर से बिंधकर
यह जागा कवि अशेष छविधर
इनका स्वर भर भारती मुखर होयेंगी।"[203]

यह बात तुलसी ही नहीं, स्वयं निराला के लिए भी सही थी।

महान कवि वही होता है जो हमेशा दूसरों से सीखता है, नकल नहीं करता, वरन् उससे अपनी रचना को सँवारता है। दूसरी बात, जहाँ उसने दूसरे से कुछ सीखा है, लिया है, उसे स्वीकारता भी है। निराला में ये गुण थे। 'गीतिका' की भूमिका में उन्होंने जयशंकर प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त से बहुत कुछ सीखने की ओर इशारा किया है। वह लिखते हैंः–"खड़ी बोली में नए गीतों के भी प्रथम सृष्टिकर्ता प्रसाद जी हैं। उनके नाटकों में अनेक प्रकार के नए गीत हैं। मैंने 1927–28 ई0 में प्रसाद जी का पूरा साहित्य देखा था। उनके अत्यंत सुंदर पद हैं–

"चढ़कर मेरे जीवन–रथ पर
प्रलय चल रहा अपने पथ पर
मैंने निज दुर्बल पद–बल
उससे हारी–होड़ लगायी।"

गुप्त जी के भी अनेक गीत मैंने कंठस्थ किए थेः–***"सभी दशाओं में सदैव है पर–हेतु शरीर प्रणाम।–मुझे अभी नहीं भूला।"***[204] उपर्युक्त पंक्तियों में निराला ने प्रसाद जी के 'देवसेना का गीत' की जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, वैसा ही भाव थोड़े–बहुत हेर–फेर के साथ उन्होंने 'गीतिका' के 'नर–जीवन के स्वार्थ सकल' गीत में स्वयं के संदर्भ में लिखा हैः–

"जीवन के रथ पर चढ़कर
सदा मृत्यु–पथ पर बढ़कर
महाकाल के खखर शर सह
सकूँ, मुझे तू कर दृढ़तर।"[205]

निराला ने आक्षेपों के शर सहे और जीवन के रथ पर चढ़कर और दृढ़तर होते गए। वह प्रभाव में आने वाले कवि ही नहीं, प्रभाव डालने वाले

कवि थे। उन्होंने जो कुछ भी विरासत से लिया, उससे कहीं अधिक अपनी आगे आनेवाली पीढ़ी को लौटाया। तभी तो कवि शमशेर बहादुर सिंह ने उन्हें याद करते हुए लिखाः–

"भूलकर जब राह–जब–जब राह.....भटका मैं
तुम्हीं झलके, हे महाकवि
सघन तम की आँख बन मेरे लिए,
अकल क्रोधित प्रकृति का विश्वास बन मेरे लिए–
जगत के उन्माद का
परिचय लिए.....
हाँ! तुम्हीं हो, एक मेरे कवि
जानता क्या मैं–
हृदय में भरकर तुम्हारी साँस–
किस तरह गाता,
(ओ विभूति परंपरा की)
समझ भी पाता तुम्हें यदि मैं कि जितना चाहता हूँ
महाकवि मेरे।"[206]

संदर्भः–

1. राजेश शर्मा; 'जो सुनना वो कहना जरूर'; ('अच्छी कविता' कविता); पृ. सं0–108
2. नरेश मेहता; 'अक्षरा–3, मार्च–मई, 1983 ई0; भोपाल; पृ. सं0–106
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल; 'चिंतामणि' (भाग–2); ('काव्य में रहस्यवाद' निबंध); पृ. सं0–77
4. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'; 'निराला रचनावली'(भाग–5); ('पंत जी और पल्लव' निबंध) पृ. सं0–165
5. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('युगावतार परमहंस श्रीरामकृष्णदेव के प्रति' कविता); पृ. सं0–193
6. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला'; पृ0 सं0–47; जनप्रकाशन गृह, मुबंई; प्रथम संस्करण
7. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–06); ('भारत में श्रीरामकृष्णावतार' निबंध); पृ. सं0–31
8. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–51
9. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); 'तुलसीदास' कविता; पृ. सं0–278
10. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('भारत में श्री रामकृष्णावतार' निबंध); पृ. सं0–33–34
11. वही; ('परमहंस श्रीरामकृष्ण देव' निबंध); पृ. सं0–60
12. वही; ('श्री देवरामकृष्ण परमहंस' कविता); पृ. सं0–127
13. वही; ('जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण'); पृ. सं0–46
14. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('स्वामी प्रेमानंद जी महाराज' कविता); पृ. सं0–94
15. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('शक्ति–परिचय' निबंध); पृ. सं0–57
16. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('तुम्हीं हो शक्ति समुदय की' कविता); पृ. सं0–87
17. निराला ; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण' निबंध); पृ. सं0–47
18. वही; ('श्री देव रामकृष्ण परमहंस' निबंध); पृ. सं0–127
19. वही; ('शक्ति–परिचय' निबंध); पृ. सं0–58–59
20. वही; पृ. सं0–59
21. वही; ('वेदांत केसरी स्वामी विवेकानंद और भारत' निबंध); पृ. सं0–144
22. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('जग का एक देखा तार' कविता); पृ. सं0–242
23. वही; ('एक ही आशा में' कविता); पृ. सं0–243
24. डॉ. नंदकिशोर नवल; 'निराला रचनावली' (भाग–6); भूमिका; पृ. सं0–10

25. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('बाहर और भीतर' निबंध); पृ. सं0–35
26. वही; पृ. सं0–36
27. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('बाहर मैं कर दिया गया हूँ' कविता); पृ. सं0–154
28. वही; ('ज्ञान की तेरी तुरी है' कविता); पृ. सं0–213
29. स्वामी विवेकानंद; 'जाति, संस्कृति और समाजवाद'; श्रीरामकृष्ण आश्रम; नागपुर, अगस्त 1953 ई0; पृ. सं0–06
30. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('अधिकार–समस्या' टिप्पणी); पृ. सं0–423
31. स्वामी विवेकानंद; 'जाति, संस्कृति और समाजवाद'; पृ. सं0–33
32. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('वर्णाश्रम धर्म की वर्त्तमान स्थिति' निबंध); पृ. सं0–103
33. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ' कविता); पृ. सं0–162
34. वही; ('स्वामी प्रेमानंद जी महाराज' कविता); पृ. सं0–103
35. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('अधिवास' कविता); पृ. सं0–35–36
36. वही; ('तुम और मैं' कविता); पृ. सं0–37
37. डॉ0. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–61–62
38. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('दो महाकवि, गो0 तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ' निबंध); पृ. सं0–299–300
39. वही; पृ. सं0–278
40. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('गांधी जी से बातचीत' निबंध); पृ. सं0–215
41. वही; ('एक बात' निबंध); पृ. सं0–148
42. वही; ('चरखा' निबंध); पृ. सं0–70
43. रवीन्द्रनाथ टैगोर; 'जीवन स्मृति': विश्वभारती ग्रंथालय, प्रथम संस्करण; पृ. सं0–41
44. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('काव्य में रूप और अरूप' निबंध); पृ. सं0–370
45. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तरगों के प्रति' कविता); पृ. सं0–94
46. वही; ('धारा' कविता); पृ. सं0–73
47. रवीन्द्रनाथ टैगोर; उद्धृत–'आधुनिक हिन्दी व साहित्य बांगलार प्रभाव' (सुधाकर चटोपध्याय); प्रथम खंड द्वितीय संस्करण; शरत साहित्य, कलकत्ता; पृ. सं0–105
48. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('देकर अंतिम कर' कविता); पृ. सं0–262
49. वही; ('कल्पना के कानन की रानी' कविता); पृ. सं0–204
50. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('रूप और नारी' निबंध); पृ. सं0–276
51. रवीन्द्रनाथ टैगोर; उद्धृत–"आधुनिक हिन्दी साहित्ये बांगला स्थान" खंड–1 (ल0–सुधाकर चट्टोपाध्याय); पृ. सं0–109

52. निराला; 'निराला रचनावली' (खंड–1); ('कब से मैं पथ देख रही' कविता); पृ. सं0–245
53. वही; ('तुम्ही गाती हो' कविता); पृ. सं0–247
54. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('नारी और कवि' कविता); पृ. सं0–446
55. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('सकल गुणों की खान, प्राण तुम' कविता); पृ. सं0–224
56. वही; ('वह रूप जगा उर' मैं कविता); पृ. सं0–205
57. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('धूलि में तुम मुझे भर दो' कविता); पृ. सं0–37
58. रवीन्द्रनाथ टैगोर; 'गीतांजलि'; विश्वभारती ग्रंथलाय, नूतन संस्करण, 1355 बंगाब्द; पृ. सं0–04
59. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('शेली और रवीन्द्रनाथ' निबंध); पृ. सं0–448
60. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('टूटे सकल बंध' कविता); पृ. सं0–253
61. वही; ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–278
62. वही; ('दान' कविता); पृ. सं0–291
63. वही; ('स्नेह की सरिता के तर–पर' कविता); पृ. सं0–208
64. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('काव्य में रूप और अरूप' निबंध); पृ. सं0–370
65. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तरंगों के प्रति' कविता); पृ. सं0–94
66. नंद किशोर नवल; 'निराला रचनावली' (भाग–5); (भूमिका); पृ. सं0–07
67. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('जागो जीवन धनिके' कविता); पृ. सं0–242
68. रवीन्द्रनाथ टैगोर; उद्धृत–'निराला काव्य पर बंगला का प्रभाव (इंद्रनाथ चौधरी); पृ. सं0–73
69. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); जल्दी जल्दी पैर बढ़ाओ' कविता; पृ. सं0–163
70. वही; ('मरण को जिसने वरा है' कविता); पृ. सं0–85
71. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('पंत जी और पल्लव' निबंध); पृ. सं0–168
72. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('बादल रे, जी तड़पे' कविता); पृ. सं0–450
73. रवीन्द्रनाथ टैगोर; उद्धृत– 'निराला के काव्य पर बंगला का प्रभाव' (लं0)–इंद्रनाथ चौधरी; श्री भारत भारती प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, दिल्ली प्रथम सं0–1964 ई; पृ. सं0–90
74. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–267

75. वही; ('राम की शक्ति–पूजा' निबंध); पृ. सं0–311
76. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना'(भाग–2); पृ. सं0–529
77. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('नाचे उस पर श्यामा' कविता); पृ. सं0–371
78. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–529
79. रवीन्द्रनाथ टैगोर; उद्धृत– 'निराला काव्य पर बंगला का प्रभाव' (लेखक)–इंद्रनाथ चौधरी; पृ. सं0–97
80. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('कब से मैं पथ देख रही' कविता); पृ. सं0–245
81. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('नाथ तुमने गहा हाथ' कविता); पृ. सं0–124
82. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); (' तुम छोड़ गए द्वार' कविता); पृ. सं0–215
83. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('नाचो हे रूद्रताल'गीत) पृ. सं0–428
84. रवीन्द्रनाथ टैगोर; उद्धृत– 'निराला के कला पक्ष पर बंगाला का प्रभाव' (लेखक)–इंद्रनाथ चौधरी;पृ. सं0–111
85. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('डूबा रवि अस्ताचाल' कविता); पृ. सं0–255
86. वही; ('प्रेयसी' कविता); पृ. सं0–308
87. रवीन्द्रनाथ टैगोर; उद्धृत– 'निराला के काव्य पर बंगला का प्रभाव' (लेखक)–इंद्रनाथ चौधरी; पृ. सं0–112
88. निराला; 'निराला रचनावली'(भाग–1); ('बादल राग–1' कविता); पृ. सं0–116
89. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('गगन वीणा बजी' कविता); पृ. सं0–210
90. निराला; 'निराला रचनावली'(भाग–1); ('मौन रही हार' कविता); पृ. सं0–240
91. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–528
92. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('कौन तुम के पार' कविता); पृ. सं0–241
93. डॉ. बच्चन सिंह; 'क्रातिकारी कवि निराला' काशी, प्रथम संस्कारण:2004; पृ. सं0–24
94. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('पंत जी और पल्लव' निबंध); पृ. सं0–184
95. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('वर्षा' कविता); पृ. सं0–196
96. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–527–528
97. दूधनाथ सिंह; 'निराला–आत्महन्ता आस्था' ; पृ. सं0–116
98. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('रवीन्द्र–कविता कानन' के अंतर्गत' संगीत काव्य' अध्याय); पृ. सं0–106
99. वही; पृ. सं0–107
100. वही; ('बंगाल के वैष्णव कवियों की श्रृंगार–वर्णना निबंध); पृ. सं0–247

101. वही; पृ. सं0–248
102. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('गीतिका' की भूमिका); पृ. सं0–409–410
103. वही; पृ. सं0–410
104. वही; पृ. सं0–411
105. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('हिन्दी और बंगला की कविता' निबंध); पृ. सं0–137
106. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र' कविता); पृ. सं0–331
107. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('संकोच को विस्तार' गजल); पृ. सं0–131
108. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('बेला' की भूमिका); पृ. सं0–326
109. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य की समतल भूमि' निबंध); पृ. सं0–159
110. वही; पृ. सं0–159
111. वही; पृ. सं0–160
112. वही; पृ. सं0–161
113. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('हमारे हिन्दू और मुसलमान' निबंध); पृ. सं0–383
114. वही; ('हिन्दू–मुस्लिम समस्या' टिप्पणी); पृ. सं0–452
115. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('टूटे सकल बंध' कविता)
116. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–349
117. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('साहित्य तथा हमारे लेखकों का संकट' निबंध); पृ. सं0–452
118. डॉ. रामविलास शर्माः 'परंपरा का मूल्यांकन; ('हिन्दी भाषा, साहित्य और आलेख' निबंध); पृ. सं0–218–219
119. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('वनबेला' कविता); पृ. सं0–327
120. डॉ. रामविलास शर्माः 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–350
121. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' निबंध); पृ. सं0–212
122. वही; ('मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य' निबंध); पृ. सं0–335
123. निराला; डॉ. रामविलास शर्मा को लिखे पत्र (2/2/1943) (22/2/1943); (18/6/1943) (2/12/1943);उद्धृत–'निराला की साहित्य रचनावली' (भाग–8); पृ. सं0–351
124. निराला; जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखा पत्र (2/12/1943); 'निराला रचनावली' (भाग–8); ; पृ. सं0–300
125. वही; पृ. सं0–300–301

126. डॉ. नामवर सिंह; 'छायावाद': प्रसाद निराला, महादेवी और पंत' (संपा–)– ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष; पृ. सं0–79–80
127. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('बेला' की गजल चढ़ी है आँखें जहाँ की.... .); पृ. सं0–134
128. दूधनाथ सिंह ; निरालाः आत्महन्ता आस्था; पृ. सं0–76–77
129. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('बेला' की बदली जो उनकी आंखे'गजल); पृ. सं0–130
130. रघुपति सहाय फिराक; सत्येन्द्र शर्मा को पत्र(17/09/1954);उद्धृत–'निराला एकःदृष्टि अनेक'; डॉ. शिवगोपाल मिश्र, एकेदमी प्रेस, इलाहाबाद,2014(पृ. सं0–49)
131. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('बेला' की गजल 'यह जीने का संग्राम ....); पृ. सं0–173
132. वही; ('कुकुरमुत्ता' कविता); पृ. सं0–49
133. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('युगाावतार भगवान श्रीरामकृष्ण' निबंध); पृ. सं0–80
134. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('नवीन साहित्य और प्राचीन विचार' निबंध); पृ. सं0–442
135. बच्चन सिंह; 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास'; पृ. सं0–333
136. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('शेली और रवीन्द्रनाथ' टिप्पणी); पृ. सं0–448
137. वही ; पृ. सं0–450
138. वही; ('शेली और रवीन्द्रनाथ दर्शन' टिप्पणी); पृ. सं0–457
139. वही; पृ. सं0–458
140. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('प्रेम के प्रति' कविता); पृ. सं0–211
141. वही; ('कौन तम के पार' कविता); पृ. सं0–240
142. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('शेली और रवीन्द्रनाथ दर्शन' कविता); पृ. सं0–459
143. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('नयन नहाये' गीत); पृ. सं0–345
144. दूधनाथ सिंह; 'निराला आत्महंता आस्था'; पृ. सं0–30
145. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('बादल राग' कविता); पृ. सं0–117
146. निराला; 'निराला रचनावली'(भाग–5); ('कविता में चित्र और भाव' टिप्पणी); पृ. सं0–462
147. वही; ('नारी और कवि' टिप्पणी); पृ. सं0–447
148. वही; पृ. सं0–447
149. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('श्रृंगारमयी' कविता); पृ. सं0–76

150. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('कवि और कविता' निबंध); पृ. सं0–147–148
151. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('वेदना बनी' गीत); पृ. सं0–357
152. वही; ('गीत गाने दो मुझे' गीत); पृ. सं0–367
153. आचार्य रामचंद्र शुक्ल; 'चिंतामणि' (भाग–2); ('काव्य में रहस्यवाद' निबंध); पृ. सं0–103
154. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य की नवीन प्रगति पर' निबंध); पृ. सं0–226
155. वही; पृ. सं0–227
156. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('गीत' कविता); पृ. सं0–188
157. वही; पृ. सं0–132
158. डॉ. नामवर सिंह; 'छायावाद'; पृ. सं0–32
159. आचार्य रामचंद्र शुक्ल; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संशोधित संस्कारण); पृ. सं0–348
160. निराला; 'परिमल' की भूमिका; ('निराला रचनावली–1); पृ. सं0–401–402
161. वही; पृ. सं0–405
162. डॉ. नामवर सिंह; 'छायावाद'; पृ. सं0–132
163. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('नुपूर के स्वर मंद रहे' कविता); पृ. सं0–62
164. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–8); ('जानकीवल्लभ शास्त्री को 10/03/1944 को लिखे पत्र); पृ. सं0–304
165. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('साहित्य का विकास' टिप्पणी); पृ. सं0–492
166. वही; ('काव्य–साहित्य' निबंध); पृ. सं0–355
167. वही; ('सौंदर्य दर्शन और कवि–कौशल' निबंध); पृ. सं0–215
168. वही; ('मेरे गीत और कला' निबंध); पृ. सं0–395
169. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('परिमल की भूमिका); पृ. सं0–486
170. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('एक बात' निबंध); पृ. सं0–149
171. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('पाँचक' कविता); पृ. सं0–116
172. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('सच है कविता); पृ. सं0–295
173. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('भारतीय और अंग्रेजी साहित्य' निबंध); पृ. सं0–388
174. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–1); पृ. सं0–79
175. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('पंत जी और पल्लव' निबंध); पृ. सं0–190
176. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('ज्ञान की तेरी तुरी है' कविता); पृ. सं0–213

177. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुम और मैं' कविता); पृ. सं0–37–38
178. वही; ('यमुना के प्रति' भूमिका); पृ. सं0–112–113
179. दूधनाथ सिंह; 'निरालाः आत्महंता आस्था'; पृ. सं0–96
180. डॉ. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य–साधना' (भाग–2); पृ. सं0–535
181. दूधनाथ सिंह; 'निरालाः आत्महंता आस्था'; पृ. सं0–129
182. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('प्रभावी' कविता); पृ. सं0–175
183. वही; ('पारस' कविता); पृ. सं0–133
184. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('शीत की गहरी विभावरी' गीत); पृ. सं0–473
185. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('शत–शत वर्षों का मग' कविता); पृ. सं0–257
186. वही; ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–271
187. रामविलास शर्मा; 'निराला की साहित्य साधना' (भाग–2); पृ. सं0–539
188. वही; पृ. सं0–541
189. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास' निबंध); पृ. सं0–129
190. वही; ('तुलसीकृत रामायण का आदर्श' निबंध); पृ. सं0–133
191. वही; ('तुलसीकृत रामायण की व्यापकता' निबंध); पृ. सं0–463
192. तुलसीदास; 'रामचरितमानस'; ('अख्यकांड; 14/1); गीताप्रेस, गोरखपुर, पचपनवां संस्करण ;पृ. सं0–548
193. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('पंचवटी प्रसंग' कविता); पृ. सं0–46
194. तुलसीदास; 'रामचरितमानस'; ('अख्यकांड; 14/4); पृ. सं0–549
195. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('पंचवटी प्रसंग' कविता); पृ. सं0–47
196. तुलसीदास; 'रामचरितमानस'; ('उत्तरकांड; 114(ख)/7); पृ. सं0–889
197. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('पंचवटी–प्रसंग' कविता); पृ. सं0–48
198. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–5); ('तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्व' निबंध); पृ. सं0–125
199. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–2); ('कृष्ण–कृष्ण राम राम' गीत); पृ. सं0–406
200. वही; ('कामरूप हरो काम' गीत); पृ. सं0–407
201. वही; ('रामायण'; विनय–खंड, निवेदन); पृ. सं0–226
202. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–6); ('तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि' निबंध); पृ. सं0–233
203. निराला; 'निराला रचनावली' (भाग–1); ('तुलसीदास' कविता); पृ. सं0–288
204. वही; ('गीतिका' की); पृ. सं0–415–416
205. वही; ('नर जीवन के स्वार्थ सकल' कविता); पृ. सं0–209
206. शमशेर बहादुर सिंह; 'कुछ कविताएं' ('निराला के प्रति'कविता); पृ. सं0–01

उपसंहार

उपसंहार

''टूटें सकल बन्ध
कलि के, दिशा–ज्ञान–गत हो बहे गन्ध।
रुद्र जो धार रे
शिखर–निर्झर झरे।''

('टूटें सकल बन्ध' कविता)

'गीतिका' में संकलित महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की उपर्युक्त काव्य–पंक्तियाँ न केवल जीवन, समाज और साहित्य के सभी स्तरों पर बंधनों को तोड़ने की वकालत करती हैं, वरन् मुक्ति की कामना से आलोड़ित होकर गतिशीलता को बनाए रखने का भी संदेश देती हैं। महाकवि निराला जानते थे कि 'लकीर के फकीर' बने रहने और बँधी–बँधाई साहित्यिक रूढ़ियों की नींव पर कालजयी रचनाओं की इमारत नहीं खड़ी की जा सकती है। 'मनुष्यों की तरह कविता की भी मुक्ति' की बात करते हुए निराला ने यह स्पष्ट कर दिया था कि **''साहित्य को प्रतिक्षण नवीनता की आवश्यकता है, पर नवीनता उस मस्तिष्क से नहीं निकल सकती जो रूढ़िग्रस्त होगा।''** ('निराला रचनावली', भाग–5, 'हिन्दी में तर्कवाद' निबंध, पृ.सं. 487) निराला जीवन, समाज और साहित्य के सभी स्तरों पर बंधनों और रूढ़ियों को तोड़कर नए भाव–बोध एवं शिल्प की इमारत खड़ी करना चाहते थे। कभी–कभी नव–सृजन के लिए विनाश आवश्यक हो जाता है। पुरातन व रूढ़िवादी भाव–भूमि पर नवीन चिंतन और नव–सृजन के बीज अंकुरित नहीं हो सकते। तभी तो साठ के दशक में कवि रघुवीर सहाय ने भी कहा था :–

''तोड़ो तोड़ो तोड़ो
ये पत्थर ये चट्टानें
ये झूठे बंधन टूटे
तो धरती को हम जानें।''

(सीढ़ियों पर धूप में, 'तोड़ो' कविता)

जो बात कविवर रघुवीर सहाय ने साठ के दशक में कही थी, उसे निराला बहुत पहले ही कह चुके थे :–

''तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकलो फिर
गंगा–जल–धारा!''

('मुक्ति' कविता)

निराला जी ने तोड़ने की प्रक्रिया के पूरे 'रोड–मैप' के साथ साहित्य में नवीन–प्रयोग किए और उस क्रम में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की पराधीन बेड़ियों को भी तोड़ा।

जहाँ तक निराला की काव्य–चेतना का प्रश्न है, उनका ज्यादातर विद्रोही कवि व प्रयोगधर्मी कवि के रूप में मूल्यांकन किया जाता है। परंतु उनकी काव्य–मंजिल के उन रास्तों को नहीं देखा जाता, जहाँ निराला की काव्य–चेतना संपन्न लेखनी से गुजरती है, कुछ नया करती है फिर रास्ते बदल लेती है। ध्यातव्य है, निराला की काव्य–यात्रा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि वह शीर्ष पर पहुँचकर रूप व भाषा, सभी दृष्टि से अपना मार्ग बदल लेती है। निराला ने काव्य के सभी रूपों में सफल प्रयोग किये हैं तथा पारंपरिक काव्य–प्रकारों में भी नूतन समावेश किया है। उनके विविध काव्य–संसार में जहाँ एक ओर मुक्त छंद की उद्घोषणा है तो वहीं दूसरी ओर 'तुलसीदास' जैसी कठिन छंदोबद्ध रचना भी है। लंबी कविता, गीत, गीतिनाट्य, सॉनेट, गजल आदि काव्य–रूप निराला की अमूल्य धरोहर है। 'जूही की कली' (1916) से लेकर मृत्यु–विषयक उनकी अंतिम कविताओं तक निराला के काव्य में विषय, भाव और शिल्प के स्तर पर विविधता मिलती है। इनके यहाँ प्रेम गीत, ऋतुगीत, प्रार्थना–गीत, मृत्युगीत और लोकगीतों के नए रूप मिलते हैं। अकारण नहीं है कि उनकी काव्य–कुशलता और काव्य–विविधता को देखकर तद्युगीन प्रमुख आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें 'बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा' का धनी और उनकी वाणी को 'बहुमुखी' बतलाया था।

निराला की काव्य–वस्तु एवं काव्य–शिल्प पर तद्युगीन परिस्थितियों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। उन्होंने 'गहन है यह अंधकारा' कविता में तद्युगीन समाज में व्याप्त अंधकार का चित्रण किया है। यह अंधकार था–

राष्ट्रीय पराधीनता का; यह अंधकार था– स्वार्थ व रूढ़ि से ग्रसित समाज का; यह अंधकार था– परंपराबद्ध हिन्दी कविता का, राष्ट्रभाषा आदि का। निराला की कविता इन अंधकारों से लड़ने की ज्वलंत मशाल के रूप में उपस्थित होती है। इसमें नवजागरण युगीन परिस्थितियाँ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी से जुड़ी है निराला की सामंत–विरोधी चेतना जो पूंजीपतियों, जमींदारों व साहूकारों के विरुद्ध कृषकों व मजदूरों के अधिकारों की माँग करती है। निराला की कविता 'राजे ने अपनी रखवाली की' जहाँ दमनकारी राजा व सरकार की श्रृ–वृद्धि की हितकामना को रेखांकित करती है तो दूसरी ओर 'नए पत्ते' काव्य–संग्रह में पिछड़े हुए गाँव गढ़ाकोला के बहाने अवध के किसानों का पूरा विद्रोह दिखाई पड़ता है। 'चर्खा चला' कविता गायों, बैलों, हलों को सम्मान देती है तो दूसरी ओर 'वर्षा' कविता किसानों के 'आमों के हिस्सेदार' जमीदारों पर करारा व्यंग्य करती है। जब इन किसानों में 'बादलराग' की तरह क्रांति जगती है तो ये किसान बादलों की तरह ही 'विप्लव के वीर' बन जाते हैं। 'तुझे बुलाता कृषक अधीर' से लेकर 'झींगुर डरकर बोला' कविता तक की यात्रा स्वाधीनता आंदोलन के उतार–चढ़ाव व किसानों के आह्वान, संगठन तथा प्रतिरोध की कथा कहती है। 'मँहगू', 'झींगुर' आम इंसानों के प्रतीक हैं, जो डटकर बोलते भी हैं–

''चूंकि हम किसान–सभा के
भाई जी के मददगार
जमींदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुक्म की तामीली को,
ऐसा यह पेंच है।''

('झींगुर डटकर बोला', कविता)

निराला ने कई नवीन प्रयोग किए, किन्तु काव्य–विरासत परंपरा को अनदेखा न करते हुए। ठीक उसी प्रकार जिस तरह सूर और तुलसी ने पुराने कृष्ण व राम–काव्य की परंपरा पर अपनी प्रतिभा से नयी काव्य–इमारतों की रचना की। जाहिर है कि वे पूर्णतः मौलिक नहीं हैं, पर मौलिक से कम महत्वपूर्ण भी नहीं हैं। निराला ने भी 'कृतिवास रामायण' का आधार लेकर 'राम की शक्ति–पूजा' जैसी महान काव्य–इमारत खड़ी

की थी। लेकिन, उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया था– **''सृष्टि का अर्थ नवीनता है। जहाँ कोई पिष्टापेषण में बदला कि सारी मौलिकता का नाश समझिए।''** ('निराला रचनावली', भाग–5, 'रचना–रूप' निबंध, पृ.सं. 504) जाहिर है निराला पिष्टपेषण करने वालों में से नहीं थे। उन्होंने जो कुछ भी विरासत में लिया उसे नवीन–दृष्टि और नवीन भाषा के साथ अभिसिंचित भी किया।

निराला ने रचना को युद्ध–कौशल माना तो भाषा को तदनुरूप अस्त्र। निराला ने पारंगत वीर साहित्यिक की तरह भाषा का यथासंगत समुचित प्रयोग किया। एक ओर उन्होंने पूर्ण तत्सम शब्दावली प्रधान भाषा 'राम की शक्ति–पूजा' जैसी रचनाओं में लिखी– ''राघव–लाघव–रावण–वरण–गत–युग्म प्रहर' तो दूसरी ओर कुकुरमुत्ता जैसी कविताओं और गजलों में वे अरबी–फारसी व अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करने से भी नहीं हिचके। यथा, 'कुकुरमुत्ता' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''आया मौसिम, खिला फारस का गुलाब।'' उसी प्रकार 'नये पत्ते' 'रानी और कानी', 'खजरोहा', 'गर्म पकौड़ी', 'स्फटिक शिला' आदि कविताएँ देशज व लोकगीतों के ज्यादा निकट हैं। यथा– ''हौंकता था रामलाल का भाई/ता–ता–ता–ता करता शहनाई।'' निराला संस्कृत की तत्सम शब्दावली में जहाँ एक ओर संधियुक्त शब्दों की भरमार लगा देते हैं, यथा– शीतलच्छाया, तमस्तूर्य, गर्जितोर्मि आदि तो दूसरी ओर नए अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। यथा – सुपरिसका, किन्नरगण, अरणी आदि। जहाँ तक नाद–सौंदर्य का प्रश्न है, निराला इसके बादशाह हैं। यथा, 'वन–बेला' कविता का यह प्रसंग देखिए कि किस प्रकार ध्वनि–प्रवाह की भंगिमाओं द्वारा क्रियाओं को चित्रित किया गया है –

''झुक–झुक, तन–तन, फिर झूम–झूम हँस–हँस, झकोर
चिरपरिचित चितवन डाल, सहज मुखड़ा मरोर।''

('वन–बेला' कविता से उद्धृत)

परंतु, ध्वनि के मोह में कहीं कहीं शाब्दिक–क्रीड़ा भी मिलेगी जहाँ अर्थ नहीं है। यथा –

''ताक कमसिन वारि
सिनवारि, सिनवारि।''

('निराला रचनावली', भाग–2)

डॉ. रामविलास शर्मा इन पंक्तियों के संदर्भ में लिखते हैं – **''यहाँ निराला ध्रुपद जैसी पुरानी गायिकी के शब्दों को उलट–फेर कर रहे हैं, सामान्य कविता की तरह उसका अर्थ करना व्यर्थ होगा।''** ('निराला की साहित्य साधना', भाग–2, पृ. 41) निराला ने अपने निरालेपन में कहीं–कहीं ये उलटपन खूब किया है– छंद और भाव की उल्टी गंगा बहाई और इस क्रम में भी उन्होंने नवीन भाषा की खोज भी की है। उन्होंने कालिदास और रवीन्द्रनाथ की भाषा में 'श–ण–ल–व' वर्णों के स्कूल का विरोध किया और सुमित्रानंदन पंत को उसी स्कूल का विद्यार्थी बतलाया। निराला ने 'श–ण–ल–व' की ध्वनियों को ब्रजभाषा के अनुकूल तो 'स–म–व–ल' को हिन्दी की ध्वनि–प्रकृति के अनुकूल बतलाया। निराला को निश्चय ही आधुनिक हिन्दी की ध्वनि–प्रकृति का सहज ज्ञान था।

निराला हिन्दी साहित्य में जिस अभिन्न प्रयोग के लिए सदा चर्चित रहे, वह है – 'मुक्त छंद की शुरूआत'। उनके अनुसार – 'मुक्त छंद/सहज प्रकाशन वह मन का।' उन्होंने मुक्त छंद को छंद की भूमि में रहकर भी मुक्त माना। हिन्दी साहित्य में 'जुही की कली' कविता को मुक्त छंद की प्रथम रचना माना जाता है। पर, निराला ने 'जुही की कली' का उदाहरण देते हुए समझाया कि यहाँ 'सोती थी सुहाग भरी' आठ अक्षरों का एक छंद आप ही आप बन गया है। तमाम लड़ियों की गति कवित्त छंद की तरह है। कहने का तात्पर्य है कि मुक्त छंद में भी उसकी आत्मा 'लय' बनी हुई है। परंतु छंद के बाह्य आडंबर वहाँ नहीं हैं। दरअसल, निराला मुक्त छंद के द्वारा यह प्रयास कर रहे थे कि हिन्दी कविता को बोलचाल की भाषा तथा वाद्य की लय के अधिकाधिक निकट लाया जाए। दूसरे अर्थों में कहें तो मुक्त छंद ने मात्रिक छंदों की एकरस लय को भंग कर हिन्दी कविता में बोलचाल की लय की विविधता को स्थापित किया। हालाँकि निराला की अधिकांश कविताओं में परंपरागत छंद–विधान भी मिलता है। यथा, 'परिमल' की रचनाएँ पढ़ने से पता चलता है कि प्रथम

खंड की कविताएँ सममात्रिक सांत्यानुप्रासिक, दूसरे खंड की विषम मात्रिक सांत्यानुप्रासिक और तीसरे खंड में स्वच्छंद छंद की कविताएँ हैं। 'परिमल' की प्रथम खंड की कविताओं में मात्राओं और तुकों की एकरूपता को भी ध्यान में रखा गया है। निराला ने पात्रों की भाषा के लिए स्वच्छंद छंद का उपयोग किया है। 'पंचवटी प्रसंग' पाँच भागों में विभक्त नाट्यरूपक, स्वच्छंद छंद में ही है जो कथोपकथन और पठनकला में सक्षम होने के कारण रंगमंच के लिए उपयुक्त है। 'कुकुरमुत्ता' में कवि ने विषममात्रिक मुक्त छंदों का निर्वाह किया है तो 'अणिमा' में सम, विषम और मुक्त तीनों छंद प्रयुक्त हुए हैं। हालाँकि निराला मुक्त छंद के लिए सर्वाधिक आलोचना के शिकार हुए। उनके छंद को 'वाल्ट व्हिटमैन की नकल', 'रबड़ छंद', केंचुआ छंद आदि भी कहा गया। कुछ आलोचकों ने इसे बंगला काव्य और गिरीशचंद्र बोस द्वारा प्रयुक्त स्वच्छंद छंद का प्रभाव भी माना। इसके अतिरिक्त निराला ने लंबी कविता, शोकगीत, उद्‌बोधन कविता, आख्यानपरक कविता, गीतिनाट्य, गीत–प्रगीत; सभी रूपों को काव्य में प्रतिष्ठित किया। जहाँ एक ओर ''राम की शक्ति–पूजा'' हीरोइक कपलेट में 'शक्ति–छंद' का अनुसंधान है; वहीं 'सरोज–स्मृति' हिन्दी की पहली सॉनेट बनने का हक रखती है। उनकी लंबी कविताओं में जहाँ भारतीय परंपरा की अलंकार प्रियता है वहीं वाल्ट व्हिटमैन जैसी विवरणात्मकता भी है जिससे उनकी कविताओं में आधुनिक महाकाव्यात्मकता के गुण आ जाते हैं। निराला का जीवनबोध बड़ा गहरा है। वे अपने समय के समाज पर गहरी पकड़ रखते थे। इसलिए निराला के बिंबों, प्रतीकों, मिथकों आदि काव्य उपादानों में नई ताजगी मिलती है जिससे वे सामाजिक यथार्थ का उद्‌घाटन करने में सक्षम है। निराला कड़वे से कड़वे यथार्थ को सौन्दर्यात्मकता के साथ उकेर सकते थे। 'सरोज–स्मृति' इसका ज्वलंत उदाहरण है। जिसमें निराला ने अपनी पुत्री की मृत्यु–पीड़ा को शेष–सृष्टि के साथ तदाकार कर दिया है।

निराला ने अपने साहित्य से आधुनिक जन–मानस को जीवन–जीने का नया मुहावरा दिया, विद्रोह का नया स्वर दिया। यह नई यथार्थवादी दृष्टि थी। निराला की कविता सच्चे अर्थों में 'आँखिन देखी' कविता है जहाँ छायावादी रंगीन नक्काशी नहीं, वायवियता नहीं; यथार्थ का रेखाचित्र

है – ठीक पेंसिल द्वारा कलात्मक अंदाज में बनाया गया रेखाचित्र। जिसमें जो कुछ भी है नंगा है, स्पष्ट है। उसे रंगों की नक्काशी से नहीं झाँपा जा सकता है। नए पत्ते की अधिकांश कविताएँ वैलेड की तरह है, जहाँ जीवन का छोटा–सा चित्र है। इस चित्र में जन–साधारण की भाषा है, उनके सपने हैं। ध्यातव्य है कि 'राम की शक्ति–पूजा' के राम ईश्वर नहीं, इंसान है– जो 'सजल नयन' हैं, व्याकुल हैं, अपनी पत्नी 'जानकी के उद्धार' हेतु विकल हैं। दूसरी ओर 'स्फटिक–शिला' में श्रीराम के चित्रकूट की यात्रा है– जितनी साधारण, उतनी कठिन, पर उतनी ही दिव्य। जहाँ निराला को सद्यः स्नाता के स्तन भी दिव्य लगने लगते हैं।

निराला समय–समय पर स्वयं से ही मुखा–मुखम करते हैं। अपने प्रतिमान स्वयं तोड़ते हैं। यह तोड़ना कई स्तरों पर है– पहले भाषा को गद्य बनाकर तोड़ना, फिर छंदों को तोड़ना और नई भाषा गढ़ना। इस सारी प्रक्रिया में वे भाव गंभीर रखते हैं क्योंकि ये कविता की ईमारत की नींव होते हैं। उन्होंने कहा है –

"भाव जो छलके पदों पर
न हों हलके न हो नश्वर।"

('निराला रचनावली', भाग–2)

निराला ने काव्य–भाव की इस नींव की पड़ताल कर पूरे संतुलन के साथ नियत लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई व गहराई वाली काव्य–आकृति बनाई। निराला के लिए संतुलन का मतलब पूर्णता से था जिसे वो कच्चे माल से बनाना चाहते थे। निराला ने काव्य को वृक्ष की पूर्णता से जोड़ा और उसके सभी उपादानों का महत्व बतलाया। दरअसल, निराला चाहते थे कि उनके काव्य को, उनकी हर कृति को पूर्णता में देखा जाए, केवल उसके एक अंग–प्रत्यंग की बात न की जाए। यह बात सही भी है क्योंकि वह 'तोड़ती पत्थर' कविता का यदि अंत न देखा जाए तो कविता का सौंदर्य ही स्पष्ट नहीं होगा। निराला नहीं चाहते थे कि उनकी छोटी कविताओं को केवल सूक्ति रूप में देखा जाए। पर, यह भी उतना ही बड़ा सत्य है कि जहाँ निराला अपनी कविता की पूर्णता व उदात्तता के लिए जाने जाते हैं वहीं उनकी कुछ काव्य–पंक्तियाँ सूक्ति बनकर लोककंठ में छा गई है।

जैसे – ''बाहर मैं कर दिया गया हूँ/भीतर पर भर दिया गया हूँ।'' या 'सुख का दिन न डूब जाए, तुमसे न सहज मन ऊब जाए।'' यहाँ निराला अपूर्णता में भी पूर्णता पा लेते हैं क्योंकि निराला ने काव्य–शिल्प उपादानों का प्रयोग हर जगह संतुलन के साथ किया है। यदि 'राम की शक्ति पूजा' कविता समग्रता में महान रचना है तो उसके एक–एक खंड में जीवनानुभव का निचोड़ है, भाषा की नक्काशी है।

निराला के काव्य की प्रयोगधर्मिता और नव्यता ही है कि अधिकांश प्रगतिशील, प्रयोगशील और नई कविता वाले कवियों ने उन्हें अपना जनक माना। उनका ऋण स्वीकारा और उन्हें नयी भाषा का अनुसंधानकर्त्ता कहा। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर आदि सभी ने निराला पर कविताएँ लिखीं। अपने तमाम मतभेदों के बाद अज्ञेय ने उन्हें एक शलाका–पुरुष स्वीकारा किया। रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह ने भी स्थान–स्थान पर निराला का ऋण स्वीकार किया है। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि 'कविता के नए प्रतिमान' में डॉ. नामवर सिंह ने जिन नए प्रतिमानों की बात की है, उनका उत्स निराला की काव्य–सरिता में ही दिखाई पड़ता है। इसलिए नामवर सिंह ने उन्हें हिन्दी में काव्य–संरचना का पथ प्रशस्त करने वाला रचनाकार बतलाया है जिसने प्रयोगवादी कवियों से भी पहले कविता में अभिनव प्रयोग किए और नए–नए प्रयोग करते हुए प्रयोगवाद का भी अतिक्रमण किया। निराला सभी सीमाओं व बंधनों से परे अपनी काव्य–वस्तु के क्षेत्र में बहुमुखी हैं तो काव्य–शिल्प में अभिनव प्रयोगकर्त्ता भी हैं। वे 'हिन्दी के हित का अभिमान' हैं और 'वसंत के अग्रदूत' भी और हर युग में 'अभी न होगा मेरा अंत' कहने का साहस भी रखते हैं। वह प्रभाव में आने वाले कवि नहीं, बल्कि प्रभाव डालने वाले कवि हैं। उन्होंने काव्य–परम्परा और अपने समाज से जो कुछ भी लिया; अपने काव्य–शिल्पगत प्रयोग के अनूठेपन और बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा से आने वाली पीढ़ी को लौटाया है। तभी तो कवि शमशेर बहादुर सिंह ने उन्हें याद करते हुए लिखा है–

''भूलकर जब राह
जब–जब राह भटका मैं
तुम झलके, हे महाकवि
सघन तम की आँख बन मेरे लिए
अकल क्रोधित प्रकृति का विश्वास बन मेरे लिए –
जगत के उन्माद का
परिचय लिए..... ।''

('कुछ कविताएँ'; 'निराला के प्रति कविता')

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

(क) आधार – ग्रन्थ सूची

1. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, अणिमा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992
2. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, अनामिका, भारती भण्डार, इलाहाबाद, छठा संस्करण 1969
3. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, अपरा, साहित्यकार – संसद, प्रयाग, तृतीय संस्करण वि०. 2013
4. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, अर्चना, भार्गव प्रेस, प्रयाग, 1992
5. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, आराधना, साहित्यकार– संसद, प्रयाग, प्रथम संस्करण वि०. 2010
6. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, कुकुरमुत्ता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1975
7. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, गीतगुंज, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, वि० 2011
8. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, गीतिका, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०. नई दिल्ली, नवाँ संस्करण 1992
9. निराला. सूर्यकान्त त्रिपाठी, तुलसीदास, भारती भण्डार, प्रयाग, वि० 2008
10. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, नये–पत्ते, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन, शाहगंज इलाहाबाद, प्रथम आवृत्ति 1946
11. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, परिमल, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, सातवाँ संस्करण 1956

12. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, बेला, निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, 1962

13. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, सांध्यकाकली, निराला प्रकाशन, दारियागंज, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1976

(ख) सहायक–ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, ओमप्रकाश, हिन्दी गीतिकाव्य, साहित्य रत्न–भण्डार, आगरा, आवृत्ति द्वितीय संवत् 2007

2. अग्रवाल, गिरिराज (सं०). युग कवि निराला, हिन्दी साहित्य निकेतन, कानपुर, 1970

3. अग्निहोत्री, साहित्य नारायण, निराला काव्य मे कल्पना–सौष्ठव, साहित्य निलय, प्रथम संस्करण 2001

4. उपाध्याय, देवराज, रोमांटिक साहित्यशास्त्र, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली. 1951

5. उपाध्याय, विश्वम्भरनाथ, निराला का साहित्य और साधना, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, 1965

6. उपेन्द्र, छायावादी कवियों की गीत–सृष्टि, युगवाणी प्रकाशन, जवाहर नगर, कानपुर 1974

7. कमलेश, पदमसिंह शर्मा, निराला, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली, 1969

8. किशोर, आशा, आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1971

9. कुमार विमल, छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1970

10 कौशिक, रामकृष्ण, निराला की काव्य–दृष्टि, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985

11. काशिक, रामकृष्ण, निराला – काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, मेरठ, 1974

12. कौशिक, वीरेन्द्र द्विवेदी युग की पृष्ठभूमि और नाथूराम शर्मा 'शंकर', अनुराधा प्रकाशन मेरठ, प्रथम संस्करण 1977

13. खरे, गणेश प्रसाद के प्रगीत, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1960

14. गुप्त, किशोरी लाल, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, बनारस, प्रथम संस्करण 1956

15. गुप्त, मैथिलीशरण, कुणाल गीत, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, दि० 2013

16. गुप्ता मंजु, आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का शिल्पविधान, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1974

17. गोयल, संतोष, निराला का काव्य, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा–3 प्रथम संस्करण 1972

18. चकोर, हनुमानदास, छायावाद और निराला आलोचना, हिन्दी साहित्य भवन, लखनऊ, 1963

19. चन्द्र, जगदीश, निराला के काव्य मे सांस्कृतिक चेतना, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979

20. चार्ल्स जी० मॉरिस, साइक्लॉजी एन इन्ट्रोडक्शन

21. चेलिशेव, ये० पे०. निराला, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1982

22. चौधरी सुभद्रा, भारतीय संगीत मे ताल और रूप विधान (लक्ष्य–लक्षणामूलक अध्ययन), कृष्णा ब्रॉदर्स, अजमेर, 1984

23. जयरामन, पी०. महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती' एवं सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1966

24. जिन्दल, निर्मल, निराला का गद्य साहित्य, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1971

25. जैन नेमिचन्द्र मुक्तिबोध रचनावली (भाग 5). राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1980

26. जोशी जीवन प्रकाश, आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1974

27. झारी. कृष्णदेव युगकवि निराला (परिमल से सांध्यकाकली' तक निराला काव्य का अध्ययन), अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1970

28. झारी, कृष्णदेव शक्तिपुंज निराला, शारदा प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1986

29. टण्डन, प्रेम नारायण (संपादक), निराला व्यक्तित्व एवं कृतित्व, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, 1962

30. तिवारी, सच्चिदानन्द, आधुनिक हिन्दी कविता मे गीतितत्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1968

31. दीक्षित, सूर्यप्रसाद, छायावादी कवियों का सौंदर्यविधान दि मैकमिलन कंपनी, दिल्ली, 1974

32. दीक्षित, सूर्यप्रसाद, निराला का गद्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1968

33. दीक्षित, सूर्यप्रसाद निराला की आत्मकथा, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, 1979

34. नगेन्द्र, आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972

35. नगेन्द्र, आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृत्तियों, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966

36. नगेन्द्र चेतना के बिम्ब नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967

37. नलिन, जयनाथ, निराला काव्यकोश, आलोक प्रकाशन, कुरुक्षेत्र, 1968

38. नलिन जयनाथ, काव्य–पुरुष निराला, आलोक प्रकाशन, कुरुक्षेत्र, प्रथम संस्करण 1970

39. नवल, नन्द किशोर (सं०), असंकलित कविताएँ निराला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – पटना, प्रथम संस्करण

40. नवल, नन्द किशोर (सं०) निराला रचनावली, (भाग–1 से भाग–8), नई दिल्ली, 1983

41. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, अप्सरा, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, 1986

42. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, चयन, कल्याणदास एण्ड ब्रादर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी

43. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, चोटी की पकड़, किताब महल, इलाहाबाद, 1987

44. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रबन्ध पद्म, गंगा–पुस्तक माला, लखनऊ, 1960

45. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रबन्ध प्रतिमा भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1963

46. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, प्रभावती, किताब महल, इलाहाबाद, 1967

47. नीहार, बुद्धसेन, विश्वकवि निराला, रीगल बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975

48. पन्त, सुमित्रानन्दन, गुंजन, भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 2003

49. पन्त, सुमित्रानन्दन, छायावाद पुनर्मूल्यांकन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1965

50. पन्त, सुमित्रानन्दन, पल्लव, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली संस्करण 1967

51. पन्त, सुमित्रानन्दन, रश्मिबन्ध, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, नवाँ संस्करण 1966

52. प्रसाद, जयशंकर, लहर, भारती भण्डार, इलाहाबाद संस्करण 2001

53. प्रवासी, लालधर त्रिपाठी, गीतिकाव्य का विकास, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी, प्रथम संस्करण

54. पाठक, कमलाकान्त मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1960

55. पाठक, दानबहादुर वर, मैथिलीशरण गुप्त और साहित्य, विनोद पुस्तक मंदिर, रांगेय राघव मार्ग, आगरा, प्रथम संस्करण 1969

56. पाठक वाचस्पति प्रसाद, निराला पन्त, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1987

57. पाण्डेय, अम्बादत्त, छायावादी काव्य में लोकमंगल की भावना, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1973

58. पाण्डेय कमला प्रसाद, छायावादः प्रकृति और प्रयोग, साहित्यवाणी, इलाहाबाद 1972

59. पाण्डेय गंगाप्रसाद छायावाद के आधार स्तम्भ, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1971

60. पाण्डेय, गंगाप्रसाद, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य

61. पाण्डेय गंगाप्रसाद महाप्राण निराला, साहित्यकार संसद, प्रयाग, वि० 2006

62. पाण्डेय, रामखेलावन, गीतिकाव्य ज्ञान मण्डल, काशी, वि० 2004

63. पाण्डेय, शशिभूषण, निराला का अलक्षित अर्थगौरव, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद–दिल्ली, 1976

64. पालीवाल, कृष्णदत्त, मैथिलीशरण गुप्तः प्रासंगिता के अन्तः सूत्र, सचिन प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987

65. बाछोतिया, हीरालाल निराला साहित्य का अनुशीलन, साहित्य संस्थान, कानपुर 1977

66. भटनागर, रामरतन, कवि निराला एक अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1947

67. भ्रमर, रवीन्द्र, छायावाद एक पुनर्मूल्यांकन, राजेश प्रकाशन, दिल्ली, 1971

68. माथुर उषा, भारतेन्दु की खड़ी बोली का भाषा विश्लेषण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

69. मानव, विश्वम्भर, काव्य का देवता निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1963

70. मिश्र, उमा, काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध पुस्तकालय सदन, दिल्ली, संवत 1700–1900

71. मिश्र, कृष्णाकुमारी, छायावादी काव्य मे सौंदर्य चेतना, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1979

72. मिश्र, गौरी शंकर, हिन्दी साहित्य का छन्दोविवेचन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1975

73. मिश्र, दुर्गा शंकर, महाकवि निराला का काव्य : एक विश्लेषण, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, संस्करण 1985

74. मिश्र, भगीरथ, निराला काव्य का अध्ययन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1973

75. मिश्र, रामदहिन काव्यदर्पण, ग्रन्थमाला – कार्यालय, पटना, प्रथम संस्करण 1955

76. मुक्तिबोध, गजाजनन माधव, एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी तृतीय संस्करण 1969

77. मुक्तिबोध, गजानन माधव मुक्तिबोध रचनावली (भाग 5). सं० नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980

78. मेहरोत्रा, बलदेव प्रसाद कथा–शिल्पी निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984

79. यादव भगवानदेव, निराला काव्य का वस्तुतत्व आगामी साहित्य रत्नालय, कानपुर, 1979

80. वर्मा, धनंजय, निराला काव्य और उनका व्यक्तित्व, विंध्य प्रकाशन, दिल्ली, 1960

81. वर्मा, महादेवी. गीत– पर्व, न्यु बिल्डिंग्स, अमीनाबाद, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1970

82. वर्मा, महादेवी, नीरजा, भारती भण्डार, इलाहाबाद संस्करण 2013

83. वर्मा महादेवी, संधिनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1955

84. वर्मा, महादेवी, हिन्दी काव्य–छायावाद युग, गीतपर्व प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 1970

85. वर्मा, सहदेव, मैथिलीशरण गुप्त का खड़ी बोली के उत्कर्ष में योगदान आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1972

86. बृहस्पति, कैलाशचन्द्र देव, भारत का संगीत सिद्धान्त, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ० प्र०, 1959

87. वाजपेयी, नन्ददुलारे, आधुनिक साहित्य, भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण वि० 2022

88. वाजपेयी, नन्ददुलारे, आधुनिक साहित्य सृजन और समीक्षा, मैकमिलन, दिल्ली, 1978

89. वाजपेयी, नन्ददुलारे कवि निराला, मैकमिलन, दिल्ली, 1979

90. वाजपेयी, नन्ददुलारे, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जीवन चरित वाणी वितान प्रकाशन वाराणसी, 1965

91. वाजपेयी, नन्ददुलारे हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

92. वार्ष्णेय, कुसुम, निराला का कथा साहित्य, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1971

93. वालिया, डेजी, निराला की संगीत साधना, अंकुर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987

94. शरद ओंकार (स०) निराला ग्रन्थावली–1, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, संस्करण वि० 2030

95. शरद ओंकार (स०). निराला ग्रन्थावली 2. प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, संस्करण वि० 2030

96. शरद ओंकार (स०), निराला ग्रन्थावली–3 प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, संस्करण वि० 2030

97. शर्मा. उपेन्द्र कुमार, निराला और नजरूल, भवानी शंकर प्रकाशन, भिवानी

98. शर्मा, कृष्णदेव, निराला और उनकी अपरा, रीगल बुक डिपो, दिल्ली, 1969

99. शर्मा, राजकुमार पन्त आधुनिक कवि, पदम बुक कम्पनी, जयपुर प्रथम संस्करण 1968

100. शर्मा, राजकुमार, महाकवि निराला संस्मरण और श्रद्धांजलियों, किताब महल, इलाहाबाद, 1957

101. शर्मा, रामविलास, निराला, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1971

102. शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य साधना (भाग–1), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संरकरण 1969

103. शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य साधना (भाग–2). राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1972

104. शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य साधना (भाग–3), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण 1990

105. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1975

106. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०. नई दिल्ली, प्रथम संरकरण 1977

107. शर्मा, रामविलास (सं०), राग–विराग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीं संस्करण 1984

108. शर्मा, वीणा, निराला की काव्य–साधना, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली–पटना, प्रथम संस्करण 1965

109. शास्त्री, जानकीवल्लभ, निराला के पत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971

110. शास्त्री, विष्णुकान्त, महाकवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, 1953

111. शुक्ल देवीदत्त (संग्रहकार), द्विवेदी – काव्यमाला, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1940

112. शुक्ल, पुत्तुलाल, आधुनिक हिन्दी काव्य मे छन्दोयोजना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, वि० 1100.

113. शुक्ल, रामचन्द्र, चिन्तामणि (भाग–1). इण्डियन प्रेस, प्रयाग, 1962

114. शुक्ल, रामचन्द्र रस मीमांसा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, तृतीय संस्करण

115. शुक्ल, रामचन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण वि० 2035

116. शुक्ल, शकुन्तला, निराला की काव्य–भाषा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 1980

117. श्रीवास्तव, कुमारी शांति, छायावादी काव्य और निराला, ग्रन्थम प्रकाशन, रामबाग, कानपुर, 1966

118. सिंह. उदयभानु महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, संवत 2008

119. सिंह, केदारनाथ कल्पना और छायावाद, हंस प्रकाशन इलाहाबाद 1979

120. सिंह केदारनाथ, छायावादी कविता में बिम्ब–विधान, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली 1971

121. सिंह, त्रिभुवन, आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1961

122. सिंह, दूधनाथ, निराला आत्महन्ता आस्था, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972

123. सिंह, नामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण

124. सिंह, नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन पटना–दिल्ली, प्रथम संस्करण 1955

125. सिंह. बच्चन, क्रान्तिकारी कवि निराला, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पांचवा संस्करण 2003

126. सिंह, रामकुमार, निराला और उनकी गीतिका, साहित्यालोक, कानपुर, 1985

127. सिंह, विजयकुमार, निराला का निबन्ध साहित्य इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1977

128. सिंह, विजयपाल, काव्यांग प्रकाश विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 1979

129. सिंह, शिवशकर, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का काव्य–भाषा प्रयोग, भागलपुर, 1976

130. सिद्धान्तकर, शिवमंगल, निराला और मुक्त छन्द, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिव, दिल्ली. प्रथम संस्करण 1974

131. सुधीन्द्र, हिन्दी कविता मे युगान्तर नवीन हिन्दी कविता के विकास का अध्ययन, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1950

132. सैनी, राजकुमार, साहित्ययष्टा निराला, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981

133. हरिऔध, अयोध्या सिंह उपाध्याय, प्रियप्रवास, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, प्रथम संस्करण वि० 2013

134. हरिऔध, अयोध्या सिंह उपाध्याय, वैदेही वनवास, हिन्दी–साहित्य कुटीर, बनारस, चतुर्थ संस्करण वि० 2007

135. हरिऔध, अयोध्या सिंह उपाध्याय, पद्य– प्रमोद, कल्याणदास एण्ड ब्रॉदर्स, बनारस, 1955

(ग) पत्र–पत्रिकाओं की सूची

1. अक्षरा, सं. विजय कुमार देव, अंक जनवरी–फरवरी, 2005
2. अतएव, सं. शरण बिहारी गोस्वामी, अंक जनवरी–फरवरी, 1999
3. अभिनव भारती, सं. अजक सिंह, अंक 2000–2001 ई.
4. अभिनव भारती, सं. शैलेश जैदी, अंक 1994–95, 95–96
5. अभिनव भारती, सं. उदयशंकर श्रीवास्तव, अंक. 2003–2004
6. आलोचना, सं. नामवर सिंह, अंक अप्रैल–जून, जुलाई–सितम्बर 1972
7. गोदारण, सं. भरत सिंह, अंक जुलाई 2005
8. पहल, सं. ज्ञानरंजन, अंक अप्रैल–मई 2002
9. मधुमती, सं. कन्हैयालाल सेठिया, अंक अप्रैल, 2002
10. सम्मेलन, सं. विभूति मिश्र, अंक भाग 89 सं०–3–4 (2004)
11. साक्षात्कार, सं. सोमदत्त, अंक अप्रैल–जून, 1988 दिसम्बर 2004; मार्च, 2005
12. हिन्दी अनुशीलन, सं. वीरेन्द्र नारायण यादव, अंक जून–सितम्बर, 2005

(घ) कोश–सूची

1. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका
2. डा० नगेन्द्र (स०) मानविकी पारिभाषिक कोश (मनोविज्ञान एवं साहित्य खण्ड). राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
3. तिवारी भोलानाथ (सं०), हिन्दी पर्यायवाची कोश, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1994

4. वर्मा, धीरेन्द्र, हिन्दी विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1960

5. श्यामसुन्दरदास (प्रधान सं०), हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1971

6. वर्मा, धीरेन्द्र वर्मा ब्रजेश्वर भारती धर्मवीर वर्मा, रामचन्द्र (सं०) हिन्दी साहित्यकोश (पारिभाषिक शब्दावली). ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, प्रथम संस्करण सं० 2015